श्रीः ।

संसारके महानपुरुष ।

लेखक—

पण्डित मदनलालजी तिवारी.

अर्थात्

संसार भरके सभी देशोंके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध
महापुरुषोंका संक्षिप्त जीवन-परिचय ।

बा. रुद्रनारायणजी अग्रवाल बी. ए.
द्वारा संशोधित और परिवर्धित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

संवत् १९८९, शके १८५४.

प्रस्तावना ।

पश्चिमोत्तर व अवध देशके लफ़टिनेन्ट गवरनर, सर ए. पी. मैकडा-नल साहब बहादुरने शिक्षाविभागकी रिपोर्टका गुणदोष विवेचन करते हुए, रेज़ोल्युशन नं $\frac{४४८}{१७-४८}$ के द्वारा, नैनीतालसे ८ अक्टोबर, सन् १९०१ को उत्तेजनाके साथ सूचना दी थी कि देशी भाषामें अच्छे २ जीवन-चरित लिखाजाना अत्यावश्यक है, क्योंकि विचारशील चित्तवृत्ति छात्रोंपर इतना प्रभाव किसी प्रकारके साहित्यका नहीं पड़ता है जितना कि अच्छे २ चरित्रोंका ।

लार्डसाहबके पूर्वोक्त कथनसे प्रेरित होकर मैंने यह रचना की जो अपने ढङ्गकी अनूठी है क्योंकि इसमें संसारके १ सहस्र श्रेष्ठजनोंके चरित हैं जिनमेंसे बहुतसे संस्कृत व हिन्दी साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं ।

ग्रन्थकी सामग्री केवल अत्यन्त विश्वसनीय स्रोतोंसे एकत्र कीगई है और प्राचीन तथा रहस्यमय चरित्रोंके लिखनेमें पुरातत्त्ववेत्ताओंके अन्वे-षणका भलीभांति व्यवहार किया गया है । जिन बातोंके विषयमें प्रामा-णिक विद्वानोंका मतभेद है, उनके निर्णय करनेमें केवल अधिक बुद्धि-सम्मत तथा न्यायसंगत मतोंको ग्रहण किया है ।

बहुधा स्थलोंमें तो चरितान्वेषणके लिये केवल मूल स्रोतोंका ही आश्रय लिया है और यदि कोई चरित संग्रहग्रन्थोंके आधारपर लिखा है तो उसकी शुद्धताकी परीक्षा सावधानीसे कर ली है ।

यह ग्रन्थ अध्यापक, जिज्ञासु तथा पाठकोंको समानरीतिसे लाभदायी होगा क्योंकि बहुतसे चरित विस्तृतरूपसे भी लिखे हैं ।

जिज्ञासुओंकी आवश्यकता पूरक इस प्रकारका यह पहलाही ग्रन्थ है। संस्कृत और हिन्दी साहित्य शिक्षाकी इससे बड़ी उन्नति होगी और पढ़नेवाली दुनियापर नीति तथा बुद्धिमत्ताका, जिससे यह ग्रन्थ ओतप्रोत है, अवश्यही प्रभाव पडेगा ।

इटावा.
७ मार्च, १९०७.

मदनलाल तिवारी.

श्रीः ।

संसारके महान पुरुष

अकबरः—जन्म (अमरकोट) १५४२, अक्टूबर १४; मरण (सिकन्दरा, आगरा) १६०५ । अकबरका पिता हुमायूँ शेरशाह सूर द्वारा खदेड़ा जाकर फ़ारसकी ओरको भागा जारहा था, उसी समय इसका जन्म सिंधके अमरकोट नामक स्थानपर हुआ था । बादको हुमायूं ने १५५५ में सर हिन्दके निकट शेरशाहके भतीजे सिकन्दरशाहको हराकर अपने राज्यपर फिर से अधिकार कर लिया । पर इसके कुछही महीने बाद हुमायूँ मर गया और बैरमखां तुर्क अकबरका वली बनकर राजकाज चलाने लगा । बैरमखां तेजस्वी था और अपनी लड़ाईके द्वारा उसने सेनामें सङ्गठन उत्पन्न कर दिया था । पर वह अपनी जाति सुलभ नृशंसताको न भूल सका । १५६० में अठारह वर्षकी वह अवस्थामें अकबरने राजकाज अपने हाथमें लिया । यह काम बैरमखांको न रुचा और उसने मालवामें एक पृथक राज्य क़ायम करनेकी चेष्टाकी, पर विफल हुआ । अकबरकी शरण आया । फिर मक्काकी ओर चला गया और मार्गमें मारा गया । अकबरने धीरे धीरे सारा खोया हुआ प्रदेश प्राप्त कर लिया, उससे भी अधिक । अकबरमें धार्मिक कट्टरता न थी । उसने पुर्चगालके पादरियोंके प्रभावमें आकर एक नया धर्म चलाया, पर वह फैला नहीं । इसके राज्यमें हिन्दू मुसल्मान मेलसे रहते रहे । इसके दरबारमें अबुलफ़ज़ल नामका बड़ा भारी विद्वान् था जिसने इसकी आज्ञासे अनेक धार्मिक संस्कृत ग्रन्थ फ़ारसीमें अनूदित किये थे । एक दरबारी बीरबल जिसका व्यंग्य विनोद बड़ा परिष्कृत और मार्केका होता था । अकबरने अपने राज्यमें सुव्यवस्थाकी, लगान चलाया, ज़मीनकी नाप जोख रक्खी और करको नियमित रूप दिया । इसके शासन कालमें गो हत्या बन्द थी । गंगाजल पीता था । इसका तीसरा पुत्र सलीम हिन्दू रानी जोधाबाईके गर्भसे हुआ था । इसकी धार्मिक उदारताके सम्बन्धमें इसके प्रपौत्र औरंगजेबने एकबार कहा था:—

अकबर न बूद अकफ़र बूद ।

अर्थात् अकबर अकबर नहीं था, काफ़िर था ।

अक्रूर—यह यदुवंशी शाफल्कके पुत्र थे । इनकी माताका नाम गान्दिनी था । शाफल्क बड़े पुण्यात्मा थे । कहा जाता है किसी समय काशीराजके राज्यमें अकाल पड़ गया था । अनावृष्टिसे प्रजाजन व्याकुल हो उठे थे । संयोग वश उस समय शाफल्कका वहां जाना हुआ ! उनके पहुंचते ही सब अमंगल दूर होगया । इस पुण्य-प्रभावको देखकर काशीराजने अपनी पुत्री गान्दिनीका विवाह शाफल्कके साथ कर दिया । इसके बाद अक्रूरजीका जन्म हुआ । प्रथम अक्रूर कंसके यहां रहते थे । कंसकी आज्ञासे वह कृष्ण-बलरामको लिवालानेके लिये वृन्दावन गये थे । कंसके कपट-जाल तथा यादवोंके प्रति उसके अत्याचारके रहस्य भगवान् कृष्णको सुनाकर दुष्टका संहार करनेकी अक्रूरने प्रार्थनाकी । इसके बाद श्रीकृष्णजीके हाथसे कंस मारा गया । सत्यभामाके पिता श्रीकृष्णके श्वसुर सत्राजित् को मारकर शतधन्वाने स्यमन्तक मणि प्राप्त करली थी । उस मणिके लिये श्रीकृष्णने शतधन्वाको ताड़ना दी । वह गुप चुप स्यमन्तक मणि अक्रूरको देकर भाग गया । कारण शतधन्वाने अक्रूरके उत्साह दिलानेपर ही सत्राजित् से स्यमन्तक मणि ली थी । शतधन्वा भाग जाने पर भी अपने प्राण नहीं बचा सका । अक्रूर स्यमन्तक मणिको अपने वस्त्रमें छिपाये रखते थे । इस मणिमें यह शक्ति थी कि प्रतिदिन उससे एक बड़े परिमाणमें स्वर्ण निकलता और जहां वह रहती, वहां अनावृष्टि भी न होती । इस मणिके प्रभावसे जो स्वर्ण मिलता उससे अक्रूरजी यज्ञ और दानादि करते थे । स्यमन्तक मणिका अक्रूरके पास होना श्रीकृष्णजीसे छिप न सका और उन्होंने चतुराईके साथ अक्रूरसे पूछा । अक्रूरजी सच बात कहकर मणि श्रीकृष्ण भगवान्की सेवामें अर्पण करनेको तत्पर हुए किन्तु उन्होंने प्रसन्न होकर मणि अक्रूरके पास ही रहने दी । अक्रूरका दूसरा नाम उनकी माताके नामपर गान्दिनी-सुत भी था । भगवान्की मायासे यदु-वंशका नाश हुआ, उसीमें अक्रूरजी भी नाम शेष हुए ।

अगस्त्यऋषि—ऋग्वेदमें लिखा है कि ऋषि मित्रावरुणके वीर्य्यसे जो उर्वशी अप्सराको देखकर गिरा अगस्त्य तथा वसिष्ठऋषि पैदा हुए । अगस्त्य विन्ध्याचल पर्वतके समीप विन्ध्याचलवनमें गोदावरीतट पर रहते थे । महाभारतमें

लिखा है कि राजा नहुप इन्हींके शापसे साँप हुये । रामचन्द्रजी वनवासके समय इनके आश्रममें पधारे थे। द्रवण देशवासियोंको इन्होंने अनेक प्रकारकी विद्या पढाई थी। इनका पुत्र शतानन्द निमिकुलका पुरोहित था। अगहतसराय नामक एक खेड़ा जिला एटामें है। अगस्त्यमुनिने वहां बहुत कालतक तपस्याकीथी। अगहत अपभ्रंश अगस्त्यका है। स. ई. १६८५ में अफगानोंने वहां एक सराय बनवाई । तबसे यह स्थान अगहत सराय कहलाया । विदर्भ (बरार) के राजाकी कन्याओंसे अगस्त्य ऋषिने शादी की थीं रावण लङ्केश इनके वंशमें था। ऋषि पुलस्त्य इनके दादा थे। दक्षिण देशस्थ सब राक्षस इनकी आज्ञा मानते थे, इनके विषयमें पुराणोक्त कथा प्रसिद्ध है कि एक बार ये चीटियोंके अण्डोंका उद्धार करनेके लिये समुद्रको तीन चुल्लू करके पीगये थे और उसको मूत्रद्वारा निकालकर खारीकर दिया था।

अग्निमित्र–(मगधदेशका राजा) इसका बाप पुष्पमित्र मगधके मौर्यवंशी राजा बृहद्रथका सेनापति था । बृहद्रथको वध करके पुष्पमित्र मगधका राजा बना । पुष्पमित्रके मरनेपर अग्निमित्र उसका बेटा ईसासे १७० वर्ष पूर्व राज-सिंहासन पर बैठा। कवि कालिदासने इसी अग्निमित्र और मालविका का प्रेम "माल-विकाग्निमित्र" नाम नाटकमें वर्णन किया है । मालविका विदर्भकी रानीकी सहेली परमसुन्दरी सङ्गीत शास्त्रकी पूर्ण ज्ञात्री थी ।

अज–सूर्यवंशी अयोध्यापति महाराज रघुके पुत्र तथा श्रीरामचन्द्रजीके पिता-महविदर्भ-राज-कन्या इन्दुमतीने अपनी स्वयंवर सभामें उपस्थित नरपति–समूहमें अजको ही पति वरण किया था। नर्मदाके तीर पर अजने शापग्रस्त गन्धर्व प्रियम्वदका हाथीकी योनिसे उद्धार किया था जिससे प्रसन्न होकर गन्धर्वने सम्मोहन शर प्रदान किया । इस शरकी सहायतासे अजने उन राजा-ओंपर विजय पायी, जो स्वयंवर-सभासे खाली हाथ लौटनेके कारण अजसे इन्दुमतीको छीनना चाहते थे। इन्दुमतीके गर्भसे दशरथका जन्म हुआ। महा-राज रघुने अपने पुत्र अजको सुयोग्य हुआ देखकर राज्याधिकार प्रदान पूर्वक स्वयं वानप्रस्थाश्रम ले लिया था । इन्दुमतीकी मृत्यु होनेपर अजने बडा विलाप किया । दूसरा विवाह भी नहीं किया । वयस्क होनेपर दशरथको राज्यभार सौंप कर अज वनको चले गये थे । वहां कठिन तपश्चर्या करते हुए उन्होंने देह-त्याग किया ।

अक्षयकुमार—मन्दोदरीके गर्भसे उत्पन्न रावणका कनिष्ठ पुत्र । सीताको ढूँढनेके लिये जब महावीर हनूमान् लंकामें पहुंचे और वहां उन्होंने प्रमोद वनका विध्वंस करना आरम्भ किया उस समय अक्षयकुमार सेना लेकर प्रतिरोध करनेके लिये आया था । युद्ध होनेपर बड़ी वीरता दिखानेके बाद हनूमानके हाथसे अक्षयकुमार मारा गया ।

अक्ष—यह महर्षि वशिष्ठकी एक पत्नी थी । गुणवती तथा विदुषी थी ।

अघासुर—पुराण प्रसिद्ध असुर । यह पूतना और बकासुरका छोटा भाई तथा कंसका आज्ञापालक सेवक था । कंसके द्वारा पूतना और बकासुर कृष्णको मार डालनेके लिये भेजे गये थे । किन्तु वे स्वयं ही श्रीकृष्णके हाथसे मारे गये । भाई और बहिनकी मृत्युसे क्रुद्ध होकर अघासुर वृन्दावन पहुँचा और एक विकराल अजगरका रूप धारण करके मार्गके सहारे बैठ गया । उसका मुँह पहाड़की गुफाकी तरह खुला हुआ था । वह गोप बालकोंको निगलने लगा । अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण उसके कपटाचारको समझ गये और तुरन्त उसके मुँहमें प्रविष्ट हो अपनी देहका विस्तार किया जिससे अघासुर मर गया और उसका पेट फटनेसे गोप बालक बाहर निकल आये ।

अजामिल—एक दुराचारी ब्राह्मण था । यह अपनी धर्मपत्नीका त्याग कर एक वेश्याके प्रेममें आसक्त हो रात दिन उसीके घर पड़ा रहता था । इस वेश्याके गर्भसे उसको आठ पुत्र हुए । उनमें सबसे कनिष्ठ पुत्रका नाम नारायण था । नारायणपर अजामिलका विशेष स्नेह था । मृत्यु समय उपस्थित होनेपर स्नेहके वशवर्ती हो अजामिल नारायण ! नारायण !! पुकारने लगा । नारायण नामकी रटन्त करते करते उसका ध्यान सच्चिदानन्द नारायणमें लग गया और इसीसे उसने मुक्ति-पद लाभ किया ।

अनन्त—सर्पोंके राजा । इनका दूसरा नाम शेष भी है । कश्यपके औरस और कद्रुके गर्भसे अनन्तका जन्म हुआ । अनन्तकी स्त्रीका नाम तुष्टि था । भाइयोंके असत् आचरणसे दुःख मानकर अनन्त तपस्या करनेके लिये चले गये थे । बहुत समय तक कठोर तपस्या की । इससे ब्रह्माने प्रसन्न होकर वर दिया । पश्चात् वह ब्रह्माकी आज्ञासे पातालमें चले गये और तबसे पृथ्वीको धारण करते हैं ।

अतिथि—एक सूर्यवंशी राजा एवं भगवान् श्रीरामचन्द्रके पौत्र थे। इनके पिता कुस तथा माता कुमुद्वती—नागराजकी वहिन थीं। कुसकी मृत्युके बाद अतिथिने योग्यतापूर्वक राज्य शासन किया।

अतिकाय—लंकेश रावणका अन्यतम पुत्र। इसकी माताका नाम धान्यमालिनी था। बलिष्ठ तथा विशाल देह सम्पन्न होनेके कारण ही इसका नाम अतिकाय था। राम रावण—युद्धमें लक्ष्मणजीके हाथसे अतिकायकी मृत्यु हुई।

अनन्तदैवज्ञ—(ज्योतिषकार) के १६ वीं सदीमें जन्म हुआ। विदर्भ प्रदेशान्तर्गत धर्मपुर निवासी चिन्तामणि दैवज्ञके पुत्र थे, नीलकण्ठी नाम ज्योतिष ग्रन्थके कर्ता पं० नीलकण्ठ दैवज्ञ तथा मूहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थके कर्ता पं० राम दैवज्ञ इनके पुत्र थे। यह बरारसे काशीमें आ बसे थे, जातकपद्धति और कामधेनुगणितटीक इनके रचे ग्रन्थ हैं। अनन्त सुधार साख्यसारिणी नाम ज्योतिप ग्रन्थके कर्ता अनन्त दैवज्ञ दूसरे थे।

अनन्यदास—यह जातिके कायस्थ और हिन्दी भाषाके कवि थे। बीकानेरमें इनका जन्म हुआ था। भगवद्भक्त थे। अपने घरमें बैठे भगवान्का भजन करनेमें ही समय व्यतीत करते थे। उस समय बीकानेरमें महाराज रायसिंह (विक्रम संवत् १५९८ से १६२८ तक) राज्य करते थे। महाराजके भाई पृथ्वीराज बड़े कवि, भगवद्भक्त और अकबर बादशाहके कृपापात्र थे। इन पृथ्वीराजजीको एक समय वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने घर बार त्यागनेकी तैयारी की। इससे उनके कुटुम्बी तथा मित्र घबराये और उन्होंने पृथ्वीराजको अनन्यदासजीसे मिलाया। अनन्यदासजीके उपदेशका उनपर ऐसा प्रभाव पडा कि पूर्ववत् काम काज करने लगे। अनन्यदासजीका रचित ग्रन्थ "अनन्य योग प्रकाश" प्रसिद्ध है। इसमें वह उपदेश भी सन्निविष्ट है जो पृथ्वीराजजीको किया था।

अत्रि—सप्त ऋषियोंमेंसे एक ऋषि तथा ब्रह्माके मानसपुत्र। इनकी धर्मपत्नी दक्ष-सुता अनसूया थी। दत्त, सोम और दुर्वासा इनके पुत्र थे। महर्षि अत्रिके नेत्रजलसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति बतायी जाती है। वनवासके समय श्रीरामचन्द्रजीने अत्रि ऋषिके आश्रममें आतिथ्य स्वीकार किया था। अत्रि धर्मशास्त्रके अन्यतम आचार्य थे। उनकी अत्रि—संहिता धर्मशास्त्रका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

अथर्व–एक ऋषि और ब्रह्माके ज्येष्ठ पुत्र । कर्दम प्रजापतिकी कन्या शान्ति-के साथ इनका विवाह हुआ । दधीचि इनके पुत्र थे । अथर्व-वेदका नामकरण इन्हींके नाम पर हुआ । इन्होंने ही सबसे पहले अग्निको उत्पन्न किया । यज्ञके प्रथम प्रचारक यही थे ।

अदिति–दक्षराजकी कन्या और महर्षि कश्यपकी पत्नी । इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अंश, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, वरद, मनु और पर्जन्य नामक द्वादश देवताओंने अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, इसलिये वह "देवमाता" नामसे भी परिचित है । समुद्र-मन्थनसे उपलब्ध कुण्डल इन्द्रने अदितिको दे दिये थे । इन्द्र और श्रीकृष्णका पारिजातके लिये विवाद होनेपर अदितिने उप-स्थित होकर झगड़ा मिटाया था ।

अनुभूतस्वरूपाचार्य–(व्याकरण)–सारस्वतचन्द्रिका नामक व्याकरण ग्रन्थके कर्ता, पञ्जाबके रहनेवाले सारस्वत ब्राह्मण थे ।

अजातशत्रु–अपने बाप बिम्बसार मगध नरेशको मारकर ईसासे ४८५ वर्ष पूर्व गद्दीपर बैठा । ३२ वर्ष राज्य करके आपभी चलबसा । राजग्रह इसकी राजधानी थी । इसने गौतम बुद्धका मतग्रहण किया । इसके गद्दीपर बैठनेसे ८ वर्ष पीछे महात्मा बुद्धका परलोक हुआ ।

अजीतसिंह राठौर–(जोधपुरनरेश) इनके पिता महाराज यशवन्तसिंहसे औरङ्गजेब मनमें शत्रुता रखता था एवं औरंगज़ेबने तख्तपर बैठकर उनको काबुलकी सूबेदारीपर भेज दिया था । काबुलहीमें वीरपिताके अंशसे वीर पुत्र अजीतसिंहने गर्भ धारण किया, पर इनको पेटहीमें छोड़कर यशवंतसिंहजी का देहान्त होगया । जब यह जन्मे तो औरंगजेबने पिताका बदला उसके बालक पुत्रसे लेना चाहा और जोधपुरकी रियासत ज़ब्तकरली और अजीतसिंहको कैद करनेका इरादा किया । यशवन्तसिंहके साथियोंने अजीतसिंहको आबू पर्वत पर जा छिपाया और यशवंतसिंहकी रानियोंने प्रतिष्ठा बचानेके लिये जान खोदी । बड़े होकर अजीतसिंहने उदयपुरकी एक राजकुमारीसे शादी की और धीरे धीरे अपने राज्यपर अधिकार जमाया । स. ई. १७०६ में अजीतसिंह और औरङ्ग-ज़ेबमें सन्धि होगई जिससे अजीतसिंहने बादशाहका आधिपत्य स्वीकार किया ।

थोड़ेही दिनोंवाद अवसर पाकर औरङ्गज़ेवने अजीतसिंहको उनके पुत्र वख्तसिंहके हाथसे मरवाडाला और इसके वदलेमें वख्तसिंहको ईडरका राज्य दिया। अजीत-सिंहकी ६४ रानियाँ पतिके मृतक शरीरके साथ सती होगईं। अजीतसिंहका महिल और छतुरी जोधपुरमें देखने योग्य हैं.

अङ्गदजी (सिक्खोंके द्वितीय गुरु) जन्म १५०४, मरण १५५२। इनके वाप फीरूमलखत्री फ़ीरोजपुरके हाकिमके कार्य्यकर्ता थे। माताका नाम सुभराईजी था। स. ई. १५१९ में इनका विवाह हुआ जिससे २ पुत्र और २ पुत्रियाँ हुईं। स. ई. १५३१ में गुरु नानकके चेले होगये। इनकी अगाध भक्ति देखकर नानक जीने अपनी गद्दीका उत्तराधिकारी इन्हींको बनाया। यह वड़े सत्यवादी और दानी थे। जो कुछ चेलोंसे मिलता धमार्थ खर्चकर दिया जाता था। इनकी समाधि अभी तक खण्डौर नामक ग्राममें विद्यमान है जिसके खर्चके लिये १४५८ रु० वार्षिक आयकी भूसम्पत्ति अङ्गरेज़ सरकारकी तरफसे माफ है।

अङ्गिराऋषि–१० प्रजापतियों तथा सप्तऋषियोंमें इनकी गणना है। बृह-स्पति, मार्कण्डेय इत्यादि इनके पुत्र थे। ऋग्वेदका नवाँ मण्डल इन्होंने प्रकट किया और एक धर्मशास्त्र स्मृति तथा एक ज्योतिष सिद्धान्त बनाया। यह वर्णके ब्राह्मण थे पर इनके वंशधारियोंका स्वभाव क्षत्रियोंकासा था। इनकी सन्तति अनेक पीढियोंतक अङ्गिरानामसे पुकारी जाती रही।

अनङ्गपाल–पञ्जाबके राजा जयपालका पुत्र। वर्णका ब्राह्मण था। ११ वीं सदीमें जयपालने सुलतान महमूद ग़ज़नवीसे हारकर राजपाट अपने पुत्र अनङ्ग-पालको सौंप कर अपना देह अग्निमें हवन कर दिया। महमूदने अनङ्गपाल पर भी चढ़ाईकी और बहुतसा माल लूटकर ले गया। कुछ समय पीछे महमूदने अनङ्गपाल पर फिर चढ़ाई की। इस समय यद्यपि राजाका कोष खाली था परं क्षत्रियोंने अपनी जान लड़ादी और क्षत्रानियोंने उनकी जेवर बेंचकर और सूत कातकर सहायताकी। अनङ्गपालके मरनेपर महमूदने उसके पुत्र जयपाल द्वितीयको परास्त करके स. ई. १०२२ में लाहौरका राज्य छीन लिया।

अनङ्गभीमदेव–(उडीसाकाराजा) गंगावंशी राजा। स. ई. ११७५ से १२०२ तक राज्य किया। पुरीमें जगन्नाथका मन्दिर वनवाया.

अप्पयदीक्षित–(धर्म प्रवर्त्तक) द्रवणदेश वासी रंगराज मखीके पुत्र थे। इनका जन्म विक्रमकी १६ वीं शताब्दीमें हुआ ।यह शैव थे,श्रीकण्ठ नामके मत इनका चलाया हुआ है। विद्वानोंकी दृष्टिमें इनकी प्रतिष्ठा शङ्करस्वामीके समान है इनके अनेक वंशधराने अग्निष्टोम, वाजपेय इत्यादि यज्ञ करके मखी दीक्षित वाजपेई इत्यादिकी पदवी प्राप्त की थी । प्रायः सब शास्त्रोंपर इनके रचे ग्रंथ मिलते हैं:–वेदांतमें परिमल आदि, मीमांसामें विधिरसायनादि, साहित्यमें वृत्ति॰ वार्तिक, चित्रमीमांसा, कुवलयानंद इत्यादि और शैवदर्शनमें शिवादित्य मणिदी-पिका अनेक काव्य तथा स्तोत्र भी इन्होंने रचे थे और स्वरचित अनेक ग्रंथोंपर तिलक भी बनाये थे । सब ग्रंथ मिलाकर १०१ हैं ।

अफलातून–हकीम (Plato). यूनान का एक दार्शनिक स. ई. ४२९ में अरिष्टनके घर ऐथेन्समें जन्मा।प्राचीन कालमें इसके पूर्वज यूनियनके राजा थे। इसने उच्च श्रेणीकी शिक्षा पाई थी और कविता बचपनहीसे करता था। २० वर्षकी उम्रमें सुकरातके शिष्य होकर दर्शन पढना शुरू किया और स्वरचित कविताकी पुस्तकोंको जलादिया । बुद्धि इसकी अत्यंत तीव्र थी। थोड़ेही कालमें योग्य फ़िलासोफर हो गया। सुकरातके मरनेपर यह देशाटनको निकला और १० वर्षतक मिश्रमें रहकर पढता रहा । बादको इटली जाकर पीथा गोरसकी फ़िलासोफी पढी । ४० वर्षकी उम्रमें अपनी जन्मभूमिको लौट आया और वहां पर एक पाठशाला स्थापन करके विद्यार्थियोंको पढाने लगा। उम्रभर विवाह नहीं किया । ८२ वर्षकी उम्रमें मरा बहुतसी पुस्तकें इसकी बनाई हुई हैं। आज कलके प्रजा तन्त्रकी नींव अनेक अंशोंमें इसने ही डाली थी । इस सम्बन्धमें इस का रिपब्लिक बहुत प्रसिद्ध है।

अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना (अकबरके दर्बारके नवरत्न) बैरमख़ां ख़ान-ख़ानाके पुत्र स. ई. १५५६ में लाहौरमें पैदा हुये । युवावस्थाहीमें अकबरने इनकी अपूर्व योग्यता देखकर मिर्ज़ाखानकी उपाधि दी और शहजादे सलीमका शिक्षक इनको नियत किया । ये योद्धा भी थे और कवि भी इनकी रहीम सतसई हिन्दी साहित्यमें अपना विशेष ध्यान रखती है।

अब्दुलफ़ैज़ी–अकबरके नवरत्नोंमेंसे एक । बडा विद्वान और तत्त्व-विद् । संस्कृत, फ़ारसी और अरबीका पूर्ण ज्ञाता । अनेक संस्कृत ग्रन्थोंका

फ़ारसी अनुवादक। इसके मरनेके पश्चात् इसके पुस्तकालयमें से ४६००० हस्त लिखित ग्रन्थ निकले थे। यह अकबरके प्रधान मंत्री अबुल फ़ज़लका—जिसे जहांगीरने युबराजकी अवस्थामें मरवा डाला था—छोटा भाई था।

अभिनव गुप्त आचार्य—(संस्कृत कवि) विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें कश्मीरमें हुआ था। यह संस्कृतका बडा विद्वान् था। अभिनव गुप्तजी वाराह गुप्तके पौत्र और चुखल गुप्तके पुत्र थे, इनके कनिष्ठभ्राताका नाम मनोरथ था। निम्नलिखित ग्रन्थ इनके रचे हैं:—अनुत्तराष्टिका, क्रमस्तोत्र, घटकर्पर, कुलक वृत्ति, तन्त्रवट धानिका, परमार्थसार, मालिनी विजयवार्तिक, भगवद्गीता तिलक, भारत नाट्यशास्त्रटीका.

अम्बरीष—सूर्यवंशी राजा, बडा धार्मिक, दृढप्रतिज्ञ और प्रजापालक था। ऋषिदुर्वासाने उसकी परीक्षा की और दृढचित्त पाया। अंतसमय राजपाट छोड़ वनको चला गया और ईश्वरोपासनामें तत्पर हुआ।

अमरदास (सिक्खोंके तृतीय गुरु.) ज़िला अमृतसरमें तेजभानु खत्रीके घर सुलखनीजीके उदरसे उत्पन्न हुये। २० वर्षकी उम्रमें शादी की जिससे दो बेटे और एक बेटी हुई।बचपनसे ही इनकी रुचि सेवा और ईश्वरोपासनामें लगी रहती थी। स. ई. १५४० में इन्होंने गुरु अङ्गदजीके शिष्य होकर १२ वर्ष तक उनकी टहल निज देहके समान की। स. ई. १५५२ में गुरु अङ्गदजीके परमधामको सिधारने पर गुरुवाईकी गद्दीपर बैठे। खालसापंथकी इनके समयमें बडी उन्नति हुई। अनेक पहाडी राजाओंको इन्होंने अपने मतका अनुगामी बनाया। यह खड़े होकर रात दिन ईश्वरोपासना करते थे और बडे सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय थे। भूखे मोहताजोंको सदावर्त जारी रखते थे और पहुंचे हुए साधु थे। बादशाह अकबरको इनका निश्चय था, १०० वर्षकी अवस्थामें इनका देहांत हुआ और इनके जामातृ रामदासजी इनकी गद्दीके उत्तराधिकारी हुये। ग्राम गोयं-दबालमुल्क पंजाबमें इनकी बनवाई हुई एक बावडी है और इसी ग्राममें इनके वंशके बहुत लोग रहते हैं.

अमरसिंह—(कोषकार) यह बौद्ध थे। बुद्ध गयाके मंदिरके एक शिलालेख से प्रतीत होता है कि उसको अमरसिंहजीने विक्रमी संवत्की छठी शताब्दीमें

बनवाया था। ये विक्रमादित्य हर्ष महाराजा उज्जैनके दर्बारके नवरत्न नामक प्रसिद्ध पंडितोंमेंसे थे। इन्हींको अमरसिंह सेवड़ा कहते हैं। इनके बनाये बहुतसे ग्रंथ थे जिनमेंसे अमरकोषके सिवाय और सबको ब्राह्मणोंने नष्ट कर दिया.

अरस्तूः-(३२४-३२२ ई० पू०) जन्मस्थान स्टेगिरा। जब अठारह वर्षकी आयुमें इसका पिता मर गया तो यह प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटोके पास एथेन्स आगया। वहां यह बीस वर्ष रहा; प्लेटोके मरनेपर यह इधर उधर घूमनेके बाद मैसिडनके राजा फिलिपके पास आया। फिलिपने इसे अपने पुत्र सिकन्दरका शिक्षक नियत कर दिया। इस पदपर यह आठ वर्ष तक रहा। यह चिकित्सक, तत्ववेत्ता, गणितज्ञ, जीवविद्या विशारद-सभी कुछ था और इसके ग्रन्थ ढाई हज़ार वर्ष बाद भी उतने ही माननीय हैं। धीरे धीरे प्लेटोके दार्शनिक सिद्धान्तोंसे इसके सिद्धान्त विपरीत पडने लगे और अन्तमें बिल्कुल दो विभिन्न स्कूल होगये। सिकन्दरकी मृत्युके बाद सुकरातकी भांति इसपर भी नास्तिक होनेका अपवाद लगाया गया और इसे भागना पड़ा।

अर्जुन-(सिक्खोंके पंचमगुरु.) जन्म स. ई. १५६३ मृत्यु स. ई. १६०६ गुरुरामदासजीके कनिष्ठ पुत्र थे। ग्रामगोयंदबालमुल्क पंजाबमें पैदा हुये। इनके दो विवाह हुये। दूसरे विवाहसे गुरुहरगोविंद पैदा हुये। अर्जुनगुरुके समयमें गुरुकी भेंट पूजाकी प्रणाली चली। इन्होंने अमृतसरके निकट " संतोषसर " नामक तालाब खुदवाया था। शहर अमृतसरकी आबादी इनके समयमें बहुत बढगई थी। कहा जाता है कि कुष्ठी, अंधे इत्यादि अनेक असाध्य रोगियोंको इन्होंने आराम किया था। सिक्खोंकी धर्म पुस्तक " ग्रंथसाहिब " को पहिले पहिल इन्होंने संग्रह किया था। खालसा पंथकी जड़ इनके समयमें खूब जम गई थी। चंदूलाल दीवानने इनको मरवा डाला। इनकी समाधि लाहौरमें है जिसके खर्चके लिये ९०० रु. सालकी माफी है.

अर्जुन-(पांडव)-चंद्रवंशी महाराज पांडुके तृतीय पुत्र रानी कुंतीके उदरसे जन्मे थे। धनुर्विद्या तथा कलाकौशलादिमें अद्वितीय थे। पंजाबके राजा द्रुपदकी कन्या द्रौपदीसे इनका विवाह स्वयंवर विधिसे हुआ था। श्रीकृष्णजीकी बहिन सुभद्रा तथा मणिपुरकी राजकुमारी चित्रांगदासे भी इनकी शादी हुई थी। महाभारतके

युद्धमें अर्जुनने बड़े बड़े वीरता और साहसके काम किये। भीष्म पितामह तथा कर्ण इन्हींके हाथसे मारेगये। इस लड़ाईमें श्रीकृष्ण इनके सारथी बने थे और भगवद्गीताका उपदेश इनको किया था। राज्यसिंहासनपर बैठकर जब महाराज युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया तब ये यज्ञके घोडेकी रक्षाके लिये सिंध, मणीपुर, गुजरात, दक्षिण इत्यादि देशोंमें गये और जहां कहीं किसी राजाने सामना किया उसको परास्त किया, अंतमें जब यादवोंमें आपसमें झगडा फैला तब श्रीकृष्णजीने इनको द्वारिका बुलाया और वहां इन्होंने श्रीकृष्णके परमधाम सिधारनेपर उनकी अंत्येष्टि क्रिया की पश्चात् हस्तिनापुर आये। महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णजीके अंतर्धान होनेकी खबर सुन इनके पौत्र परीक्षितको राजपाट सौंप दिया और पांचों पांडवोंने द्रौपदीसहित हिमालयपर जाकर देह त्याग दी।

अलबरुनी—जिसको अबूरैहां भी कहते हैं स. ई. ९७३ में खीबामें पैदा हुआ। जब महिमूद ग़ज़नवीने स. ई. १०१७ में खीवा विजय किया तो वह अलबरुनीकोभी और लोगोंके साथ कैद करके अपनी राजधानी ग़ज़नीमें ले गया। ग़ज़नी पहुंच अलबरुनीने अनेक भारतवासियोंको जिनको महिमूद यहांसे पकड़ कर ले गया था देखा। हिन्दोस्तानके वृत्तांतमें अलबरुनीने फ़ारसीमें एक ग्रन्थ रचा ह जिससे इस देशकी प्राचीन गौरवता स्पष्ट मालूम होती है। इस किताबमें भारतवर्षकी उस समयकी सामाजिक तथा ऐतिहासिक व्यवस्था अच्छी तरह दर्शाई गई है और इस देशकी विद्या, धर्मवर्णव्यवस्था, खानपान, रहन सहन, खेती बाड़ी, वणिज व्यापार, राजनीति, फलफूल, इत्यादिकाभी सविस्तर वृत्तांत लिखा गया है, वराहमिहिरज्योतिषीकी भी प्रशंसा की है और लिखा है कि भारतवासियोंने और देशोंकी अपेक्षा गणित शास्त्रमें अधिक उन्नति की थी। यह भी लिखा है। कि भारतवासी विद्वान् केवल सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको मानते थे जैसा कि वेदोंमें और उपनिषदोंमें लिखा है और कुपढ़लोग अनेक मूर्तियोंकी पूजा करते थे। अलबरुनीने बहुतसे और ग्रन्थ भी बनाये थे। ४० वर्ष इसने हिन्दोस्थान इत्यादि अनेक देशोंमें भ्रमण करनेमें बिताये। यह बड़ा ज्योतिषी, इतिहासका ज्ञाता और नैयायिक पंडित था। इसकी भविष्यवाणी सही होती थी; मूक प्रश्न खूब बताता था। स. ई. १०५९ में मरा।

अल्लाउद्दीन खिलजी (दिल्लीका बादशाह). जब इसका चचा जलालुद्दीन खिलजी हिंदोस्थानमें बादशाही करता था तब यह प्रयाग प्रदेशान्तर्गत कड़ा-

का हाकिम था और उसी समय इसने विन्ध्याचलपर्वतके पार जाकर शहर भिलसाको लूटा था। इसके बाद बुँदेलखण्ड तथा माल्वाके हिंदूराजाओंको परास्त करके दक्षिण देशान्तर्गत महाराष्ट्र राज्यकी राजधानी देवगिरिपर चढ़ाई की और बहुतसा माल असबाब लूटकर प्रयागको आया और अपने चचाको मारकर दिल्ली-की गद्दीपर बैठा और स. ई. १२९५ से १३१५ तक राज्य किया। स. ई. १२९७ में गुजरात, १३०० में रणथम्भोर और १३०३ में चित्तौड़ विजय किया, अनेक दफे मुगलोंको परास्त किया और अपने भतीजोंको जिन्होंने इसके समयमें उपद्रव किया आँखें निकलवाकर मरवाडाला। फिर स. ई. १३०३ से १३०६ तक दक्षिण देशपर अपना अधिकार बढ़ानेमें लगारहा। चित्तौड़ विजय करनेके अवसरपर वहांकी महारानी पद्मिनी १३००० क्षत्रानियों सहित प्रतिष्ठा बचानेके लिये अग्निमें जलकर मरगईं और क्षत्री लोग कटते काटते ऐरावली पहाड़की ओर भागगये। दिल्लीके खिलजी वंशोत्पन्न बादशाहोंमें यह सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ और मुसल्मान बादशाहोंमें प्रथम इसीने दक्षिणदेश विजय किया। स. ई. १३१५ में इसके सेनापति मलिककाफूरने विष खिलाकर इसे मारडाला।

अलीवर्दीखाँ (बङ्गालका अन्तिम नव्वाब)—स.१७४० ई.में गद्दीपर बैठा। मुर्शिदाबाद इसकी राजधानी थी। अत्यंत क्रोधी था पर राजकाज सावधानीसे करता था। इसके समयमें मरहठा सवारोंने बङ्गालको लूटना आरंभ किया। यह देख नव्वाबने स. ई. १७४२ में कलकत्तेके गिर्द एक खाई खुदवाई जो आजतक "मरहठोंकी खाई" के नामसे प्रसिद्ध है। स. ई. १७५६ में इसके मरनेपर इसका पौत्र सिराजुद्दौला नव्वाब हुआ जो एकही वर्ष पीछे पलासीकी लडाईमें अपना मुल्क अङ्गरेजोंको दे बैठा।

अली:—मुहम्मदका दामाद और अनुयायी। मुहम्मदके मरनेके बाद अलीने ख़लीफ़ा बननेकी चेष्टा की, परन्तु उस समय अरबमें उमर प्रभावशाली था। उसने मुहम्मदके ससुर अबूबक्को ख़लीफ़ा बना दिया। इसके ज़मानेमें मुसल्मान शाम देश जीतने चले। पर दो ही वर्षमें अबूबक मर गया और उमर ख़लीफ़ा हुआ। इसने बहुतसे देश जीते। इसको एक गुलामने मार डाला और उसमानको ख़लीफ़ा बनाया गया। पर इसकी भी हत्या कर दी गई। अब अली ख़लीफ़ा हुआ। मुसल्मानोंके दो मत हैं—शिया और सुन्नी। जो मुहम्मद और अलीके बीचके तीन ख़लीफ़ोंको मानते हैं वे सुन्नी कहलाते हैं, जो नहीं मानते वे शिया हैं। अलीके

ज़मानेमें मुसलमान बलूचिस्तानसे आगेको हकाफ़ तक बढ़ आये थे पर कुछही समय बाद अलीको नमाज़ पढ़ते मार दिया गया। अलीके दो पुत्र थे—हसन और हुसेन हसन छः महीने खलीफ़ा रहकर मार डाला गया। फिर अमीर मुआविया खलीफ़ा हुआ और इसके समयमें कोहकाफ़ पर हिन्दुओंसे मोर्चा लिया गया। मध्य एशियामें अरब तूरान तक पहुँच गये। अमीर मुआवियाके मरनेके बाद उसका लड़का याज़िद खलीफ़ा हुआ। शिया उसके ऊपर हुसेनका वध करनेका अभियोग लगाते हैं और मुहर्रम निकालते हैं। अलीको मुसल्मान बलका अवतार मानते हैं।

अलेक्ज़ेण्डर—(३५६—३२४ ई० पू०) बादशाह फ़िलिपका पुत्र। १८ वर्ष की अवस्थासे ही इसने राज्यके बाग़ियोंको दबाना आरम्भ कर दिया। इसकी रगोंमें पिताका योद्धा और कल्पना सिक्त और माताका बर्बर रक्त मिला था। बादको इसके पिताने क्लियोपेट्रा नाम्नी एक नई स्त्रीके प्रेममें फँसकर इसकी माताको इसके साथ इसके नानाके घर भेज दिया। फिर कुछ दिनों बाद दोनोंमें मेल होगया, पर दिल न मिले। कुछ समय बाद जब फिलिप अपनी पुत्रीका विवाहोत्सव मना रहा था तो इसकी हत्या कर दीगई। अलेक्ज़ेण्डरके अलावा गद्दीके दावेदार और भी कई खड़े हो गये, पर सेनाने इसको राजा माना और फिलिपके चचेरे भाई और उसकी चहीती स्त्रीके पुत्रको मरवा दिया गया। पहाड़ी इलाक़ोंने सिर उठाया पर इसने उन्हें दबा दिया। फिर यह विश्व-विजय करने निकल पड़ा और फ़ारसके शक्तिशाली साम्राज्यपर धावा किया। फ़ारसके सम्राट डेरियसके साथ अनेक युद्ध हुए और उन सबमें सिकन्दर विजेता हुआ। एकबार इसके हाथमें डेरियसका ज़नानख़ाना आगया पर सिक-न्दरने सबको उसके पास आदरपूर्वक भिजवा दिया। अन्तमें पूर्ण पराभव होने पर डेरियसके भतीजेने उसे मार दिया और सिकन्दरके हाथ केवल उसकी लाश आई। इसने उसकी हत्या करने वालोंको सज़ा दी, उसकी लड़कीके साथ विवाह किया और सारे फ़ारस साम्राज्यमें सुव्यवस्था उत्पन्न करदी। मिश्र पर विजय करके इसने उसे फ़ारसके अत्याचारसे छुड़ाया और अलेक्ज़ेण्ड्रिया नामक एक नगर बसाया। इसके बाद इसने भारतकी ओर दृष्टि फेरी।

यह काबुल होता हुआ नदीका पुल बांधकर भारतमें आया। उस समय सीमांत प्रदेशमें तीन परस्पर शत्रु राजा राज्य करते थे जिनमें पौरुष और विम्बसार

प्रसिद्ध थे। सिकन्दरने पौरुषको हराया और उसे अपना मित्र बनाकर भारतका जीता प्रदेश उसीको दे दिया। इससे आगे बढ़नेसे सिकन्दरकी सेनाने इन्कार कर दिया और इसे वापस लौटना पडा । ईरान पहुँचते पहुँचते इसकी सेना आकस्मिक रोगके कारण चौथाई रह गई। बादको इसने काबुल पर धावा करनेका विचार किया। १००० जहाज़ी बेड़ा तय्यार किया गया पर इसी समय इसे बुखार आया और ३२ वर्षकी आयुमें यह मर गया । इसका विशाल साम्राज्य इसके सेनापतियोंने आपसमें बांट लिया।

अश्वत्थामा–(द्रोणाचार्य्यका पुत्र) कौरवोंकी फौजका सेनापति था। इसने पंजाबके राजा द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नको महाभारतकी लड़ाईमें मार डाला क्योंकि धृष्टद्युम्नने इसके पिताका वध किया था। पश्चात् इसने द्रुपदके दूसरे पुत्र शिखण्डीको मारा और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंका भी सिर काटा। जब पांडवोंको अपने पुत्रोंके मारे जानेकी खबर मिली तब उन्होंने अश्वत्थामासे वह अमोल मणि छीन ली जो वह सदैव अपने पास रखता था। इस मणिको युधिष्ठिरने अपने ताजमें जड़वा लिया। अश्वत्थामा उन १० मनुष्योंमेंसे था जो महाभारतकी लड़ाईके बाद जीते बचे थे। अनेकोंकी राय है कि यही अमोल मणि अब "कोहनूर" हीरे के नामसे प्रसिद्ध है और आज दिन सम्राट् जार्जके मुकुटमें लगी हुई है।

अश्वलायन–(शौनकऋषिके शिष्य)–ऋग्वेदके श्रौत सूत्र १२ अध्यायमें इन्होंने रचे थे। श्रौत सूत्रोंमें अनेक प्रकारके यज्ञ करानेकी रीतियें लिखी हैं। ऋग्वेदके गृह्यसूत्र भी इन्होंने बनाए थे और इन्होंने तथा इनके गुरुने मिलकर ऐतरेय आरण्यकके दो अन्तिम अध्याय भी लिखे थे।

अशोक–भारतवर्षका सबसे बड़ा बौद्ध सम्राट्। यह चन्द्रगुप्त मौर्यका पौत्र था और बिन्दुसारका पुत्र था। पहले यह वैदिक धर्मका अनुयायी था पर बादको कलिंग देशकी चढ़ाईमें इसने जो नरसंहार देखा उससे उसका चित्त फिर गया और यह बौद्ध होगया। इसने बौद्धभिक्खु जापान, चीन, तिब्बत, मध्य एशिया, बलूचिस्तान, अफ़गानिस्तान, लंका, जावा, श्याम, मिश्र, मेसेडन आदि अनेक स्थानोंपर भेजे और प्रायः इन सभी देशोंके निवासी बौद्ध होगये । इसका राज्य लगभग सारे भारतवर्ष, अफ़गानिस्तान, काश्मीर और बलूचिस्तान तक फैला हुआ था । इसने बौद्ध धर्मके आदेशोंको स्तम्भों और शिलाओं पर और

गुफाओंमें अंकित कराया और धर्मशालायें बनवाईं। इस प्रकारके लेखोंकी संख्या ४८००० बताई जाती है, पर इनमेंसे अधिकांश नष्ट होगये हैं। इसका ऐतिहासिक वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थोंमें नहीं मिलता, पर बौद्ध ग्रन्थोंमें इसका यश खूब गाया गया है। अशोककी मित्रता एन्टियोकन, ताल्मी आदि यूनानके पांच बादशाहोंसे थी। इसने कुल मिलाकर २६ वर्ष राज्य किया।

अहमदशाह अब्दाली:-(१७२४-१७७३) अफ़गानिस्तानमें दुर्रानी-वंशका प्रस्थापक। यह अब्दाली दलके नेता समनखांका लड़का था। बचपनमें इसे कन्धारके गिलज़ई पकड़कर ले गये और १७३८ में नादिरशाहने इसका छुटकारा कराया। १७४७ में नादिरशाहकी हत्याके बाद इसके फ़ारसके राज सिंहासनकी व्यर्थ चेष्टा की, फिर अफ़गानिस्तानका राजा हुआ। इसके हाथ नादिरशाहकी लूटका कोहेनूर हीरा लग गया था और फ़ारसके बादशाहको जाते हुये ख़ज़ानेको भी इसने बीचमें ही लूट लिया था। इसके बाद इसने १७४८ मे सिंधु नद पार करके लाहौर लिया और १७५१ में थोड़ी सी लड़ाईके बाद सारा पंजाब दख़ल कर लिया। १७५० में निशापुर पर अधिकार कर लिया और १७५२ में काश्मीरको धर दबाया। १७५६ में इसने मुग़ल बादशाहसे लाहौरपर पुनः अधिकार करनेका बदला लेनेके लिये दिल्लीपर धावा किया और एक महीनेतक लूट मार करता रहा। इसने एक शाहज़ादीको अपनी बीबी बनाया और दूसरी अपने लड़के तैमूरशाहको दे दी। यह एक दूसरे मुग़ल शाहजादेको गद्दीपर बिठाकर एक रुहेले सरदारको निगरानीके लिये छोड़ गया, पर उसके पीठ फेरते ही वज़ीर ने रुहेलेको मार भगाया और बादशाहको मार दिया। अब मराठोंकी बनआई और उन्होंने १७५२ तक सारे पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया। १७६१ में अहमदशाह अब्दालीने मराठोंको पानीपतकी लड़ाईमें हराया। बादको सिक्खोंको एक लड़ाईमें हराया, पर इसी समय अफ़गानिस्तानमें विद्रोह खड़ा हो गया और यह उसे दबानेके लिये झटपट वहां चला गया। १७७३ में यह मुंहके फोड़ेसे पीड़ित होकर मर गया।

अहिल्याबाई-इन्दौर राज्यके मूल रोपणकर्ता मल्हाररावहुल्करकी पुत्रवधू २० वर्षकी अवस्थामें विधवा होगई थीं और सती होना चाहती थीं पर ससुर इत्यादि वृद्धजनोंके बहुत समझानेपर रुकीं। इनके एक बेटा और एक बेटी थी। स. ई.

१७६६ में मल्हाररावके मरनेपर इनका पुत्र मालोराव गद्दीपर बैठा पर ९ ही महीने बाद मरगया। राज्यका उत्तराधिकारी न होनेके कारण अहिल्याको स्वयं राजकाज सम्हालना पड़ा। महारानीने तुकोजीराव हुल्कर अपने एक नातेदारको सेनापति नियत करके अनेक काम सौंपे। स्वयं प्रजाका न्याय करती थीं, भूखोंको खाना और कपड़ा बँटवाती थीं, चिड़ियोंके लिये खेत छुड़वा देती थी, नदियोंकी मछलियोंको चुगानेके लिये आदमी नौकर थे, चिकित्सिक लोग नियत थे जो घर घर गांव गांव दौरा करते थे, प्रजागण उन्हें माताके समान समझते थे, तुकोजी सेनापति उससे मातुःश्री कहकर बोलते थे और ईश्वरको चीन्ह राजकाज करते थे। विधवा होकर उन्होंने रंगीन वस्त्र कभी नहीं पहिना। न सिवाय एक मालाके कोई आभूषण धारण किया। इन्दौर उन्होंने ही बसाया था। काशीमें विश्वेश्वर नाथका मन्दिर उन्होंने बनवाया था। काशी, प्रयागपुरी, द्वारिका, सेतबन्धरामेश्वर केदारनाथ, इत्यादि तीर्थस्थलोंमें धर्मशाला बनवाई थीं और सदाव्रत बैठाये थे। कूप, तडाग, पुल, घाट इत्यादि भी अनेक बनवाये थे। स. ई. १७९५ में ३० वर्ष धर्म राज्य करके ६० वर्षकी उम्रमें परलोकको सिधारीं।

आनन्दघन (भाषाकवि.) जातिके कायस्थ। मुहम्मदशाह बादशाह दिल्लीके दर्बारमें मुंशी थे। गानविद्या और कविता दोनोंमें अति कुशल थे। अन्त समय घरबार छोड़ श्री वृन्दावन वास करते थे। कृष्णगढके राजा जसवन्तसिंह उपनाम नागरीदासजीसे इनका बड़ा प्रेम था। फारसी, अर्बी, संस्कृत इत्यादिके पूर्ण ज्ञाता थे और दिल्लीके रहनेवाले थे। इनका फुटकर काव्य बहुत मिलता है। नादिरशाहने जब स. ई १७५७ में मथुरा लूटी तब उसीमें यह भी मारे गये।

आनन्दगिरि (प्रसिद्धवेदांती पंडित) सन् इस्वीकी दशवीं शताब्दीमें हुये—स्वामी शंकराचार्य इनके गुरुथे शंकर दिग्विजय नाम ग्रन्थ तथा भगवद्गीतापर आनन्दगिरि नाम तिलक इन्हींका रचा हुआ है।

आनन्दवर्धनाचार्य (संस्कृत कवि)। इन्होंने दो भागोंमें "ध्वन्यालोक" ग्रंथ रचा है, कारिकारूप भागका नाम "ध्वनि" है और वृत्तिरूप भागका नाम "आलोक" है। राजतरङ्गिणीसे विदित होता है कि यह विक्रमकी १० वीं शताब्दीमें कश्मीरके राजा अवन्ति वर्म्माके दर्बारमें थे। निम्नस्थ ग्रंथ इन्हींके रचे हैं:—देवी शतक, विषम बाणलीला, प्राकृत अर्जुन चरित्र, और विनिश्चय टीका।

आनन्दसिंह (ईडरके महाराजा)--इन्होंने वि० संवत् १७८५ में ईडर पर अधिकार किया। जब जवांमर्द खांने ईडर पर धावा किया तो इन्होंने मल्हारराव होल्कर और राणोजीसे सहायता मांगी; फलस्वरूप जवांमर्द खांको पौने दो लाख रुपया देकर पीछा छुड़ाना पड़ा। फिर परमार राजपूतोंने १७९९ में ईडर पर धावा करके इन्हें मार डाला। इसपर इनके छोटे भाईने ईडरसे सारे परमार राजपूतोंको निकाल दिया और इनके छः वर्षके बच्चेको गद्दीपर बिठाया।

आपस्तंब ऋषि--इन्होंने कृष्ण यजुर्वेदके कल्पसूत्र जिनमें श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र शामिल हैं ३० अध्यायमें रचे। ३० वें अध्यायमें शुल्ब सूत्र हैं जिनमें रेखागणितका वर्णन हुआ है। डॉक्टर थीबो (Dr. Thibaut) ने शुल्ब सूत्रका अङ्गरेजीमें अनुवाद करके प्रकाशित किया है। उनका मत है कि सबसे प्रथम रेखागणितके मुख्य नियम इसी देशमें ऋषियोंने खोज किये थे। फीसागोरस यूनानी हकीमने "शुल्बसूत्र" भारत वर्षमें आकर पढ़े और उनका प्रचार निज देशमें जाकर किया। फिर युक्लिडने इन्हीं शुल्बसूत्रोंके आशयपर अपने नामकी पुस्तक रची। डॉक्टर बुल्हर (Dr. Bulher) के मतानुसार ये ऋषि स. ई. से प्रायः ८०० वर्ष पूर्व दक्षिण देशमें उस जगहके समीप रहते थे जिसको अब अमरावती कहते हैं।

आर्यभट--(ज्योतिषी) बीज गणित तथा ज्योतिष शास्त्रके अनेक सूक्ष्म विषयोंका अनुभव पाहिले इन्हींको हुआ। इन्होंने गणित तथा ज्योतिष शास्त्रमें ऐसी ऐसी बातें दरियाफ्त कीं जो अन्य देशवासियोंको स. ई. की १६वीं शताब्दीसे पूर्व नहीं मालूम हुईं। ये राजा युधिष्ठिरके संवत्से ज्योतिष लगाते थे। इन्हींके एक ग्रन्थसे पता चलता है कि यह वि.स. ५३३ में पैदा हुए और कुसुमपुर (पटना) में रहते थे। नीचे लिखे ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं:--आर्य्यभटी तन्त्र (आर्य्य सिद्धांत); ४ अध्यायमें बीज गणित, आर्य्यदेशरीतिसूत्र, आर्य्य अष्टशत, सूर्य्य-सिद्धांतकी टीका।

आल्हा--(प्रसिद्ध सांवन्त). महोबा (बुंदेलखण्ड) वासी जगनायक कविने आल्हखण्ड रचकर आल्हा और उसके भाई ऊदलका यश गाया है। ये बड़े योद्धा थे। इनका बाप यशराज महोबेके राजा परमाल (परमारादिदेव) की फौजका

सावंत था। पिताका देहांत होजाने पर आल्हा ऊदल दोनों भाइयोंका पालन-पोषण और शिक्षा राजा परमालके दर्बारमें हुई थी। प्रायः ६५ लड़ाइयोंमें इन्होंने परमालकी तरफ़से लड़कर शत्रुओंको परास्त किया था। इन दोनों भाइयोंने महाराज पृथ्वीराजको परास्त करके उनकी बेटी बेलाका विवाह अपने स्वामी राजा परमालके पुत्र ब्रह्मासे कराया। अंतमें बेलाके गौनेकी बिदापर पृथ्वीराज और परमालमें घोर युद्ध हुआ, जिसमें परमालका सर्वनाश होगया। केवल आल्हा जीता बचा, पर विरक्त होकर सुन्दरवनको चला गया.

आसफुद्दौला—पिता शुजाउद्दौलाके बाद स. ई. १७७५ में अवधकी गद्दी पर बैठा। फ़ैज़ाबादके बजाय लखनऊमें अपनी राजधानी क़ायम की। लखनऊमें इसका बनवाया इमामबाड़ा अबतक मौजूद है और देखने लायक़ है। यह इमामबाड़ा उसवक्त बनवाया गया था जब लखनऊमें बड़ा अकाल पड़ा था। इसकी मांके ख़ज़ानेको लूटनेका अभियोग वारेनहेस्टिंग्ज़पर विलायतमें लगाया गया था। इसके सम्बन्धमें कहावत है "जिसको न दे मौला, उसको दिलवायें आसफुद्दौला" इसके मरनेपर ब्रिटिश गवर्नमेंटने इसके भाई सआदत अलीखांको लखनऊका नवाब बनाया।

औरंगज़ेब—(१६१८–१७०७) शाहजहांका तीसरा पुत्र। योद्धा, साहसी पर धर्मान्ध। इसने शाहज़ादेकी अवस्थामें उज़बकोंके साथ युद्ध किया और फिर प्रसिद्ध जनरल मीर जुमलाके साथ दक्षिण विजय करनेको भेज दिया गया। वहां इसने बीजापुर और गोलकुण्डा नामकी मुसल्मानी सल्तनतोंपर क़ब्ज़ा किया और हैदराबादको खूब लूटा। पर इसी समय इसे शाहजहांकी बीमारीकी खबर मिली। शाहजहांका बड़ा लड़का दारा योग्य, विद्वान् और उदार था। हिन्दू प्रजा उसे चाहती थी, पर मुसल्मान उससे जलते थे। औरंगज़ेब मुसल्मानोंका प्रिय था। उस समय इसका बडा भाई शुजा बंगालका सूबेदार था, और छोटा भाई मुराद गुजरातका। औरंगज़ेबने सीधे और आमोदप्रिय मुरादको बातोंमें फांस लिया और दोनोंकी सेनाओंने दिल्लीकी ओर कूंच किया। उधर शुजा भी बंगालसे चला और शाही फौजने शुजाको हरा दिया। पर औरंगज़ेब और मुरादकी सम्मिलित सेनाका सामना शाही फ़ौज न कर सकी। दारा भाग गया।

औरंगज़ेबने मुरादका सिर कटवा दिया और शाहजहांको कैद कर दिया। कुछ दिन बाद दाराने फिर चढ़ाई की, पर उसे हरा दिया गया और उसे मरवा कर उसका सिर आगरेके बाज़ारोंमें घुमाया गया। शुजाने भी धावा किया, पर हारा और अराफानकी ओर भाग गया। औरंगज़ेबके बड़े लड़के मुहम्मद ने शुजाका साथ दिया था, इसलिये उसे ग्वालियरके क़िलेमें क़ैद कर दिया गया जहां वह आठ वर्ष बाद मर गया। औरंगज़ेबने मंदिर तुड़वाये, मस्जिदें बनवाईं, हिन्दुओंको मुसल्मान बनाया और जज़ियाकर लगाया। यह किसीका विश्वास न करता था। धीरे धीरे सारे राजपूत इससे बिगड़ खड़े हुये। उधर दक्षिणमें मराठोंने शिवाजीकी अधीनतामें लूट मार शुरू कर दी। पंजाबमें सिखोंकी शक्ति खड़ी होगई। औरंगज़ेबके जीवनके अंतिम २६ वर्ष दक्षिणमें मराठोंको कुचलने-की व्यर्थ चेष्टा करनेमें बीते। अंतमें यह ९०वर्षकी आयुमें अहमदनगरमें मर गया।

औवटपंडित–(यजुर्वेदभाष्यकार) काश्मीरदेशवासी जैय्यट उपाध्यायके पुत्र थे। इनके बड़े भाई मम्मटने इनको विद्या पढ़ाई थी। व्याकरण भाष्यकार कैय्यटभी इनके सहोदर थे। विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके अंतमें इनका जन्म हुआ।

इब्न बतूता:–(१३०४–१३७८) यह मोरक्कोमें उत्पन्न हुआ। २१ वर्षकी अवस्थासे १३२५ में इसने संसार परिक्रमा आरम्भ की और १३५५ तक यात्रा करता रहा। इसने तीन बार पैदल हज की। मिश्र गया, अफ्रीकामें घूमा, तुर्किस्तान, ईरान, फ़ारस होता हुआ पूर्वी रूस पहुँचा और बलख़ बुख़ारा होता हुआ काबुल आया और फिर हिन्दू-कुश घाटीपर आया। हिन्दूकुश नाम इसीका दिया हुआ है। वहांसे यह सिन्धु तट पर पहुँचा। मुल्तान आया। यहांसे इसे मुहम्मद तुग़लकने बुलवा भेजा। मुहम्मद तुग़लकका इसने वर्णन किया है कि वह था तो गुणवान और गुणज्ञ, पर बड़ा अस्थिरप्रकृति था। बातकी बातमें आदमी को निहालकर देता था और बातकी बातमें मरवा डालता था। मुहम्मद तुग़लक ने इसे दिल्लीका क़ाज़ी बनाया और बारह हज़ार दीनार वार्षिक नियत किया, पर इब्न बतूता उदारचित्त था इसलिये सब कुछ झटपट खर्चकर डालता था। आठ वर्षबाद इसपर बादशाह नाराज़ होगया, पर इसे फिर बुलवा लिया और चीनको वापस जाते हुये राजदूतके साथ भेज दिया गया। यह मध्य भारतसे होते हुये खम्बातकी खाड़ीसे चीनको रवाना हुये। वहां खूब सैर करके यह वापस

आया और एक बार सुमात्रा जावा आदिकी सैर करनेको निकल खड़ा हुआ। फिर यह दक्षिण अफ्रीका होता हुआ अपने देशको वापस पहुँच गया। कुल मिलाकर यह ७५००० मील घूमा।

इब्राहीम लोदी (दिल्लीका बादशाह) यह पिता सिकन्दर लोदीके बाद स. ई. १५१५ में राज्य सिंहासनपर बैठा। इसके चित्तमें सबकी तरफसे शक रहता था। सर्दार और सूबेदार इससे फिरे हुये थे और इसे बर्बाद करनेकी फिक्रमें थे। पहिले तो सूबेदार लोग उपद्रव उठाते और परास्त होते रहे, अन्तमें दौलत खां सूबेदार मुलताननेे बागी होकर बाबरको काबुलसे बुलाया। बाबर और इब्राहीमका पानीपतके मैदानमें स. ई. १५२६ में मुकाबला हुआ और इब्राहीम लड़कर मारागया। इस युद्धमें महाराणा संग्रामसिंहने बाबरका साथ दिया था। उन्हें आशा थी कि बाबर लूट मार करके लौट जायेगा; पर जब बाबर यहांका बादशाह होगया, तो उनकी आंखें खुलीं।

इक्ष्वाकु—अयोध्याके सूर्य्यवंशी राजा इन्हींके नामसे इक्ष्वाकुवंशी कहलाते हैं। वैवस्वत मनुके पुत्र और सूर्यके पौत्र थे। बड़े प्रभावशाली और पराक्रमी थे। इनके १०० पुत्र थे जिनमेंसे बड़ेका नाम विकुक्षी था। निमी भी इनका एक पुत्र था जिसके नामसे मिथिलाका राजवंश चला, जिसमें महाराज जनक हुये। इक्ष्वाकुके दर्बारमें उरू ऋषिकी बडी प्रतिष्ठा थी। महाराज रामचन्द्र इनकी ५७ वीं पीढीमें भारतके चक्रवर्ती राजा हुये। इक्ष्वाकुने ही अयोध्या नगरी बसाई थी।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर सी. आई. ई. यह मदनीपुर (बंगाल) के वीरसिंहनामक ग्राममें ठाकुरदास वंद्योपाध्याय एक दरिद्र ब्राह्मणके घर स. ई. १८२० में पैदा हुये। इन्होंने बडे कष्टसे विद्यार्जन किया। स. ई. १८४१ में संस्कृतकालिजकी शिक्षा सम्पूर्ण करके उन्होंने विद्यासागरकी उपाधि पाई और फोर्ट विलियम कालिज कलकत्तामें ५०) रु. मासिकपर नौकर हो गये। हिन्दी तथा अङ्गरेज़ी भाषायें भी अपने परिश्रमी स्वभावसे शीघ्रही सीख लीं। बढ़ते बढ़ते तनख्वाह ५००)रु. होगई और प्रायः ५००) रु.मासिककी आमदनी स्वरचित पुस्तकोंसे भी थी। विद्यासागर इस सब आमदनीको परोपकारमें

लगा देते थे। बंगालमें उनके उद्योगसे सैकडों स्कूल और शफाखाने जारी हुये थे। एक छापाखानाभी जारी किया था जिसमें प्राचीन ग्रन्थ शोध शोध कर छापे जाते थे। हिन्दूकालिज कलकत्ता उन्हींके उद्योगसे खुला और बहुत कालतक उसका खर्च वेही सहन करते रहे। कुलीन ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमेंसे अधिक विवाह करनेकी कुरीति उन्हींके उद्योगसे मिटी। बालविधवाओंका दुःख देखकर उन्होंने विधवाविवाह शास्त्रोक्त सिद्ध करने तथा जारी करनेमें बड़ा उद्योग किया। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनका प्रसाद गुण मुख्य है।

ईसप:—सातवीं शताब्दी ई० पू० में जीवित था। इसक जन्मस्थान निश्चित नहीं है। थ्रेस, फ्रीजिया, ईथोपित्रा, अथेन्स आदि स्थान उसके जन्मस्थान बताये जाते हैं। यह माडमन नामक एक व्यक्तिका गुलाम था। इसे डेल्फीके लोगोंने जानसे मार डाला क्योंकि यह उनका व्यंग्य उड़ाया करता था। इसकी सूरत शक्लके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह कुबड़ा था और बड़ा ही कुरूप था। पर प्लूटर्ककी पुस्तकमें उसकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन तो मिलता है, पर उसकी कुरूपताका कोई वर्णन नहीं मिलता। इसकी कहानियां, न्यायशास्त्र और शिक्षा के गुणोंके कारण अबतक जीवित हैं। सुकरात जब बन्दीगृहमें पड़ा था तो इन्हीं कहानियोंको पढ़ा करता था।

ईसामसीह:—कहा जाता है कि यह क्वारी मरियमके गर्भसे ईश्वरके औरससे उत्पन्न हुये। इनके अवतरणसे पहले फ़िलस्तीन और अरब आदि देशोंमें यहूदी धर्मका अनुकरण किया जाता था और यहूदी पादरी धर्मके बहाने मनमाने अत्याचार और दुराचार किया करते थे। इन्होंने इन सबके विरुद्ध आवाज़ उठाई। इनका जीवन बड़ा सीधा सादा था और यह दरिद्रों और बच्चोंके साथ विशेष प्रेम करते थे। इन्होंने मुर्दोंको जिला दिया और कुष्ठ रोगियोंको जीवित किया। इन्होंने सेंट जानसे बपतिस्मा लिया और उसी समय इन्हें भास हुआ कि वह परमात्माके पुत्र है। यह जेरुसलेम गये और वहां पर इन्होंने मंदिरसे पाखण्डी पुजारियोंको निकाल दिया। इसपर यहूदियोंका प्रधान पुजारी इनके विरुद्ध होगया और उस समयके रोमन शासकके पास शिकायत की। यह जूडाके

विश्वासघातसे पकड़े गये और इन्हें फांसीपर चढा दिया गया। कहा जाता है कि यह अपने जीवनके प्रारम्भिक कालमें भारतवर्ष भी आये थे और काशीमें विद्याध्ययन किया था। कुछ समय बाद ही इनके अनुयायी बढने लगे और इनकी मृत्युके दो शताब्दिके भीतर भीतर सारा योरुप ईसाई होगया।

उकलैदस (Euclid). मिश्रदेशांतर्गत अस्कंदरिया नामक शहरमें स.ई. से ३०० वर्ष पूर्व पैदा हुआ अपने नामका एक गणितग्रंथ बनाकर यह अमर होगया। इसग्रंथमें वे सब साध्यभी शामिल हैं जिनको फीसागोरस आदि विद्वानोंने इससे पहिले होकर प्रकट किया था। यह अस्कंदरियाके महाविद्यालयमें अध्यापक था और अस्कंदरिया इसके समयमें गणितशास्त्रका विश्व विद्यालय गिना जाता था। स. ई. १७१८ में पंडित जगन्नाथने जयपुरके राजा जयसिंह सवाईके हुक्मसे उकलैदसके १५ अध्यायका अनुवाद हिंदीभाषामें करके उसका नाम रेखागणित रक्खा। अस्कंदरियावासी प्रसिद्ध गथीवोंक टालमी उकलैदसका शिष्य था। डाक्टर थीबोने आपस्तंवरचितशल्वसूत्रों का अनुवाद अंगरेजीमें करके प्रकट किया है कि, यूनानीहकीम फीसागोरसने भारतमें आकर इन सूत्रोंको पढ़ा और फिर मिश्र तथा यूनानमें जाकर अनेकोंको इनकी शिक्षा दी। फिर उकलैदसने इन्हीं शल्वसूत्रोंके आशय पर निजनामकी पुस्तक रची।

उदयसिंह (राना चित्तौड़) वि. सं. १५९८ में चित्तौड़की गद्दीपर बैठे। यद्यपि इनके बाप राना साङ्गाकी १० करोड़की छोड़ी हुई साहिबी घटते घटते थोडीही रहगई थी, पर फिर भी इनका प्रताप इतना था कि जब वि. सं. १६१६ में इन्होंने हाजीखां पठान पर चढाई की थी तब मेवाड़के सुनहरे झण्डेके साथ बूंदी, बीकानेर, ईडर, तोड़ा मैड़ते, डूंगरपुर, बांसवाड़ा देवलिया, रामपुर इत्यादिके अनेक रावराजे अपनी अपने सेनासहित लड़नेको गये थे, पर जोधपुरके राव मालदेवसे इनका बिगाड़ था। १५०० जंगी राठौरोंकी सेनाकी सहायता हाजीखांको मिलगई और रानाकी हार हुई। इस समय रानाकी अमलदारी भी अजमेरतक थी। परंतु जब वि. सं. १६२४ में अकबर बादशाहने चित्तौड पर चढ़ाई की, तब उस समय रानाके पास बहुत थोड़े परगने रहगये थे। कई महीने किलेमें घिरे रहनेके पीछे जब बचनेकी कोई आशा न रही तो राणा उदयसिंह तो पहाड़ोंपर चलेगये और उनके सेनाध्यक्ष जयमल्लने बड़ी

सावधानीसे दुर्गकी रक्षा की। जयमलके मारे जानेपर स्त्रियां चितापर जलकर मर गईं और पुरुष मात्र लड़कर कट मरे।

राना उदयसिंहका वि. सं. १६२९, में देहांत होगया और उनके पुत्र राना प्रतापसिंहने गद्दीपर बैठकर अपने पूर्वजनोंका गयाहुआ राज्य पुनः जीत लिया और अपने बापके नामसे उदयपुर बसाया जो अबतक मेवाड़राज्यकी राजधानी है।

एडवर्ड सप्तम कैसरे हिंद स. ई. १८४१ में श्रीमती महारानी विक्टोरियाके द्वितीय गर्भसे आपका जन्म हुआ। १८७५ में हिन्दुस्थान देखनेके लिये लंडन से बिदा हो पैरिस, एथेन्स, इटाली होते हुये बम्बई पधारे। आगरेमें आपके स्वागतमें बड़ा भारी दर्बार किया गया और प्रायः ५ लाख पौंडका माल राजा महाराजाओंकी ओरसे आपकी भेंट किया गया। अफगानिस्थानकी सीमा पर जब रूसने प्रथमवार चढ़ाई की थी तब प्रजाकी प्रार्थनासे माताकी आज्ञा पाकर आप पत्नीसहित सेंटपीटर्सबर्ग पधारे। वहां पहुंच आपने रूसके सम्राट्को और आपकी पत्नीने सम्राज्ञी अपनी बहिनको समझाकर बखेड़ा शांत किया। स. ई. १९०१ में श्रीमती महारानी विक्टोरियाके स्वर्गवासी होनेपर इंग्लेंडके राज्यसिंहासनपर बैठे। इन्हें शान्ति प्रस्थापकके नामसे पुकारा जाता था। १९११ में इनका शरीरान्त होगया।

एलिजाबेथ, इंग्लैंडकी रानी इंग्लैंडके बादशाह हेनरी अष्टमकी बेटी। पिताके बाद इंग्लैंडकी गद्दीपर बैठी। प्रोटिस्टैंट मतकी थी। जब गद्दीपर बैठी थी उस समय इंग्लैंडकी प्रजामें धर्मसंबंधी घोर बिप्लव उपस्थित हो रहा था। आधी प्रजा प्रोटेस्टैंट थी और आधी रोमन कैथलिक। रानी एलिजाबेथ प्रजाप्रिय बनना चाहती थी, एवं उसने दोनों मतोंको समानतासे वर्त्ता और अंत समयतक अपना विवाह भी इसी कारण नहीं किया और न अपना उत्तराधिकारीही नियत किया। यदि वह किसी प्रोटेस्टैंटसे शादी करलेती तो सब रोमनकैथलिक उसके खिलाफ होजाते और अगर किसी रोमन कैथलिकसे शादी होती तो प्रोटेस्टैट लोग बिगड़ बैठते। पर इसके चरित्रके सम्बन्धमें भांति भांतिकी किम्वदन्तियां थीं। इसके राज्य प्रजाको सुख चैन मिला और लोगोंकी स्थितिमें अनेक प्रकारकी उन्नति हुई। शेक्सपियर इसके ही शासनकालमें हुआ था और इसका दरबारी नाट्यकार था।

इसके राज्यमें तिजारतकी तरक्की हुई, समुद्रमें अनेक रास्ते और टापू खोजे गये। तम्बाकू और आलूके बीज सर वाल्टर रलने अमेरिकासे लाकर इंग्लैंडमें रोपण कराये। अब इन दोनों चीजोंका प्रचार भूमण्डल भरमें होगया है। इसने स्कॉटकी रानी मेरीको मरवा दिया था। यह स. ई. १६०३ में ४५ वर्षकी उम्रमें मरी।

एडीसन (टी. ए. एडीसन प्रसिद्ध आविष्कार–उत्तरी अमेरिकामें ओहियोस्टेटके मिलन नामक नगरमें ११ फरवरी, १८४७ की साल जन्मे। आपके पिताके वंशका निकास हालैंडका था और माताके वंशका निकास स्काटलैंडका। आप प्रथम टेलीग्राफका काम करते थे। पश्चात १८७१ से ७६ तक Law Gold Indicator कम्पनीके सुपरिन्टेन्डेन्ट रहे। गत १९३१ में आपका देहान्त होगया। निम्नस्थ आविष्कार आपने किये है:–

Gold and stock Printing टेलीग्राफ, System for Quadruplex and Sextuplex Teligraphic Transmission, The Carbon Telephone Transmitter.(दूर बैठे बातचीत करने का यंत्र), The Microtaximeter for Detection of Small Variations (गर्मी और सर्दीके सूक्ष्मतर अन्तर जाननेका यंत्र) The Aerophone and Megaphone for Amplifying and magnifying sounds (इस यंत्रकेद्वारा अत्यंत मंदस्वर भी भारी आवाजके समान सुनाई देता है), Electric pen (बिजलीका कलम), Electric Railway (बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली रेलवे), Kinetograph. Phono graph (इस यंत्रमें बातचीत अथवा राग भरकर रबडकी नलियोंद्वारा सुनाया जाता है), The Incandescent Light System (बिजलीकी रोशनी)

ऐडीसन–(Josheph Addison) इनका पूरा नाम जोजेफ ऐडीसन था। स. ई. १६७२ में एक अंगरेजी पादरीके घर बिल्टशायरमें पैदा हुये। प्रथम शिक्षा चार्टर हौस लंडनमें पाई। यहीं स्टीलके साथ इनकी मैत्री होगई जो मरणपर्य्यंत निभी। बादको मैग्डालेन कालिज आक्स फोर्डसे इन्होंने एस. ए. पास किया और यूरूपके अनेक देशोंकी यात्रा की। यात्रासे लौटकर ब्लेनहेमकी लड़ाई पर कविता रचनेके बदलमें कमिश्नर आफ अपीलकी पदवी पाई और स. ई. १७०६ में अंडरसेक्रीटरी आफस्टेटके पद पर नियुक्त किये गये। कुछ दिन बाद लार्ड

लफ्टिनेंट वार्टनके सेक्रेटरी नियत होकर आयलैंड गये। वहां रहकर अनेकानेक मज़मून अपने मित्र स्टीलके जारी किये हुये "टेटलर" नामक पत्रको लिखे। स. ई. १७११ में "स्पेक्टेटर" नामक पत्र जारी हुआ और उसके लिये भी इन्होंने अनेक प्रबंध लिखे। पश्चात् अनेक ग्रंथ रचे। स. ई. १७१६ में इन्होंने अपनी शादी की, परंतु यह सुखदाई न हुई। स. ई. १७१७ में सेक्रेटरीआफस्टेटके पद पर नियत हुये और थोडेही काल पीछे पेन्शन ले ली। स. ई. १७१९ में परम धामको सिधारे और वेस्टमिनस्टर एबेमें दफन किये गये। डाक्टर जानसनकी राय है कि, एडीसनरचित ग्रन्थोंको पढ़कर सुडौल, रसभरी, सुन्दर, और सभ्य इबारत लिखना आजाती है। मकाले साहिबकी भी सम्मति है कि "अङ्गरेजी इबारत ऐसी सरल, सौंदर्यसे परिपूर्ण और उत्तम और किसीने नहीं लिखी।"

एडीसन, प्रोफेसर (Professor Addison) अमेरिकावासी प्रसिद्ध विद्वान थे। प्रायः स. ई. १८८० में इन्होंने बिजलीकी रोशनीका आविष्कार किया। इनकी योजनाके अनुसार गैस और तेलके बिना औषधियोंके योगसे बिजली उत्पन्न होकर प्रकाशका काम देती है। इन्हीं महाशयने एक युक्ति ऐसी निकाली जिससे सूर्यका प्रकाश रात्रिके समय भी दीख पडे। इस युक्तिमें एक कागजका टुकडा कितनी ही औषधियोंके योगमें डुबाकर सूर्यके प्रकाशमें रक्खा जाता है। धूपमें रखनेसे वह टुकडा सूर्यकी किरणोंको चुरा लेता है। इसी टुकडे को रात्रिके समय यदि अंधकारमें रक्खा जावे तब उसमेंसे थोड़ी देरतक स्वतः प्रकाश होता है। फोनोग्राफका आविष्कार भी इन्हींके द्वारा हुआ।

एपामीनान्डाज–(Epaminondas)के४१४-३६२ई० पू०। थबीज निवासी प्रसिद्ध सेनापति तथा सुप्रबंधकार ओटियाके राज्यवंशमें हुआ। शुभ आचरणोंके तथा रणकुशल होनेके कारण प्रसिद्ध हुआ। उम्रभरमें कभी असत्य भाषण नहीं किया। स.ई. से ३७१ वर्ष पूर्व स्पार्टावासियोंको ल्युक्टराकी लड़ाईमें परास्त करके अनेक जय प्राप्त करता हुआ ५० हज़ार सेनासहित स्पार्टाके राजा लैकडेसनके राज्यमें घुसगया। इसके बाद यह थेबीज़में लौटकर आया। वहांके लोगोंने उस पर यह दोष लगाया कि उसने नियमसे अधिक समय व्यतीत किया। इस दोषके बदलेमें उसको सूली दिये जानेका हुक्म दिया गया। एपामी-

नान्डाजने यह हुक्म स्वीकार करके न्यायाधीशोंसे प्रार्थना की कि मेरी कबरपर यह अङ्कित करा दिया जाय कि स्वदेशको बर्बादीसे बचानेके बदलेमें सूली दी गई। यह बात न्यायाधीशोंके हृदयमें असर कर गई, और उन्होंने अपराध क्षमा करके एपामीनान्डाज़को सर्व्वोच्च पदपर नियत किया। ४८ वर्षकी उम्रमें यह किसी लड़ाईमें घायल होकर मरा। थेबीज़की प्रजाने बड़ा शोक किया क्योंकि उन्होंने इसीके उद्योगसे स्वतन्त्रता पाई थी और इसके मरनेसे १० ही वर्ष पीछे वह स्वतन्त्रता जाती भी रही।

एल्फ्रेड महान–(८४८-९०१) पश्चिमी सैक्सन लोगोंके राजा एथेल्वुल्फका पुत्र था। स. ई. (८५८) में इसके बापका देहांत हुआ और इसका ज्येष्ठ भ्राता राजगद्दीपर बैठा। स. ई. ८६६ में भाईके मरनेपर राज्य इसके अधिकारमें आया। एशडौनकी लड़ाईमें इसने डेन्स लोगोंको परास्त किया, पर थोड़ेही दिन पीछे डेन्स लोगोंसे हारकर इसे जंगलकी ओर भाग जाना पड़ा। थोड़े दिन जंगलमें रहकर इसने सेना एकत्र की और डेन्स लोगोंपर चढ़ाई करके पुनः विजय पाई। जल व थलमें ५६ युद्ध किये। कानून बनाये। पञ्चायतसे मुकद्दमे फैसल करनेके कायदे चलाये। पाठशालायें जारी कीं। देश विदेशसे बुलाकर अध्यापक नियत किये। यूनीवर्सिटी कालिज आक्सफोर्डकी मूलरोपण की। बहुतसी पुस्तकें रचीं और अनेक पुस्तकोंका अनुवाद लैटिनसे अंगरेजीमें किया, चोरी इसके समयमें बंद होगई थी। दिनमें ८ घंटे पूजा पाठ, ८ घंटे राज-काज और ८ घंटे खाने, पीने, सोने इत्यादिमें बिताता था।

एल्बर्ट राज कुमार सैक्सकोवर्ग और गोथा वाले, भारतेश्वरी विक्टोरियाके पति थे। स. ई. १८१९ में सैक्सकोवर्गके ड्यूकके घर इनका जन्म हुआ। इनकी निर्धनताके कारण अंग्रेज़ी जनता इस विवाहसम्बन्धसे असंतुष्ट थी। राज्यमें इनका दर्जा सर्व्वोच्च रहा। विवाहसे एकही वर्षबाद एक कन्या और दूसरेही वर्ष प्रिंस-एलबर्ट एडवर्ड जो आगेको एडवर्ड सप्तमके नामसे प्रसिद्ध हुये पैदा हुये। पति-पत्नीमें अत्यंत प्रेम था और प्रिंस एल्वर्ट अपनी पत्नी श्रीमती विक्टोरियाको राजकाजमें बड़ी सहायता देते थे। वे परमनीतिज्ञ विद्वान चतुर और संगीतविद्याके रसिक और स्वरूपवान थे। स. ई. १८६१ में इनका स्वास्थ्य बिगड़ा, इलाज बहुत कुछ हुआ पर १४ वीं दिसंबरकी रातको इनका देहांत होगया। हालहीमें

महाराणी विक्टोरियाकी डायरी प्रकाशित हुई है जिसमें पता चलता है कि यह सम्बन्ध शुद्ध राजनीतिक सम्पर्क नहीं था बल्कि इसमें प्रेमकी भी मात्रा थी ।

कनफ्युशिअस (Confucius) (५५१-४७१ ई.पू.) प्रसिद्ध चीनके तत्त्वज्ञानी और उपदेष्टा थे। पिता इनको ३ वर्षका छोड़कर मरगये थे । दादाने इनके पालन पोषण और शिक्षाका प्रबंध किया था । १९ वर्षकी उम्रमें इन्होंने शादी की, पर पठन पाठनमें बाधा पड़ते देख स्त्रीको त्याग दिया । राजेश्वर चीनने इनको सुयोग्यपाकर कृषिविभागका अफसर नियत किया और कुछ दिन बाद नाजकी मंडियों, भेड़ोंके गल्लों तथा चरागाहोंका इन्स्पेक्टर बनादिया । यह राजसेवा बड़े परिश्रमसे करते थे। २३ वर्षकी उम्रमें माताके देहांत होने पर राजसेवा छोड़ ३ वर्ष पर्य्यंत शोकमें रहे और दर्शन पढ़ते रहे । पश्चात् राज्यसम्बन्धी विचार ठाना और लोगोंको उपदेश करना शुरू किया । इनके अनेक मन्तव्य समाज विरुद्ध थे । जातिवालोंने इनको छोड़दिया पर यह दृढतासहित उपदेश करते रहे । बादको यह देशाटन करने चले । अनेक सूबोंके हाकिमोंने इनको उपदेशक नियत किया । इसी समय इनको किसी सूबेकी सूबेदारी मिलगई और इन्होंने एकही वर्षमें उक्तसूबेकी इतनी उन्नति की कि अन्य सूबेदार इनसे ईर्षा द्वेष रखने लगे । सबने मिलाकर चीन सम्राट्से इनकी शिकायत की जिससे उक्त सम्राटने इनको पदच्युत करदिया । १३ वर्ष तक इधर उधर घूमकर उपदेश देते रहे । अंतमें जन्मभूमिको लौटे और परलोकको सिधारे । इनके बहुतसे चेले होगये थे । चीन, कोचीन और कोरियावासी इनके रचे ग्रन्थोंको अबतक चातुर्यका मूल जानते हैं । इन्होंने कोई नया मत नहीं चलाया, पर राज्यप्रबंध, देशरीति, रहन सहन इत्यादिके सम्बंधमें बहुतसे उपयोगी सुधार किये, देशोन्नतिकी इनको धुन थी । किसी मतपर नहीं चलते थे । पर नास्तिक न थे । चीनमें इनके वंशकी अबतक प्रतिष्ठा है, प्रत्येक नगरमें इनके नामका मंदिर है । यह सदैव उपदेश करते थे कि किसीको मत सताओ सबका अदब करो, परिश्रम करो और मेल मिलापसे रहो । इनकी नैतिक शिक्षामें चीनी जनतायें अनुस्यूतसी होगई हैं और सब उनके अनुकूल ही आचरण करते हैं । इनके शिक्षाग्रंथोंका इधर कुछ दिनोंसे योरुप और अमेरिकामें बड़ा आदर होरहा है ।

कानिष्क इसका राज्य कावुल कंधारसे लेकर आगरा और गुजरात तक था चीन तकके बादशाह इसका हुकुम मानते थे और ह्वनसङ्गके लेखानुसार यह चीनपति कहलाता था। बौद्ध मतानुगामी था। इसने बौद्ध मतके उपदेश करनेके लिये दूर दूर उपदेशक भेजे। इसकी राजधानी काश्मीरमें थी और यह तूरानका रहनेवाला था। यूचीकौसका था। स. ई. ७८ में यह कश्मीरके राज्यसिंहासन पर बैठा। इसने बौद्धमतकी धर्मपुस्तकोंका पुनःसंस्कार कराया जिनका रिवाज अब-तक तिब्बत, तातार और चीन इत्यादि देशोंमें है। इसका पिता वाझेष्ट था। कावुलपर राज करता था। पिताने ही काश्मीरपर अधिकार किया था। उसने पेशावर (पुरुष पुरमें)४०० फुट ऊंचा बौद्धयशस्तम्भ बनवाया था जो कई बार शत्रुओं द्वारा जलाया गया और प्रबंधकों द्वारा बारबार बनवा दिया गया। अंत-में मुसलमानोंने इस संसारके आश्चर्य्यको मटियामेट करदिया। कनिष्कने बौद्ध धर्म सम्बंधी अनेक परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तोंका प्रचार देखकर अपने गुरुसे आग्रह करके बौद्धोंकी एक महती सभा बुलाई जिसके सभापति वसुमित्र और उप सभापति अश्वघोष हुये। इस सभामें त्रिरत्नपर भारी टीकायें हुई और महा विभाष नामक ग्रन्थ बना जिसका चीनी अनुवाद अबतक मौजूद है। कनिष्का शरीरान्त संवत् १८० के लग भग हुआ।

कपिलदेव मुनि (तत्त्वसमास सांख्यसूत्रोंके कर्ता) कर्दम ऋषिके घर देवहूतिके उदरसे जन्मे। कपिलके बड़े होनेपर कर्दम ऋषि उस समयकी प्रणा-लीके अनुसार बनको चलेगये और थोड़ेही दिन पीछे मृत्युवश हुये। कपिलने तत्त्वसमास सांख्यसूत्रोंका उपदेश करके माताको शोकरहित किया और आप गंगासागरको चलेगये। वहां रहकर इन्होंने योगाभ्यास किया और शुकादिऋषि-योंको सांख्ययोग पढ़ाया। सांख्ययोगका मुख्य उद्देश्य यह है कि आत्माको अविनाशी और शरीरको नाशवान् जानकर संसारी मायामें चित्त न लगाना चाहिये। कपिल दर्शनकारोंमें सबसे प्राचीन हैं। यह महाभारतसे पहिले हुये क्योंकि गीतामें सांख्यका उपदेश पाया जाताहै। पुरातत्त्ववेत्ताओंकी सम्मति है कि कपिलदेवहीने गौतमबौद्धकी जन्मभूमि "कपिलवस्तु" नामक नगरको बसाया था, और इन्हींके सांख्यसूत्रोंके आशयपर बुद्धने अपना मत चलाया। छः अध्यायोंमें सांख्यसूत्रोंके बनानेवाले कपिल दूसरे थे और महाभारतके पछि हुये। येही दूसरे कपिल अंग्रेज विद्वानोंके मतानुसार स.ई. से प्राय: ७०० वर्ष पूर्व हुये।

कबीर (कबीरपन्थ संस्थापक) ये वि.स. १५४५ में थे। ये वास्तवमें किस जातिके थे ठीक विदित नहीं। पर कहा जाता है कि यह एक विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे उपन्न हुये। लोकापवादके भयसे उसने इन्हें गंगाकिनारे डालदिया और एक जुलाहेने उठाकर पुत्रवत् पालन किया। बड़े होनेपर यह जुलाहेका पेशा करके समय व्यतीत करने लगे। उनके हृदयमें भगवद्भक्ति तथा अतिथिसेवाका अंकुर जन्महीसे पाया जाता था। बादको कबीर गुरु रामानन्दके शिष्य होगये और योग्यताके कारण मुख्य शिष्योंमें गिने गये। गुरुने इनको शब्दयोगकी शिक्षा दी। सद्गुरुको प्राप्त हो कबीरसाहिब प्रकृत साधु और सिद्ध पुरुष हुये, और हिंदू मुसल्मानोंके तीर्थव्रतादिपर तीव्र प्रतिवाद करनेमें प्रवृत्त हुये। दिल्लीके बादशाह सिकंदर लोदीके यहां कबीर साहिबके नाम मुसल्मान धर्मकी निंदा करनेका अभियोग उपस्थित हुआ, पर बादशाहने उनकी करामात देखकर उनसे मित्रता करली। कबीरपंथमें शब्दयोगका उपदेश किया जाता है। कबीरका कथन है कि "भगवान् शब्दरूपसे सबके घटमें विद्यमान है। शब्दयोगीजन साधन बलसे अपने अपने शरीरके भीतरही उस शब्दको सुनते और गुरुरूपी ईश्वरको देखते रहते हैं, मनुष्य भगवान्को इंद्रियोंद्वारा किसी तरह ध्यानमें नहीं लासकता, न देख सकता है। इसी कारण परमेश्वर जीवके उद्धारके लिये गुरुरूपसे अवतार लेकर दर्शन देते हैं, ऐसेही गुरुको सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरुकी खोजमें प्रत्येक मनुष्यको रहना चाहिये, सद्गुरुकी पहिचान यह है कि उनके ईश्वरत्वका आभास बचपनहीसे अनेक अलौकिक क्रिया-कलाप द्वारा प्रकट होने लगता है, सद्गुरुके अतिरिक्त संसारमें प्रत्यक्ष ईश्वर और कोई नहीं हैं।" कबीर साहिबने बहुतकालतक जीवन धारण करके बंगाल, पंजाब, आसाम इत्यादि देशोंमें अपने मतका प्रचार किया, अंतमें एकदिन शिष्योंको उपदेश करते करते देह त्यागदी। कबीरकी कविता जगत् प्रसिद्ध है, साखी, बीजक इत्यादि उनके बनाये ग्रंथोंमेंसे मुख्य हैं। कबीर की साखीकी कविवर रवीन्द्रनाथने मुक्तकंठसे प्रशंसाकी है और अंग्रेजी अनुवाद किया है।

कमलाकरभट्ट(ज्योतिषकार). इनके पिता शास्त्री नृसिंह दैवज्ञ, भास्कर कृत सिद्धांतशिरोमणि पर वासनावार्त्तिक नाम टीकाके बनानेवाले थे। अपने बड़े भाई दिवाकर दैवज्ञसे इन्होंने ज्योतिष पढा। प्रसिद्ध पं. रङ्गनाथ दैवज्ञ इनके

छोटे भाई थे। सिद्धांतशिरोमणि पर मरीची नाम टीकाके कर्ता पं. मुनीश्वरजी किसीनातेसे इनके चचा लगते थे। एकदफ़ा मुनीश्वर और कमलाकर मकर स्नानके लिये प्रयाग गये। वहां पंडितोंके बीच शास्त्रार्थके समय दोनों विपक्षी होगये जिससे दोनोंमें विरोध होगया। कमलाकरने तत्त्वविवेक नाम एक ज्योतिष सिद्धांत रचा जिसमें अनेक उपपत्तियां और युक्तियां मुनीश्वरके मतके खण्डनार्थ लिखी हैं। बादको मुनीश्वरने ग्रहोंका स्पष्टस्थान जाननेके लिये "भङ्गी" नाम एक क्षेत्रक्रिया रची। कमलाकरने उसके खण्डनके लिये अपने छोटे भाई रङ्गनाथसे "भङ्गीविभङ्गी" नामक ग्रंथ रचवाया। कमलाकरने भास्करीय बीजगणितके अनेक प्रकारोंकी उपपत्तियां अपने बुद्धिबलसे की हैं। जिस अंकका वर्गमूल पूरा पूरा नहीं निकलता। उसके मूलकाभी दृढांकपरसे पूरा पूरा विचार है। सूर्य॰ सिद्धांतके भी अनेक प्रकारोंका समर्थन खूब किया है और महामारी भूकम्प इत्यादि का भी अपने ग्रंथमें भलीभांति निरूपण किया है। निर्णयसिन्धु धर्मशास्त्रका ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है। इनके पूर्वजोंका निवासस्थान गोदावरी तटके गोल नामक ग्राममें था पर इनके पिता बालबच्चों सहित काशीमें आ बसे थे। जन्म इनका शाके, १५३८ में हुआ।

कमलावती रानी—यह राजपूत जातिका गौरव बढानेवाली जगत्प्रसिद्ध सुन्दरी गुन्नौरकी रानी थी। निम्नस्थ दोहा इसके विषयमें मशहूर है:—

दो०—ताल तो भूपाल ताल, और सब तलैयां।
रानी तो कमलावती, और सब विलैयां।

कर्ण—(महादानी) सूर्य्यके वीर्यसे कुन्तीको गर्भ रहा जिससे कर्ण पैदा हुआ। कुन्तीका विवाह उस समय राजा पांडुके साथ नहीं हुआ था अतः उसने बच्चेको सन्दूकमें बन्द करके जमुना नदीमें छोड़ दिया। धृतराष्ट्रके रथवानको यह सन्दूक बहता मिला। सन्दूकको पाकर उसने बच्चेको निकाल लिया और उसका पालन पोषण किया। जब कर्ण जवान हुआ तब दुर्योधनने उसको अङ्ग देशका राज्य दिया। महाभारतकी लड़ाईमें कौरवोंकी तरफसे लड़ा और अर्जुनके हाथसे मारा गया। प्रसिद्ध है कि राजा कर्ण सवामन सोना रोज़ पुण्य करता था। यह बड़ा वीर और धनुर्धारी था।

कल्याणवर्म्मा (ज्योतिषकार) होरा शास्त्रमें सारावली नाम बहुत बड़ी पुस्तक इनकी रची है। यह रीवांके बघेल वंशी राजाओंके मूल पुरुष थे और हंटर साहिबके लेखानुसार स. ई. ६१५ में रीवांमें राज्य करते थे। इनके बापका नाम व्याघ्रदेव था। देवग्राममें इनकी राजधानी थी .

कल्हण पंडित–(कश्मीर राजतरङ्गिणीके कर्त्ता) इनके पिता चम्पक कश्मीर दर्बारमें मंत्री थे। इन्होंने पांडवोंके समकालीन आदिगोनर्दसे लेकर राजा जयसिंह तकका कश्मीरका इतिहास राजतरङ्गिणीमें लिखा है। यह ग्रंथ इन्होंने स. ई. ११४८ में सम्पूर्ण किया। नीलमत नामक ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया हुआ है। कश्मीर राजतरङ्गिणीका दूसरा भाग जौनराजने बनाया और तीसरा भाग पं० श्रीवरने स. ई. १४७७ में सम्पूर्ण किया। चौथा भाग प्राज्ञभट्टने बादशाह अकबरके वक्तमें लिखा। कल्हणजीने राजतरङ्गिणीके लिखनेमें ११ प्राचीन इतिहास ग्रंथ तथा अनेक दानपत्र अनुशासनपत्र और शिवालय आदिकी लिपि भी देखी थीं। इनके रचे ग्रंथोंके देखनेसे प्रतीत होता है कि ये बड़े उद्धत और अभिमानी थे और गवेषणा इनकी अत्यंत गंभीर थी। इनके मतानुसार ३५० वर्ष कलियुग बीतने पर महाभारतका युद्ध हुआ था।

कश्यप–इनकी गणना सप्त ऋषियों तथा १० प्रजापतियोंमें है। ऋग्वेदकी ऋचाओंमें इनका नाम आया है। एक ज्योतिष सिद्धांत इनका बनाया प्रसिद्ध है। कश्यपमेरु जिसका अपभ्रंश कश्मीर है इन्होंने ही बसाया। दक्ष प्रजापतिकी १३ कन्यायें इनको विवाही गई थीं जिनसे बहुत संतति उत्पन्न हुई थी। इनका कथन है कि "क्षमा धर्म है, क्षमाही यज्ञ है, क्षमाही तप है और क्षमाहीसे यह जगत् स्थिर है"।

कात्यायन वररुचि–(पाणिनीय सूत्रोंके वार्तिककार) प्रोफेसर मैक्समूलरके मतानुसार यह स. ई. से प्रायः ३५० वर्ष पूर्व मगधदेशाधिपति महाराज नन्दके दर्बारमें मन्त्री रहे–ये कतक ऋषिके वंशमें थे. निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:–ऋग्वेदकी अनुक्रमणी, ऋग्वेदीय श्रौत सूत्र २६ अध्यायमें, पाणिनीय वार्तिक, कर्मप्रदीप, कात्यायनस्मृति, सामवेदीय गृह्यसूत्र, अथर्वणकारिका, कात्यायनी तर्पण।

कात्यायन-(धर्मसूत्रकार). इन्होंने सूत्ररचनाके अत्यन्त प्राचीन समयमें कतक ऋषिके वंशमें उत्पन्न होकर धर्म सूत्र रचे थे । पश्चात् इन्हीं धर्मसूत्रोंके आशय पर कात्यायन वररुचिने कात्यायन स्मृति रची । शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यंन्दनीशाखाका प्रतिशाख्य भी जिसमें शब्दोच्चारणके नियम हैं इन्हींका बनाया हुआ है

कामटे-(इसीडर आगस्ट मेरी फ्रेन्काइस, ज़ेवियर) (१७९८-१८५७) प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक । इसने Positive Philosophy नामकी एक नवीन फ़िलासफ़ीको जन्म दिया और बहुत आदर पाया । पर इसका सारा जीवन दरिद्रतामें कटा । यह बड़ा अहम्मन्य था और अपने मित्रोंका उपकार भी नहीं मानता था । पर इसके चरित्रमें एक विशेषता थी—यह विघ्न बाधाओंसे कभी न घबराता था और जिस बातको ठीक समझता उसे साफ़ साफ़ कह डालता था इसकी स्मरण शक्ति गज़बकी थी ।

कालिदास-(कविकुलचक्रचूडामणि). कालिदासकी कविता जगतसाहित्यमें अनुपम सामग्री है । इन्होंने अपने कवित्वशक्ति और नाटकगत चरित्र चित्रण तथा अन्यान्य सौंदर्य और कल्पनाकी सृष्टि द्वारा भूमंडलके समस्त कविकुल चक्रमें उच्चासन पाया है । वैज्ञानिक,राजनैतिक तथा सामाजिक तत्त्वोंके दर्शानेमें कोई कवि इनकी बराबरी नहीं कर सका । उपमाके विषयमें प्रसिद्ध ही है "उपम कालिदासस्य ।" मानवचरित्रोंका तथा चित्तके सूक्ष्म भावोंको इन्होंने ऐसी स्पष्ट रीतिसे दरशाया है कि मानो चरित्र खींचकर प्रत्यक्ष दिखा दिया है । जो ग्रन्थ कालिदास प्रणीत मिलते हैं वे कालिदास नामके ३ कवियोंने भिन्न भिन्न समयमें होकर बनाये थे और उपरोक्त कथन उन तीनोंकी कवितापर घटता है । कालिदास नामके तीन कवियोंका होना विक्रमी संवत्की१२ वीं शताब्दीमें होनेवाले राजशेखर कविके निम्नस्थ श्लोकसे सिद्ध होता है:—श्लोक—"एकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् । शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ?" इनमें से प्रथम कालिदास तो विक्रमादित्य सकारीकी सभाके अलंकार थे और कश्मीरके रहनेवाले किसी सामान्य ब्राह्मणके घर जन्मे थे । लड़कपनमें कुछ पढा लिखा न था, केवल एक राजकन्यासे विवाह हो जानेके कारण अमोल विद्याधन इनके हाथ लगा ।

कहते हैं कि राजा शरदानन्दकी कन्या विद्योत्तमाका प्रण था कि जो शास्त्रार्थमें मुझे हरा देगा उसीको मैं वरूंगी। दूर २ से बडे २ पंडित आये, पर सब हारे। निदान लज्जित हो पंडितोंने एका किया और किसी निरक्षर मूर्खसे राजकुमारीकी शादी करा देनेका विचार ठाना। यह ठानकर उन्होंने एक अत्यंत मूर्खको तलाश किया और उसको समझा दिया कि राजकुमारीके सामने कुछ बोलना नहीं, जो बात करना हो सो संकेतद्वारा करना। इस प्रकार समझाकर वे उस मूर्खको सभामें लाये और राजकुमारीसे कहा कि ये हमारे गुरु आपसे शादी करने आये हैं, पर आज कल मौन साधे हुए हैं, इस लिये संकेतद्वारा शास्त्रार्थ कर लीजिये। राजकुमारीने इस अभिप्रायसे कि, परमेश्वर एक है. एक उंगली उठाई। मूर्खने समझकर कि, मेरी एक आंख फोडनेको कहती है दो अंगुलियां इस विचारसे दिखलाईं कि, मैं तेरी दोनों फाड़ देऊंगा। परन्तु पंडितोंने उसमें ऐसे २ अर्थ निकाले कि राजकुमारीको हार माननी पड़ी। दोनोंका विवाह हो गया और राजभवनमें रहने लगे। यह ग्रामीण मूर्ख बोलता नहीं था और पशु समान रतिक्रीड़ा करता था। बहुत दिनोंतक राजकुमारी पर इसका कुछ भेद विदित नहीं हुआ। एक दिन रातको सोतेपर ऊंटकी चिल्लाहट सुनकर राजकुमारी चौंक उठी और पूंछने लगी "क्या है?" मूर्ख जो किसी शब्दका भी ठीक उच्चारण नहीं कर सकता था अपने मौनव्रतको भूल कर कहने लगा, उट! उट!! उट!!! तब तो पंडितोंका छल राजकुमारीको मालूम हुआ और उसने क्रोधमें आकर मूर्खका बड़ा निरादर किया। मूर्ख भी लज्जित होकर आत्मघात करने लगा। पर कुछ समझ सोच विद्या पढने चल दिया। विद्या पढकर पंडित हो घरको लौटा। जब मकान पर आया तो किंवाड़ खोलनेके लिये अपनी स्त्रीको पुकारकर कहा "अनावृतकपाटं द्वारं देहि"।

ने पतिकी बोली पहचानकर पूंछा "अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः" अर्थात् क्या अब कुछ बोलना सीख आये? कालिदासजीने निजपत्नीका प्रश्न सुनकर उसका एक २ पद ग्रहण करके कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश नाम काव्य बनाये। पश्चात् कालिदासजी उज्जैनके राजा विक्रमादित्य सकारीके दर्बारमें आये और बड़ी प्रतिष्ठाके भागी हुये। काश्मीरके राजा प्रवरसेनके निमित्त इन्होंने महाराज विक्रमकी आज्ञासे "सेतुबंध" नामक काव्य बनाया।

कालिदासद्वितीय-(अभिज्ञानशाकुन्तल आदि नाटकोंके कर्त्ता) इनके निम्नस्थ श्लोकसे विदित होता है कि ये नाटकोंके कर्त्ता कालिदास और भवभूति कवीश्वर एकही समयमें हुये। श्लोक-"नाटिके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा। उत्तर रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते॥" भवभूति कवीश्वरका वि० सं० की छठी व सातवीं शताब्दीमें होना इतिहासोंसे सिद्ध है। इसी समय उज्जैनकी गद्दी पर महाराज विक्रमादित्य हर्ष राज्य करते थे जिससे प्रतीत होता है कि ये द्वितीय कालिदास महाराज विक्रमादित्य हर्षकी सभाके अलंकार थे। निम्नस्थ नाटकग्रन्थ इनके रचे हुये हैं:-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, नलोदय, हास्यार्णव और ऋतुसंहार। अभिज्ञानशाकुन्तल सब नाटक ग्रन्थोंमें सर्वोत्तम है। उसके नाटकत्वकी रचनाकी तुलनामें कालिदास भूमण्डलमें एकही हुये। इनके नाटकोंमें ग्रीकदेशीय नाटकोंका आकारगत सौंदर्य, जर्मन देशीय-नाटकोंकी प्रणालीगत आध्यात्मिकता और फरासीसी तथा इंग्लैण्डदेशीय नाटकोंका कार्यगतजीवन्तभाव पूर्णतया पाया जाता है। इनके नाटक पात्र सब कर्तव्य-परायण, धीर, स्थिर और नीतिनिपुण हैं। विक्रमादित्य हर्षके दर्बारमें नवरत्न नामक ९ प्रसिद्ध पंडित थे जिनमेंसे कालिदासजी सर्वोत्तम गिने जाते थे। विक्रमने कालिदासको अध्यक्ष नियत करके सब प्राचीन ग्रन्थोंको ढुंढ़वाकर शुद्ध श्रेणीबद्ध कराया था।

कालिदास तृतीय-महाराज भोजके दर्बारमें थे। भोजने उज्जैनकी गद्दी पर वि० सं० की १० वीं शताब्दीमें राज्य किया, भोजकी सभामें जो कोई नया श्लोक बनाकर लाता था, १ लक्ष मुद्रा इनाम पाता था। परन्तु श्लोकका नया ठहराना कठिन था, क्योंकि दर्बारके पंडित कह देते थे कि इस श्लोकको तौ हम जानते हैं। यह देख कालिदासने २ नये श्लोक बनाकर राजाकी भेंट किये, उनका आशय यह था, कि महाराज आपके पिताने जो रत्न मुझसे क़र्ज़ लिये वह दीजिये नहीं तो इन श्लोकोंको नया ठहराकर मुद्रादान दीजिये। राजाने श्लोक सुन दर्बारके पंडितोंसे पूंछा कि कालिदासको क्या उत्तर देना चाहिये? एक पंडितने कहा कि "महाराज, आपके पिताके हस्तलिखित एक ग्रन्थमें यह लेख है कि हमने नदीके तीर उतरते आषाढ दुपहरके वक्त बगीचेके मध्य ताल वृक्षपर अनेक रत्न रक्खे हैं सो हमारे पुत्रको बड़े होनेपर मिलेंगे, सो आप

कालिदाससे कह दीजिये कि पेड़पर रक्खे हुये स्वर्गवासी महाराजके रत्न ले लेवें"। भोज यह सुन प्रसन्न हुआ और निज पिताका लेख कालिदासको सुनाकर कहा "जाओ यह रत्न ले लो" कालिदास उस कविताका आशय समझ चल दिय और वृक्षकी जड़मेंसे दो कलश दो कोटिरत्नोंसे भरे खोद लाये। भोजने पूंछा कि कवितामें तो "वृक्षके ऊपर रत्न रक्खे हैं" यह लेख है, आपने जड़ कैसे खोदी? कालिदासने उत्तर दिया कि मध्याह्नके समय चोटीका साया जड़पर पड़ता है इसलिये जड़को खोदा। भोजने प्रसन्न हो व सब रत्न कालिदासको दे दिये और उन्हें अपने दर्बारके मुख्य पंडितोंमें नियत किया और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा की। इनका स्वभाव प्रहसनयुक्त था जिसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हैं—श्यामलादंडक, शृंगारतिलक, श्रुतबोध, असज्जन-वर्जन और प्रश्नोत्तरमाला।

कालिदास त्रिवेदी—(भाषाकवि) ग्राम वनपुरा (अंतरवेद) के रहनेवाले थे। हरिद्वार और प्रयागके बीचका मुल्क अंतरवेद कहलाता है। पहिले पहिले बादशाह औरंगजेबके साथ गोलकुंडा इत्यादि दक्षिणी देशोंमें बहुत दिनों तक रहे। पश्चात् जोगजीतसिंह जम्बूनरेशके दर्बारमें गये और "वधूविनोद" नाम अद्भुत ग्रन्थ बनाकर उनकी भेंट किया। "कालिदासका हज़ारा" नामक ग्रन्थ भी इन्हींका संगृहीत है। एक और ग्रन्थ 'जञ्जीराबन्द' इनका बनाया हुआ मिलता है। इनके पुत्र कवींद्र उदयनाथ और पौत्र कवि दूलह भी भाषाके सुकवि हुये हैं। इनका जन्म वि० स० १७४९ में हुआ।

कालिदास—(ज्योतिषी) "ज्योतिर्विदाभरण" नाम ज्योतिष ग्रन्थके कर्त्ता वि० सं० की १४ वीं शताब्दीमें हुये, ज्योतिर्विदाभरणहीके एक श्लोकमें विक्रमके दर्बारके नवरत्न नामक ९ प्रसिद्ध पण्डितोंके निम्नस्थ नाम लिखे हैं—कालिदास, क्षपणक, धन्वन्तरि, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, वाराहमिहिर और वररुचि।

काशीनाथत्र्यम्बकतैलङ्ग—(भारतवर्षीय प्रसिद्ध राजनीतिविशारद) ये महाराष्ट्र शेणवी ब्राह्मण स० ई० १८५० में पैदा हुये। १७ वर्षकी उम्रमें बी. ए. पास किया और बादको शीघ्रही एम्. ए. तथा. एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। स० ई० १८८२ में एडवोकेटका इम्तिहान पास किया और वकालत

गुरू की। संस्कृतके पूर्णविद्वान और धर्मशास्त्रके प्रसिद्ध ज्ञाता थे। स. ई. १८८९ में बम्बई हाईकोर्टके जजके पदपर नियुक्त किये गये। बम्बई यूनीवर्सिटीके फेलो थे। सुप्रीमकौंसिल कलकत्ताके मेम्बर होजाते, पर इन्होंने पसन्द न किया। उपदेश देने और उनको छपवानेका इनको बड़ा शौक था। इनकी वक्तृताकी धूम यूरूप तक मच गई थी। इन्होंने भगवद्गीता, भर्तृहरीशतक और मुद्राराक्षस नाटक इत्यादि संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद अङ्गरेजीमें किया। अनेक सभाओंके मेम्बर, सेक्रेटरी तथा प्रेसीडेन्ट रहे। शिक्षा सम्बन्धी कमीशनके मेम्बर रहनेके कारण स० ई० १८८३ में सी. आई. ई. की उपाधि पाई। सनातन धर्मपर आरूढ़ रहे और युवावस्थाहीमें परलोकगामी हुये। इन्हींका छोटा नाम के. टी. तैलङ्ग है।

कुतुबुद्दीन ऐबक (दिल्लीका पहिला मुसल्मानबादशाह) शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरीका गुलाम था और हिन्दोस्तानमें उसके राज्यका नायब था। ग़ोरीके मरने पर इसने दिल्लीमें अपनी राजधानी नियत की और हिंदोस्तानका सुलतान बन बैठा। सब सर्दार तथा सिपाही सिंधसे लेकर बंगालतक इसका हुक्म मानते थे और इससे प्रसन्न रहते थे। यह बड़ा बहादुर, चतुर सेनापति था। स. ई. १२१२ में मरा। दिल्लीमें कुतुब मसजिद तथा कुतुबकी लाट इसीके बनाये हैं। कुतुब मसजिदके खम्भों पर अनेक देवताओंके चित्र खुदे हुए हैं और उसके दर्वाजेपर अंकित है कि २७ मन्दिरोंको तोड़ उन्हींके मसालेसे यह मसजिद बनाई गई थी। कुतुबकी लाट दिल्लीसे ११ मीलकी दूरीपर है, पृथ्वीकी सब लाटोंमें ऊंची है। प्रथम इस लाटको पृथ्वीराजने बनवाना आरम्भ किया था, परन्तु मुसल्मानोंकी चढ़ाईके कारण वह पूरी न होसकी। कुतबुद्दीनने अपने स्वामी शहाबुद्दीनग़ोरीकी विजयका स्मारक चिन्ह स्थापन करनेके लिये इस लाटको ऊंचाकराके उस पर अपने स्वामीका नाम खुदवा दिया। बादको अन्य मुसलमान बादशाहोंने इसपर और मंजिलें बनवाई।

कुंभनदास–(भाषाकवि, अष्टछाप) गोवर्धनके पास जमुनावर्तें गांवके रहनेवाले ब्राह्मण थे। श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य थे. और ऐसे सुकवि थे कि अष्ट छापमें गिने गये। इनके ७ बेटे थे जिनमेंसे चतुर्भुजदासजी अच्छे कवि थे और अष्ट छापमें गिने गये थे। वल्लभाचार्यने श्रीनाथजीकी सेवाके लिये गोवर्धन-

के शिखरपर पधराकर कुम्भनदासको उनका कीर्तनिया नियत किया था। यह अत्यन्त दरिद्री और त्यागी था। जयपुरनरेश मानसिंहने इन्हें बहुत कुछ देना चाहा था परन्तु इन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। एक समय इनके गानेकी प्रशंसा सुन बादशाह अकबरने इनको फतेपुरी सीकरी बुलाया, वहां जाकर इन्होंने निम्नस्थ पद गाया था:-

भक्तनको कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनैहियां टूटी विसरगयो हरनाम।
जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनको करनी पड़ी सलाम।
कुंभनदास लाल गिर्धर बिनु और सबै वे काम॥

कुंभनदासजी बहुत वृद्ध होकर मरे थे।

कुमारिलभट्ट-(मीमांसादर्शनके आचार्य) इनका समय वि० स० ६४७ से ७०७ तक प्रतीत होता है। विहारके रहनेवाले ब्राह्मण थे। जैन तथा बौद्ध मतवादियोंको इन्होंने अनेक दफा शास्त्रार्थमें परास्त करके उनके मतको मूल उखाड़ दी और वैदिक मतका पुनः संस्कार किया। इस महत्कार्यके बदले सब लोगोंने एक मत होकर इनको 'भट्टपाद' उपाधि दी। एक दफ़ा भट्टपाद और बौद्ध पण्डितोंमें शास्त्रार्थ ठहरा और एक बड़े ऊँचे महलमें शास्त्रार्थ करनेको बैठे। भट्टने अपनी तीव्र बुद्धिसे प्रतिवादियोंके युक्तिजालको छिन्न भिन्न कर दिया। निदान बौद्धोंने भट्टको परास्त करना असम्भव जान छतपरसे नीचे ढकेल दिया, पर वह जीते और वैदिक धर्मकी धूम मची। इन्होंने मीमांसा-दर्शनपर वार्तिक भाष्य किया है। श्लोकरूपवार्तिक "श्लोकवार्तिक (भट्टवार्तिक)" कहलाता है और गद्यरचनायुक्त वार्तिक "तन्त्रवार्तिक" कहलाता है। पुरी, द्वारका, सेतुबन्धरामेश्वर इत्यादि तीर्थोंमें भी इन्होंने भ्रमण किया था। प्रभाकर तथा मुरारि मिश्र मीमांसादर्शनके विद्वान् इनके शिष्य थे। भट्टपाद अन्तमें अग्निमें प्रवेश करके मरे थे।

कुम्भकरणसिंह-(महाराना चित्तौड़) निज पिता राना मोकलदेवके रणशाई होनेपर स० ई० १४१९ में चित्तौड़की गद्दीपर बैठे। उस समय मालवा तथा गुजरातके राजा बड़े प्रबल थे। दोनोंने मिलकर राना पर चढ़ाई की,

रानाने दोनोंको हराया, और गुजरातके मुसल्मान राजा महमूदको कैद कर लिया, परन्तु थोड़ेही दिनों बाद बहुत कुछ धन लेकर छोड़ दिया और निज उदारताका परिचय दिया। मेवाड़में कुम्भमेरुका किला तथा ३१ और किले बनवाये और आबू पहाड़की चोटीपर ८ लाख रुपयेके खर्चसे ऋषभदेवजीका मन्दिर बनवाया। चित्तौड़में भी इनका बनवाया एक बहुत बड़ा मन्दिर अबतक है जिसमें इनकी अष्टधातुकी मूर्ति रक्खी हुई है। ये भाषाके सुकवि थे। गीत गोविन्दका तिलक भाषा पद्यमें इनका बनाया है। इन्होंने अपने देशके शत्रुओंको परास्त करके अपने राज्यको पुष्ट किया। स० ई० १४६९ में इनका पुत्र ऊदासिंह इनको मारकर गद्दीपर बैठा।

कुरु–(चन्द्रवंशी राजा) धृतराष्ट्र वा पांडु इन्हींके वंशमें हुये। धृतराष्ट्रके १०० पुत्र इन्हींके नामसे कौरव कहिलाये।

कुलोत्तुङ्गः–यह चोल कन्या और चालुक्य पिताके औरससे बाहरवीं शताव्दिमें उत्पन्न हुआ। इसने पिताका राज्य लेना उचित न समझा और आठ वर्ष तक माताके राज्यकी प्रतीक्षा की। यह मैसूर और उसके आसपासके देशका राजा था। होय्सल नरेशने धावा करके इससे मैसूरका कुछ भाग छीन लिया। इसने कुतुल नरेशको हराया और पाण्डय नरेशका वध किया। जहां जहां प्रजाको विद्रोही समझा, वहां वहां सामरिक शासक नियुक्त किये। सम्वत् ११४३ में कुल प्रान्तोंकी फिरसे पैमायश कराई। फिर कलिङ्ग देश जीता, पर यहां चोल राज्य स्वामी न हुआ। इसने अपने राज्यकी सुव्यवस्थाके लिये तीन समितियां बनाई थीं: तड़ाग समिति, आराम निरीक्षिका समिति, साधारण प्रबन्ध समिति। यह कट्टर शैव था। एक बार प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य्य रामानुजके एक शिष्यसे इसने कहा "शिवात् परतरं नास्ति।" इसपर उस शिष्यने कह दिया:

"शिवात् परतरं नास्ति द्रोणमस्ति ततः परम्।"

दाक्षिणमें शिव एक बाटको कहते थे जिससे द्रोण नामक बाट भारी था। बस, कुलोत्तुङ्गने इसकी आंखें निकलवा लीं। रामानुजाचार्य्य यह सुनकर बड़े क्षुब्ध हुये और राज्य छोड़कर चले गये।

कुश–महाराज रामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र थे। कुशावतीका राज्य इनको मिला था। इनके वंशोत्पन्न क्षत्री कछवाहे कहलाते हैं और जयपुर तथा अलवरमें अब तक राज्य करते हैं।

कूपर–(विलियमकूपर) १७३१–९६ प्रसिद्ध अंगरेज़ी कवि व पत्र-लेखक था। हर्टफोर्डशायर अंतर्गत वर्खम्सटेड ग्राममें एक पादरीके घर स. ई. १७३१ में पैदा हुआ। इसके दादा प्रसिद्ध जज स्पेन्सर कूपर थे। तुच्छ वातोंको जोश भरी इबारतमें लिखनेकी इसकी शक्ति असाधारण थी। इसके खतोंकी इबारत सरल सादी और महावरेदार है। बहुधा स्त्रियोंसे इसकी मित्रता होनेके कारण लोग इसको ज़नाना बताते हैं।

कूर्मदेवी–पट्टनकी राजकुमारी चित्तौड़के राजा समरसिंह (समर्सी) को व्याही थी। राना समर्सी केगरके संग्राममें जो स. ई. ११९२ में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज दिल्ली नरेशके बीच हुआ, मारा गया। पृथ्वीराजकी बहिन पृथा बाई भी समर्सीको व्याही थी। कूर्मदेवी पतिके साथ सती होना चाहती थी परन्तु पुत्रके बालक होनेके कारण न होसकी। पुत्रकी बाल्यावस्थामें राजकाज बड़ी सावधानीसे सम्हाला और जयपुरके समीप कुतबुद्दीन शाहको घायल किया।

केशव–(ज्योतिषकार) वि. सं. की १६ वीं शताब्दीमें हुये। इनके पिता कमलाकरजी पश्चिम समुद्रतीरवर्ती नन्दीग्रामके रहनेवाले थे। वैद्यनाथ ज्योतिषी इनके गुरु थे और प्रसिद्ध पं. गणेश दैवज्ञ इनके पुत्र थे। नि स्थ ग्रन्थ इनके बनाये हैं:–ग्रहकौतुक, वर्षग्रहसिद्धि, जातकपद्धति, ताजकपद्धति, सिद्धान्तवासना-पाठ, मुहूर्ततत्त्व, कायस्थादिधर्मपद्धति, कुण्डाष्टकलक्षणम्, गणितदीपिका और तिथिसिद्धि।

केशवचंद्रसेन–(ब्रह्मोधर्मप्रवर्तक) स.ई. १८३८ में प्यारी मोहन सर्कारके घर कलकत्तेमें जन्मे। बचपनहीसे दयालु थे। हिन्दूकालिज कलकत्तामें प्रथम श्रेणीतक शिक्षा पाई थी। स्वभावके गंभीर थे, बोलते कम थे, इनकी वक्तृताकी बड़े २ लोग प्रशंसा करते थे। २० वर्षकी उम्रमें इन्होंने ब्रह्मोसमाजमें नाम लिखाया और एक वर्ष पश्चात् ब्रह्मोसमाजके मंत्रीके साथ सङ्कलद्वीपको गये।

पश्चात् इन्होंने अपना तन मन पूर्णरीतिसे ब्रह्मोसमाजकी उन्नति करनेमें लगाया। स. ई. १८६२ में भारतवर्षीय ब्रह्मोसमाजोंके प्रधान आचार्य्यके पद पर नियत किये गये। पंजाब, बम्बई, मदरास, बङ्गाल प्रांतोंमें भ्रमण करके इन्होंने हजारों व्याख्यान दिये जिससे ब्रह्मोधर्मका बहुत कुछ प्रचार हुआ। स. ई. १८७० में इंग्लैंड गये और सामाजिक नियमोंपर उपदेश दिये। वहां सब लोगोंने इनकी प्रतिष्ठा की, महारानी विक्टोरियासेभी मुलाकात हुई। महाराजा कूचबिहारके साथ इनकी बडी लड़कीका विवाह हुआ था। स. इ. १८८४ में परलोकगामी हुये।

केशवदास–(भाषाकवि). इनके दादा मिश्र कृष्णदत्त तथा इनके बाप काशीनाथ टेहरी (बुंदेलखंड) के रहनेवाले सनाढ्यब्राह्मण थे और उड़छानरेशके दर्बारमें उनका आदर होता था। केशवजी स० ई० १५६७ में पैदा हुये, और बड़े होकर मधुकर शाह उड़छानरेशके दर्बारमें आये। मधुकरशाहके बाद इंद्रजीतसिंह ने गद्दीपर बैठकर इनको २१ गाँव संकल्प करके दिये। तबसे ये कुटुम्बसहित उड़छामें आ बसे। भाषाकाव्यके दशों अङ्ग पहिले पहिल इन्होंने "कविप्रिया" नामक ग्रंथमें वर्णन किये थे। इनके रचे ग्रंथोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि ये अलंकार, लक्षणा, व्यञ्जना, कोष इत्यादि काव्यके अङ्गोंमें विज्ञ थे। उड़छानरेश इन्द्रजीतके पास 'प्रवीणराय' नामक पातर बडी सुंदरी तथा कविता करनेमें परमचतुर थी। अकबर बादशाहने उसकी प्रशंसा सुनकर अपने दर्बारमें तलब किया, परंतु वह दर्बारमें हाजिर न हुई, इसपर क्रुद्ध होकर अकबरने इन्द्रजीतपर १ करोड़ रुपया जुर्माना किया। इस अवसरपर केशवदासजीने अकबरके मंत्री राजा वीरबलसे कह सुनकर जुर्माना माफ करा दिया। पर प्रवीणरायको दर्बारमें हाज़िर होना पड़ा।

केशवदासजीके बनाये ग्रंथोंका आशय कठिन है। इनके ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:– कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता और रामालंकृतमंजरी केशवदासकी कविता अर्थगांभीर्यके लिये प्रसिद्ध है।

केशवार्क–(ज्योतिषी) भारद्वाज गोत्री अवदीच्य ब्राह्मण, जनार्दनजीके प्रपौत्र थे। श्रियादित्य इनके दादा नर्मदातटके वासी थे। इनके पिताका नाम राणग था। "विवाहवृंदावन" तथा "कर्णकंठी" नाम ज्योतिषग्रंथ इनके रचे हुये हैं। स. ई. १२४० में जन्मे थे।

कैकेयीरानी–अवधनरेश दशरथजीकी सबसे छोटी रानी, राजा अश्वपति कैकेयाधीशकी राजकुमारी थी। भरतजीका जन्म इसके उदरमे हुआ। यह जैसी रूप लावण्यमें सुंदर थी वैसीही बुद्धिमती थी। अन्यरानियोंका अपक्षा राजाकी इसपर कुछ विशष कृपा थी। एकसमय रणभूमिमें रथका पहिया निकलनेसे रोक कर इसने निजपातिकी प्राणरक्षा की थी। जिसके पुरस्कारमें दशरथजीने इसको कोईसे दोवचन मांगनेकी आज्ञा दीथी और इसने कहदिया था किसी और अवसरपर देखा जायगा। वृद्धहोकर जब दशरथजीने रामचन्द्रजीको युवराज नियत करना चाहा तब इसने मंथरादासीके वहकानेमें आकर राजासे उपरोक्त दोनों वचन इस तरह पूरे करनेकी हठ की कि भरतको युवराज और रामचंद्रको बनवास दिया जाय। राजा सत्यप्रतिज्ञ था। उसने रामवियोगमें प्राणत्यागना स्वीकार किया, पर वचन न तोड़ा।

कैनिङ्ग (लार्डजार्ज कैनिङ्ग)–(१८१२–१८६२)स. ई. १८५६ में लार्डडलहौसीके पश्चात् हिन्दोस्तानमें गवर्नर जनरल होकर आये। सन ५७ का गदर इन्हींके शासनकालमें हुआ। स. ई. १७५८ में इंग्लैंडको लौट गये और अर्ल की पदवी पाई। गदरकी चिन्ताके कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। ४ वर्ष और जीकर स. ई. १८६२ में परम धामको सिधारे। इन्होंने अपने भरसक विद्रोहियोंके साथ दयाका व्यवहार किया।

कैय्यट पंडित (भाष्यप्रदीपके कर्ता) कश्मीरवासी जैय्यट उपाध्यायके पुत्र थे। विद्या इन्होंने अपने बड़े भाई मम्मटसे पढी थी। यजुर्वेदभाष्यकार पं० औवट भी इनके सहोदर थे। वि० सं० की ११ वीं शताब्दीके अन्तमें तथा १२ वीं शताब्दीके आरंभमें हुये। व्याकरण महाभाष्यपर भाष्यप्रदीप नामक व्याख्या इनकी बनाई हुई है।

कोण्डभट्ट (संस्कृत वैयाकरणी) महाराष्ट्र ब्राह्मण। काशीवासी थे। इनका समय भट्टोजीदीक्षितके पीछे है क्योंकि इन्होंने भट्टोजी दीक्षितकृतकारिका "वैय्याकरणभूषण सार"नाम ग्रन्थपर टीका रची है। बीस और ग्रन्थ भी इनके बनाये हैं जो कोण्डविंशति कहलाते हैं। न्यायशास्त्रपर भी एक बृहत् ग्रंथ "पदार्थदीपिका" इन्हींका बनाया हुआ मिलता है।

कोलम्बस (Christopher Columbus). पांच सौ वर्ष पहिले पृथ्वीके पूर्वीगोलार्द्ध अर्थात् एशिया, यूरुप, अफरीकाके रहनेवाले यह नहीं जानते थे कि अटलांटिक महासागरके दूसरी ओर भी दुनिया है । इस बस्तीको सबसे पहिले कोलम्बसने ढूंढा और इसीसे इसको नई दुनिया कहते हैं । कोलम्बस इटली देशके जेनोआ नगरका रहनेवाला था। इसका बाप कंगाल था इस लिये लड़कपनमें इसको ठीक शिक्षा नहीं मिली । कुछ तरुण होकर कोलम्बस पैरिसमें आया और वहां उसने लैटिन भाषा, गणित तथा भूगोल और खगोल विद्या सीखी । पढ़ना छोड़नेके बाद मल्लाहीका काम सीखा और धीरे २ एक जहाजका मालिक हो गया । स० ई० १४७० में पुर्तगालकी राजधानी लिसबनमें आया और अपना विवाह इटेली निवासी एक जहाजके कमांडरकी लड़कीसे किया । उन दिनों यूरुपके लोगोंको हिंदोस्तानका ठीक पता नहीं मालूम था, केवल अनुमान करते थे कि हिंदोस्तान अटलांटिक महासागरसे पश्चिममें है । निदान कोलम्बसने कई बादशाहोंसे प्रार्थना की कि मुझे अपनी ओरसे हिंदोस्तानका पता लगानेके लिये भेजिये । उस समय स्पेन और यूरोपमें युद्ध चल रहा था, अतः बादशाहने टालमटोल कर दी, इसपर यह फ्रांस दरबारमें गया, वहां भी कुछ संतोषजनक उत्तर न मिला । अन्तमें इसके कुछ मित्रोंने उद्योग करके स्पेनकी रानीके पास भिजवाया । रानीने कह सुनकर बादशाहको तय्यार किया । कोलम्बसने शर्तें रक्खीं कि, वह समुद्रका एडमिरल होगा, नये देशोंका वायसराय होगा, और मिले हुए धनके दशमांशका स्वामी होगा । बहुत कुछ वाद विवादके पश्चात् यह स्वीकार कर लिया गया और कोलम्बसके अधीन ३ जहाज दिये गये । ३ अगस्त १४९२ को जहाज चल पड़े और दो महीने दस दिन चलनेके बाद इन्हें एक टापू दिखाई पड़ा । कोलम्बस सुन्दर वस्त्र पहनकर उतरा और उसे स्पेनका बादशाहका टापू विघोषित किया । फिर तो उसे नित्य नये टापू मिलने लगे । इन टापुओंसे छः मनुष्योंको साथ लेकर कोलम्बस स० ई० १४९३ में स्पेनको लौटा और बादशाहने उसका बड़ा आदर किया । इस प्रकार कोलम्बसने २ दफे यात्रा और की और बहुतसे टापू ढूंढे । स० ई० १४९८ में तीसरीबार गया और एक टापूमें पहुंचा जहां लोग लड़भिड़ रहे थे । कोलम्बसने उनमें मेल मिलाप कराया, परंतु वहांके कुछ लोगोंने बादशाह स्पेनके पास निवे-

दन पत्र भेजा जिसमें कोलम्बसकी अत्यंत निन्दा की और उसपर अनेक झूंठे दोष लगाये। इसको पढ़कर बादशाहने क्रोधमें आकर कोलम्बसको पदहीन किया और उसकी जगह दूसरा आदमी भेजकर हुक्म दिया कि कोलम्बसके पैरोंमें बेड़ी डालकर हमारे पास भेजदो। बादशाहने कोलम्बसका मुख देखतेही उसे छुड़वा दिया और बहुत कुछ इनाम दिया, पर कोलम्बसने उन बेड़ियोंको सावधानीसे अपने पास रख लिया और मरनेसे पहिले आज्ञा दी कि इनको मेरे साथ गाड़ देना। इसने स० ई० १५०४ में चौथी बार यात्रा की और स०ई० १५०६ में परलोकको सिधारा। कोलम्बसके ढूंढे द्वीप अब वेस्टइन्डीज़ और दक्षिणी अमेरिका कहलाते हैं। कोलम्बस इन देशोंको हिंदुस्तानका भाग समझता था और उसके समयतक कोई दूसराभी नहीं जानता था कि वे हिंदोस्तानके भाग नहीं हैं।

कौलादेवी–गुजरातके राजा रायकरणकी परमसुंदरी रानी थी। स. ई. १२४७ में अलाउद्दीन खिलजीने गुजरात विजय किया। इसी मारकेमें कौलादेवी उसके हाथ पड़ी जिसको उसने अपनी स्त्री बना लिया। देवलदेवी इसीकी प्रसिद्ध सुंदरी बेटी थी जो स. ई. १३०६ में गुजरातसे पकड़कर आई और अलाउद्दीनके गुलाम मलिक काफूरको विवाही गई।

कौशल्या–(महाराज रामचंद्रकी परम पूज्यमाता) इनके चरित्रोंमें धर्म और धीरजका पालन जो राम सरीखे पुत्रको बनजाते समय इन्होंने किया प्रधान है। ये उत्तर कौशलके राजा रविमंतकी पुत्री थीं। रविमन्तने अपना राज्य दशरथजीको दहेजमें दिया था।

कृष्ण–(अवतार) यदुवंशी वसुदेवके घर मथुरामें भा० कृ० ८ को देवकीके उदरसे अबसे ५ हजार पहिले अवतरे थे। बाबा नन्द तथा यशोदा रानीने आपका पालन पोषण गोकुलमें रहकर किया। आपके ईश्वरत्वका आभास अनेक अलौकिक क्रियाकलापद्वारा बचपनहीसे प्रगट होने लगा था जिसका वृत्तांत भागवतादि पुराणोंमें वर्णित है। बचपनके खेलोंमें आपने अनेक ऐसे कार्य किये जो बड़े २ शूरवीरोंसे भी होना असम्भव है। बड़े होकर आपने अपने मामा मथुराके अन्याई राजा कंसको वध किया और अपने नाना उग्रसेनको गद्दीपर बैठाया। मगधके राजा जरासन्धने अपने जामात कंसका बदला लेनेके लिये श्रीकृष्णजीपर मथुरामें चढाई की, पर परास्त होकर मारा गया। एक समय

अत्यन्त वृष्टि हुई जिससे सब मकान बह गये। तब आपने गोवर्धन पर्वत एक उंगलीपर उठाकर उसके तले ब्रजवासियोंको शरण देकर उनके प्राणोंकी रक्षा की और गिरिवरधारी नाम पाया। कौरवों तथा पांडवोंसे आपकी रिश्तेदारी थी। महाभारतकी लडाईमें आपने पांडवोंकी सहायता की और आपहीकी राजनीतिके प्रभावसे पांडव लोग कौरवोंकी वीर सेनासे जीतनेमें समर्थ हुये। भगवद्गीताका उपदेश इसी युद्धके अवसर पर आपने अर्जुनके प्रति किया था। फिर आप द्वारिकाको चले गये और वहीं बस रहे। यादवोंमें अन्तमें फूट पड़ गई जिससे वे सब आपसमें कट मरे। जब आप द्वारिकामें रहते थे तब सुदामा नामक एक दीन ब्राह्मण, जो बाल्यावस्थामें आपका सहपाठी था, दरिद्रतासे दुःखी हो आपके पास पहुँचा। उसको आपने निहाल कर दिया। अन्तसमय श्रीकृष्ण भगवानके पैरमें एक शिकारीका तीर लगा और परम धामको सिधारे। अर्जुनने अंत्येष्टी क्रिया की। अवतारोंमें आप पूर्ण कलाओंके साथ अवतरित हुये थे। आपने एक बार अकेले समस्त भारतवर्ष, फ़ारस, अफ़गानिस्तान, चीन, मध्य एशियाके राजोंको जीतकर अपना मांडलिक बनाया।

कृष्णाकुमारी—राना भीमसिंहदेव उदयपुराधीशकी कन्या स० ई० १७९२ में पैदा हुई अत्यन्त रूपवती और सुलक्षिणी थी। पहले कृष्णाकुमारीका विवाह जोधपुरके राजाके साथ ठहरा था, परन्तु विवाह होनेसे पहिलही राजाका देहांत होगया। निदान जयपुरके महाराजने उसके साथ विवाहके संदेसे भेजे। तिलक चढनेकी तैय्यारी ही थी कि महाराज मानसिंहने जोधपुरकी गद्दीपर बैठकर रानासे कहिला भेजा कि कृष्णाकुमारी पहिले हमारे भाईको ठहरी थी, अब हम उनकी जगह हैं इसलिये उसकी शादी हमसे होनी चाहिये। रानावंश पदवीमें और सब राजोंसे बड़ा माना जाता था, पर समयके हेर फरसे उस वक्त इनके सामना करनेका बल पौरुष नहीं रखता था। दोनों राजाओंने अपनी सेना तथा पिंडारी इत्यादि अनेक लुटेरोंसहित रानाके राज्यमें जाकर लूट मार मचादी थी। राना बडी दुविधामें था कि किस तरह पत बचे। निदान कृष्णाकुमारीको मारनेका निश्चय किया गया। पर जब कन्याके मारनेके लिये किसीका हाथ न उठा तब विष देनेका विचार हुआ। कई दफा विषका प्याला पीनेके बाद वह निरपराधिनी कन्या सदैवके लिये सोगई।

कृष्णदास-(भाषाकवि-अष्टछाप) श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य थे। व्रजके ८ सुप्रसिद्ध भाषाकवियोंमें इनकी गणना है। चौरासी वैष्णवोंकी वार्ताके लेखानुसार ये वर्णके शूद्र थे। वल्लभाचार्यने श्रीनाथजीकी सेवा गोवर्धनके शिखरपर पधराकर वहांका प्रधान अधिकारी इन्हींको नियुक्त किया था। इनसे और गंगाबाई खत्रानीमें जो कवितामें अपनी छाप विट्ठल गिर्धरिन रखती थी स्नेह था, । इसपर वल्लभाचार्यजीके पुत्र गो० विट्ठलनाथजीने कुछ असन्तोष प्रकाश किया। कृष्णदासने इस बात पर चिढ़कर गोसाईजीकी श्रीजीद्वारमें डयोढ़ी बन्द करदी। गोसाईंजी ६ महीनेतक गोवर्धनके तले परसोली ग्राममें पड़े रहे। राजा बीरबलने यह समाचार सुनकर कृष्णदासको कैद कर दिया। गोसांईजीने यह खबर पातेही अन्न जल छोड़ दिया और हाय हाय करके कहने लगे "पिताके शिष्यको यह कष्ट!" बीरबलको जब यह मालूम हुआ तब उन्होंने कृष्णदासको कैदसे छुडाकर गोसांईजीके पास भेजदिया। गोसाईंजी उनको आता सुन आगे बढकर मिले। कृष्णदासजी उनके चरणों पर गिरपड़े। गोसाईंजीने फिर उनको श्रीनाथजीके मंदिरका प्रधान अधिकारी नियत किया अन्तमें कृष्णदासजी एक कूपमें गिरकर मरे। ये बड़े भक्त थे। भक्तिभावकी इनकी अनेक कथानकें भक्तमालादि ग्रंथोंमें हैं। निम्नस्थ ग्रन्थ इन्हींके रचे हैं:-गुरुधनचारित्र, पञ्चाध्याई, रुक्मिणीमंगल और प्रेमरसराज।

कृष्णदैवज्ञ (ज्योतिषकार) ये काशीवासी बल्लालजीके पुत्र दक्षिणी ब्राह्मण थे और दिल्लीके बादशाह जहांगीरके दर्बारके प्रधान पंडित थे। निम्नस्थ ज्योतिष ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:-भास्करीय बीजगणित टीका, नवांकुरा, श्रीपति पद्धतिटीका और छादकनिर्णय।

कृष्णानन्दव्यासदेव (राग सागरोद्भव राग संग्रहकार) बंगालके कल्पद्रुमके रहनेवाले ब्राह्मण कवीश्वर थे इन्होंने रागसागरोद्भवमें सूरदास, तुलसीदास, कृष्णदास, हरीदास, अग्रदास, तानसेन, मीराबाई, हितहरवंश, विट्ठलनाथ, कुम्भनदास इत्यादि प्राय: दोसो वैष्णव कवियोंके पद संग्रह किये हैं। यह ग्रन्थ कभी कलकत्तेमें छपा था और १०० रु० में बिकता था, अब नहीं मिलता। वि. सं. १९०० में यह ग्रन्थ संपूर्ण हुआ। डा० राजेंद्र लालमित्र लिखते हैं कि कृष्णानन्दव्यास संगीत विद्यामें निपुण थे और हरवक्त मन्दस्वरसे गाते रहते थे, लेकिन गानेबजानेका पेशा नहीं करते थे।

खटाङ्गदलीप–अयोध्याके सूर्य्यवंशी राजा भागीरथका पुत्र-था । एक समय देव और दानवोंकी लड़ाईमें इसने देवताओंकी सहायता की । देवताओंने इसकी वीरतासे प्रसन्न होकर कहा "वर माँग" । इसने कहा कि मुझे यह मालूम होजाय कि मेरी आयु कितनी है । यह सुन कर देवताओंने तपोबलसे विचारकर कहा "तेरी अवस्थामें एक दिन शेष है" । राजाने तुरन्त एकाग्रचित्त होकर तपस्या करना आरम्भ किया और मोक्ष पाई ।

खड्गसिंह–पंजाबकेशरी महाराजा रणजीतसिंहका ज्येष्ठ पुत्र स.ई. १८३९ में निज पिताके देहांत होनेपर पंजाबकी गद्दीपर बैठा । खड्गसिंहका मन वज़ीर ध्यानसिंहकी तरफसे अनेक कारणोंसे महाराज रणजीतसिंहके जीतेजी ही बिगड़ गया था । उसने गद्दीपर बैठते ही ध्यानसिंहका महिलोंके अन्दर जाना बंद कर दिया । इस बातसे नाराज़ होकर ध्यानसिंहने सिक्खोंमें यह झूंठी अफवाह उड़ा दी कि, खड्गसिंह अंग्रेजोंको पंजाबमें लाकर दसन्नी, छः अन्नी मुकर्रर किया चाहता है । इस बातको सुनकर सब सिक्ख लोग खड्गसिंहकी तरफसे फिर गये । पश्चात् ध्यानसिंहने छिपे २ खड्गसिंहके पुत्र कुँवर नौनिहालसिंहको पेशावरसे बुलाया और उसको ऐसा सिखाया पढाया कि, उसने अपने बाप खड्गसिंहको कैद कर लिया और राजकाज खुद करने लगा । इसी अर्सेमें खड्गसिंह बीमार पड़ा और विरुद्ध दवा मिलनेसे जल्द मर गया । कहते हैं कि वज़ीर ध्यानसिंहने बाप बेटेके दिल इस कदर तोड दिये थे कि नौनिहालसिंह मरते वक्त भी अपने बापके पास नहीं गया । लेकिन खड्गसिंहकी लाश जलनेसे पेश्तर नौनिहालसिंह पर एक दरवाज़ा टूटकर गिरा जिससे वह भी मर गया ।

खफ़ीखाँ–(इतिहासकार) मुग़लराज्यके उत्तरार्द्धकी एक विश्वासयोग्य तवारीख़ इसने फारसीमें लिखी है । बादशाह औरङ्गज़ेबका हुक्म था कि मेरे समयकी कोई तवारीख़ न लिखी जावे । पर मीरमुहम्मदने औरंगजेबके समयके अन्तमें स. ई. १७०० के लगभग छिपे छिपे एक तवारीख लिखी और इसी लिये "खफीखां" लक़ब पाया ।

खुमान–(भाषाकवि) ये चरखारी बुन्देलखण्डके वासी भाट जन्मांध होनेके कारण कुछ लिखे पढ़े न थे । दैवयोगसे इनके घर कोई महापुरुष संन्यासी आये

और ४ महीनेतक ठहरे। चलते समय अनेक लोग उनको बिदा करनेके लिय कुछ दूर जाकर लौट आये, पर खुमान साथ ही चले गये। यह संन्यासीके समझानेपर भी न लौटे और कहने लगे—"महाराज हम अन्धे अपढ, निकम्मे घरके किसी कामके नहीं हैं इस लिये आपहीकी सेवामें रहेंगे।" संन्यासीने यह सुन खुमानकी जिह्वापर सरस्वतीमंत्र लिख दिया और कहा कि, हमारे कमंडलुकी प्रशंसामें कबित्त बनाओ। खुमानने शीघ्रही २५ कवित्त कमंडलु पर बनाये और संन्यासीके चरण छूकर घर आये और संस्कृत तथा भाषा कविता करने लगे। पश्चात् महाराजा सेंधियाके दरबारमें ग्वालियर गये। सेंधियाने रातभरमें एक संस्कृत ग्रन्थ बनानेकी आज्ञा दी। इन्होंने रात्रिभरमें ७०० श्लोक बनाये। लक्ष्मणशतक और हनुमन नखशिख इनके रचे ग्रंथ हैं। सं. वि. १७४० में विद्यमान थे। अमरकोषका भाषा छन्दोंमें उल्था करनेवाले खुमान कोई दूसरे थे।

गणेश (ज्योतिषकार) भारद्वाजगोत्री गुर्जरब्राह्मण गोपालके पुत्र थे। इनके दादे कान्हजी गुजरातके राजाकी सभामें कवीश्वर थे। इन्होंने ३५ वर्षकी अवस्थामें "जातकालङ्कार" नाम ज्योतिषग्रन्थ बनाया। इनका जन्म शाके १५०० में हुआ।

गणेशदैवज्ञ (ज्योतिषकार) वि० सं० की १६ वीं शताब्दीमें हुए। पश्चिम समुद्रतीरवर्ती नन्दीग्रामनिवासी पं० केशवके पुत्र थे। माताका नाम लक्ष्मी था। निम्नस्थ ग्रंथ इनके बनाये हैं:—ग्रहलाघव (१४ वर्षकी उम्रमें बनाया), लघुतिथिचिन्तामणि, वृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धांतशिरोमणिटीका, विवाहवृंदावनटीका, मुहूर्ततत्त्वटीका, श्राद्धनिर्णय, सुधीरञ्जनतर्जनीयंत्र, कृष्णाष्टमीनिर्णय, होलिकानिर्णय, लीलावतीटीका और छन्दार्णवटीका। गणेशदैवज्ञको इस देशके लोग गणेशजीका अवतार मानते थे।

गदाधर (नैयायिक पण्डित) वि० सं० की १७ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें वङ्ग देशमें हुये। रघुनाथ शिरोमणि रचित "दीधित" ग्रन्थपर इन्होंने गदाधरी, व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद इत्यादि ६४ वाद ग्रन्थ रचे हैं। रसकुसुमाञ्जलि और बौद्धाधिकारकी व्याख्या तथा अनेक और ग्रंथभी इनके बनाये मिलते हैं। इनकी विलक्षण बुद्धिको वेही जानसकते हैं जिन्होंने इनके गदाधरी आदि पूर्वोक्त ग्रंथोंको देखा है।

गर्गपुरोहित—वास्तवमें क्षत्रियकुलोत्पन्न थे परंतु अपने शुभ आचरणोंके कारण ब्राह्मण हो गये। इनके वंशज गार्गेय कहलाये और उनकी गणना ब्राह्मणोंमे हुई। इनके पिताका नाम रितथ था। गर्गसंहिता नाम ग्रंथ इनका बनाया हुआ है। ये श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियोंके पुरोहित थे।

गणेशशंकर विद्यार्थी—आप १९३१ के कानपुरके दंगेमें मुसल्मान आततायियों द्वारा, स्वयं उन्हींके धर्मावलम्बियोंको हिन्दुओंके मुहल्लेसे लाकर मुसलमानोंकी बस्तीमें पहुँचाते हुये, मारे गये। आप मज़दूर आन्दोलनके प्राण थे और युक्त प्रान्तके राष्ट्रीय जीवनको आपकी हत्यासे महती क्षति पहुँची। आपकी लाश एक जले हुये मकानसे ४–५ दिन बाद निकली। एक हाथ और एक टांग कटी हुई थी और सिर और कलेजा भालोंसे चलनी थे। साबुत हाथ पर आपका नाम खुदा हुआ था, उसीसे आप पहचाने गये। कानपुरका 'प्रताप' पत्र आप हीकी सृजना है। जिस समय आपकी मृत्युका समाचार पहुँचा तो करांची कांग्रेस होरही थी। पं० जवाहरलाल नेहरू तार पढ़ते पढ़ते फुक्का फाड़कर रो पड़े। आप कानपुरकी जनताके इतने प्रिय थे कि १९२६ के मोतीलाल–लालाजीके निर्वाचन संघर्षमें आपके विरुद्ध एक धनी सेठके खड़े होने पर भी आप बहुमतसे युक्त प्रान्तीय कौंसिलमें चुने गये। आप जातिके श्री वास्तव कायस्थ थे और हिन्दी साहित्य सम्मेलन और युक्त प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्सके सभापति भी रह चुके थे। आपने हिन्दीमें पत्र कलाका जो विकास किया वह चिरस्थायी रहेगा अपने जीवनमें कई बार जेल गये और अन्तमें हिन्दू मुस्लिम ऐक्यके आदर्श पर अपना जी होम दिया।

गलीलियो—(Galileo) इटेली निवासी एक अनुभवशील ज्योतिषी। दूर-दर्शक यन्त्र, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र, तथा थर्मामेटर (गर्मी नापनेका यन्त्र) पहिले पहिल इसीने बनाया। २५ वर्षके उम्रमें गलीलियो शहर पिसाके कालिजमें गणित अध्यापक हुआ, फिर नौकरी छोड़ दी। खगोल तथा ज्योतिष विद्यामें इसकी बड़ी रुचि थी, रातभर नक्षत्रोंको देखता रहता था। स० ई० १६१४ में इसने बृहस्पति ग्रहको पहिचाना और यह भी प्रकट किया कि पृथ्वी सूर्यके चारों तरफ घूमती है। निजकृत दूरदर्शक यन्त्रके सहारेसे इसने बृहस्पतिके आस

पास ४ चन्द्रमा देखे और यह भी जाना कि चन्द्रमाकी तरह शुक्र भी रूप बदलता है, और कि आकाशगंगामें बहुत छोटे छोटे नक्षत्र हैं। अपने इन सब सिद्धान्तोंको गलीलियोने पुस्तकाकार करके छपवाया। पादरियोंने पृथ्वीके घूमनेका अपने धर्मके विपरीत समझकर, मिथ्यामत फैलानेका इसको दोषी ठहराया और ७० वर्षकी उम्रमें इसको कैद करा दिया। परन्तु १ वर्ष पीछे टस्कनीके राजाके कहनेसे छोड़ दिया गया। इसी मानहानिके शोचमें ७८ वर्षकी उम्रमें अन्धा होकर मर गया। ज्यों ज्यों विद्या और कलोंका प्रचार बढ़ता गया विचारशील विद्वानोंने इसके अनुभवों और सिद्धान्तोंको जो इसके समयमें झूंठे और धर्म विरुद्ध समझे जाते थे सच्चा पाया।

गांधारी–(कौरवोंकी माता). कन्धारके राजा सुबलकी पुत्री थी। इसका विवाह चन्द्रवन्शी महाराज धृतराष्ट्रके साथ हुआ था। इसके पेटसे १ कन्या और १००पुत्र जो कौरव कहलाते थे, पैदा हुये। यह बड़ी पतिव्रता थी, अपनी आंखोंमें सदैव पट्टी बांधे रहती थी, क्योंकि पति अन्धा था और यह पतिसे बढ़कर किसी बातमें नहीं होना चाहती थी। महाभारतकी लड़ाईके बाद जिसमें इसके सब पुत्र मारे गये तपस्या करनेके लिये पतिके साथ बनको चली गई और वहां आग लगनेसे पतिसहित जलकर मर गई।

गिरिधर कविराय–जयपुरनरेश जयसिंह सवाईकी सभामें थे। जातिके भाट थे। महाराज जयसिंहने इनकी बुद्धिका चमत्कार देखकर इन्हें कविरायकी उपाधि दी थी। इनकी नीति सामयिक कुण्डलियें विख्यात हैं। प्राचीन मनुष्योंका कथन है कि, जिसको इनकी १०० कुण्डलियें याद हों उसको मन्त्रीसे उपदेश लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती। इन्होंने कुंडलियोंका एक ग्रंथ लिखना आरंभ किया था पर समाप्तिसे पूर्वही इनका देहांत होगया। बादको इनकी स्त्रीने उस ग्रंथको पूरा किया। जिन कुंडलियोंमें सांई शब्द पडा है, वे इनकी स्त्रीकी कही हुई हैं। यह स० ई० १७१३ में विद्यमान थे.

गुणाढ्य–इन्होंने पिशाची भाषामें बृहत्कथा नाम ग्रंथ लिखकर दाक्षिणदेशवर्ती प्रतिष्ठानपुरके राजा सत्यवाहनकी भेंट किया था। बृहत्कथाका संक्षेप सोमदेवने संस्कृतमें प्रायः स० ई० ११२५ में किया और "कथासारित्सागर" नाम रक्खा

गुमानमिश्र–(भाषाकवि) भाषा साहित्यमें निपुण और संस्कृतविद्यामें प्रवीण थे। इन्होंने काव्य मिश्र सर्वसुखसे पढा था। प्रथम दिल्लीमें बादशाह मुहम्मदशाहके दर्बारमें (स. ई. १७१९–४८) राजा जुगलकिशोर भट्टके पास रहे। फिर मुहम्मदीनरेश राजा अलीअकबरखाँके पास गये और उनकी आज्ञासे श्रीहर्षकृत नैषध काव्यको श्लोक प्रति भाषा छन्दबद्ध करके "काव्यकलानिधि" नाम ग्रंथ रचा, और पंचनलीको भी जो नैषधकाव्यमें कठिन स्थल है सरल करदिया। इस ग्रंथके देखनेसे गुमानमिश्रका पांडित्य विदित होता है। "कृष्णचन्द्रिका" नाम ग्रंथ भी इन्हींने ही वि० सं० १७८८ में बनाया। जिला हरदोईके किसी गाँवके रहनेवाले थे।

गुरुदत्त (पं. गुरुदत्त विद्यार्थी एम. ए.) इनके पिता मु० रामकृष्ण,पंजाबके रहनेवाले मिडिल स्कूल झंगमें ६०) मासिकपर शिक्षक थे। गुरुदत्तने गवर्नमेंट कालेज लाहौरसे स० ई० १८८७ में एम्. ए. का इम्तिहान पास किया। बी. ए. और एफ्. ए. के इम्तिहानोंमें यूनीवर्सिटी भरमें अव्वल आये। थोड़े दिनके लिये इन्होंने गवर्नमेंट कालेज लाहौरमें विज्ञानके असिस्टेन्ट प्रोफेसर तथा प्रोफेसरके पदपर काम किया। फिर इन्होंने "वैदिक मैगाज़ीन" नामक एक पत्रिका निकाली जिसको सर्वमान्य और परम उपयोगी बनानेके लिये इन्होंने वेद, उपनिषद और अनेक धर्मशास्त्र ग्रंथ थोड़े ही कालमें घोर परिश्रमकरके पढ़ लिये। ये शुरुहीसे गणितशास्त्रमें ऐसे तीव्र थे कि बड़े बड़े सवाल ज़ुबानी हल कर लिया करते थे और सैकड़ों नाम बिना किसी क्रमके सुनकर फिर सुना दिया करते थे। बुरी संगतिसे बचते थे और बेहूदा बातचीत कभी नहीं करते थे। मांसभक्षणका निषेध करते, पुष्टिदायक भोजन खाते, और कसरत किया करते थे। प्रथम कन्हैयालाल अलखधारीकी किताबें पढ़कर नास्तिक होगये थे, पश्चात् आर्य्यसमाज लाहौरमें दाखिल होकर इनके ख़याल बदल गये थे। दयानन्द ऐङ्गलोवैदिक कालेज लाहौरका चंदा उघाने तथा सामाजिक उपदेश देनेमें इन्होंने बड़ा परिश्रम किया था। बहुत दिन बीमार रहनेके बाद २६ वर्षकी उम्रमें स० ई० १८९० में यह होनहार पुरुष कालके गालमें चला गया। योगाभ्यास भी सीखा था, पर नियमानुसार न होनेसे फलीभूत न हुआ। लाहोरमें रावी रोडपर इनका स्मारक भवन 'गुरुदत्त

भवन' के नामसे प्रसिद्ध है । इन्होंने डी० ए० वी० कालेजकी स्थापनामें लाला-लाजपतराजका बहुत हाथ बटाया था ।

गुलाबसिंह–(महाराजा काश्मीर व जम्बू) राजा ध्रुवदेवके प्रपौत्र तथा मियां जोरावर सिंहके पौत्र थे । इनके पूर्वज जम्बूके राजा थे पर समयके हेरफेरसे राज्य जाता रहा था । गुलाबसिंह पहिलेपहल खालसा फौजमें बतौर सिपाहीके भरती हुये, पर निज योग्यताके कारण बढते बढते महाराज रणजीतसिंहके दर्बारमें उच्चपदको प्राप्त हुये । उक्त महाराजके पश्चात् जब सिक्खोंकी फौज और ब्रिटिश गवर्नमेंटमें लडाई छिड़ी तब फौजने गुलाबसिंहको अपना मंत्री बनाया । लडाईके बाद ब्रिटिश गवर्नमेंटसे सन्धि हुई जिसके अनुसार काश्मीर तथा जम्बूका राज्य गुलाबसिंहको मिला । स० ई० १८५७ में महाराज गुलाबसिंहने ब्रिटिश गवर्नमेंटकी मदद की और उसी साल अगस्तके महीनेमें परलोकको सिधारे । महाराज रणवीरसिंह उनके पुत्र गद्दीपर बैठे । उनके भतीजे महाराजा हरिसिंह गद्दीपर बैठे ।

गेटे जॉन वॉलफंगवान–(१७४९–१८३२) जर्मन कवि, नाटयकार और दार्शनिक । फ्रेंकफुर्ट में उत्पन्न हुआ । इसने मातासे कल्पना शक्ति और कोमलता पाई और पितासे वास्तविकता और लगन । यह आरम्भमें कविता भी रचता रहा और कानून भी पढता रहा । २२ वर्षकी आयुमें इसने कानूनकी डिगरी ली और मुकदमे लेने आरम्भ किय पर इसमें इसका जी न लगा और इसका अधिक झुकाव कवित्व और कल्पनाकी ओर होरहा । इस अवधिमें इसन कई ग्रन्थ लिख डाले थे जिससे इसकी इतनी प्रख्याति हुई कि १७७५ में वीमरके राजकुमारने इसे अपने वहां बुलाया । बस इसकी आयु यहीं समाप्त हुई । इसे राज्यसम्बन्धी अनेक कार्य्य दिये गये जिन्हें इसने योग्यताके साथ निबाहा । एक बार यह चुपचाप इटलीको चल खड़ा हुआ और वहां इसने जीवन सम्बन्धी नये तथ्य निर्धारित किये । वीमर वापस आया । उस समयभी देश इसकी एक कृतिसे गूंजरहा था, पर अब इसका दृष्टिकोण ही दूसरा होगया था । यह कुछ असंयत चरित्रका भी था और इसने १७८४ में एक युवतीको रखेली बना लिया । इसपर दरबारमें इसकी चर्चा हुई पर इसने कोई चिन्ता न की । इससे इस

एकपुत्र हुआ । गेटेकी सर्व्वोत्कृष्ट कृति फास्ट है जिसका समस्त पाश्चात्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । इसके अनेक दर्शन ग्रन्थ भी हैं ।

गोपालचन्द्र—(भाषाकवि) वर्णके अग्रवाल वैश्य । काशीवासी । काले हर्षचंद्रके पुत्र । वि.सं. १८९६ में जन्मे । सुप्रसिद्ध बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु इनके पुत्र थे । गिरिधरबनारसी नामसे इन्होंने पदपूर्ति की है । दशावतारकथामृत, भारतीभूषण, विदुरनीति इत्यादि इन्होंने भाषापद्यमें लिखी हैं । कहा जाता है कि इन्होंने भी मेघपर काव्य ग्रन्थ लिखे, पर वे अप्राप्त हैं ।

गोपीचन्द—(गौड़देश बङ्गालका राजा) महाराज त्रिलोकचन्द्रका पुत्र रानी मैनावतीके उदरसे था । महाराज विक्रमादित्य सकारी तथा भर्तृहरि इसके मामा थे । प्रसिद्ध योगीराज गुरु जलंधरसे इसने योगका उपदेश लिया । यह राजपाट छोड़ योगी होगया था और विरक्त हो बनको चला गया था । मांता मैनावतीने इसके वियोगमें देह त्याग दी ।

गोविन्ददास स्वामी—(अष्टछाप) ये सनाढ्य ब्राह्मण आन्तरीसे महावनमें आरहे थे, पहिले स्वयं लोगोंको चेला करते थे फिर गोस्वामी विट्ठलनाथजीके शिष्य हो श्रीनाथजीकी सेवामें गोवर्धनपर रहने लगे । भक्ति सख्यभावसे करते थे । भाषाके सुकवि थे । इनकी अष्टछापमें गिनती है । वि.सं. १६५५ में विद्यमान थे ।

गोविन्दसिंह,गुरु—(१६६६–१७०७) गुरु तेजबहादुरके पुत्र, सिखोंके दसवें गुरु पटनामें उत्पन्न हुये । इनका मरण जीवन कष्टों और बलिदानोंका इतिहास है । यह अपने पिताके औरंगज़ेबके द्वारा मारे जानेके बादमें सिक्खोंको संगठित और योद्धा बनानेमें लगगये । इन्होंने पांच कक्कोंका निर्माण किया,अर्थात् केश,कंघा, कच्छ, कृपाण और कड़ा । यह सब सिक्खोंके लिये अनिर्वाया कर दिया । जाति भेद इन्होंने बिल्कुल उठा दिया । जब अस्पृश्य सिख दिल्लीसे पहरेमेंसे गुरु तेजबहादुरका शव उठा लाये तो इन्होंने उन्हें हृदयसे लगाकर कहा 'रंगरेटे गुरुके बेटे'। इन्होंने पंजप्यारोंकी प्रणालीके द्वारा सिक्खोंकी बलिदान परीक्षा ली । यह कहा करते थे " राज करेगा खालसा आकी रहे न कोय " । अर्थात् खालसा राज करेगा, कोई रुकावट डालनेवाली शक्ति न रहेगी । औरंगज़ेबने इस सैनिक सम्प्रदायको कुचलनेके अनेक प्रयत्न किये और गुरुजीको चैनमें न बैठने दिया । पर यह बराबर

लड़ते रहे। इनके दो छोटे पुत्रोंने खुशी खुशी दीवारमें चुना जाना मंज़ूरकर लिया पर मुसल्मान बनना मंजूर न किया। इनके दो बचे हुये पुत्र—१० और१२ वर्षके—चमकौरके क़िलेकी रक्षामें लड़ते लड़ते मर गये। अंतमें गुरुजी राजपूताना होते हुये दक्षिणकी ओर चले। मार्गमें बन्दा बहादुरसे भेट हुई। यह उदासीन साधु था.पर क्षत्रिय था। बन्दा बहादुरने गुरुकी कथा सुनी तो वह हिन्दू जातिका उद्धार करनेको पंजाब चल पड़ा। गुरुजी निज़ाम हैदराबादके राज्यमें चले गये—शायद मराठोंको अपनी ओर मिलानेके लिये। यहींपर इनके दो मुसल्मानदासोंने जिनके पिताको इन्होंने एक युद्धमें मार डाला था सोते समय उनके कलेजेमें छुरी भोंक दी। गुरुजीने तुरंत उठकर दोनोंको मार डाला। पर घाव संगीन था। गुरुजी अधिक दिनों तक जीवित न रहे। इनकी दक्षिणमें समाधि है। मरते समय यह आज्ञा दे गये थे:—

आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पंथ।
तब सिक्खनको हुकुम है, गुरुहि मानियो ग्रन्थ॥

तबसे सब सिक्ख गुरु ग्रन्थ साहब को ही अपना गुरु मानते हैं। गुरु गोविन्द सिंहजी भाषाके भी अच्छे कवि थे और गुरु ग्रन्थ साहबमें नानकजी और अन्य गुरुओंकी वाणीके अतिरिक्त आपकी वाणी भी मिलती है। आजकल इनके अनुयायी लगभग ४५ लाख हैं और इनके समान योद्धा भारतमें कोई नहीं है। सिख अपने आपको हिन्दुओंसे अलग मानते हैं,पर वास्तवमें इनके और हिंदुओंके आचार व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं है।

गोरखनाथ (गोरक्षनाथ)—यह योगशास्त्रके प्रसिद्ध सिद्ध हुये हैं। महाराज भर्तृहरी इन्हींके उपदेशसे योगी हुये, नागालोग इनके चेले हैं। गोरखपुर इन्हींका बसाया हुआ है और वहां इनका एक मन्दिर अभीतक विद्यमान है। ये गुरु जलंधरके शिष्य थे। तंत्रविद्याका सिद्ध इनके समान आजतक दूसरा नहीं हुआ। अनेक संस्कृतग्रंथ इन्होंने बनाये थे जिनमेंसे कामशास्त्र अबतक मिलता है। ९ नाथों तथा ८४ सिद्धोंमें इनकी गणना है।

गौतमऋषि—(न्यायदर्शनकार) इनका दूसरा नाम शतानन्द था। पितृमेधसूत्र तथा सामवेदके गृह्यसूत्र इन्होंने रचे थे और न्यायदर्शन शास्त्र भी इन्होंने

निर्माण किया था। इनका समय सांख्यदर्शनकार कपिलसे प्रायः २०० वर्ष पीछेका है। सामवेदीय धर्म सूत्रभी इनके कहे मिलते हैं। भूमण्डलपर यह सब से पहिले न्यायशास्त्रके आचार्य हुये।

गौतमबुद्ध–देखो बुद्ध.

गंगकवि–(भाषा कवि). ज़िला इटावाके रहनेवाले ब्राह्मण स० ई० १५९५ में जन्मे थे, पूरा नाम गंगाप्रसाद था। अकबरके दर्बारमें इनका बड़ा आदर सत्कार होता था। कविता करनेकी शक्ति दैवी थी। इनके बनाये पद अत्युत्तम होते थे। बादशाह अकबर, अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना तथा जयपुरनरेश मान-सिंहने इनको अनेक अवसरोंपर बहुत कुछ इनाम दे दे कर निहाल किया था। बीरबलने इनको छप्पयमें १ लाख रु० इनाम दिया था। अकबरके बाद जहांगीरने भी दिल्लीके तख्तपर बैठकर इनको कईदफ़े इनाम दिया था। पर एक बार इनसे अप्रसन्न होकर उसने इन्हें हाथीके पैर-तले कुचलवा डाला था। इनका कोई सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता।

गङ्गेशउपाध्याय(नैयायिक पण्डित) इन्होंने न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों-का सारांश लेकर चारभागोंमें चिन्तामणि ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थपर उत्तरोत्तर क्रमसे १० तिलक रचे गये हैं। गंगेशजी मैथिल ब्राह्मण थे।

ग्लेडस्टन–(विलियम ऐवार्ट, १८०९–१८९८) आक्सफ़र्डमें शिक्षा पाई। पिता इसे राजनीति विशारद बनाना चाहता था। अपनी युवावस्थामें यह इटली चला गया पर बादको वापस आया। १८३१ में पार्लिमेण्टमें पहुंचा। इसकी पहली स्पीच इतनी मार्केकी हुई कि तत्कालीन बादशाह विलियम चतुर्थने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। कुछही दिनोंमें यह अर्थ-उपसचिव बनाया गया। अभीतक यह अनुदार दलके साथ था; अब यह उदार दलकी ओर झुका। धीरे धीरे इसका सिक्का सारे देशपर फैल गया। यह चार दफ़ा प्रधान मन्त्री बनाया गया। इसने अपने तीसरे मन्त्रि-त्वमें आयर्लैण्डको स्वराज्य दिलानेकी योजना पेश की, पर विफल रहा और लार्ड सेलिसबरीकी विजय रही। फिर चौथे मन्त्रित्वमें इसने आयरिश बिल दुबारा पेश किया और अबकी बार यह पास होगया। डिस्राईलसे इसका वाद विवाद

अन्ततक चलता रहा। यह पूंजीवादका समर्थक था, पर उदार शासन चाहता था। इसने बैलग्रेड निवासियोंपर किये गये तुर्कोंके अत्याचारका घोर विरोध किया था और इंगलेण्डकी सारी जनता इसके पीछे हो ली थी। महारानी विक्टोरियाने इसे अर्ल बनाना चाहा, पर इसने नामंजूर कर दिया। अन्तिम समय तक इसकी आवाज़ गूँज उठती थी। यह मरनेसे चार साल पहले पार्लि-मेण्टसे अलग हुआ। इसकी रथीके साथ लगभग ढाई लाख आदमी गये थे। भारतका लिबरलदल इसीके लिबरलदलके नेतृत्वके अनुकरणपर बना था।

ग्वाल–(भाषा कवि). मथुराके रहनेवाले भाट स० ई० १८७९ में विद्य-मान थे, साहित्यमें निपुण थे। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:–

नखशिख, गोपीपचीसी, यमुनालहरी, साहित्यदूपण, साहित्यदर्पण, भक्ति-भाव, शृंगारदोहा, शृंगारकवित्त, हमीरहठ। इनके सिवाय दो ग्रन्थ इनके संगृहीत मिलते हैं।

घटकर्पर–यह विद्वान महाराज विक्रमादित्य हर्ष उज्जैनवालेके दर्बारके नव-रत्नोंमेंसे था। इसने एक ग्रंथ संस्कृत पद्यमें, जिसमें वर्षाऋतुका मनोहर वर्णन है; अपने नामसे रचा था। ये वर्णके ब्राह्मण थे।

चंगेज़ खां–(११६२–१२२७) मंगोल सम्राट्। एक मंगोल दलपतिका पुत्र। १३ वर्षकी आयुमें पिताके मरनेपर यह दलपति हुआ, पर इसके अनुयायी जाने लगे। इसपर इसने उन्हें रोका, पर उन्होंने उत्तर दिया:–'कभी कभी गहरे सेगहरा कुआं भी सूख जाता है, और कड़ेसे कड़ा पत्थर भी टूट जाता है'। इस पर चंगेज़खां की मांने बचे खुचे अनुयायी लेकर विश्वासघातकोंका सामना किया और लगभग आधे विश्वासघातक वापस आगये। चंगेज़ खांके शत्रु तीन दलोंमें थे, नैमन, करैत और मर्कित। इसने इनमेंसे एक न एक के साथ अन्ततक युद्ध जारी रक्खा और १२०६ में एक साम्राज्यका स्वामी होगया। अब उसका शत्रु नैमन दलपति पालो रह गया था। चंगेज़ खांने लड़ाईमें पोलोको मार डाला और उसका पुत्र कुश्लक भागकर मर्किट दलपति टाटोके साथ इरटिश दरिया की ओर चला गया। अब चंगेज़ने कीन तातारोंके चीन साम्राज्य पर हमला किया और कई क़िले लेनेके बाद १२०८ में कुश्लक और टाटोको हराया। टोटो मारा

गया और कुश्लक भागकर खीतन तातारोंकी शरणमें चला गया । अब उसने फिर उत्तरी चीन साम्राज्यपर धावा किया और धीरे धीरे पूरे लियोटंग प्रदेशपर अधिकार कर लिया । शत्रु सेनाके अनेक सेनापति इसीकी ओर आगये । अब इसने १२१३ में अपनी सेनाके तीन भाग किये और दो भागोंको अपने पुत्रों और भाइयोंको देकर दो दिशाओंमें भेजा और स्वयं मध्य भागके केन्द्रपर आक्रमण किया और लगभग सारे चीन साम्राज्यको रोंद डाला । इस आक्रमणके बाद कीन सम्राटने सुलह करनेके लिये चंगेज़ खांको राजवंशकी कन्या, ५०० गुलाम और ५०० लड़कियां भेंट कीं । चंगेज़ खां लौटने लगा, पर इसी समय कीनने अपनी राजधानी बदलाकर दूरस्थ प्रदेशमें रक्खी । चंगेज़ खांने सन्देह किया और वह फिर वापस लौट पड़ा। इधर कुशल्कने खीतन तातारके साथ विश्वासघात करके ख्वारिज्मके बादशाहसे मिलकर अपने आश्रयदाताको गद्दीसे उतार दिया । दोनोंने अब चंगेज़ खां से मोर्चा लिया, पर कुशल्क पकड़ा गया और उसकी नई सल्तनत मंगोल साम्राज्यमें मिला ली गई । ख्वारिज्म सल्तनत के बादशाह मुहम्मदसे व्यापारिक सुलह कर ली गई, पर मंगोल राज्यके व्यापारियोंके ख्वारिज्म सल्तनतमें मारे जानेपर अब चंगेज़ खांने अपनी सेनाको दो भागोंमें बांटा । मुहम्मदके चार लाख सिपाहियोंको घासकी तरह काट डाला गया और उसे समरकन्द भागना पड़ा । बुख़ारापर धावा किया गया और उसके सर करनेपर चंगेज़ ख़ांने मसजिदकी सीढियोंपर चढकर कहा 'घास काट लीगई अब घोड़ोंको खिलाओ' । बस लूट मार शुरू होगई। अन्तमें बुखाराको आग लगाकर समरकन्द और फिर बलख़ पर क़ब्ज़ा किया गया । आत्मसमर्पण करनेपर भी ये शहर लूटमारसे न बच सके । चंगेज़ खांने ७०००० सिपाहियों के साथ अपने एक पुत्रको खुरासान लूटने भेज दिया । मुहम्मद भागा भागा फिरा और अन्तमें रोगाक्रान्त होकर मर गया । अब नेज़ा, पर्व और निशापुर का नम्बर था । हेरातनगरने स्वयं फाटक खोलकर लूट मारसे बचाव किया । इसी समय चंगेज़ खांने अपने लड़केको यहांसे बुलवा भेजा और बदख़शांमें वह अपने पितासे जा मिला । दोनोंने मिलकर सिंधु नदीके किनारे जलालुद्दीन का सामना किया । जलालुद्दीन भागकर दिल्ली पहुंचा । चंगेज़ खां भी जाना चाहता था, पर इसी समय हेरातसे ख़बर आई कि वहांके शासकको उतार दिय

ाया है। ८०००० आदमी भेजे गये और छः महीनेके बाद हेरातपर कब्ज़ा किया गया। एक हफ्ते तक क़त्ले आम जारी था। कहा जाता है कि लगभग सोलह लाख आदमियोंको तलवारके धार उतार दिया गया। इधर चंगेज़ ख़ांने स्वयं पेशावर, लाहौर और मलिकपुरके सूबे लूटकर गज़नीका रास्ता पकड़ा। हेरातकी लूट मार समाप्त होनेके बाद चंगेज़ ख़ां मंगोलियाको लौट पड़ा। उसके एक लड़केने रूसी सरहदकी ओर कदम बढ़ाया और बलगेरियाको लूटा। रूसी सेनाको घासकी तरह काट डाला गया। अब चंगेज़ ख़ां उत्तरी और मध्य चीन का एकच्छत्र स्वामी था। अब चंगेज़ ख़ांने पश्चिमी चीन विजय करनेका ध्यान किया, पर इसी समय इसे पांच नक्षत्र दिखाई पड़े और अपने अशुभ दिन जान कर यह घरकी ओर मुड़ा, पर मार्गहीमें मर गया। मरनेसे पहले यह अपना उत्तराधिकारी अपने पुत्र ओगोटाईको बना गया। पर नये सम्राटकी घोषणा होने तक चंगेज़ ख़ांकी मृत्युकी बात गुप्त रखना इतना आवश्यक समझा गया कि घर तक जनाज़ा जाते हुये मार्गमें जितने आदमी दिखाई पड़े, सबको तलवारके घाट उतार दिया गया। इसकी मृत्युके बाद इसका विश्वव्यापी साम्राज्य छिन्न भिन्न होगया। पर यह केवल इसीके आक्रमणका फल था जो उसके डरमें भागकर उसमान वंशियोंने योरुपकी ओर मुंह उठाया और तुर्किस्तानपर विजय प्राप्त की और इस प्रकार योरुपके राष्ट्रमें इस्लामका राज्य कायम किया।

चतुर्भुजदास–(भाषाकवि–अष्टछाप). गोस्वामी विठ्ठलनाथजीके शिष्य और श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य कुम्भनदासके सप्तम पुत्र थे यह जमनावते ग्रामके रहनेवाल थे। य पिता पुत्र अत्यंत धनहीन थे पर बड़े सुकवि थे। इनके बनाये अनेक पद जो भक्तिभावसे भरपूर हैं कृष्णानन्दव्यास देवकृत रागसागरोद्भवमें हैं।

जिन्दा–(पंजाबकेशरी रणजीतसिंहकी सबसे छोटी रानी) महाराज रणजीतसिंहक मरते समय इसकी उम्र बहुत छोटी थी आर इसका पुत्र दलीपसिंह दूध पीता था। स० ई० १८४३ म दलीपसिंह ५ वर्षकी उम्रमें गद्दीपर बैठा, जब हीरासिंह तथा जवाहिरसिंह दीवान फौजके सिपाहियोंके हाथमें मारेगये तो रानीने दर्बारमें बैठकर राजकाज करना स्वयं आरंभ करदिया और लालसिंहको दीवान नियत किया। लालसिंहके साथ रानीका गुप्त सम्बन्ध था। रणजीतसिंहके बाद खालसा फौज बड़ी उपद्रवी होगई थी इसलिये दूसरी ओर ध्यान

बटानेके लिये रानीने फौजको दिल्ली और बनारस लूटनेक लिये भेजा । फौज आधीसे अधिक कटमरी और पंजाबमें अंग्रेज़ी रेजीडेंट मुकर्रर किया गया । रानीको राजकाजस अलहिदा करके डेढ़लाख रुपया वार्षिक पेन्शन दीगयी और लालसिंहका दो हजार रुपया मासिक पेन्शन देकर रानीसे अलहिदा होकर बृटिश-राज्यमें बसनेका हुक्म दियागया । अब रानीने बृटिशराज्यकी दुश्मन बनकर काबुल, कंधार, काश्मीर और राजपूतानाके सब राजाओंको अपनी तरफ मिलाया और अंग्रेजोंकी सिक्ख फौजको बिगड़नेक लिये उकसाया । पर ठीक समयपर भेद खुलगया । रानीकी पेन्शन घटाकर ४ हजार करदीगई और उसको कैदकरके बनारस भेज दियागया । कैदसे रानी टोकरेमें छिपकर निकलभागी और नैपाल पहुँची । नैपाल दर्बारने उसकी १ हजार मासिक पेन्शन नियत की और बाकी उम्र उसने वहीं काटी । बृटिश गवर्नमेंटने नैपालदर्बारको हठपूर्वक रानीके वापिस करनेको लिखा पर उक्तदर्बारने साफ जबाब दे दिया कि "शरण आये हुयेको अशरण करना हमारे धर्मके विरुद्ध है बृटिश गवर्नमेंटको उससे कुछ भय नहीं रखना चाहिये । हम उसकी खुद सम्हाल रक्खेंगे " ।

चन्दासाहिब–(नवाबकर्नाटक). अर्काटके नवाबकी लड़की इसको विवाही गई थी । कर्नाटकके मारकेमें इसने बड़ी वीरता दिखाई । स. ई. १७३६ में ट्रिचनापल्लीका राज्य इसने ज़बर्दस्ती छीन लिया । स. ई. १७४१ में यह मरहटोंके हाथ पड़गया । और सताराके क़िलेमें क़ैद किया गया । फरासीसी गवर्नर डूपलेने इसे कैदसे छुड़ाकर कर्नाटककी गद्दीपर बिठलाया । स० ई० १७५२ में मरहटोंने इसका शिर काटडाला ।

चंदबरदाई–(कविचन्द). दिल्लीके अन्तिम हिंदूपति महाराज पृथ्वीराजका प्रधान मन्त्री तथा राजकवि जातिका भाट असलमें लाहौरका रहनेवाला था । इसके पूर्वज भी कवीश्वर थे और अजमेर तथा रणथम्भोरके चौहान उनके यजमान थे । यह सब लड़ाइयोंमें महाराज पृथ्वीराजके साथही रहा । इसका बनवाया एक कुँवा अबतक कूंच ज़िला हमीरपुरमें है । यह उस वक्त बनवाया गया था जब राजा परमालके साथ युद्धमें घायल होकर पृथ्वीराज कूंचमें ६ महीनेतक पड़ा रहा था । चन्दका ज्येष्ठपुत्र कवि जल्ह पृथ्वीराजकी बहिन पृथाबाईके दहेजमें चित्तौड़

के राना समर्सीको दिया गया था। जल्हकी संतति अबतक मेवाड़में है और वहां के राज्यमें उसकी प्रतिष्ठा है। कहते हैं कि कविचन्द और पृथ्वीराजका जन्म तथा मरण साथ साथ एक ही दिन हुआ। पृथ्वीराजका जन्म वि. सं. १२०५ में और मृत्यु वि. सं. १२४९ में हुई। चंदका "पृथ्वीराजरायसा" हिन्दीकी अन्मूल्य सामग्री है। भाषा इसकी प्राकृतके अन्तिमरूप और हिंदीके आदिरूपसे मिलती है। इसमें दिये सन् संवत् आनन्द विक्रमी संवतके अनुसार हैं। आनन्द विक्रमी संवत् प्रचलित विक्रमी संवतसे ९० वर्ष पूर्व शुरू होता है। कवि चन्द्रके १२ पुत्र थे।

चंद्रगुप्त मौर्य्य–(३२१–२९६ ई०पू०) मुरा नामी दासीसे उत्पन्न। मौर्य्य साम्राज्यका प्रवर्तक, इसे इसके पिताने देश निकाला देदिया था। प्लूटार्कके कथन से पता चलता है कि निर्वासनकालमें यह सिकन्दरसे भी मिला था और अपने पिताके कुशासनका वर्णन करके उसने सिकन्दरको मगधपर आक्रमण करनेको उत्तेजित किया था। बादको इसने पेशावर काबुल आदिकी युद्ध प्रिय जातियोंको संगठित करके यूनानी साम्राज्यके एक अंगपर हमला किया और बादको मगध पर हमला करके राजा और अपने सौतेले भाइयोंको तलवारके घाट उतार दिया। इसे चाणक्य नामक एक तीक्ष्णबुद्धि और राजकाज चतुर पण्डित मिल गया था जिसे इसने महामन्त्री बनाया। नन्दके ज़मानेके महामन्त्री राक्षस से जो चाणक्यकी राजनीतिक चोटें हुई हैं वे विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षसमें वर्णित हैं। यूनानी सेनापति सेल्यूकसने भारतपर चढ़ाई की, पर चन्द्रगुप्तने उसे हरा दिया और सेल्यूकसको अपनी कन्याका विवाह उसके साथ करना पड़ा। साथही वह सिंधके आसपासका इलाका भी चन्द्रगुप्तको देगया। चन्द्रगुप्तको अपनी हत्याका बड़ा भय रहता था और वह एक स्थानपर दो रात्रि कभी नहीं सोता था। उस समयका वर्णन यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़के इतिहाससे मिलता है। पटना उस समय रमणीक शहर था। सफाई तथा पुलिसका प्रबन्ध अच्छा था। रथोंमें लड़ाईके समय घोड़े और चलते समय बैल जोते जाते थे। सड़कोंका जीर्णोद्धार होता रहता था। खेत सींचनेके लिये नहरें जारी थीं। ज़मीनकी पैदावारसे चौथा हिस्सा राजकोशमें जाता था। फौजमें ६ लाख पैदल, ३० हजार सवार और ८ हजार हाथी थे। इसका पुत्र बिन्दुसार इसके बाद गद्दीपर बैठा। प्रसिद्ध बौद्धमतानुगामी राजा अशोक इसका पौत्र था।

चरकमुनि–(चरकसंहिताके रचयिता) कहते हैं कि आयुर्वेदके प्रणेता चरक, सुश्रुत और वाग्भट, तीनों धन्वन्तरि वैद्यके शिष्य थे। चिकित्सा ग्रन्थोंमें चरकसंहिता सर्वोत्तम है यथा–"निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः। शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सके"। चरकसंहिता निम्नस्थ ८ भागोंमें विभाजित है:–सूत्रस्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शरीरस्थान, इन्द्रियस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, और सिद्धिस्थान। इनका समय सं० ई० के छठे शतकमें होना बताया जाता है। चरकसंहितापर सबसे प्राचीन व्याख्या हरिश्चन्द्रकृत है और विक्रमकी १२ वीं शताब्दीसे पूर्वकी मालूम देती है।

चरणदास–(भाषाकवि). इन्होंने नारायणके भजन, स्मरण, ध्यान और गुणानुवादमें एक बड़ा ग्रन्थ "चरणदाससागर" बनाया है और "स्वरोदय" नामकी एक छोटीसी पुस्तक भी, जिसमें २२७ छन्द हैं, और जिसका साधन बड़े २ ज्ञानी, ध्यानी, योगी, जती लोग करते है, इनकी रचित है। ये डहरा ग्राम रियासत अलवरके रहनेवाले मुरलीधर ढूँसर वैश्यके पुत्र थे। वि० सं० १७६० में जन्मे थे। इनका नाम पहिले रणजीत था। ये एक परसे लंगड़े थे। कुछ बड़े होकर माताके साथ अपने नानाके घर दिल्ली गये।–दिल्लीमें एक दिन कोई महात्मा मिल गये। इन्होंने उनके पैर पकड़ लिये और कहा "प्रभो! मुझ अपङ्गको पार लगाओ; मैंने आपके चरणोंकी शरण ली है।" महात्मा इनको कन्धेपर रखकर कुछ दूर लेगये और चरणदास नाम रखकर अपना परिचय दिया और राममन्त्रका उपदेश किया। गुरूपदेशके प्रभावसे चरणदासजी कुछ दिन बाद बड़े महात्मा हुये। इनके अनेक शिष्य हुये जिनकी परम्परा दिल्ली, लखनऊ, बांदा आदि नगरोंमें अबतक चलती है। इनके मतानुगामी फ़क़ीर चरणदासी कहलाते हैं। दिल्लीमें ही वि० सं० १८३९ में इनका देहांत हुआ जहां दाह दीगई थी वहां इनकी समाधि बनी है और उसपर हर बसंत पञ्चमीको मेला होता है।

चांदबीबी–अहमदनगरके नवाबकी बेटी थी, और बीजापुरके नवाब अली आदिलशाहको व्याही गई थी। स० ई० १५८० में विधवा होनेके कारण राज-काज इसको खुद सम्हालना पड़ा। बादशाह अकबरके बेटे मुरादने स० ई० १५९५

में इसके किलेका घेरा किया परन्तु चांद सुल्तानाने बड़ी वीरतासे सामना किया। मुग़लोंने हारकर सन्धि करली। बड़ी राजनीति विशारद स्त्री थी।

स० ई० १५९९ में दक्षिणी लोगोंने इसे मार डाला।

चाणक्य पण्डित–इनका पूरा नाम विष्णुगुप्तचाणक्य था, रंग कुरूप था। नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायनादि विद्या पढ़कर ब्रह्मचर्य धारण किये हुये पटना नगरकी ओर आये थे और विवाह करनेकी इच्छा रखते थे। शहरके बाहर ही पैरमें कुशगड़ जानेसे इनके मनोरथमें विघ्न हुआ और इनको बड़ी तकलीफ हुई। इन्होंने रास्तेमेंसे कुशोंको उखाड़ २ उनकी जड़में मठा इस गरजसे डाला कि, फिर न उगें। मगधनरेश महाराज नन्दके तिरस्कृत मन्त्री शकटने इनको ऐसा करते हुये देखकर इन्हें अपने मतलबका आदमी समझा और उन्हें शहरमें ले आया। कुछ दिनोंबाद महाराज नन्दके यहां श्राद्ध हुआ जिसमें बहुतसे ब्राह्मण निउते गये। शकटने इनको सुअवसर जान महाराज नन्दकी आज्ञा बिना चाणक्यको निउता दे दिया। महाराज नन्दने आतेही चाणक्यको उठादिया और इस मानहानिके कारण चाणक्यने भी नन्दका आठों पुत्रों सहित नाश करनेकी प्रतिज्ञा की। निदान चाणक्यने नन्दके पुत्र चन्द्रगुप्तको जिसको नायनके पेटसे उत्पन्न होनेके कारण और भाइयोंकी अपेक्षा पिताके बाद गद्दी मिलनेकी कुछ भी आशा न थी, अपनी तरफ मिला लिया। महाराज नन्दको आठ पुत्रों सहित नष्ट कर दिया गया यह राजनीतिके पूर्ण ज्ञाता, चतुर विद्वान् पुरुष थे। इन्होंने मन्त्री होकर राज्यप्रबन्ध ऐसा किया जिससे चन्द्रगुप्तका प्रताप भारतवर्ष भरमें तथा अन्य टापुओंमें भी फैल गया। चाणक्यकी राजनीतिका कुछ आभास विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस नाटकसे मिल सकता है। चाणक्यसूत्र तथा चाणक्य-नीति इनके रचे ग्रन्थ हैं।

चार्वाक–(प्रसिद्धनास्तिक)। इसने एक शास्त्र रचकर नास्तिकताका प्रचार किया। वास्तवमें अनीश्वरवादी शास्त्रके मुख्य नियम जिनको "बार्हस्पत्यसूत्र" कहते हैं, पहिले पहिल बृहस्पतिने निर्माण किये थे, चार्वाकने केवल उनका अधिक प्रचार किया और उनको श्रेणीबद्ध किया।

चार्ल्स प्रथम–(१६००–१६४९) इंगलेण्डका बादशाह। यह कभी रोमन-कैथोलिक लोगोंकी ओर झुकता था, कभी प्रोटेस्टेण्टोंकी ओर। इंगलेण्डकी प्रोटे-

स्टेण्ट जनता इसकी रोमनकैथोलिक पत्नीको देश निकाला दिलाना चाहती थी। इसने पार्लिमेण्टके अधिकार छीन लिये और एकबार अपने शत्रु मेम्बरों-को पार्लिमेण्टमें से पकड़नेकी चेष्टा की, पर भेद खुल गया और सब चले गये। इसने एक सदस्य इलियटको कारागारमें डाल दिया जहां वह क्षयरोगसे मर गया। यह परस्पर विरुद्ध दलोंसे एक साथही समझौता करनेकी चेष्टा किया करता था और साथ किसीका न देता था। अन्तमें इसने पार्लीमेण्ट बिल्कुल उठादी और ग्यारह वर्ष तक मनमाना शासन किया और मनमाने टेक्स लगाये। जिसने विरोध किया उसीको जेलमें डालदिया। अन्तमें लण्डनकी प्रजा जब इसके महलके चारों ओर उमड़ आई तो यह भागकर स्काटलेण्ड पहुँचा और वहांके सैनिकोंको अपनी ओर करनेकी चेष्टा की,पर विफल रहा। सात वर्षतक युद्ध रहा, जिसमें कभी राजदलके लोग जीतते, कभी प्रजादलके लोग; पर इसने प्रजाके प्रतिनिधियोंकी शर्तोंको न माना और अन्तमें इसे कैद करके इसपर मुकदमा चलाया गया और प्राणदण्ड दिया गया। यह अन्त समय तक यही कहता रहा कि राजा प्रजासे ऊपर है और वह जो चाहेगा सो करेगा। इसको वध स्थलसे छुटानेको चेष्टा भी की गई थी, पर सैनिकोंकी सतर्कतासे सब विफल हुआ और इसे मार डाला गया। इंगलेण्डमें दस वर्ष तक पूर्ण प्रजातन्त्र रहा।

चार्ल्स द्वितीय–(१६३०–१६८५) अपने पिताके मारे जानेपर चार्ल्स द्वितीय इधर उधर विदेशोंमें मारा मारा फिरने लगा। फ्रांसके बादशाह चौदहवें लुईने इसे रु० ६०० मासिक पेंशन देदी थी जिससे यह अपनी गुज़र करता था। अन्तमें इसके अच्छे दिन आये और इसे इंगलेण्ड वापस बुला लिया। यह बादशाह विघोषित तो हुआ, पर इसमें योग्यता न थी। इसके रक्तमें माताका फ्रेंच रक्त मिला था,और अपने निर्वासन कालमें छिछोरेपन सीख आया था। भ्रष्टताकी आदत पड़ गई थी जो अन्त तक नहीं छूटी। इसका पिता आचरणका अच्छा था, पर इसके कालमें इसकी उपपत्नियोंकी संख्या करना असम्भव था। हरामी बच्चोंकी फ़ौजकी फ़ौज तय्यार होगई थी। राजाके इस आचरणका प्रभाव प्रजा पर भी पड़ा और फल स्वरूप उस कालकी अंगरेज़ जनताका आचरण अत्यन्त भ्रष्ट माना जाता है। फ्रांसके चौदहवें लुईसे अनेक बार गुप्त सन्धि की और थोड़ी सी पेंशनके एवज़में इंगलेण्डके ऊपर फ्रांसका सर्वोपरि होना स्वीकार कर लिया

चासर–(ज्योफ़री चासर, १३२८–१४००) यह अंग्रेज़ी भाषाका पुराना कवि थ । इसका बाप लण्डन नगरका रहनेवाला बड़ा अमीर सौदागर था। कैम्ब्रिज और आक्सफोर्डके कालिजोंमें इसने पढ़ा था । इंग्लैंडके बादशाह एडवर्ड तृतीयके समयमें यह फरासीसोंसे लड़ा । बादमें अनेक पदों पर रहा । दो दफे मतविवादका दोषी ठहर कर कैद भुगतनी पड़ी । अंतमें आक्सफोर्ड नामक शहरमें बस गया । "कैन्टरबरीटेल्स" नामक पुस्तक अंग्रेजी पद्यमें इसकी रची हुई है ।

चिन्तामणि त्रिपाठी–(भाषाकवि) टिकमापुर जिला कानपुरके रहनेवाले ब्राह्मण थे । इनके भाई मतिराम, भूषण और जटाशंकर थे । ये चारों भाई बड़े पंडित और कवीश्वर थे । चिन्तामणिजी बहुत दिनोंतक मकरंदशाह भोसलाके दर्बारमें नागपुरमें रहे और उन्हींके नामसे छन्दविचार नाम पिङ्गल बनाया । काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश तथा रामायण आदि ग्रंथ भी इनके बनाये हुये हैं । रुद्रसाहिसोलंकी तथा दिल्लीके मुग़लबादशाह शाहजहांने भी इनको बहुत इनाम दिया था । इन्होंने कवितामें कहीं कहीं अपना नाम मणिलालभी लिखा है ।

चूडामणि जाट (भरतपुरराज्यके संस्थापक). जब बादशाह आलमगीरकी फ़ौज दक्षिणसे लौट रही थी तब इन्होंने फौजका सब सामान रास्तेमें लूट लिया और मालदार होकर भरतपुरका किला बनवाया और जाटोंके सर्दार बन बैठे । बड़े साहसी और वीर पुरुष थे । भरतपुरका राज्य अबतक इस प्रभावशाली पुरुषके वंशमें है । स० ई० १७२० में मुगल बादशाह दिल्लीकी फ़ौजसे लड़कर मारेगये और इनके पुत्र बदनसिंह गद्दीपर बैठे ।

चेतसिंह (काशीनरेश) स० ई० १७७० में अपने पिता बलवंतसिंहके पीछे गद्दीपर बैठे । बलवंतसिंहके पीछे नवाब वज़ीर अवधने बनारसका राज्य खालसा कर लेना चाहा था पर ईस्ट इन्डिया कम्पनीने ज़ोर लगाकर चेतसिंहको गद्दी दिलवाई । बलवंतसिंहको बनारस, जौनपुर तथा चिनारकी जागीर और राजा बहादुरका ख़िताब बादशाह दिल्लीकी तरफसे स० ई० १७३९ में मिला था । लार्ड वारेन हेस्टिङ्गज़ गवर्नर जनरल हिंद और महाराज चेतसिंहमें कुछ दिनबाद झगड़ा हुआ क्योंकि ज़रूरत पडनेके कारण राजासे मामूली ख़िराजके सिवाय अधिक रुपया मांगा गया था, जिसके देनेसे उसने इनकार किया

था । इस झगड़ेका नतीजा यह हुआ कि महाराज चेतसिंहको अधिकार रहित करके उनके भान्जे महीपनारायणको राजा बनाया गया । चेतसिंहने शेष उमर ग्वालियरमें महाराजा सेंधियाके पास रहकर गुजारी । स० ई० १८१० में मरे। महाराज महीप नारायणके बाद क्रमशः उदितनारायणसिंह, ईश्वरीनारायणसिंह व सर प्रभुनारायणसिंह के. सी. एस. आई. (वर्त्तमान काशीनरेशके पिता) गद्दी पर बैठे । महाराज चेतसिंहका जीवनचरित्र " चेतचंद्रिका " नामक ग्रंथमें है जो उनके पुत्रका बनाया हुआ है ।

चैतन्यमहाप्रभु (वैष्णवधर्मके प्रचारक) मि० फा० सु०१५ वि० सं० १५४२ को बंगदेशके नवद्वीपनगरमें इनका जन्म हुआ । पिताका नाम जगन्नाथ मिश्र और माताका शची देवी था । विद्यामें यह केशवपुरीके शिष्य थे और दीक्षागुरु इनके माधवेंद्र थे । बालकपनमें यह बड़ेही उपद्रवी थे । इनके माता पिताको सदा उलहिना मिला करता था । पिता इनको छोटा छोड़ मरे थे और बड़े भाई विश्वरूप पहिलेसेही संन्यासी होगये थे । इनका विवाह वल्लभाचार्य्यकी कन्या लक्ष्मी देवीसे हुआ था । बचपनहीमें परम विद्वान् केशव भट्ट काश्मीरी ब्राह्मणको धर्मसंबंधी शास्त्रार्थमें हराया था । इनकी पहिली स्त्री साँपके काटेसे मरगई तब माताके अनुरोधसे इसका विवाह नवद्वीपके प्रधान राजपंडितकी कन्या विष्णुप्रियाके साथ हुआ । उन दिनों सर्वत्र बंगदेशमें शाक्तधर्मका प्रचार था और तंत्र मंत्रका बड़ा जोर था । २४ वर्षकी अवस्थामें गृहत्यागी होकर इन्होंने वैष्णवमतका प्रचार किया । पहिले तो ६ वर्षतक ब्रज तथा जगदीशपुरीमें भ्रमण करके निज मतका प्रचार किया और उपयुक्त शिष्यमंडली बनाई । ब्रजमंडलमें अपने शिष्यरूप सनातन गोस्वामीपर और बंगदेशमें अद्वैत और नित्यानंदमहाप्रभुपर धर्मप्रचारका भार छोड़कर आप १८ वर्षतक श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें नियुक्त रहे । बंगालमें लोग इनको अवतार मानते हैं और इनका सिक्का सम्वत् भी चला रक्खा है ।

अंतको ४८ वर्षकी उमरमें एक दिन समुद्रके तीर नहाने गये थे । वहाँसे नहीं लौटे । निम्नस्थ संस्कृतग्रंथ इनके बनाये हुये हैं:—गोपालचरित्र, तत्त्वसार, प्रेमामृत, संक्षेपभागवतामृत, हरिनामकवच ।

चौंडा—ये राना लखाराम चित्तौड नरेशके ज्येष्ठ पुत्र बड़े बलाढ्य और दृढप्रतिज्ञ हुये हैं । इन्होंने अपने पिताके किसी कुवाक्यपर अप्रसन्न होकर

चित्तौडका राज्य त्यागकर अपने छोटे भाई मोकलदेवजीको इस शर्तपर दे दिया था कि चौंडा और उसकी संततिका चित्तौड दर्बारके सरदारोंमें सदैवकेलिये सर्वोच्च पद रहेगा और उसका चिह्न भाला सदैव राना चित्तौडके दस्तखतोंके साथ लिखा जायगा। राना लखारामके पश्चात् स.ई. १३९८ में राना मोकलदेव अपने बड़े भाई चौंड़ाकी दोनों शर्तोंको स्वीकार करके चित्तौडकी गद्दीपर बैठे। अबतक महाराना उदयपुरके दस्तखतोंके साथ चौंडाका भाला चिह्न लिखाजाता है और सालंबरके रावत जो चौंड़ाके वंशज हैं अबतक उदयपुर दर्बारके सर्वोच्च सरदारोंमें गिने जाते हैं।

चौंडा (चौंड़ियाराय) अन्तिम दिल्लीपति पृथ्वीराजका मुख्य सेनापति था। यह बड़ा चालाक, कलाकौशल्यादिमें निपुण, रणकार्यमें दक्ष और वीर पुरुष था। बहुधा वेष बदल २ कर स्त्रियोंके वस्त्र और आभूषण पहिनकर शत्रुओंके दलमें घुस जाता और प्रधान शत्रुको बध करता था। एक दफ़ा पृथ्वीराज घायल होकर कूचमें ६ महीनेतक अपनी सेनासहित पड़ारहा था। उसीवक्तकी बनवाई चौंडाकी बैठक अबतक कूचमें विद्यमान है। अंतमें पृथ्वीराज और परमालके युद्धमें ऊदल आदि अनेक वीर सावन्तोंको मारकर चौंडा रणशायी हुआ।

चंद्रसखी—ये भाषा कवि स० ई० १५८१ के साल ब्रजमें जन्मे। इनके बनाये अनेक भजन देश भर में प्रसिद्ध हैं। इनका छाप यह है—"चंद्रसखी भज बाल कृष्णछवि"।

च्यवन ऋषि—ये भृगुऋषिके पुत्र थे। नर्मदातटपर बैठ कर इन्होंने बहुत दिनोंतक तप किया था। एक दिन राजा अजात शिकार खेलता हुआ सुकन्या नामक राजकुमारीसहित च्यवनऋषिके स्थानपर जा निकला। सुकन्याने च्यवन-ऋषिको मट्टीका ढेला समझकर उनके नेत्रोंमें जो दो सूराखसे मालूम पड़ते थे लकड़ी भोंदी। जब रुधिर बह चला तब ज्ञात हुआ कि यह तो कोई ऋषि हैं जो तप करते २ देहानुसंधान रहित हो गये हैं। राजाने यह देख राजकुमारीको ऋषिके स्थानपर छोड़दिया और खुद अपनी राजधानीको लौटगया। कुछ दिनों बाद अश्विनीकुमार वैद्य वहां जानिकले और सुकन्याके यौवन पर तरस खाकर च्यवन ऋषिकी आँखोंको आराम करदिया और औषधि (च्यवनरसायन) उनको खिलाकर बूढेसे तरुण करदिया। बादको च्यवन ऋषिने बहुतकालतक गृहस्थाश्रम

धारण किया । इनकी संताति ढूसर कहलाई । आराम करनेके बदले च्यवनऋषिने अश्विनीकुमारका यज्ञोंमें भाग नियत कराया । इनका नाम वेदकी अनेक ऋचाओंमें भी पायाजाता है । "जीवदान" नाम चिकित्सा ग्रन्थ इन्होंने बनाया था ।

छीतः स्वामी-(भाषाकवि-अष्टछाप). ये गोस्वामी विठ्ठलनाथजीके शिष्य अच्छे कवि थे । ब्रजके ८ प्रसिद्ध कवीश्वरोंमें इनकी गणना है । २५२ वैष्णवभक्तोंकी वार्त्ता तथा राजा नागरीदासकृत पदप्रसङ्गमालामें लिखा है कि यह मथुराके चौबे थे ।

छत्रसाल महाराजा-(बुन्देला) अपने दादे रावरतनके बाद बूंदीकी गद्दीपर बैठे । पन्नाका राज्यभी इन्हींके अधिकारमें था । इनके पिता चम्पतराय गद्दीपर बैठनेका अवसर आनेसे पूर्वही मर चुके थे । ये दिल्लीके तख्तको राजस्व देते थे । शाहजहांने इनको दिल्लीका सूबेदार नियत किया था और उस पदपर ये बहुत दिनोंतक रहे । शहाजहाँके बीमार पड़नेपर स० ई० १६५८ में जो उसके बेटोंमें तख्तके झगड़ा पैदा हुआ था उसमें राजा छत्रसाल शाहजादे दाराशिकोहके तरफदार थे और इसी मारकेमें मारेगये । राजा छत्रसाल महान् कवि, गुणीजनोंके ग्राहक, साहित्यके निपट चाहक, शूरशिरोमणि, उदारचित्त और बड़े नामी थे । बहुतसे कवि इनके दर्बारमें नौकर थे और बहुतसे देशदेशान्तरोंसे इनका यश सुनकर आते और निहाल होकर लौटजाते थे । इनके दान सन्मानकी कीर्त्ति सुन बुंदेलखण्ड, बैसवाडा, अन्तर्वेद (हरिद्वार और प्रयागके बीचका मुल्क) इत्यादि देशोंमें हजारों कवीश्वर हो गये थे । राजा छत्रसालने छत्रप्रकाश नाम ग्रन्थ जिसमें बुंदेलोंकी उत्पत्तिसे छत्रसालके समयतक बुंदेलखण्डी राजोंका वृत्तांत है बनवाया था । एक साल अकाल पड़नेके कारण बुंदेलखण्डकी प्रजा भूखों मरनेलगी तब छत्रसालजूने प्रजागणका दुःख मिटानेके लिये छत्रपुरनामका नगर बसाया और बहुत रुपया खर्चा करके वहां ऐसी मण्डी डाली जिसमें दूर दूर से माल आने लगा और अकाल मिटगया । छत्रसालजूके ४ पुत्र थे जिनकी संतति अजयगढ, चरखारी, पन्ना, विजावर ईत्यादि रियासतोंमें अवतक राज्य करती है ।

क्षेमेंद्र-(काश्मीरनरेशके दर्बारमें विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें क्षेमेंद्र नाम बड़े भारी कवि हुये थे । इनके रचे अनेक ग्रंथोंमेंसे कुछेक नाम नीचे लिखते हैः—

अमृततरङ्गकाव्य, औचित्यविचारचर्चा, कलाविलास, कविकण्ठाभरण, चतुर्वर्गसंग्रह, चित्रभारतनाटक, दशावतारचरित्र, पद्यकादम्बरी, बृहत्कथामंजरी, भारतमंजरी, मुक्तावली, राजावली, रामायणमंजरी, लावण्यवती, लोकप्रकाशकोश, वात्स्यायनसूत्रसार, शशिवंशमहाकाव्य और मुनिमतमीमांसा।

जगत्सेठ फतेचंद—मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) के रहनेवाले थे। मुहम्मदशाह मुगल बादशाह दिल्लीने इनको जगत्सेठका खिताब देकर बादशाही कोशाध्यक्ष नियत किया था। यह काम इनके वंशमें कई पीढियोंतक चला। यह उस गुप्त सभामें भी शामिल थे जो नवाब बङ्गालके अन्यायसे दुःखी होकर बंगालके ४ प्रधान पुरुषोंने अङ्गरेजोंको बुलानेके लिये की थी और जिसका नतीजा स. ई. १७५७ में पलासीकी लड़ाईमें निकला। यह तथा इनके अनेक वंशधारी बड़े उदार हुये हैं जिन्होंने अनेक रईसोंको शरण दी और लाखों रुपयेसे उनकी मदद की। इनके समान धनाढ्य कोई दूसरा हिंदोस्थानमें नहीं हुआ है। इनके व्यापार की कोठियाँ प्रायः हिंदोस्तानके सब बड़े २ शहरोंमें थीं। पलासीकी लड़ाईके समय लार्ड क्लायवकी इन्होंने सहायता की थी। जगत्सेठ जैनी थे। इनके मंदिरोंमें करोडों रुपयोंका सामान था। जवाहिरात, अशरफी तथा रुपया गिना या तोला नहीं जाता था वरन कोठरियोंमें भर भर कर नापा जाता था। इतना सब होते हुये भी यह कुबेरके समान धनाढ्यवंश समयके हेर फेरसे निर्धनी होकर नष्ट होगया। जगत्सेठ कृष्णचंद्रको ब्रिटिशगवर्नमेंटसे एक हज़ार रुपया मासिक पेन्शन गुजरानके लिये लेनी पड़ी। यह काशीमें आ बसे थे और स० ई० १८९० में विद्यमान थे। इनके कोई औलाद न थी एवं इनके पीछे जगत्सेठके वंशमें कोई न रहा।

जगनायक कवि—यह महोबा (बुंदेलखंड) वासी कवि स. ई. ११९१ में राजा परमालके दर्बारमें मौजूद था। आल्हखण्ड इसीका बनाया हुआ है।

जगन्नाथ त्रिशूली पण्डितराज—तैलङ्गदेशवासी पेरूभट्टके पुत्र थे। माताका नाम लक्ष्मी था। यह सम्पूर्णशास्त्र निजपिताहीसे पढ़े थे। कर्नाटकके राजाको अनेक श्लोक बनाकर इन्होंने भेंट किये पर उसने कुछ ध्यान न दिया। निदान यह जयपुर चले आये। जयपुरनरेशने पाठशालामें इनको अध्यापक नियत किया और पण्डितराज उपाधि दी। उसी समय दिल्लीमें संस्कृतका ज्ञाता एक

क़ाज़ी था । उसने धर्मविषयकशास्त्रार्थमें अनेक पंडितोंको हरा दिया था । पण्डित-जीने यह बात सुनकर एक वर्षमें सब यवनधर्मके ग्रन्थ पढ़े और फिर दिल्ली जाकर उक्त क़ाज़ीको परास्त किया । मुगलबादशाह शाहजहाँने इनको अपने शाहज़ादे दाराशिकोहका शिक्षक नियत किया । थोडेही दिनोंमें बादशाहसे इनका इतना मेल होगया कि यह महलोंमें जाने लगे । यह बड़े खूबसूरत हृष्ट पुष्ट और अभिमानी पुरुष थे । एक दिन बादशाहके साथ शतरंज खेल रहे थे, बादशाहकी एक दासी पुत्री लवंगी इनको देखकर मोहित होगई और बादशाहको पानी पिलानेके बहानेसे सोनेकी सुराही लेकर चली आई । बादशाहने पण्डितजीसे कहा कि हमारी पुत्री पर श्लोक बनाओ । पंडितजीने तुरंत यह श्लोक पढ़ा—

श्लो०—इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा कुसुम्भारुणञ्चारुचेलं दधाना ।
समस्तस्य लोकस्य चेतःप्रवृत्तिं गृहीत्वा घटे स्थापिता सावभाति ॥

बादशाहने प्रसन्न हो कहा कि, 'माँगो इनाम' । पण्डितराजने उत्तरमें यह श्लोक पढ़ा—

श्लोक—न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित् ।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा लवङ्गी कुरङ्गी दृगङ्गीकरोतु ॥

निदान लवंगीका विवाह पंडितराजके साथ बड़ी धूमधामसे होगया और एक महल भी रहनेके लिये दिया गया । कुछ दिनों तो दिल्ली रहे, पीछे काशी चले आये। वहाँके पंडितोंने यवनीके त्याग करने तथा यथाविधि प्रायश्चित करनेको बहुत समझाया, पर इन्होंने नहीं माना । इनके रचे १३ संस्कृतग्रंथोंमेंसे गङ्गा-लहरी, करुणालहरी, मनोरमाकुचमर्दन, भामिनीविलास और रसगंगाधर मुख्य हैं । गंगालहरीकी रचना बड़ी सरस और अनोखी है। इसके रचनेका कारण यों सुननेमें आता है कि, जब काशीके पंडितोंने इनका बड़ा अपमान किया तो इन्होंने काशीके मणिकर्णिका घाट पर बैठकर गंगाजीकी स्तुति पढ़ी । प्रति श्लोक गंगा एक सीढी बढ़ती गई । ५२ श्लोक पूरे होनेपर गंगा उसी सीढी पर पहुंच गई जहां पंडितजी शाहजादी समेत बैठे थे और हज़ारों मनुष्योंके देखते २ वे दोनों गंगाजीमें लोप होगये । इनके समान संस्कृतकवीश्वर इनके बाद आज तक दूसरा नहीं हुआ ।

जगन्नाथ सम्राट् (जयपुरराजगुरु-रेखागणितके कर्त्ता) यह जयपुरनरेश महाराज जयसिंह कछवाहेकी सभामें प्रधान पंडित थे। मिजास्ती नामक ज्योतिष-सिद्धांतका अरबीसे संस्कृतमें इन्होंने उल्था किया और सम्राट् सिद्धांत उसका नाम रक्खा। उक्तग्रंथमें १३ अध्याय और १४१ प्रकरण हैं। उन सब यन्त्रोंका भी जो महाराज जयसिंहने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, काशी और उज्जैनके आकाशलोचनोंमें लगवाये थे उक्त सिद्धांतमें सविस्तर वृत्तांत लिखा है। शाके १६४० (स० ई० १६६१) में उकलैदसके १५ हों अध्यायका अनुवाद अरबीसे संस्कृतमें करके रेखा-गणित नाम रक्खा। यह रेखागणित अबतक जयपुरराज्यके पुस्तकालयमें मौजूद है। रेखागणित बनानेके इनाममें ५ गांव इनको मिले थे जिनपर अबतक इनकी संततिका जयपुरमें अधिकार है। यह अर्बी, फ़ारसी, संस्कृत इत्यादिके पूर्ण ज्ञाता थे। जन्म इनका शाके १५७४ में हुआ।

जनक–मिथिलादेश (तिरहुत) के राजा थे। इनकी राजकुमारी जानकी माताका विवाह स्वयंवर विधिसे रामचन्द्र महाराजके साथ हुआ। ऋषि याज्ञ-वल्क्य इनके पुरोहित तथा मंत्री थे। राजा जनक बड़े विद्वान् तथा धर्मशील थे और निजयोग्यताके कारण राजऋषि पदको प्राप्त हुये थे। बहुधा देहानुसन्धान रहित होजाते थे, इसीलिये विदेह कहलाते थे।

जनमेजय–चंद्रवंशी महाराज परीक्षितके पुत्र तथा अर्जुनके पौत्र थे। महाराज परीक्षित् बचपनहीमें सांपके काटेसे मर गये थे और इनको राजपाट सौंप गये थे। बड़े होकर इन्होंने वैशम्पायन मुनिसे महाभारतकी कथामें सुना कि महाराज परीक्षित् सांपके काटेसे मरे थे। इन्होंने सर्पमेध यज्ञ किया और करोडों सांपोंके कुलके कुल जलवा दिये। पर एक तक्षक जिसने परीक्षितको काटा था, बच रहा था। जनमेजयने भारतवर्षका एक छत्र राज्य किया था।

जमदग्नि ऋषि–कर्मधर्ममें अत्यन्त निपुण थे। भृगु वंशोत्पन्न ऋचीकऋषिके पुत्र थे, माताका नाम सत्यवती था। वेद विद्याके ज्ञाता और त्रिकालज्ञ थे। पुराणों-में आपकी अनेक कथाएँ वर्णित हैं और वेदकी ऋचाओंमें भी आपका नाम आया है। आपके ५ पुत्रोंमेंसे परशुरामजी प्रसिद्ध क्षत्रियकुलद्रोही सबसे छोटे थे।

जयचंद्र–कन्नौजका राजा। यह दिल्लीके राजा पृथिवीराजसे जलता था क्योंकि इसके नाना अनंगपालने अपना राज्य इसे न देकर अपने दूसरे दौहित्र-को दे दिया। इसने अपनी पुत्री संयोगिताका स्वयंवर किया, पर पृथिवीराजको निमंत्रण न दिया। संयोगिता पृथिवीराजको चाहती थी। बस, पृथिवीराज उसे कन्नौजसे लड़कर ले आया। कहा जाता है कि इसी अपमानका बदला लेनेके लिये जयचंद्रने मुहम्मदगोरीको आमंत्रित किया। मुहम्मदगोरीने पृथिवीराजको तो हराया ही, पर दूसरे ही साल जयचन्द पर भी धावा किया। जयचंद मारा गया और विजेता कन्नौज और बनारसकी लूटका माल १४०० ऊंटोंमें लादकर अफ़गा-निस्तान ले गया। कन्नौजके बचे हुये राजपूतोंने राजपूतानामें राज्य स्थापित किये। इन्होंने राठौरोंके आठ राजवंश क़ायम किये जिनमेंसे जोधपुर जिसे जोधाजीने बसाया, मुख्य था।

जाबालि ऋषि–महाभारतमें लेख है कि वैशम्पायन ऋषिने विन्ध्याचल पर्वतके समीप तपोवनमें जाबालि ऋषिको अशोकवृक्षके तले बेंतके आसनपर बैठा देखा वे उन दिनों अत्यन्त बूढ़े थे पर उनका तेज सूर्य्यकासा था। वे तपस्वी थे और एवं क्षमाशील शान्ति अक्रोध और शतपथदर्शकताके अवतार मालूम होते थे। त्रिकालदर्शी थे। अनेक शिष्य उनसे विद्या पढ़ते थे और बहुतसे मुनीश्वर लोग तपोवनमें रहकर तप करते थे। वैद्यक ग्रन्थ हारीतसंहिताके कर्त्ता हारीत मुनि उनके पुत्र थे।

जार्ज चतुर्थ–(जार्ज आगस्टस फ्रैडेरिक) (१७६२–१८३०) ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्डका बादशाह और तृतीय जार्जका पुत्र। इसकी शिक्षा दीक्षा इसके एकान्तवासी पिताके सहवासमें हुई थी, पर लण्डनकी सोसायटीमें आते ही इसने सदाचारका संयम उतार फेंका और वयस्क होनेसे पहले ही नर्तकी मेरीके साथ प्रेम किया। फिर डयेज़ आफ़ डोवेनशायरकी बारी थी। इसके बाद मिसेज़ फ़िज़हर्बर्टके साथ इसने गुप्त रूपसे विवाहकर लिया और इतने धूम धड़ाके के साथ रहना आरम्भ किया कि कुछही दिनोंमें इसपर क़र्ज़ लद गया। बादशाह ने पार्लीमेण्टसे कुछ रक़म मंजूर कराई और कुछ अपने पाससे दी। क़र्ज़ चुक गया। पर शाहज़ादेकी अय्याशीमें कोई अन्तर न पड़ा। यह बड़ाही स्वार्थी था। अपनी कामलिप्साके लिये इसने इंगलेण्डके असंख्य घरोंके सुखको नष्ट

कर दिया। अब इसकी आंख लेडी जर्सीपर पड़ी और मिसेज़ फ़िज़हर्बर्टको छोड़ दिया गया। इसके ऊपर लेडी कनिंगहमका आधिपत्य मृत्यु पर्य्यन्त रहा। १७९५ में इसका विवाह जर्मनीकी शाहज़ादी कैरो लाइनके साथ हुआ। कुछही दिनों बाद दोनों जुदा होगये और एक पुत्री चारलोट उत्पन्न हुई जिसका विवाह १८१७ में बैल्जियमके राजाके साथ हुआ था और जो प्रसव वेदनासे मर गई थी। इधर क़र्ज़ा फिर लद गया था। हाउस आफ़ कामन्सने एक नई रक़म मंजूर की। इसी समय यह अपने बापका वली बना क्योंकि तृतीय जार्ज अमेरिका हाथसे निकलनेके बादसे पागल होगये थे और १८११ में उनका पागलपन बिल्कुल सिद्ध होगया था। पर शाहजादा इंगलेण्डकी जनताकी निगाहमें इतना गिर गया था कि जब यह १८२४ में मित्र राष्ट्रोंके शासकोंको लण्डन दिखाने निकला तो लोग सिसकारीकी आवाज़ मारने लगे। १८१७ में जब यह पार्लिमेण्ट खोलनेको शहरमेंसे गुज़र रहा था तो इसकी गाड़ीकी खिड़की तोड़ दी गई। १८२० में बादशाह मर गया और शाहज़ादा सचमुच बादशाह हो गया। अब उसने निरीहकेरो लाइनसे बदला लेना चाहा। १८०६ में इसने शाहज़ादीको तलाक़ देनेकी चेष्टा की थी, पर बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वह उसकी आचारभ्रष्टता प्रमाणित न कर सका। एक कमीशन बिठाया गया, पर अधिकांश सदस्योंने प्रिन्सके विरुद्ध गवाही दी। १८१४ में फिर झगड़ा खड़ा हुआ क्योंकि शाहज़ादीको मित्र राजोंके दरबारके अवसर पर निकाल दिया गया था। अब शाहज़ादीने इंगलेण्ड छोड़ दिया और इटलीमें रहना आरम्भ किया। १८२१ में जब शाहज़ादेका राज्याभिषेक हुआ तो कैरोलाइनने भी विन्डसर पैलेसमें घुसनेकी चेष्टा की। इंगलेण्डकी जनता उसके साथ थी, पर उसे न घुसने दिया गया। वह इस आघातको सहन न कर सकी और अगस्तमें मर गई। उस दिन नये बादशाहने कहा था:—मैं आजकी बराबर कभी खुश नहीं हुआ'। इसके बाद इसके विरुद्ध पार्लिमेण्टमें आन्दोलन खड़ा हुआ और इसे अपने शत्रु केनिंगको सेक्रेटरी आफ़ स्टेट बनाना पड़ा। बादको यही केनिंग प्रधान मंत्री भी बना। अन्तमें १८३० में यह भ्रष्ट बादशाह मर गया। जार्ज रेनाल्डसने इसके और इसकी तत्कालीन प्रजाके आचार व्यवहारका चित्र Mysteries of the Court of London में ख़ूब खींचा है।

जालीनूस (Galen) यह यूनानी हकीम स० ई० के दूसरे शतकमें पैदा हुआ। वैद्यकशास्त्र पढ़नेके लिये इसने देश विदेश बहुत भ्रमण किया । मिश्र और यूनानके सब बड़े २ वैद्यक स्कूलों और हस्पतालोंमें जाकर रहा । वैद्यकशास्त्र की प्रायः ४०० पुस्तकें इसने लिखी थीं । अन्तमें यह रोममें जाबसा । अनेक असाध्य रोगियोंको चंगा करके प्रसिद्धि पाई । इसके रचे बहुतसे ग्रंथ रोमके एक मंदिरमें जलगये । अपने समयके यूनानी हकीमोंमें अद्वितीय गिना जाता था। स० ई० १९२ में ९० वर्षकी उम्रमें मरा ।

जुगलकिशोरभट्टराजा (भाषाकवि) यह दिल्लीनरेश मुहम्मदशाह मुगलके मुसाहिब थे । वि० सं० १८०३ में "अलंकारनिधि" नामक ग्रंथ इन्होंने बनाया जिसमें९६ अलंकार उदाहरणसहित वर्णित हैं । यह कैथलके रहनेवाले थे ।

जेनर–(Doctor Jenner) यह इंग्लैंडके किसी गांवके रहनेवाले थे । जब यह वैद्यकशास्त्र पढ़ते थे तब स० ई० १७९६ में इनको एक ग्वालिनसे यह भेद मिला कि, ग्वालियोंके चेचक बहुत कम निकलती है । डाक्टर साहिबने बड़े परिश्रमसे दरियाफ्त किया कि मनुष्यकी तरह गायोंमें कभी २ यह रोग स्तनोंके ऊपर छोटे छोटे जल भरे फफोलोंके सदृश देख पड़ता है जिसको गउथन शीतला कहते हैं । इन फफोलोंमेंका चेप ग्वालियोंके हाथमें लगकर उनको सदैवके लिये चेचकसे निर्भय कर देता है । जब यह निश्चय होगया तो इस चेपकी परीक्षा आदमियोंपर की गई और उसमें सफलता प्राप्त हुई । पर गउओंके थनोंसे यह चेप थोड़ाही मिलता था और इसीकारण चेपका अभाव रहता था । निदान सोचते २ डाक्टर साहिबने निश्चय किया कि टीका लगानेसे बाहँमें जो फफोले पडते हैं उनमेंसे जो ७ वें या ८ वें दिन चेप निकलता है, वहही टीका लगानेका काम दे सकता है । अब दुनियाभर इसी चेपका प्रयोग टीका लगानेमें करती है । ब्रिटिश पार्लियामेंटने स० ई० १८०२ की सालमें डाक्टर जेनरको चेचकके टीकेकी ईजादके पुरस्कारमें एक लाख रुपया दिया और स० ई० १८०७ में दो लाख और दिये । जबतक डाक्टर साहिबको इस काममें सफलता प्राप्त नहीं हुई थी लोग उनपर हँसते थे और उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट देते थे । परंतु बादको मालूम हुआ कि उन्होंने एक बड़ीभारी ईजाद की है ।

जेम्सवाट–(James Watt) इन्होंने न्युकॉमन साहिबकी बनाई धुएँकी कलको पूर्णरीतिसे बनाकर सुधारा। यह स्काटलैंडके रहनेवाले थे। बुद्धि बचपनहीसे अद्भुत थी। १६ वर्षकी उम्रमें यूक्लिडकी १ साध्य इन्होंने सिद्ध की थी। पदार्थ तथा विज्ञानशास्त्रके तजरुबे करते रहते थे। जिस खिलौनेको खरीदते उसको तोड़कर देखते थे कि कैसे बना है। १८ वर्षकी उम्रमें लण्डन नगरको गये और १ वर्ष वहां रहकर अनेक प्रकारके औजारों व यंत्रोंका बनाना सीखा। फिर स्काटलैंडको वापिस आये और एक कारखाना जारी किया। इन्होंने बहुत कालतक धुयेंकी प्रकृति और उससे पहियोंमें हरकत पैदा करनेकी तरकीबपर गौर करके लोकोमोटिव एञ्जिन (धुयेंकी कल) बनाई। इन्होंने दो और कलेंभी बनाई थीं, एक खत छापनेकी, दूसरी भाप सुखानेकी। जो काम हजारों लाखों घोड़ों बैलोंसे लेना कठिन था वह अब इनकी धुयेंकी बनाई कलसे रेल जहाज और पुतली घरोंसे लिया जाता

जैमिनि ऋषि–(पूर्वमीमांसाशास्त्रके रचयिता)। ये महर्षि व्यासके शिष्य थे। इनको हाथीने मारडाला।

जैयट उपाध्याय–यह काश्मीरवासी प्रसिद्ध वैद्य हुये हैं। मम्मट, कैयट तथा औवट तीनों इनके पुत्र महाविद्वान् हुये हैं। सुश्रुतसंहिताकी टीका सबसे पहिले इन्होंने किया। विक्रमी संवत्‌की १२ वीं शताब्दी इनका समय है। जैयटका अपभ्रंश जेजट भी कहीं कहीं लिखा पाया जाता है।

जैसाल–(रावल जैसाल जैसलमेरु राज्यके संस्थापक) प्रायः स० ई० ११५६ में इन्होंने जैसलमेरु बसाकर वहां एक किला बनवाया। इनसे १७ पीढी पीछे बरारसिंहने फ़रीदकोटका राज्य स्थापन किया। बरारसिंहकी तीसरी कुलीमें फूलसिंह एक वीर पुरुष हुये जिनकी संतति अबतक जींध, नाभा, भादौर और पटियालामें राज्य करती है। फूलसिंहके द्वितीय पुत्र रामसिंहने पटियाला राज्यवंशकी मूलरोपण की। रामसिंहके पुत्र आल्हासिंहने पटियालेका शहर बसाया और अहमदशाह दुर्रानीसे राजाका ख़िताब स० ई० १७६२ में पाया।

जोधाबाई–जयपुर नरेशकी बेटी बादशाह अकबरको व्याही थी। बचपनमें इसने स्वप्न देखा था कि चाँद इसकी कोखसे निकलकर आस्मानकी तरफ़

ऊंचा हुआ और यह उसके पीछे उड़ी। जब चांद बहुत ऊंचा होगया तब यह गिरपड़ी। पंडितोंने इस स्वप्नका फल यह बताया कि, यह किसी अन्य जातीय बादशाहको व्याही जायगी और अपने पुत्रके गद्दीपर बैठेनेसे पहिलेही मर जायगी। पंडितोंका कथन ठीक हुआ। स० ई० १५६९ में इसका विवाह बादशाह अकबर से हुआ और आगरानिवासी फ़कीर शैख़ सलीम चिश्तीकी दुआसे इसके "सलीम" नामक शहज़ादा पैदा हुआ जो बादको जहांगीर नामसे तख्तपर बैठा। जोधाबाईको पं० रामानन्द महलमें जाकर पढ़ाते थे। कुछ दिनोंतक बीरबल भी पढ़ाते रहे। शहज़ादे सलीमके पैदा होनेपर पढ़ना लिखना छोड़ पुत्रके लालन पालनमें लगी और खुदही दूध पिलाया। जोधाबाई भाषा कविता भी करती थी और इसके महलमें साप्ताहिक सभा स्त्रीकवीश्वरोंकी हुआ करती थी। अत्यंत सुंदरी और गुणवती होनेके कारण अकबरको अन्यबेगमोंकी अपेक्षा अधिक प्यारी थी। अकबरसे ११ वर्ष ६ महीने छोटी थी और राजपूतोंके मामलातमें पतिको बहुधा सम्मति दिया करती थी। यह बड़ी उदार, और अच्छे शीलस्वभावकी थी। घोड़े पर चढ़ना, मेख उखाड़ना खूब जानती थी। बड़ी निर्लोभ थी। मरते दमतक हिंदुओंके त्योहारोंको मानती रही। इसके पूजा करनेका मंदिर अबतक आगरेके किलेमें है। स० ई० १६०० में ४७ वर्षकी होकर मरी। शहजादा सलीम इसका जनाज़ा पकड़कर रोया जिसे देख बादशाह अकबर भी रोनेसे न रुकसका। इसके मरनेपर बादशाह अकबरने सब राजपूतोंको भद्राकरानेकी आज्ञा दी और १० दिन तक सब कचहरियां बंद रहीं। अकबरके बेटे जहांगीरको भी रावमालदेव जोधपुर नरेशकी जोधाबाई नामक राजकुँवारी व्याही थी, पर वह विशेप प्रसिद्ध नहीं थी।

जोधासिंह राठौर—(रावजोधा जोधपुर नरेश). राव ऋणमलके २४ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। इन्होंने जोधपुर शहर बसाया और स० ई० १४५ में उसको अपनी राजधानी बनाया। अपने समयके अत्यंत पराक्रमी और साहसी राजा हुये हैं। इनके छठे पुत्र बिकासिंहने बीकानेर बसाया।

जोराष्टर—(Zoraster). इन्हींका दूसरा नाम ज़र्दश्त है। इन्होंने अग्निपूजकोंका मत चलाया। इनके बाप पोशिस्य बल्खके रहनेवाले थे। स० ई० से ३

हजार वर्ष पहिले इनका समय है, पर फिरङ्गी विद्वान स० ई० से ५२५ वर्प पूर्व इनका होना सिद्ध करते हैं। पठन पाठनकी तरफ बचपनहीसे इनकी अधिक रुचि थी। प्रतीत होता है कि इन्होंने भारतवर्षमें आकर विद्या पढ़ी थी क्योंकि इनके मतके नियम वैदिक मतके नियमोंसे बहुत मिलते हैं और इनकी निर्माण की हुई पुस्तक "जेंदावस्ता" में वेदोंका हवाला भी मिलता है और उसकी भाषा भी कुछ कुछ संस्कृतसे मिलती है। ज़र्दश्त अत्यंत विद्वान और ज्योतिषशास्त्रमें निपुण थे। बादशाह कैखुसरो ईराननरेश इनके मतके विरुद्ध था। उसने इनके मरवा-डालनेके अनेक उपाय किये पर एक न चला। कैखुसरोके बाद गुस्ताशपने ईरानकी गद्दीपर बैठकर इनका मत ग्रहण किया और अस्फंदियार पहिलवान द्वारा अपने राज्यभरमें जो काबुलसे यूनानतक था और जिसमें अरब तथा तुर्किस्तान भी शामिल थे, इनके मतका प्रचार कराया। जब सिकंदर आज़मने ईरानके राज्यको नष्ट किया तब अग्निपूजक लोग स्वदेश छोडकर अन्यदेशोंमें जा बसे। अब इस मतके अनुगामी बम्बईमें थोड़ेसे पारसी लोग रहगये हैं जो बड़े धनाढ्य हैं। अग्नि-पूजकोंकी "दसातीर" नामक पुस्तकमें लिखा है कि एक यूनानी ब्रह्मज्ञानीको ज़रदश्तने अपनी जन्मकुण्डलीके ग्रह दिखलाकर विश्वास करा दिया था कि मैं मक्कार नहीं वरन सत्यापथ दर्शानेवाला महात्मा पुरुष हूं। हिंदुस्तानसे भी एक जैनी विद्वान् और दूसरे महर्षि वेदव्यास जरदश्तसे शास्त्रार्थ करने ईरानको गये थे। शास्त्रार्थसे पहिलेही एक शिष्यने "जेंदावस्ता" खोल कर वे सब प्रश्नोत्तर जो ऋषिलोग करनेको थे दिखलाये जिससे दोनों जरदस्तकी प्रशंसा कर कर लौट गये। ज़र्दश्तकी पुस्तकमें यह भी लिखा था कि, जब ईरानी अधर्मी होजायँगे तब यूनानका एक बादशाह उनको परास्त करेगा। जब सिकंदरने यूनानियोंको जीता तब किसी आदमीने उक्त लेख उसको दिखलाया जिससे वह जरदश्तके मत पर विश्वास करनेलगा। ७० वर्षकी उम्रमें तुर्किस्तानके बादशाह अर्जासपके एक सरदारने जरदश्तको घायल करके मारडाला।

जयदेव मिश्र (गीतगोविंदके रचयिता) यह किंदु बिल्वगाँम जिला वीर-भूमिमें जन्मे। पिताका नाम भोजराज और माताका नाम रमादेवी था। वे दोनों इनको छोटाही छोड़कर मर गये थे। जयदेव ऐसे तीव्र बुद्धि थे कि गुरुसे एकसमयमें ही पक्षभरका पाठ पढ़लेते थे जिसके कारण इनका नाम पक्षधर मिश्र

पड़गया था । विद्या पढ़नेके बाद राजा लक्ष्मणसेन वंगालाधिपतिके दरबारमें राजकविके पदको प्राप्त हुये । यह बात महाराज लक्ष्मणसेनके सभास्थानके द्वारपर लगे हुये पत्थरपर अंकित निम्नस्थ श्लोकसे विदित होती है:—

श्लो०—गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

स० ई० १२०३ में जब राजा लक्ष्मणसेन सुलतान मुहम्मद गोरीके सेनापति मलिक काफूरसे परास्त होकर उडीसाको भागे तो जयदेवजी भी उनके साथ उडीसा चले गये और जगन्नाथ स्वामीकी सेवामें बहुत दिन रहे । वहीं इनका विवाह एक ब्राह्मणकी पद्मावती नामक कन्यासे हुआ और वहीं रहकर गीत-गोविंद बनाया । उड़ीसानरेश इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करता था । बहुत दिनोंबाद जब इनकी पतिव्रता स्त्रीका देहांत होगया तो यह दुःखी हो अपनी जन्मभूमि किंदुबिल्वको लौट आये और एक पाठशाला स्थापन करके पढ़ाने लगे । भजन बहुत किया करते थे और परम वैष्णव थे । विद्यार्थी इनका नाम सुनकर दूर दूरसे आते थे । प्रसिद्ध पण्डित रघुनाथ शिरोमणि इत्यादि इनके शिष्य थे । किंदुबिल्व (केंदुली) गाँवमें अबतक इनकी समाधि है, जिसपर मकरकी संक्रांतिके दिन बड़ा मेला होता है । हजारों वैष्णव इकठ्ठे होकर संकीर्त्तन करते हैं । भक्तमालके लेखसे विदित होता है कि यह परमयोगी और तपस्वी, क्षमा, दया, शील और उदारताके अवतार थे । अपने अपकारियोंका भी उपकार करते थे । गीतगोविंदके समान किसी दूसरे संस्कृतग्रंथकी रचना मधुर कोमल रसीली और मनोहर नहीं है । प्रत्येक पदमें प्रेमरस भरी भक्ति झलकती है । गीतगोविंदका अनुवाद अनेक फिरंगी तथा हिंदुस्थानी भाषाओंमें होगया है ।

जयपाल—(पंजाबका प्राचीन राजा) यह ब्राह्मणवंशोत्पन्न राजा हितपालक पुत्र था । सर्वत्र पंजाबमें इसका राज्य था । लाहौर राजधानी थी । स० ई० ९७७ में इसने गज़नीपर चढाई की पर हारा और गज़नी के सुलतान सुबुक्तगीको ५० हाथी देकर और ढाई लाख रुपया देनेका वायदा करके हिंदोस्तानको लौट आया। मंत्रियोंकी राय थी कि वायदा पूरा किया जाय, पर ब्राह्मण पण्डितोंकी राय थी कि म्लेच्छको रुपया देनेसे धर्म नष्ट होगा । ब्राह्मणों की मति मान राजाने रुपया

नहीं भेजा। सुबुक्तगीने हिंदोस्तानपर चढाई की और पेशावरपर अधिकार जमा-लिया। स० ई० ९९७ में सुबुक्तगी मरगया और उसके बेटे महमूदने हिंदोस्तान-पर कई हमले किये जिनमेंसे १३ तो केवल पंजाब ही पर किये। दिल्ली, अजमेर, कालिंजर और कन्नौजके राजे महाराज जयपालकी मदद्के लिये आये थे पर वे भी महमूदकी सेनाके सामने कुछ न करसके। निदान जयपाल फिर हारा और उस समयकी रीत्यनुसार २ दफे हारनेके कारण आगमें जलकर मरगया और राज-पाट निजपुत्र अनङ्गपालको सौंपदिया। अनङ्गपालके समयमें भी महमूदने कई हमले किये पर सफलता नहीं हुई क्योंकि अनंगपालके राजपूत सिपाही जीतोड़ कर लड़े और राजपूतस्त्रियोंने अपने पति पुत्रादिकोंकी जो फौजमें सिपाही थे, आभूषण और वस्त्र बेंच बेंच कर तथा अपने शिरके बालोंकी रस्सियें बना बना कर सहायता की। स० ई० १०१३ में महाराज अनङ्गपालके बाद उनका पुत्र जयपाल द्वितीय लाहौरकी गद्दी पर बैठा। स० ई० १०२२ में महमूदने जय-पाल द्वितीयको परास्त करके पञ्जाबका राज्य छीन लिया।

जयसिंह कछवाहे–(अम्बरनरेश) ये महाराज मानसिंहके दत्तक पुत्र स० ई० १६१५ में गद्दीपर बैठे। दिल्लीके बादशाह शाहजहांके समयमें इन्होंने अनेक साहसपूर्ण काम किये। स० ई० १६२८ में काबुलमें जाकर उपद्रव शान्त किये। औरङ्गजेबके समयमें मिर्जा राजाके नामसे यही प्रसिद्ध थे। स० ई० १६६४ में औरङ्गजेबने इनको दक्षिणकी सूबेदारी दी। स० ई० १६६६ में इन्होंने मरहटा राजा शिवाजीको फुसलाकर औरंगजेबके दर्बारमें हाज़िर किया और इस तरहसे बड़ा भारी युद्ध जो होनेको था मेटा। स० ई० १६६७ में दक्षिण से लौटते समय रास्तेमें बुरहानपुरके मुकाम मृत्युवश हुये। गुणीजनोंका सत्कार करते थे। ज्योतिष तथा गणितशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता थे। संस्कृत, हिन्दी, तुरकी, अर्बी, फारसी खूब पढ़े थे। इमारत बनवानेके शौकीन थे। कवि बिहारीलाल सतसईके कर्ता तथा पं० जगन्नाथ सम्राट् रेखागणितके रचयिता इन्हींकी सभामें थे। सतसईमें ७०० दोहे हैं। प्रत्येक दोहेके बदले महाराजने बिहारीलालजीको १–१ अशर्फी इनाम दी थी। रेखागणित रचनेके पुरस्कारमें जगन्नाथको कई गांव दिये थे। दिल्ली, मथुरा, जयपुर, बनारस व उज्जैनमें आकाशलोचन बन-वाये थे जो अबतक विद्यमान हैं। आगरेमें जयसिंहपुरा नामक मुहल्ला इन्हींके

नामसे प्रसिद्ध है। इस स्थानपर महाराजने बहुतसे मकान बनवाये थे, जिनका अब पता नहीं है।

जयसिंह सवाई–(जयपुरनरेश) अपने पिता विष्णुसिंहके बाद स० ई० १६९९ में अपने पूर्वजोंकी गद्दीपर बैठे। उस वक्त इनकी उम्र कम थी। जब औरंगजेबके सामने पेश होनेको जाने लगे तो इन्होंने अपनी मातासे पूछा कि यदि बादशाह कुछ हमसे पूछें तो हम क्या कहें? माताने उत्तर दिया कि, मौकेके मुआफिक बात कहना। निदान जब यह औरंगज़ेबके सामने गये तो उसने इनके दोनों हाथ पकड़ कर कहा कि, तेरे बापने मेरे समयमें अनेक उपद्रव किये, अब तू क्या कहता है? इन्होंने उत्तर दिया कि, शादीके वक्त स्त्रीका एक हाथ पकड़ा जाता है जिसकी लाजसे मर्द उसको जिन्दगीभर निबाहता है। सो आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़े हैं। इस उत्तरसे खुश होकर औरंगजेबने इनको सवाई तथा राजाका खिताब दिया और पूर्वजोंका राज्य इनको सौंप दिया और २ हजारी मनसब इनका मुकर्रर किया। औरंगजेबके बाद बहादुरशाहके समयमें इनके भाई विजयसिंहने राज्यका दावा किया। बहादुरशाहने किसी भाईको भी नाराज़ न करना चाहा और इनका राज्य ज़ब्त करके एक मुसल्मान सर्दारके सुपुर्द कर दिया। थोड़ेही दिनबाद बहादुरशाहको उपद्रव शान्ति करनेके लिये दक्षिण जाना पड़ा। निदान अवसर पाकर जयसिंहने अपना राज्य छीन लिया। फर्रुखसियरने दिल्लीके तख्त पर बैठकर इनको महाराजाधिराजका खिताब दिया और मुहम्मदशाहने तख्त पर बैठकर इनको मालवाका सूबेदार मुकर्रर किया। स० ई० १७२० में जयसिंह परगना जिला मथुरामें इन्होंने बसाया। स० ई० १७२८ में जयपुर शहर बनवाकर बसाया और अम्बरकी जगह उसको अपनी राजधानी बनाया। स० ई० १७४३ .. सिधारे और इनके पुत्र ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठे। कुण्डलियोंके कर्ता गिरधर कविराय इन्हींके दर्बारमें थे। "जयसिंहके १०९ गुण" इनकी बनाई पुस्तक भाषामें अच्छी है और "जयसिंहकल्पद्रुम" नामक ग्रन्थ जिसमें साल भरके व्रतोंकी विधि विधान, उद्यापन आदि हैं, इन्हींके आश्रित पण्डितोंका बनाया हुआ है।

जयादित्य पण्डित–इन्होंने तथा पण्डित वामनजीने मिलकर पाणिनीय सूत्रोंपर सूत्रक्रमसे "काशिका" नामक अत्यन्त सरल वृत्ति बनाई है । यह वृत्ति महाभाष्यसे पीछेकी बनी प्रतीत होती है क्योंकि उसके शुरूमें "वृत्तौ भाष्ये" इत्यादि स्थलमें भाष्यका नाम लिखा है ।

जरासन्धु–(मगधदेशका राजा) इसकी लड़की मथुराके राजा कंसको व्याही थी । कंसके मारे जाने पर जरासन्धुने अपनी लड़कीके कहनेसे कंसका बदला लेनेके लिये १८ दफे मथुरामें श्रीकृष्ण पर चढ़ाई की । पर अन्तमें हारा और श्रीकृष्णके इशारेसे भीमसेनने उसको चीरडाला । तहसील जलेसर जिला एटामें जरासन्धुका बनवाया किला अबतक टूटाफूटा पड़ा है । जब जरासन्धुने मथुरा पर चढ़ाई की थी तब अपनी फ़ौजके ठहरनेके लिये यह किला बनवाया था । फिरङ्गी विद्वानोंके मतानुसार ईसासे १२८० वर्ष पूर्व जरासन्धु गद्दी पर बैठा था ।

जसवन्तराउ हुल्कर–(इन्दौरनरेश) तुकोजीराउ हुल्करके पुत्र थे । निज पिताके बाद बहुतसे झगड़े तय करके गद्दीपर बैठे । इन्होंने स० ई० १८०२ में सेंधिया तथा पेशवाको परास्त किया और अपना अधिकार बहुत कुछ बढाया । पश्चात् ब्रिटिश गवर्नमेण्टसे इनकी लड़ाई छिड़ी बहुत दिनोंतक लड़ाई जारी रही जिसमें कभी इनको और कभी ब्रिटिश गवर्नमेण्टको हार हुई । अन्तमें स० ई० १८०५ में सन्धि होगई । स० ई० १८११ में मल्हारराव हुल्कर नामक बालकपुत्र छोड़कर मरे । मल्हाररावके समयमें रियासत इन्दौरने ब्रिटिश गवर्नमेण्टका आधिपत्य स्वीकार किया ।

जसवंतसिंह राठौर–हफ्त हज़ारी (जोधपुर नरेश--भाषाभूषणके कर्त्ता) अपने पिता गजसिंहके रणशायी होनेपर मारवाड़ राज्यके स्वामी हुये । दिल्लीनरेश शाहजहांने खुद अपने हाथसे इनको राजतिलक किया । उस वक्त इनकी उम्र १२ वर्षकी थी । यह ४२ वर्ष बराबर मालवा, गुजरात, दक्षिण, दिल्ली, पंजाब और काबुलकी सूबेदारीपर रहे और अनेक मुहिम्मोंपर गये । इनका मनसब हफ्त हज़ारी था जिसके वेतनमें १७ लाख रुपये वार्षिक आयका मुल्क मारवाड़, गुजरात, हांसी, हिसार इत्यादिमें मिला था और सवापांच लाख रुपया सालाना बाद-

शाही खज़ानेसे मिला करता था। काबुल तथा ईरानके फल फूलोंके बीज लाकर इन्होंने जोधपुरके बागोंमें बोये थे, जिनमेंसे अनारका बीज अबतक क़ायम है। यह बड़े स्वामीभक्त और उदारचित्त थे। भाषाकविता भी अच्छी करते थे। संस्कृत खूब जानते थे। "भाषाभूषण" तथा "भागवतका तिलक" इनके रचे ग्रंथ हैं। बर्नियरने लिखा है, "शाहजहांके बीमार होनेपर जो झगड़ा तख्तके लिये उसके बेटोंमें हुआ उसमें औरंगज़ेब और मुरादकी मिली हुई फ़ौजोंके मुक़ाबिले के लिये महाराज जसवंतसिंह भेजे गये थे। उज्जैनके मैदानमें सामना हुआ। फौजके मुसलमान अफ़सर औरंगज़ेबसे मिल गये, महाराज अकेले ही लड़ते रहे। जब थोड़े ही साथी रहे तो व्यर्थ प्राण देना समझ अपने राज्यकी तरफ कूंच किया। महाराजकी रानीने जो राना उदयपुरकी बेटी थी क़िलेके फाटक बंद करा दिये और कहा कि वह जो रणमें पीठ दिखावे महाराना उदयपुरसे वीर क्षत्रीका जंवाई कहलाने योग्य नहीं। तुरन्तही रानीने चिता प्रचंड करनेका भी हुक्म दिया क्योंकि उसने विचारा कि मेरा पति कभी रणमें पीठ दिखानेवाला नहीं है। वह तो अवश्य जूझ गया होगा। थोड़ेही देर बार सन्देह मिटगया. महाराज महलपर पहुंच गये। रानी कई दिनतक कोपभवनमें पड़ी रही और केवल अपनी माताके मनानेसे जो उदयपुरसे इसी कामके लिये आई थी, मानी। औरंगज़ेबने तख्त पर बैठकर महाराजको काबुलकी सूबेदारी पर जहां उन दिनों उपद्रव फैल रहा था, भेज दिया। निरन्तर नंगी तलवार हाथमें रखकर महाराजने काबुलकी कट्टर प्रजाको ढीला किया। औरंगज़ेबने महाराजके जीतेजी हिंदुओंके मंदिर नहीं तोड़े, क्योंकि एक दफे महाराजने कह दिया था कि, मंदिरोंके बदले मसजिदें ढाई जायँगी। सं० वि० १७३५ में ५२ वर्षकी उम्रमें जमरोद (पंजाबमें) मरे। सिवाय दो गर्भवती रानियोंके और सब ने सत किया। सुविख्यात अजीतसिंह आपहीके पुत्र थे।

जहाँगीर–(मुगल बादशाह दिल्ली). बादशाह अकबरका बेटा स० ई० १५६९ में पैदा हुआ। कहते हैं कि, नामी फकीर शैखसलीम चिश्तीकी दुआसे फतेहपुर सीकरीमें इसका जन्म हुआ। अकबरके मरनेपर स० ई० १६०५ में गद्दीपर बैठा। बड़ा शराबी था लेकिन दूसरोंको शराब पीनेसे बहुत रोकता था, इसी लिये कोई इसका कहना ठीक ठीक नहीं मानता था। इसने रेशमकी डोरीमें

बांधकर सोनेकी घंटियां अपने महलमें लटका रक्खी थीं। डोरीका दूसरा सिरा महलसे बाहर लटकता था। इन घंटियोंके बजा देनेसे हर कोई फरियादी बादशाहके पास तुरन्त बुलाया जाता था। तख्त पर बैठते ही इसने शेर अफ़गन खां बंगालके सूबेदारको मरवा डाला और उसकी बीबी नूरमहलको अपनी बेगम बना लिया और नूरजहां नाम रक्खा। जहांगीर नूरजहांका वशीभूत था। सरकारी कागज़ोंको भी नूरजहां ही सुना करती और हुक्म दिया करती थी। नूरजहां का चेहरा जहांगीरके साथ सिक्के पर भी छपता था और उसके बापको वज़ीर का ओहदा दिया गया था। अन्तमें महावतखां पंजाबके सूबेदारने जहांगीर को कैद कर लिया, पर नूरजहां बड़ी चालाकीसे उसको छुड़ा लाई। थोड़े ही दिन बाद स० ई० १६२७ में लाहौरको जाते वक्त रास्तेमें जहांगीर मर गया और क़िलेके बाहर नूरजहांके बाग़में दफनाया गया। यह विचारशील न था, आलसी था आर राजकाजकी ओर ध्यान न देता था।

जंगबहादुर—(सर जङ्गबहादुर, जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई० नैपालराज्यके मन्त्री) नैपालके रहनेवाले एक प्रतिष्ठित वंशोत्पन्न क्षत्री थे। स० ई० १८४६ में नैपाल राज्यके वज़ीर हुए। स० ई० १८५० में इंगलैंडकी सैरको गये तबसे नैपाल दर्बार और ब्रिटिश गवर्नमेंटमें गाढी मित्रता हो गई। स० ई० १८५६ म नैपाल दर्बारने इनको महाराजकी उपाधि दी। स० ई० १८५७ के ग़दरमें नैपाल दर्बारने अपनी गोरखा पल्टन्से सूबे अवधमें बग़ावत मिटवा दी। इस सहायताके पुरस्कारमें जंगबहादुरको जी० सी० एस० आई०, जी० सी० बी० की उपाधियां ब्रिटिशगवर्नमेंटने प्रदान कीं। स० ई० १८७६ में जब प्रिन्स आफ वेल्स् नैपाल पधारे थे तो जंगबहादुरने खरीता पेश किया था। ब्रिटिशराज्यमें इनकी सलामी तोपके १९ फैरोंकी थी। स० ई० १८७७ में मर गये शीरचीतका शिकार खूब करते थे। अनेक प्रकारके जानवरोंके पालनेका शौक था। जब यह इंगलेंड गये और महारानी विक्टोरियाने इन्हें दावत दी तो इन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि मैं आर्य्य हूं और आपके साथ भोजन करके धर्मच्युत हो जाऊंगा। इनके कुटुम्बी अब प्रधान मंत्री और सेनापति हैं।

टामस रो—(सरटामसरो–Sir Thomas Roe. स.ई. १६१४) में इंग्लैंडके बादशाह चार्लस प्रथमने इनको राजदूत नियत करके मुगलबादशाह जहांगीरके

दर्बारमें हिंदोस्तान भेजा । सरटामसरोने यहां ४ वर्ष रहकर अंग्रेजोंकी तिजारती कोठियां बंगाल, मद्रास इत्यादिमें स्थापन करनेकी आज्ञा प्राप्त की । इंग्लेंड लौट कर इन्होंने अपने सफ़रका वृत्तांत छपवाया । हिंदोस्तानसे सरटामसरो बहुतसी हस्तलिखित पुस्तकें संग्रह करके ले गये थे, जो इन्होंने स० ई० . १६२८ में किसी पुस्तकालयकी भेंटकर दीं ।

टालस्टाय, लियो (१८२५-१९१०) रूसका महान् लेखक और सुधारक । यह एक प्रतिष्ठित घरानेमें जन्मा था पर स्वयं किसानों जैसाजीवन बिताना पसन्द करता था । आरम्भमें यह कालेज छोड़नेके बाद युद्धमें गया जहांसे इसने कुछ कहानियां लिखीं, वे जनताको और रूसके ज़ारका इतनी पसन्द आईं कि उसे युद्धसे वापस बुलवा लिया गया । पीटर्सबर्गकी सोसायटीने उसका दिल खोलकर स्वागत किया । इनमें तुर्जनीव नामक एक अन्य रूसी लेखक भी था । पर टालस्टायकी इस प्रसिद्ध लेखकसे कभी नहीं पटी । तुर्जनीव पुरानी रूढियोंको माननेवाला था और टालस्टायने उनका खण्डन करनेको जन्म लिया था । इस स्वागतके बाद टालस्टाय विशेषकर अपनी जायदाद हीमें रहने लगा और किसानोंका दु:ख दारिद्र्य दूर करनेका उपाय सोचने लगा । इसी समय ज़ार निकोलस गद्दीपर बैठा और उसने अनेक सुधार किये जो रूसके कुलीन समुदायको नापसंद आये, पर टालस्टायने उन्हें पसन्द किया । इधर इसका धार्मिक और साहित्यिक पुस्तक लेखन जारी था । कभी कभी यह अपने प्रारम्भिक जीवनके भ्रष्ट रहन सहनके ऊपर बेतरह अनुतप्त हो उठता था । १८६२ में इसका विवाह हुआ । वैसे यह अपनी पत्नी पर बहुत अनुरक्त रहता था । पर हालहीमें इसकी पत्नीके पत्र प्रकाशित हुये हैं जिनसे पता चलता है वह अपने पतिकी कामलिप्सासे ऊब गई थी । इसने अनेक धार्मिक और औपन्यासिक पुस्तकें लिखी हैं जिनमेंसे अनेक में इसके समाजवाद सम्बन्धी सिद्धान्त देखनेको मिलते हैं । यह निर्धन समुदायको ही वास्तवमें सबका स्वामी समझता था और पूंजीपतियोंको उनका रक्त-शोषक । साथही यह रूसकी प्रचलित दण्ड व्यवस्थाके विरुद्ध था और दण्डित व्यक्तियोंके प्रति अधिक सहानुभूतिका व्यवहार चाहता था । एक अवसर पर यह तुर्जनीवसे बिगड़ गया क्योंकि वह अपनी लड़कीकी बड़ाई कर रहा था कि वह निर्धनोंके वस्त्र सीती है । टालस्टायने कहा कि अनेक बढिया कपड़े पहन

कर गरीबोंके गन्दे वस्त्र सीनेका दिखावा करना कुछ अच्छा नहीं है। इसपर तुर्जनीव उससे लड़नेको उतारू होगया, पर मामला शान्त होगया। यह रूससे बाहर केवल तीन बार गया और सो भी पांच वर्षके भीतर भीतर।

इसने अनेक परिश्रमके बाद War & Peace, Anna Karenina और Resurrection लिखीं। इसकी सारी कृतियोंमें ये तीन पुस्तकें सर्व श्रेष्ठ हैं। War & Peace में नैपोलियनके ज़मानेके रूसका वर्णन है। इसमें पीरि और एण्ड्र्यूके चरित्रोंमें टालस्टायने स्वयं अपना चरित्र कूट कूट कर भर दिया है। War & Peace निस्सन्देह संसारका सर्व श्रेष्ठ उपन्यास है। यह बहुत बड़ा है। प्रारम्भमें ६ जिल्दोंमें निकला था पर अब इसकी तीन जिल्दें हो गई हैं। Anna Karenina एक दूसरा उच्चकोटिका उपन्यास है। वास्तवमें संसारके विद्वान आलोचक अभीतक इस विषयमें एकमत नहीं होसके हैं कि इन दोनों उपन्यासोंमेंसे कौनसा उत्कृष्ट है। Auna Karenina में एक सजीव पढ़ी लिखी महिलाका पतन दिखाया गया है। उस महिलासे हमें घृणाके बदले उल्टे सहानुभूति होती है। इसमें भी लेविनका चरित्र टालस्टायका चरित्र है। लेविनके भाई निकोलसके मरने-पर उसकी जैसी अवस्थाका चित्रण किया गया है वैसा वास्तवमें टालस्टायके भाईकी मृत्युपर स्वयं उसके साथ घटित हुआ था। Resurrection में एक कुलीन वंशज युवक द्वारा एक निरीह बालिकाके भ्रष्ट किये जानेका चित्रण है। इसमें लेखकके समष्टिवाद सम्बन्धी विचार भी देखनेको मिलते हैं। जिस समय यह उपन्यास लिखा गया था उस समय कुछ काकेशियन लोगोंपर धर्म सम्बन्धी अन्तरके कारण मास्कोके अधिकारी बड़ा अत्याचार कर रहे थे। टालस्टायने इनका उद्धार किया और इनकी आर्थिक सहायताके लिये यह पुस्तक लिखी जिसमें इनका भी ज़िक्र है।

टालस्टाय अपनी तीसरी अवस्थामें पहुंचनेपर संसारसे बिल्कुल विमुख होगया और अपनी सम्पत्ति अपनी पत्नीके नाम करके जूते बनाने और खेती बाड़ीका काम करनेमें रत रहने लगा। इस समयके इसके धार्मिक विचार Confessions नाम्नी पुस्तकमें सन्निहित हैं। यह देहातियोंके ऊपर सीधी साधी कहानियां भी लिखने लगा जिनकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि सरकारने उनका निषेध करा दिया। अंतमें यह वृद्ध होकर निमोनियाके रोगसे आक्रान्त होकर परलोक सिधारा। तत्कालीन ईसाई समाज इसके विरुद्ध होगया था।

टीपू सुल्तान–पिता हैदरअलीके बाद स० ई० १७८२ में मैसोरकी गद्दी पर बैठा। उस समय मैसोर राज्यमें १ लाख फौज थी और कोशमें ३ करोड़ रुपया और बहुतसी जवाहिरात थीं। एक ब्राह्मण इसका मंत्री था। टीपू पिताके समान ही रणकुशल और निर्दयी था। ३० हजार ईसाइयोंकी इसने सुन्नत करवाई और १ लाख हिंदुओंको मुसल्मान किया। प्रजा इस निर्दयीके अन्यायसे अकुला उठी थी। स० ई० १७९० में मरहटा, निज़ाम और अंग्रेज़ोंने मिलकर इसकी राजधानी श्रृंगापट्टनका घेरा किया। दो वर्षतक लड़ाई जारी रही। अंतमें संधि हुई, जिसके अनुसार टीपूको अपना आधा राज्य और तीन करोड़ रुपया लड़ाईका खर्चा देना पड़ा। इस लड़ाईके बाद टीपूका बल पराक्रम बहुत घटगया था, पर उसके दिलमें बदला लेनेकी आग भभकती रहती थी। उसने फरासीसोंसे मेल किया। यह देखकर लार्ड वेलिज़ली, ब्रिटिश गवर्नर जेनरल हिन्द ने टीपूकी राजधानीका स० ई० १७९९ में घेरा किया और टीपू बड़ी वीरतासे लड़कर मारा गया। अङ्गरेज़ों, मरहटों और निज़ामने उसका राज्य आपसमें बांट लिया और मैसोरके आसपासके थोड़ेसे मुल्क पर मैसोरके प्राचीन हिन्दू राज्यवंशका एक लड़का बिठलाकर मैसोरकी रियासत बनादी।

टेनीसन–(Alfred Tenneyson) इनका पूरा नाम ऐल्फ्रेड टेनीसन था। इनके बाप लिन्कनशायरके पादरी थे। कैम्ब्रिज देश विद्यालयमें पढ़कर इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की थी। पहिले पहिल स० ई० १८३० में इन्होंने निजकविताकी एक पुस्तक छपवाई और स० ई० १८४२ के बाद इनके रचे अनेक और ग्रन्थ भी छपे, जिनसे इनकी प्रसिद्धि दिन प्राति दिन बढ़ती गई, यहां तक कि, अंग्रेज़ीके उत्तम कवीश्वरोंमें इनकी गणना हुई। स० ई० १८५२ में कवि वर्डस्वर्थके मरने पर इंग्लैडके राजकविका पद इनको दिया गया, स० ई० १८५५ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयने डी० सी० एल० की पदवी इनको प्रदान की, और स० ई० १८८३ में ब्रिटिशगवर्नमेण्टने पीअरेज (Peerage) की पदवी इनको प्रदान की। स० ई० १८९० में ८० वर्षकी उम्रमें मरे।

टोडरमल–(अकबरके दीवान आला) दर्बार अकबरीके नवरत्नोंमें इनकी गणना है। लाहौरमें एक खत्रीके घर जन्मे थे और ५ ही वर्षकी उम्रमें पितृ-

विहीन होगये थे । माताने अपने मायकेमें गुजरातकी किसी ग्रामीण पाठशालामें पढ़ाया था। ११ वर्षकी उम्रमें यह राजा हरवंसरायके यहां नौकर होकर लाहौर गये। ३ वर्ष बाद हरवंसरायके मरनेपर इन्होंने शेर शाहसूरके यहां मुंशियोंमें नौकरी करली। शेरशाहसूरके मरने पर बादशाह अकबरकी फौजमें नाम लिखाया। योग्य पुरुष तो थेही, थोड़े ही दिनोंमें वर्दी मेजरके पदपर पहुँच गये और दाऊदखाँ सूबेदार बङ्गालाको जो बाग़ी होगया था बड़ी वीरतासे परास्त किया। स० ई० १५८० में अकबरने इनको बंगालका सूबेदार नियत किया। वहां रहकर इन्होंने निम्नस्थ सुप्रबन्ध किये जिनके कारण इनका नाम अबतक लोगोंकी ज़बान पर है:—

१ ईरानदेशके अनुसार हिंसाब किताबका तरीक़ा जारी किया।

२ खेतोंकी पैमायश कराके सीमाबन्दी की और लगान लगाया।

३ रुपयेके ४० दाम ठहराये जिससे सर्व साधारणको लेने देनेमें सुभीता हुआ।

४ राज्यभारमें डिपुटी कमिश्नर नियत किये।

५ सरकारी घोड़ोंके दाग लगवाये।

६ सहस्रों लौंडियाँ और गुलामोंको बन्धनमुक्त कराया। ज़मीनकी पैमायशका सिल्सिला अभीतक बदस्तूर है।

बादशाह अकबरने इनको दीवान आलाके पदपर नियत करके दिल्ली बुला-लिया। पञ्जाबी खत्रियोंमें तीन साला सियापेकी रसमको उठाकर वार्षिक रसम इन्होंने जारी की। ये फार्सी, अरबी और संस्कृतके पूर्ण विद्वान् थे। भाषाकविता भी अच्छी करते थे। भागवतका फारसीमें उल्था किया था। निज पूर्वजोंके धर्मको दृढ़तासे मानते थे। काशीवासी पं० रामदैवज्ञने "टोडरानन्द" ज्योतिषग्रन्थ इनके नामसे रचा था।

स० ई० १५८९ में ७२ वर्षके होकर लाहौरमें मरे। इनका इकलौता बेटा धारासिन्धकी किसी लड़ाईमें मारागया। लहिरी ग्राम जि० सीतापुरके रहनेवाले टोडरमल कायस्थ, शाहजहांके दरबारमें वज़ीर थे।

टोलेमी प्रथम—(Ptolemey) सिकन्दर आज़मका सौतेलाभाई था। सिक-न्दरके वक्तमें सेनापति रहा और उसके साथ देश विदेश घूमा। सिकन्दरके निःसंतान

मरनेपर राज्य सेनापतियों और रिश्तेदारोंके बोचमें बटा और मिश्र देशका राज्य टोलेमीके हिस्सेमें आया । इसने बड़े न्याय और प्रबन्धसे राज्य किया और उत्तरी अफरीकाको विजय किया । इसकी राजधानी अस्कंदरिया पृथ्वी भरकी तिजारती मंडी थी । अस्कंदरियामें एक रोशनीका मीनार, एक अजायबखाना और एक पुस्तकालय इसने खोला था । इस पुस्तकालयमें ६० लाख पुस्तकें करोड़ों रुपयेके खर्चसे भूमण्डलके अनेक भागोंसे ढुँढवाकर संग्रह कर ली गई थीं । जब मुसलमानोंने मिश्रदेश फ़तेह किया तो खलीफा उमरके हुक्मसे यह पुस्तकालय जलाकर बर्बाद कर दिया गया । टोलेमी बड़ा विद्यानुरागी था । उसने स्वयं कई ग्रन्थ रचे थे जिनमेंसे एक सिकन्दरके जीवनचरित्रकी पुस्तक थी । स० ई० से २८५ वर्ष पूर्व मरा ।

टोलेमी–(ज्योतिषी) स.ई. १४० में मिश्रमें हुआ–ज्योतिष और भूगोलपर इसने बड़ी बड़ी पुस्तकें रची थीं । "मजस्ती" नाम ज्योतिष सिद्धांत इसका रचा हुआ है । इसी सिद्धांतके अनुसार फिरङ्गी लोग हज़ारों वर्ष तक मानते रहे कि पृथ्वी ठहरी हुई है और उसके चौगिर्द सूर्य्य चंद्र इत्यादि ग्रह घूमते हैं । इसीका दूसरा नाम बतलीमूस है ।

डफरन–(मार्कुइस-आफ डफ़रन Marquis of Duffierin) इनका असली नाम फ्रेडरिक टेम्पिलल्वैकवुड था । स० ई० १८१४ में वायसराय नियत होकर हिंदोस्तान आये । इनके समयमें ऊपरी ब्रह्मा विजय हुआ, अमीर क़ाबुलसे मित्रता भाव जारी हुआ और आइन सभायें स्थापित हुईं ।

सबसे पहिले ज़नाना हस्पताल इन्हींके ज़मानेमें लेडी डफ़रिनके उद्योगसे जारी हुआ है । एक समय महारानी पन्ना बहुत बीमार हुई । रोग ऐसा था जिसका इलाज लज्जाके कारण पुरुष डाक्टरसे नहीं करा सकती थीं । बहुत कष्ट सहन करने पीछे एक डाक्टर मेमने लखनऊसे आकर महारानीको आराम किया । इन्हीं मेमको महारानीने लन्डन भेजकर राजराजेश्वरी विक्टोरियासे जनाना हस्पताल जारी करानेके विषयमें विनती की ।

डागीर–(Dawgere) एक फरासीसी था जिसने स. ई. १८२९ में फोटोग्राफी (अक्सी तस्वीरें खींचनेका इल्म) अन्वेषण किया ।

डामाजी गायकवाड़ प्रथम–(बरोडा राज्यके संस्थापक) यह केरोजी मरहटाके पुत्र राजा साहू सतारा गढ़वालेके दर्बारमें सेनापति थे। मुगलों तथा अन्य शत्रुओंसे ये बड़ी वीरतासे लड़े थे जिसके पुरस्कारमें साहूने इनको मरहटा दलमें दूसरे दर्जेका पद, शमशेर बहादुरका खिताब और गुजरात प्रांतमें बड़ी जागीर दी थी। स. ई. १७२० में डामाजी गायकवाड़का देहांत हुआ। बरोदामें अबतक इन्हींकी सन्तति राज्य करती है। पहिले पहिल डामाजी गायकवाड़ पेशवाके दर्बारमें छोटे दर्जेके नौकर थे। बालापुरकी लड़ाईमें इन्होंने बड़ी वीरतासे लड़कर मुग़ल सम्राट् दिल्लीकी फ़ौजके दांत खट्टे कर दिये। निदान मरहटा दलके सेनापतिकी सिफ़ारिशपर राजा साहूने इनको उपसेनापति नियत किया।

डामाजी गायकवाड़ द्वितीय–(बरोदानरेश). पिल्लाजीके पुत्र तथा डामाजी गायकवाड़ प्रथमके पौत्र थे। स० ई० १७३१ में पिल्लाजीके बाद इन्होंने गद्दीपर बैठकर ४० वर्ष पर्य्यंत लड़ भिड़कर गुजरात तथा आसपासके देशोंको स्वराज्यमें मिलाया। स० ई० १७३१ में पानीपतकी लड़ाईमें इन्होंने बड़े बड़े वीरताके काम किये और स० ई० १७३२ में शहर बरोदा फतेह किया। पश्चात् शहर पट्टन और गुजरातकी प्राचीन राजधानी अहमदाबादपर अधिकार जमाया। अन्तमें काठियावाड़के सब राजोंने परास्त होकर इनको राजस्व देना स्वीकार किया। इनके पीछे इनके २ पुत्र गोविंदराव तथा फतेहसिंह क्रमशः बरोदाकी गद्दीपर बैठे। स० ई० १८०३ में रियासत बरोदाने ब्रिटिश गवर्नमेंटका आधिपत्य स्वीकार किया। तबसे एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट राजधानी बरोदामें रहता है। गवर्न-मेंट हिंदको राजस्व दिया जाता है।

डिकन्स–चार्ल्स जॉन हफ़म (१८१२–१८७०) निर्धन माता पिताके पुत्र। पहले इन्हें कारखानेमें काम करना पड़ा। पर इन्होंने पढ़ना लिखना न छोड़ा। इस अवस्थाका चित्र इन्होंने अपने उपन्यास डेविड कापरफील्डमें खींचा है। बादको एक वकीलके रिपोर्टर होगये। इसके बाद एक दैनिक पत्र मार्निंग, क्रानिकलकी ओरसे पार्लिमेण्टमें रिपोर्ट लेने जाने लगे। इसी अवस्थामें इनका प्रेम एक प्रधान सम्पादककी बड़ी कन्याके साथ होगया और इनकी तन्ख्वाह भी बढ़ गई। अब इन्होंने तीव्र व्यंग्य युक्त पत्र पत्रोंमें छपाने आरम्भ किये जिससे इनकी

बड़ी ख्याति हुई। धीरे धीरे इनकी अवस्था अच्छी हो चली और ये एक के बाद दूसरा उपन्यास निकालने लगे। ओलीवर ट्विस्टने बड़ी प्रसिद्धि पाई । मार्टिन शूज़ल विट भी बड़ा सुन्दर रहा। चूंकि यह स्वयं दरिद्रताकी गोदमें पले थे। इसलिये इनका खींचा समाज चित्र बड़ा ही सजीव और हृदयग्राही होता था इनका नाम लण्डनके बच्चे बच्चेकी ज़ुबान पर फिरने लगा और इनकी पुस्तकों का अनुवाद जर्मन और फ्रेंचमें हुए। यह अमरीका गये और वहां इन्होंने व्याख्यान दिये। महारानी विक्टोरियाने इन्हें कोई उपाधि स्वीकार करनेको बहुतेरा दबाया, पर इन्होंने स्वीकार न किया। आज दिन यह संसारके इने गिने अमर उपन्यासकारोंमें से ह। मरने पर यह वैस्टमिनस्टर अबमें दफ़न किये गये।

डैन्टन–(जार्ज, जेफ़स) (१७५९–१७९४) फ्रांसकी क्रांतिका एक प्रमुख व्यक्ति। क्रांतिके प्रारम्भमें तो इसने कोई विशेष कार्य्य नहीं किया, पर १७९० से इसकी आवाज़ सुनाई देने लगी । इसे पैरिसके एक विभागका शासक बनाया गया। फ्रांसके बादशाह लुईने अपनी पत्नीके साथ विदेश भाग जानेकी चेष्टा की, यह बड़ी भारी भूल थी और इन दोनोंको रोककर टुलिर्समें ही रक्खा गया। १७९२ में की १० अगस्तको राजारानीने लैजिस्लेटिव एसेम्बलीकी शरण ली जिससे जनता उन्हें मार न डाले। जनताको इस प्रकार उत्तेजित करनेमें डेन्टनकाही हाथ था। इसे न्याय मन्त्री बनाया गया और राजारानीको गद्दीसे उतार दिया गया। १७९३ में जब राजा रानीको फांसी देनेका सवाल उठा तो यह भी राय देने वालोंमें था। दोनोंको मार डाला गया । पर क्रांतिकारी दल अभी इतनेही सन्तुष्ट नहीं था । एसेम्बली बर्खास्तकर दी गई और कन्वेन्शन द्वारा शासन होने लगा। इसमें अतिवादी आ घुसे, पर उनका नेता अन्तमें गिरफ्तार करके मारडाला गया। मगर इतन पर भी कन्वेन्शनको उदार दल वाला नहीं कहा जासकता था। वह डैन्टनकी दया–व्यवहारकी पालिसीको सन्देहकी दृष्टिसे देखता था। डैन्टन जनताको बहुत प्रिय था और राब्सपीरी अपना प्रभुत्व चाहता था। अन्तमें राब्सपीरी कन्वेशनकी योजना से सहमत होगया। डन्टन और उसके दलवालोंको गिरफ्तार किया गया । पर डेन्टनने क्रान्तिकारी विचारकोंके सामने कुछ ऐसी तेजस्विता दिखाई कि वे डरने लगे कि जनता न भड़क जाये । उन्होंने झटपट उसे मृत्यु दण्ड

दे दिया। डेन्टन अपने बारह साथियों सहित गिलेटीनके चाकूके नीचे ले जाया गया। वहां उसने अन्तिम समय ये शब्द कहे "यह न समझना कि राब्स-पीरी बच जायगा। वह भी मेरे पीछे पोछे आयगा। मछेरा बनना अच्छा, शासनमें भाग लेना अच्छा नहीं।" और ऐसा ही हुआ। तीनही महीने बाद राब्सपीरीको भी प्राणदण्ड दियागया। डेन्टनके शब्द मुर्दासे मुर्दा दिलमेंभी जान डाल देते थे। पर वह देशका विध्वंस नहीं चाहता था और सच्चा राजनीतिज्ञ था।

डलहौज़ी-(James Andrew Lord Dalhowsie) इनका पूरा नाम जेम्स ऐन्डरू लार्ड डलहौजी था। हारो और आक्सफोर्डमें पढ़कर एम० ए० की परीक्षा पास की थी। स० ई० १८४३ में बोर्ड-आफ-ट्रेडके उप-प्रधान हुये। स० ई० १८४७ में गवर्नरजेनरल नियत होकर हिन्दोस्तान आये। पंजाब इन्हींके समयमें सरकारी अमलदारीमें मिलाया गया। नागपुर, सतारा, झांसी, बरार और अवध इन्हींके समयमें मिलाये गये। नहरें, सड़कें, रेल, तार इत्यादि इन्हींके वक्तमें हिन्दोस्तानमें जारी हुये। ये चाहते थे कि, शनैः शनैः सब देशीराज्य ब्रिटिश राज्यमें मिला लिये जायें और किसी राजाको गोदलेनेकी सनद न दी जावे। स० ई० १८५७ के गदरके कारणोंमें लार्ड डलहौज़ीकी यह राजनीतिभी मानी जाती है।

डेविड-माइकेल (१८४६-१९०६) आयरिश देशभक्त। इसके बापको कर अदा न करनेपर ज़मीनसे बेदख़ल कर दिया गया था। यह स्वयं एक छापेखानेमें नौकर होगया पर इसका एक हाथ मशीनमें आगया। १८७० में यह आयर्लैंडमें अस्त्र शस्त्र भेजनेके अपराधमें १५ वर्षके दण्डका भागी हुआ। सात वर्षबाद छोड़ दिया गया और तत्काल क्रांतिकारी दलमें भरती होगया। इसने भड़काने वाली स्पीचें कीं और अबकी बार पोर्टलेण्डको निर्वासितकर दिया गया। छोड़ा गया, पर १८८३ में फिर तीन महीनेके लिये जेल भेज दिया गया। पार्लीमेण्टके लिये निर्वाचित किया गया, पर दण्डित होनेके कारण इसे पार्लि-मेण्टमें बैठने न दिया गया। १९०६ में यह मर गया। सच्चा देशभक्त था और अङ्गरेज़ोंका कट्टर दुश्मन था। इसने अमेरिकन और योरुपियन पत्रोंमें अनेक अङ्गरेज़ विरुद्ध तिक्त लेख छपवाये। पर यह हमेशा साफ हथियारोंसे लड़नेवाला था।

ड्यूक-आफ़-वेलिङ्गटन (Sir Arthur Wellesley Duke of Wellington) पूरा नाम सर आर्थर वेलिज़ली ड्यूक-आफ-वेलिंगटन था। इन्होंने कुछ दिन इंग्लैण्डमें और फिर फ्रांसमें रहकर विद्या पढ़ी। स० ई० १७८७ में अंग्रेजी सेनामें भरती हुये। स० ई० १७९७ में हिन्दोस्तान आकर मैसोरके गवर्नर नियत हुये। असाईकी लड़ाईमें जो स० ई० १८०३ में हुई। इन्होंने ८०० सिपाहियोंसे सेंधियाकी ३० हज़ार फ़ौजको परास्त किया। स० ई० १८०५ में इंग्लैंडको वापिस गये और अनेक कठिन अवसरोंपर राज्य-सेवा प्रशंसनीय तौरपर की। नेपोलियन बोनापार्टको वाटरलूकी लड़ाईमें परास्त करके ड्यूक-आफ वेलिङ्गटनकी उपाधि पाई। फिर बड़े बड़े ओहदों पर रहे। १८२८ में इन्हें महामन्त्री बनाया गया। पार्लियामेण्टने अपने खर्चसे इनको राजसी ठाटसे दफनाया। यह लार्ड वेलिज़ली गवर्नर जेनरल हिन्दके बड़े भाई थे।

ड्रेक-(सरफ्रान्सिस ड्रेक-Sir Francis Drake) (१५३९-१५९५) इस प्रसिद्ध इंग्लैंडवासी अमीरूल बहिरने रानी एलिज़ाबेथके समयमें स० ई० १५७९ में २ वर्ष १० महीनेमें पृथ्वीकी परिक्रमा की थी। स० ई० १५८९ में यह पार्लियामेण्टका मेम्बर हुआ।

ढोलाराउ-इन्होंने जयपुर प्रान्तमें कछवाहोंका राज्य स० ई० ९६७ में स्थापन किया। इनके पुत्र अथवा पौत्रने पुरानी राजधानी अम्बरको मीना लोगोंसे फतेह किया था। स० ई० १७२८ में जयसिंह सवाईने जयपुर बसाया और अम्बरकी जगह उसको अपनी राजधानी बनाया। मारू नामक स्त्रीसे ढोलाका अत्यन्त प्रेम था, जिसके विषयमें गीत अबतक गाये जाते हैं। ढोलाके पश्चात् इस गद्दीपर बैठनेवाले राजोंमें सवाई माधोसिंहजी (स्वर्गीय नरेश) १०६ वें थे।

ताजबीबी-इसका असली नाम अर्जुमंदबानु बेगम था और शाहजहां बादशाह दिल्लीके साथ शादी होनेपर मुमताजमहल लकब पाया था। यह नूरजहांके भाई आसफ़खाँ वज़ीरकी बेटी थी। स०ई० १५९२ में पैदा हुई। स० ई० १६१२ में शाहजहांके साथ इसकी शादी हुई। स० ई० १६३१ में बुरहानपुरमें मरी। मरते समयका इसका वृत्तांत यों है कि यह उन दिनों हामिला थी। दैवगतिसे १ दिन गर्भमें बच्चा रोया। जिसके गर्भमें बच्चा रोता है वह स्त्री जीती नहीं है।

निदान ताजबीबीने बादशाहको बुलाकर गले लिपट रोकर आग्रह किया कि आप अब दूसरी शादी न करें क्योंकि दाराशिकोह आदि ४ बेटे और ४ बेटियें मौजूद हैं। प्रार्थना की कि अभी ऐसा मकबरा बनवादेवें कि जिसके समान पृथ्वीपर दूसरा न निकले। शाहजहांने इन दोनों बातोंपर अमल किया। पहिले तो ताजबीबीकी लाश बुरहानपुरमें गाड़ दी गई थी फिर जब आगरेमें रोज़ा बनकर तैयार होगया तो वहांसे हड्डियें उखाड़कर रोज़ामें दफनाई गईं।

तांतिया टोपी–(सन् ५७ के गदरका प्रसिद्ध बागी). यह पूनाके जंगलोंमें घूमता पकड़ा गया और १८ अप्रेल स० ई० १८५९ को फांसीपर चढा दिया गया। फांसी दिये जानेसे पहिले जो इसने अपना बयान लिखाया वह यह है–"मैं पूनाका रहनेवाला ब्राह्मण हूं।३० वर्ष हुए तब पूनासे मध्यहिंदमें आया और तोपखानेमें चाकरी करली। बादको विठूर (कानपुर) आकर नाना साहिबके यहां नौकरी की। गदरके समय मैं नाना साहिबहीका नाकर था। कानपुरमें मेरेही उकसानेसे मेमों और उनके बच्चोंको बागियोंने मारडाला। नाना साहिब मेरी इस कार्य्यवाहीपर बहुत नाराज़ हुये, क्योंकि वे उनकी हिफाज़तका वचन दे चुके थे। १० अक्टूबरको सन् ५७ को बागियोंकी ८ हजार सेनाने जो आगरेमें अंग्रेज़ोंपर धावा किया था; उसका सेनापति मैंही था। यदि मैं धोका न खा जाता तो अंग्रेज़ न जीत पाते। बेतवाकी लड़ाईमें मेरे पास २२ हजार सेना और १३० तोपें थीं। इससे अधिक फौज मेरे अधिकारमें और कभी नहीं रही थी।

तांतिया भील–(डाकूराज) जिला नीमर मुल्क बरोडाके किसी गांवमें स०ई०१८४२की साल पैदा हुआ। इसके बहुतसे शत्रु होगये थे,उनसे बदला लेनेके लिये यह डाकू होगया। पुलिस उसके पकड़नेकी फिक्रमें मुद्दतों तक रही,पर उसने अनेक सिपाहियोंको नासिकाहीन कर दिया। पुलिस अफसरोंके सामनेसे उनके घोड़े ले लेकर भाग गया,और कितनी दफा हवालातसे निकल गया। भील लोग तांतियाके सुशील स्वभावसे बहुत प्रसन्न थे,वे उसका पता किसीको नहीं बताते थे और वह भी उनकी सब प्रकार मदद करता था। इसने एक दफे ताप्ती नदीके तीर एक दिनमें भूखोंको ६ हज़ार रुपये दे दिये थे। अन्तमें जब पुलिस कुछ न कर सकी तो फौजको तांतियाके पकड़नेका हुक्म हुआ। सर लेपिल ग्रेफिल और रिसालदार

मेजर ईश्वरीसिंहने एक स्त्रीकी मददसे जिससे तांतियाकी मुलाकात थी, इस डाकूको सं० ई० १८८९ में पकड़ लिया। जब्बलपुरमें उसका मुकद्दमा हुआ और फांसीका हुक्म मिला। वह अपने बयानमें झूंठ नहीं बोला।

तानसेन—(गवैया) इतिहासकर्ताओंकी राय है कि इस सहस्राब्दीमें तानसेनके समान दूसरा गवैया नहीं हुआ। इसके पूर्वजोंका निकास पंजाबका था, पर इसके बाप मकरंद पांडे गौडब्राह्मण ग्वालियरमें रहते थे। संगीत शास्त्रकी प्रथम शिक्षा उसने निज पितासे पाई। विशेष विद्यापठनार्थ प्रसिद्ध संगीतज्ञ गोकुलस्थस्वामी हरिदासजूको गुरु किया और बादको मशहूर गवैये शेख मुहम्मद गौस फकीरको अपना उस्ताद बनाया। शेख़जीने अपनी जीभ इसकी जीभमें लगादी, जिसके प्रभावसे आवाज खूब खुल गई और यह मुसल्मान होगया। तानसेनने योग्य होते हुए भी अपनेको सदैव तुच्छ ही समझा। जिसको संगीत शास्त्रका विद्वान् जाना उसीके पास गया और नम्र हो जिस प्रकार हो सका विद्या पढी। अन्तमें सङ्गीत शास्त्रका पूर्ण विद्वान बनकर बादशाह अकबरके दर्बारमें पहुँच कर नौकर हो गया। बादशाह अकवर तथा दर्बारी लोग इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते थे। इतिहासोंमें इसके गानेकी बड़ी प्रशंसा की गई है।

ग्वालियरमें दो इमलीके दरख्त अब तक तानसेनके नामसे प्रसिद्ध हैं। गवैये उनके पत्ते खसोट करके खाते हैं और कहते हैं कि उनके खानेसे आवाज़ खुल जाती है। कई पुत्र छोड़कर दिल्लीमें स० ई० १५८८ की साल मरा।

ताराबाई—रायसूरसेन बिजनौरवालेकी कन्या चित्तौड़ नरेश रायमलके पुत्र पृथ्वीराजको विवाही गई थी। लैलाअफग़ानने विजनौरके सिवाय सब मुल्क रायसूरसेनसे छीन लिया। ताराने पिताको राज्यक्षीण होनेसे दुःखित देखकर स्त्रियोंके व्यसन सब त्याग दिये और घोड़ेपर चढना तथा तीर कमान चलाना इस अभिप्रायसे सीखना शुरू किया कि कभी अपने पिताका गया हुआ राज्य अफग़ानोंसे वापिस ले लूंगी। अवसर पाकर सूरसेनने अफग़ानोंपर चढाई भी की, तारा निज पिताके साथ घोड़ेपर सवार होकर धनुष बाण लेकर गई, पर हार हुई। अन्तमें ताराने पृथ्वीराजके साथ इस शर्तपर शादी की कि उसको अपने ससुरका राज्य अफगानोंसे छीनकर देना होगा, मुहर्रमके दिनोंमें जब

अफगानलोग ताजियोंमें लगे हुये थे, पृथ्वीराजने अवसर पाकर लैलापर चढाई की थी और शहरभर क़ब्जा कर लिया। इस युद्धमें ताराभी पतिके साथ गई। पृथ्वीराजको उसके सालेने किसी तुच्छ निरादरका बदला लेनेके लिये मलाबारके समीप मिष्टान्नमें विष मिलाकर दे दिया। रानीके पहुँचनेसे पहिलेही पृथ्वीराजका देहांत होगया। रानीने पहुँचकर मृतक शरीरको गोदमें लेकर सत् किया। इन दोनों वीरोंके नामकी राजस्थानमें अवतक बड़ी प्रतिष्ठा है।

तुक्कोजीराउ हुल्कर–(इन्दौरकी महारानी अहिल्याके सेनापति)। इन्दौर राज्यके संस्थापक मल्हारराव हुल्करके वंशमें थे। मल्हररावके बाद जब उनकी पुत्रवधू अहिल्याके शिर राजकाजका भार आ पड़ा तो उन्होंने तुकोजीको सुयोग्य समझ अपना सेनापति नियत किया और अनेक काम जो स्त्री होनेके कारण महारानी खुद नहीं करसकती थीं इनको सौंपे। यह बड़े स्थिर प्रकृति, धर्मभीरु, रणकुशल और राजनीतिनिपुण थे। महारानी अहिल्यासे मातुःश्री कहकर बोलते थे और वह भी इनको पुत्रवत् मानती थी। यह ईश्वरसे डरते रहते थे। कभी कोई काम ऐसा नहीं किया जिससे इनकी स्वामिभक्तिमें शंका उत्पन्न होती। स० ई०१७९५ में महारानीके बाद इन्दौरका राज्य इन्हींको मिला। स०ई०१७९७ में सिधारे और इनका पुत्र प्रसिद्ध जशवंत राउ हुल्कर गद्दीका मालिक हुआ।

तुञ्जीन–(काश्मीरनरेश) निजपिता राजा जलौकके बाद वि० सं० से १२६ वर्ष पहिले गद्दीपर बैठा। ३२ वर्ष राज्य किया। यह अपुत्र था और इसकी रानी वाक्यपुष्टाने अग्निमें प्रवेश करके देह त्यागी थी। धानकी खेती मारे जानेसे एक समय इसके राज्यमें अकाल पड़ा था तब इसने कोशका सब रुपया प्रजाका दुःख मेटनेमें खर्च करदिया था। मारवाड़ देशमें इसने सड़कोंके किनारे दोनों तरफ वृक्ष लगवाये थे। हिमालयकी चोटीपर तुङ्गनाथ शिवका मन्दिर इसका बनवाया हुआ अबतक विद्यमान है। प्रसिद्ध पं०चन्द्रक इसीके वक्तमें हुआ।

तुलसीदास गोस्वामी–(रामायणके कर्ता). राजापुर जिला बांदाके रहनेवाले सर्जूपारी ब्राह्मण वि० सं० १८८९ में जन्मे थे। तु० कृ० रा० कवितावलीमें लिखा है कि इनका यथार्थ नाम रामबोला था, पिताका नाम आत्माराम, माताका हुलसी, ससुरका दीनबन्धु पाठक और स्त्रीका रत्नावली था।

ज्योतिष शास्त्रके मतानुसार मूलनक्षत्रके प्रथम चरणमें जन्मनेके कारण माता पिताने तत्क्षण इनको त्यागदिया था। नरसिंहदास नामक एक साधु इनको पढ़ापाकर सोरोंमें लेआये थे। पहले उक्त साधूने इनको रामकथाका प्रेमी बनाया और सचेत होनेपर चेला करलिया। कुछ दिनोंवाद महात्मा दीनबन्धु पाठकने इनको सुयोग्य जान अपनी कन्या विवाह दी। यह ऐसे स्त्रैण थे कि एक दिनको भी अपनी स्त्रीकी विदा नहीं करते थे। इनका साला अवसर पाकर अपनी बहिनको एक दिन लिवा लेगया। घर आकर जब इनको हाल मालूम हुआ तब यह तुरन्त सुसरालको चल दिये। स्त्री अभी मिल भेंट भी नहीं पाई थी कि यह जा पहुँचे। वह लज्जित होकर बोली "जितनी प्रीत तुमको मेरे हाड़ मांसके शरीरमें है, इतनी प्रीति यदि रामचन्द्रमें होती तो क्या बात थी।" स्त्रीका वचन सुन गुसांईजीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसी क्षण घरसे निकल काशीकी राह ली और ईश्वराराधनमें तत्पर हुये। चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, जगन्नाथपुरी और ब्रजमें बिचरे। इन्होंने रामायणकी रचनाका आरंभ अयोध्याजीमें रहकर किया। यथा तु० कृ० रामायणे बालकाण्डे—

"संवत् सोलहसौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धर सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकाशा"॥

कवि वेनीमाधवदासजी जो इनके साथ बहुत दिनोंतक विचरते रहे थे लिखते हैं कि, गुसांईजी बड़े महात्मा, रामोपासक, महायोगी और सिद्ध थे। सिद्धताके विषयमें अनेक उदाहरण नाभाकृत भक्तमालमें लिखे हैं। राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, पण्डित, विद्वान् सबही इनकी प्रतिष्ठा करते थे और वैसीही प्रतिष्ठा इनके नामकी अबतक है। इनके रचे ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि यह ४ वेद, ६ शास्त्र, १८ पुराण तथा अनेक और विद्याओंके पूर्ण ज्ञाता और परम नीतिज्ञ थे। उन दिनों बादशाह अकबरका राज्य था, पर इनको राजदर्बारमें रहना पसंद न था। इनकी मृत्युके विषयमें यह दोहा प्रसिद्ध है।

दोहा—संवत सोलहसौ असी, असी गंगके तीर।
श्रावनशुक्ला सप्तमी, तुलसी तजैं शरीर॥

गुसांईजीके अन्तिम वचन यह थे—

दो०—राम नाम यश वर्णिके, भयो चहत अब मौन।
तुलसीके मुख दीजिये, अबही तुलसी सौन ॥

अकबरके मन्त्री रहीमखानखाना गुसांईजीके परममित्र थे। एकदफे गुसांईने उनके पास यह समस्या लिखकर भेजी—"सुरतिय, नरतिय, देवतिय, वेधन सहि सब कोय।" खानखानाने निम्नस्थ पद बनाय दोहा पूरा किया:—

"गर्भ लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।" निम्नस्थ ग्रंथ तु. कृ. मिलते हैं:—

मानसरामायण, दोहावली रा०, कवितावली रा०, छन्दावली रा०, बरवै रा० छप्पय रा०, कुण्डलिया रा०, रामाज्ञाप्रश्न, कलिधर्माधर्म निरूपण, हनुमान् चालीसा, हनूमान्‌बाहुक, संकटमोचन, रामपताका, कृष्णगीतावली, रामगीतावली, सतसई, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, रामनहछू, वैराग्यसंदीपनी, कड़काछन्द, रोलाछन्द, झूला-छन्द, सूर्यपुराण और अनेक भजन। इन सब ग्रंथोंमें मानसरामायण मुख्य है उसका प्रचार इस देशमें घर घर है। पंडितसे मूर्खतक सब लोग उसको पढते हैं और निज बुद्धिके अनुसार अर्थ लगाते हैं। परन्तु आत्मनिवेदन करें, भक्ति-उन्मेषकी-दृष्टिमें इनकी विनयपत्रिका सर्व्व श्रेष्ठ है और विद्वज्जनोंमें उसीका आदर भी है।

तेगबहादुर—(सिक्खोंके गुरु) यह गुरु हरगोविंदके कनिष्ठ पुत्र थे और नानकजीके उदरसे अमृतसरमें पैदा हुये थे। ९ वर्षकी उम्रमें इनका विवाह हुआ। स० ई० १६६४ में गद्दीपर बैठे। औरंगज़ेबने इनको दिल्ली बुलाकर मुसल्मान हो जानेको कहा। जब इन्होंने नहीं माना तो उसने इनको मरवा डाला। सिक्खोंके अन्तिम गुरुगोविंदसिंहजी इनके पुत्र थे। स० ई० १६१५ की साल ५४ वर्षकी उम्रमें मारे गये। मारे जानेके पहले इन्होंने अपने पुत्रके पास नारियल और पांच पैसे भेजदिये थे। गुरुगोविंदसिंहने इनकी मृत्युका समाचार सुनकर शोक विगलित होकर कहा था:—

तेग बहादुरके चलत, भयो जगतमें शोक।
हाय हाय सब जग करत, जय जय जय परलोक ॥

तैमूरलंग—(१३३६—१४०५) चंगेज़खांका वंशज। बाप गडरियेका पेशा करता था। स्वयं लड़कपनसे ही लड़ाई भिड़ाईका शौकीन था। मुसल्मानी

मतको मानता था। अनेक कठिनाइयोंका सामना दृढता सहित करके शुरूमें इसने समरकन्दके बादशाहके दर्बारमें राजदूतका पद पाया। बादशाह थोड़ेही दिनोंमें इसकी वीरता और सुन्दर स्वरूप देखकर खुश होगया, और उसने अपनी पोती इसको विवाहदी। बादशाहके मारे जानेपर तैमूर लड़ भिड़कर समरकन्दका बादशाह बन बैठा। फिर इसने ऐशियाके प्रायः सबही मुल्क लूटे और उजाड़े। रूम, ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और हिन्दोस्तानपर चढ़ाई की। जहां गया वहांके लाखों मनुष्योंको वध कराके तमाशा देखा। इसका कथन था कि, जैसे आस्मानपर एक बादशाह है वैसेही पृथ्वीपर भी एक बादशाह होना चाहिये। हिन्दोस्तानपर चढ़ाइ करके इसने दिल्ली नरेश मुहम्मद तुगलकको परास्त किया और इतना धन लूटा कि ९० हाथियोंपर लादकर समरकन्द भेजा। मेरठसे एक लाख मनुष्य कैद करके लेगया था, पर जब उनके खाने पीनेका प्रबंध न बन पड़ा तो उन सबके शिर कटवाडाले। फिर इसने मुल्क शामपर चढ़ाई की और वहांके बादशाहको कैद कर लाया। स० ई० १४०५ में चीनपर चढ़ाई करनेके लिये २ लाख सेना सहित कूंच किया। पर रास्तेहीमें बर्फमें फंसकर ७१ वर्षकी उम्रमें मर गया। इसने कोई बड़ी सलतनत नहीं स्थापित की पर अनेक देशोंपर चढाई करके माल असबाब वहुत लूटा और लाखों मनुष्योंको नष्ट किया था। हिन्दोस्तानके मुगल बादशाह इसीके वंशोत्पन्न थे। अबतक इसका नाम निर्दयताका उदाहरण देनेके लिये लिया जाता है।

थैकरे, विलियम मेकपीस (१८११–१८६३); गत शताब्दिका प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास लेखक। यह कलकत्तेमें उत्पन्न हुआ था जहां इसके पिता सरकारी नौकर थे। जब यह सयाना हुआ तो लण्डन भेज दिया गया। और एक स्कूलमें जाने लगा। स्कूलमें यह दब्बू और सीधा साधा रहा। अपने उपन्यासोंमें इसने स्कूलोंका जो चित्र खींचा है, उनसे पता चलता है कि इसका स्वभाव दूसरे लड़कोंका अत्याचार सहन करनेका न था। यह २२ वर्षकी अवस्थामें पैरिस चला गया और चित्रकला सीखने लगा। यद्यपि इसे इसमें सफलता नहीं हुई। पर फिर भी यह व्यंग चित्र बनाने लगा। अपने उपन्यासोंके बातोंको स्वयं इसीने चित्रित किया। इसके बाद यह विभिन्न मात्रोंमें अपनी व्यंग्यपूर्ण कहानियां देने लगा। पर इसकी प्रसिद्धि लण्डनके प्रसिद्ध पत्र 'पंच' में कहानियां देनसे हुई।

कुछ दिनों बाद राजनीतिक कारणोंसे इसने ' पंच ' से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया । इन्हीं दिनों इसने वैनिटी फेचर निकाला जिससे उपन्यास जगतमें इसकी धाक जम गई । क्या व्यंग्य और क्या परिहास, क्या कथा वस्तु और क्या चरित्र चित्रण, हरेक दृष्टिसे यह उपन्यास संसारकी उपन्यास साहित्यकी अमूल्य निधि है । इसमें बैकीका हार्दमहीन कृत्रिम प्रेम व्यवहार और अमेलियाका शुद्ध प्रेम, आसबेनकी स्वार्थपरता और डाबिनका लोकोत्तर चरित्र-एक एक ऐसे सजीव ढंगसे बताये गये हैं कि लेखककी लेखनी चूमनेको जी करता है । हास्य इतना उछलता हुआ और परिष्कृत, कि पाठक उसमें निमग्न हो जायँ । [इस पुस्तकके बाद लेखकने अन्य पुस्तकें भी लिखीं पर ' हैनरी एस्मण्ड ' को छोड़ कर और किसीके इतनी प्रसिद्धी नहीं पाई है । नरी एस्मण्ड सचमुच एक उत्कृष्ट रचना हुई । उसमें] सत्रहवीं शताब्दिके अंग्रेज़ समाजका चित्र खींचा गया है ।

इसके बाद थैकरे अमरीका गया और वहां लैक्चर दिये । पर साथ ही उनके गुण दोषोंको उसने कहानीका रूप दे दिया जिससे अमरीका वाले उनपर बेतरह क्रुद्ध हुये ।

इसे संसारिक सुख अधिक देखना नहीं कहा था । इसने एक कर्नलकी लड़कीके साथ विवाह किया । पर तीन पुत्रियोंके जन्मके बाद इसकी स्त्री पागल होगई । थैकरे तो १८६३ में ही मर गया । पर इसकी स्त्री १८८२ में मरी । इसकी तीन पुत्रियोंमेंसे एक बचपनमें ही मर गई, एक विवाहके १-२ वर्ष बाद सबसे बड़ी पुत्रीने सर रिचमण्डके साथ विवाह किया और कई उपन्यास लिखे । इसने अपने पिताकी पुस्तकोंका सम्पादन और आलोचना भी की और अनेक पत्रोंमें ... लिखे ।

दण्डी-(संस्कृत कवि) राजा भोजके समयमें हुये । भोजका समय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने बहुत वादविवादके बाद स. ई. १०२६ से १०८३ तक सिद्ध किया है । दशकुमार चरित्र तथा काव्यादर्श आदि साहित्य ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं । पदलालित्यके विषयमें प्रसिद्धही हैं कि "दण्डिनः पदलालित्यं" । एक समय बहुत बड़ी सभा हुई थी, उसमें दण्डीजीने अपनेको कालिदाससे भी श्रेष्ठ; कथन

किया था। पर इन दोनोंके न्यूनाधिक्यका निर्णय कौन कर सकता था, निदान घटमें सरस्वतीका आह्वान किया गया और घटमेंसे यह आवाज निकली "कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।"

दत्तात्रेय—अत्रिमुनिके पुत्र अनुसूयाके उदरसे जन्मे थे। यह वह ही अनुसूयाजी हैं जिनके चरण परम पुनीत जान सीतामाताने वनवासके समय छुए थे। दत्तात्रेयके ३ पुत्र दत्त, सोम और दुर्वासा हुये। दत्तात्रेय बड़े विवेकी थे। निम्नस्थ २४ गुरु उन्होंने किये थे:—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य्य कबूतर, अजगर, नमक, पतङ्ग, शहदकी मक्खी, मस्त हाथी, भौंरा, हिरन, मछली, गणिका, गिद्ध, मालिक, कन्या, तीर बनानेवाला, सर्प और मकड़ी।

दधीचि ऋषि—अथर्वणऋषिके पुत्र थे। इनका नाम वेदोंमें आया है। यह उससमयमें हुए जब हड्डीके शस्त्रोंका प्रचार था। दधीचिके हाड अत्यंत पोढे और लंबे चौडे थे। देवताओंने असुरोंसे तंग आकर बुढ्ढे दधीचिसे प्रार्थना की कि आप अपने शरीरकी हड्डियां हमको वज्र बनानेके लिये दीजिये, जिसमें हम उनसे असुरोंके मारनेमें समर्थ हों। दधीचिने धर्मकार्य जान अपना प्राण देना स्वीकार किया। वज्र इन्द्रका अस्त्र है और कहा जाता है कि कड़कती हुई बिजली उनकी शुद्ध रूप है।

दमयन्ती—इसका पूरा नाम भुवनमोहनी दमयन्ती था। यह विदर्भ (विराट) के राजा भीमसेनकी कन्या थी। विवाह इसका निषध (मगधदेश)के राजा नलके साथ हुआ था। विवाहके बाद १२ वर्षतक समय सुख चैनसे बीता और इसी अवसरमें १ पुत्र तथा १ पुत्री भी पैदा होगई। पश्चात् महाराज नलपर विपत्ति पड़ी और उस कुसमयमें रानी दमयन्तीने निज पतिका खूब साथ दिया। दमयन्ती अत्यंत सुशील गुणवती और पतिव्रता थी। इसने एक कौशल द्वारा अपने खोये हुये पतिका पता लगाया था।

दयानन्द सरस्वती—सन १८२५ में काठियावाड़के एक धनी अवदीच्य ब्राह्मणके घर जन्मे। इन्होंने वयस्क होनेपर शिवरात्रिके दिन शिवलिङ्ग पर चूहे को चढ़ते देखा, तभीसे इन्हें मूर्तिपूजाकी सार्थकता पर संशय होने लगा। इन्होंने इसका निवारण करनेके लिये चुपचाप निकलकर इधर उधर

चक्कर लगाया। जब पकड़ कर लाये गये और इनके पैरोंमें बेड़ी डालनेके लिये इनके विवाहका प्रबन्ध होने लगा तो यह फिर निकल गये और दुबारा वापस न आये। यह पूर्णानन्द सरस्वतीके शिष्य होकर संन्यासी होगये। विद्या पढ़ी, हिमालयका चक्कर लगाया, और अन्तमें वि० स० १९१६ में मथुरा आकर प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द सरस्वतीसे वेदशास्त्रोंका अध्ययन किया। इसके बादसे इन्होंने मूर्तिपूजाका खण्डन करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने वेदका अर्थ एक नूतन प्रकारसे लगाया और इन्द्र, वरुण, अग्नि आदिको एकांत व्यापी शक्तिका पर्य्यायवाची मात्र समझा। स्वभावतया ही सनातनधर्मी पण्डितोंसे इनका कटु विवाद हुआ। आरम्भमें इनकी इच्छा थी कि ब्रह्म समाज और थियासा-फिकल सोसायटीके मौलिक नियमोंमें परिवर्त्तन करके दोनोंको एक रूप दे दिया जाय और इन्हींसे अपना मिशन पूरा किया जाय, पर वे संस्थायें वेद भगवान को ईश्वरीय पुस्तक माननेको तत्पर न हुईं। साथही वे अन्य धर्मकी पुस्तकोंको भी उसी आदरकी दृष्टिसे देखती थीं। स्वामीजी इस सम्बन्धमें केशवचन्द्र और मेडम ब्लेवस्कीसे भी मिले; पर कुछ फल न निकला। अन्तमें इन्होंने पहली आर्य्य समाज सन १८७५में बम्बईमें स्थापित की। इन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेदका भाष्य भी किया, अन्य धर्मोंकी तुलनात्मक आलोचना भी की। सत्यार्थ प्रकाशके तेरहवें और चौदहवें समुल्लासको पढ़नेसे पता चलता है कि अन्य धर्मोंका आपने गम्भीर अध्ययन नहीं किया। आपकी आलोचना कहीं कहीं आवश्य-कतासे अधिक तिक्त होगई है। आपने नियोगका भी समर्थन किया जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दू समाजमें आपके विरुद्ध आग सी लग खड़ी हुई। स्वामी-जीका प्रभाव उत्तरीय भारत, विशेषतया युक्त प्रान्त और पंजाबमें खूब फैला। अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें आप राजपूतानाका दौरा कर रहे थे कि शाहपुरामें आपको एक ब्राह्मणने एक वेश्याके कहनेसे विष दे दिया। स्वामीजीने ब्राह्मणको क्षमाकर दिया और अजमेर चले आये पर विषका प्रभाव दूर न हुआ और आप दीपावलिके दिन ई० १८८३ में परलोक सिधारे। आपकी मृत्युके बाद आपका काम महात्मा मुन्शीराम (अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द) धर्मवीर शहीद लेखराम, और लाला लाजपतरायने लिया। जगह

जगह डी० ए० वी कालेज और स्कूल और अनाथालय खुले । १९२५ में आपकी जन्म शताब्दि मथुरामें मनाई गई । उस अवसरपर जितना समुदाय एकत्र हुआ था उससे पता चलता है कि उनके अनुयायी कितने होगये थे ।

दलीप—सूर्य्यवंशी राजा रघुके पिता थे । रामचन्द्र महाराज इनकी चौथी पीढीमें उत्पन्न हुये । कालिदासकृत रघुवंशमें इनका पूर्ण वृत्तांत है । बड़े यशस्वी थे ।

दलीपसिंह—महाराजा, जी, सी. यस. आई. (पंजाबनरेश) पंजाबकेशरी महाराज रणजीतसिंहके कनिष्ठ पुत्र रानी चन्दाके उदरसे थे । महाराज शेरसिंहके मारेजानेपर स० ई० १८४३ की साल १० वर्षकी उम्रमें गद्दीपर बैठे । इनके बचपनमें इनकी माता रानी जिंदा राज्यका सबकाम करती थीं । लहिनासिंह, हीरासिंह, सुचेतसिंह और जवाहिरसिंह क्रमशः वजीर हुये और खालसा फ़ौजके हाथसे मारेगये । जवाहिरसिंहके बाद पंजाबमें पूरी बदअमली फैलगई और कोई वज़ीर मुकर्रर नहीं हुआ । फ़ौज बड़ी उपद्रवी होगई थी । रानीने उसको अंग्रेजोंसे भिड़ाकर नष्ट करनेकी युक्ति बिचारी । अंग्रेजों और सिक्खोंकी सेनामें कई लड़ाइयाँ हुई । आखिर गुजरातकी लड़ाईमें सिक्खदल बिलकुल नष्ट होगया और १४ मार्च स० ई० १८४९ को सिक्खसर्दारोंने जेनरलके पास हाजिर होकर हथियार रखादिये । २९ मार्चको गवर्नरजेनरल हिन्दका हुक्म पंजाबकी जप्तीके विषयमें जारी हुआ । उसीरोजसे पंजाबमें ब्रिटिशगवर्नमेंटकी अमलदारी होगई । दलीपसिंहको ५ लाख रुपये सालाना पेन्शन मिली और फर्रुखाबादमें रहनेके लिये भेजादिये गये । यहींसे यह ईसाई होकर स० ई० १८३५ में इंग्लैंड चलेगये और एक मिश्रकी सुंदरीसे शादी करली । इंग्लैंडमें इनकी प्रातिष्ठा बड़े २ लार्डोंके बराबर थी । स० ई० १८८७ में इनको पंजाब देखनेकी आज्ञा मिली थी, पर इन्होंने जहाज़पर सवार होतेही सिक्ख धर्म धारण कर लिया जिससे इनकी तरफसे शक हुआ और यह हिन्दोस्तान आनेसे रोक दिये गये । इस बातपर नाराज़ होकर दलीपसिंहजी फ्रांस और रूसको गये, पर वहां कहीं ठिकाना न पाकर इंग्लैंडको लौटे, और क्षमा मांगनेपर माफ़कर दिये गये । इसीसमय पहली स्त्रीके मरजानेसे इन्होंने दूसरी शादी की । प्रिन्स दलीपसिंह विक्टर इनका पुत्र है और इंग्लैंडमें रहता है । कोई ३-४

वर्ष पहले समाचार आया था। दलीपसिंहका पौत्र पैरिसकी सीन नदीमें डूब कर मरगया।

दशरथजी–(अवधनरेश) सूर्य्यवंशी राजा अजके पुत्र थे। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेई नाम तीन रानियोंसे इनके रामचन्द्र लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न ४ पुत्र हुये। इनके सुमंतआदि ८ प्रधान मंत्री थे और वसिष्ठ ऋषि राजपुरोहित थे। दशरथजीका अपनी तीनों रानियोंपर प्रेम था। पर सबसे छोटी रानी कैकेईपर कुछ विशेष कृपा थी। एक बार युद्धके समय रणभूमिमें दशरथजीके रथका पहिया निकलनेही को था कि कैकेईकी दृष्टि पड़ी। उसने पहियेको निकलनेसे रोक कर पतिकी प्राणरक्षा की। इस बातपर प्रसन्न होकर दशरथजीने कैकेईको २ वचन मांगलेनेकी आज्ञा दी, पर कैकेईने कहा कि, किसी और अवसरपर देखा जायगा। बूढे हो जब दशरथजीने रामजीको युवराज नियत करना चाहा तब रानी कैके-ईने निज पुत्र भरतको युवराज तथा रामजीको १४ वर्षके लिये वनवास देनेका हठ किया।

दक्ष प्रजापति–ब्रह्माजीके मानसी पुत्र थे। ब्रह्माजीने इनको सब प्रजाप-तियोंका सर्दार मुकर्रर किया था। प्रसूति नामक स्त्रीसे इनके ६० कन्यायें उत्पन्न हुईं जिनमेंसे १३ कश्यपजीको विवाही गई थीं जिनसे देव असुर मनुष्य पक्षी इत्यादि उत्पन्न हुये। इसीप्रकार इनकी और कन्याएँभी विवाही गईं जिनसे बहुत सृष्टि उत्पन्न हुई। पश्चात् दक्षने दूसरा विवाह किया जिससे सती आदि अनेक कन्यायें उत्पन्न हुईं। सतीका विवाह शिवजीसे हुआ। एक दफा ब्रह्म-सभामें शिवजी और दक्षप्रजापतिमें किसी बातपर झगड़ा होगया बादको जब ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका सर्दार नियत किया तो दक्षने गंगातट हरिद्वारमें एक महायज्ञ किया। इस यज्ञमें शिवजी तथा सतीजीको दक्षने द्वेषके कारण नहीं बुलाया। सतीजी यज्ञकी खबर पाकर शिवजीके बरजने पर भी निजपिताके घर बेबुलायेही चलीगईं। वहां पहुँचकर जब सतीजीने शिवजीकी तथा अपनी अप्रतिष्ठा देखी तो हवनकुण्डमें कूद कर देह त्यागदी। सतीजीके जल मरनेकी खबर जब शिवने पाई तो उन्होंने वीरभद्रको कोप करके भेजा। वीर-भद्रने यज्ञ विध्वंस करादिया और दक्षका शिर काट डाला। इन्हीं दक्षप्रजाप-तिके वंशमें सूर्यवंशियोंके मूल पुरुष महाराज सूर्य्य हुये।

दाऊद—इसराईल जातिके दूसरे बादशाह (१०७४ ई० पू० जन्मे, और १००१ ई० पू० मरे।) निजपिता जेसीकी भेड़ बकरियोंकी देखभाल रखते थे। बादशाह शावके मरनेपर क़ौमिज्युडाके राजा हुये। ३० वर्षतक राज्य किया और जुरूसलम तथा आसपासकी क़ौमोंको परास्त किया। जुरूसलम इनकी राजधानी उस समयमें बड़ी रौनकपर थी। इन्होंने अपनी प्रजाकी गिनती कराई थी। आखिर निजपुत्र सुलेमानको जीतेजी राजपाट सौंप विरक्त होगये। ईसाइयोंकी धर्मपुस्तक बाइबिल का एक भाग इनका बनाया हुआ है।

दादाभाई नौरोजी—(१८२५—१९१७) यह एक दरिद्रमातापिताके पुत्र थे, बाल्यकालसे ही इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि शिक्षा प्रेमियोंकी दृष्टि इनकी ओर आकृष्ट हुई। उक्त शिक्षा पाकर यह एलफिन्स्टन कालेजके गणितके प्रोफ़ेसर हुए। फिर एक पारसी कम्पनीके हिस्सेदार होकर इंगलेंड चले गये। वहां इन्होंने सोलह वर्ष तक भारत वर्षके लिये घोर आन्दोलन किया। १८६९ में भारत आये और सत्रह वर्ष तक यहीं रहे। १८७४ में इन्हें बड़ोदाका दीवान बनाया गया। इनकी शासन सुधार सम्बन्धी योजनाओंसे रेज़ीडेण्ट रुष्ट हो गया। पर यह बराबर लगे रहे और भारत सरकार इनसे सन्तुष्ट रही। १८८५ में लार्ड रीने इन्हें अपनी कौंसिलका अतिरिक्त सदस्य चुना। इसी वर्ष कांग्रेसका पहला अधिवेशन हुआ जिसमें इन्होंने प्रमुख भाग लिया। १८६७ में पार्लियामेण्टकी सदस्यताके लिये खड़े हुए पर विफल रहे। १८८६ में फिर इंगलेंड गये और ५ साल के परिश्रमके बाद मेम्बर चुन लिये गये। १८९५ में आय व्यय सम्बन्धी शाही कमीशनके सदस्य चुने गये। १९०३ में लाहौरकी कांग्रेसके सभापति होकर आये। राजे महाराजे भी इनके आदर सम्मानको देखकर ईर्ष्या करने लगे। १९०६ में कलकत्ता कांग्रेसके सभापति हुये इस अवसर पर इनपर सस्ते मोतियोंकी वर्षा हुई। १९०७ में इंगलेंड चले गये पर स्वास्थ्य बिगड़े पर भारतमें लौट आये और १९१७ में परिपक्वावस्थामें परलोक सिधारे। भारतीय लिबरल दलके प्रस्थापकोंमें आपका स्थान प्रमुख है।

दांते—(१२६५—१३२१) इटलीका महान—कवि। यह बचपनमें ही बी ट्राइस नामी एक बालिकापर मोहित हो गया था। इसी समय इटलीमें क्रांति और गृह-

युद्ध होने लगे और जिस दलसे सम्बन्ध रखनेके कारण इसे निर्वासित कर दिया गया इसकी सबसे उत्कृष्ट रचना डिवाइना कमेडिया है जिसके कारण यह संसारके छः सर्व श्रेष्ठ कवियोंमें गिना जाने लगा। इसमें इसके तरफ और यन्त्रणा गृहका चित्र खींचा है जिसमें इसने अपने आपको वर्जिल नामक एक पुराने कवि द्वारा ले जाया गया दिखाया है। यहीं उनकी मत बी ट्राइसके दर्शन होते हैं। इस पुस्तकका अनुवाद संसारकी लगभग सभी भाषाओंमें हो गया है। इसने और भी पुस्तकें लिखी हैं । पर डिवाइवा कमेडियाके मुकाबलेमें और कोई नहीं है।

दारा–(Darius Hystaspes) ईरान (फारिस) का बादशाह था । इसका राज्य फारिससे अफगानिस्तान तक फैला हुआ था । जरदश्तके मतको मानता था। इसकी सेना ५ लाखसे भी ज्यादह थी । सिकन्दर आज़मके बाप फिलियसे इसकी लड़ाई रही थी । १२ वर्ष राज्य करके मर गया और उसका बेटा दारा द्वितीय तख्तपर बैठा । फिलियके बाद सिकन्दर आज़मने तख्तपर बैठ कर दारा द्वितीयपर ३ दफा चढ़ाई की दारा तीनों दफे हारा। आखिर स० ई० से ३३० वर्ष पहले दाराको उसके एक सर्दारने मार डाला और सिकंदरको खबर की। सिकंदरने दाराकी लाशपर जाकर ग़म किया और नमक हराम खात-कोंको सख्त सजा दी। उसके मुल्क और मालपर अधिकार कर लिया और उसकी लडकी रौशनकसे शादी कर ली और उसकी बेगमों तथा सर्दारोंके रुतबे बहाल रक्खे।

दाराशिकोह–दिल्ली नरेश शाहजहाँका ज्येष्ठ पुत्र। ताजबीबीके उदरसे स० ई० १६१५ में पैदा हुआ। आलमगीर, शुजा तथा मुराद इसके तीनों भाई क्रमशः २ सूबेदार थे, पर यह दिल्लीमें रहता था और वलीअहद (युवराज) था। सब लोग जानते थे, कि शाहजहांके बाद यही गद्दीपर बैठेगा। यह दीन मुहम्म-दीको नहीं मानता था और हिंदू मतानुगामी था। शाहजहाँ स० ई० १६५७ में बीमार पड़ा। यह खबर सुनकर आलमगीर, शुजा तथा मुरादने तख्तके वास्ते चढ़ाई की। दाराशिकोहने उनका मुक़ाबिला किया, पर हारा। आलमगीरने गद्दी पर बैठनेसे दूसरी वर्ष स० ई० १६५९ में दाराको परास्त करके पकड़ लिया और उसका काला मुँह करके हाथीपर बिठलाकर तमाम शहरमें घुमाया और

मरवा डाला । दाराको इस हालतमें हाथीपर सवार देख महलकी बेगमें थक्का फाड़ कर रो पड़ीं । दारा बड़ा साहसी और उदार था, पर मिजाजमें क्रोध और जल्दी अत्यन्त थी । सुलेमाँशिकोह और सिपहिरशिकोह उसके दो पुत्र थे । दारा बड़ा विद्वान् था और उसने स्वयं उपनिषदोंका फारसीमें अनुवाद किया था। हिन्दू प्रजा इस पर जान देती थी, पर मुसल्मान इससे जलते थे । यदि यह गद्दी पर बैठा रहने पाता तो भारत वर्षका इतिहास कुछका कुछ हो जाता ।

दास चित्तरञ्जन–(स० ई० १९२५) बंगालके देशभक्त नेता । आप अपने समयके भारत प्रसिद्ध बैरिस्टर थे । जिस समय आपके पिताका देहान्त हुआ तो बहुत कर्ज भुगताना था । आपके मित्रोंने आपको सलाह दी कि वसीय कबूल करनेसे इन्कार करदो।पर आपने क़र्ज़का रुपया चुकाना अपना कर्तव्य समझा और थोड़े ही समयमें चुका भी दिया । बम षडयन्त्रके सम्बन्धमें अरविन्द घोष महोदय पर जो साजिराका मुकदमा चला उसमें आपने पैरवी करके उन्हें साफ छुटा लिया आपने न जाने कितने बंगाली दरिद्र परिवारोंका पोषण किया है और आपकी सहायतासे न जाने कितने दरिद्र युवक उच्च शिक्षा सम्पन्न हुये हैं।इसके बाद१९२० का असहयोग आंदोलन चला जिसमें आप कूदपड़े । आपने अपनी ५००००मासि-ककी आयको लात मारकर ठुकरा दिया । आपको जेल हुई उसी समय आपको गया कांग्रेसका सभापति बनाया गया । जेलसे वापस आनेपर आपने देखा कि देशके आगे किसी प्रकारका कार्य्य क्रम नहीं है । अब आपने प्रयागके प्रसिद्ध वकील पं मोतीलाल नेहरूके साथ स्वराज्यपार्टीकी रचना की और स्वयं बंगाल कौंसिलमें गये । अनुदार कांग्रेसवादी आपको देशका शत्रु कहने लगे, पर थोड़े ही दिनों बाद आपकी दूरदर्शिताने सबको प्रसिद्ध कर दिया । आपने बंगालके मिनि-स्टरोंका वेतन ५००० रु० मासिकसे कुछ आने माहवार करा दिया । आपने फ़रीदपुरमें भारतके भावी कार्यक्रम और हिन्दू–मुसलमानोंके एकत्रके सम्बन्ध-में जो स्पीच दी थी उसने आपकी स्वदेशचिन्ता और राजनीतिक परिज्ञानका खूब मारु होता है । आपने बनारसके ज्ञान–वयोवृद्ध बाबू भगवानदासजीके साथ मिलकर भारतके भावी शासन विधानकी रचना की । अपनी मृत्युसे कुछ दिन पहले आप अपना बचा हुआ स्टेटस्व 'चितरञ्जन सेवासदन' नामक स्त्रियोंके अस्प-तालके लिये दानकर गये । आप अंग्रेजी और बंगलाके श्रेष्ठ कवि भी थे और

जाति बन्धनको नहीं मानते थे। आपने कायस्थ होते हुये भी एक ब्राह्मणीके साथ विवाह किया। १९२५ में आपका दार्जिलिङ्गमें स्वर्गवास होगया। भारतमें घोर शोक छागया। आप सन्तानमें एक पुत्र और एक पुत्री छोड़ गये थे। कुछ दिनों बाद पुत्र भी मरगया। इस समय भी बङ्गाली आपका सबसे अधिक मान करते हैं।

दीनदयालगिर—(बाबा दीनदयाल गिर गुसाँई.) यह बरसाना जिले मथुराके रहनेवाले जातिके ब्राह्मण वि॰ सं॰ १९०० के लगभग विद्यमान थे। महाराजा रीवाँ इनको बहुत मानते थे। उत्तम कवियोंमें इनकी गणना है। निम्निस्थ ग्रंथ इनके रचे हुए हैं:—अनुरागबाग, दृष्टांततरङ्गिणी, अन्योक्त कल्पद्रुम, काशीपंचरत्न, चकोरपंचक, दीपपंचक।

दुर्गावती—(गढमण्डलकी मरदानी रानी) बुन्देलखण्डकी प्राचीन राजधानी महोबाके चन्देलराजोंकी बेटी और गढमण्डलके गोंड राजा दलपतशाहकी रानी थी। गढमण्डलमें गोंडोंका राज्य किसी जमानेमें बड़ा प्रबल था। अब यह राज्य नष्ट भ्रष्ट होकर अंग्रेजी अमलदारीके सूबे नर्मदा और सागरमें मिला हुआ है। दुर्गावती और दलपतशाह दोनों अत्यन्त स्वरूपवान् थे और इनका विवाह आसुरी विधिसे हुआ था। दलपतशाह विवाहसे ४ वर्ष बाद एक ३ वर्षका पुत्र छोड़कर मरगया। रानी दुर्गावतीको बालक पुत्रके निमित्त राजकाज सभांलना पड़ा। जब लड़का कुछ बड़ा हुआ तो स. ई. १५६४ में बादशाह अकबरने गढमण्डल पर चढ़ाई की। दुर्गावतीने १५०० हाथी ७ हजार सवार और बहुतसे प्यादे लेकर धनुषबाण तथा अन्य अस्त्र शस्त्र धारण करके मुगलोंको दो दफ़ा परास्त कर दिया। तीसरी दफे रानीका पुत्र जो अभीतक बड़ी वीरतासे लड़ा था घायल हुवा और जब बहुत रुधिर बहनेसे उसको मूर्छा आने लगी तब रानीने आज्ञा दी कि कुँवरको तम्बूमें लेजाओ। कायरोंको भागनेके लिये यह अच्छा बहाना मिला। यहांतक कि रानीके पास केवल ३०० आदमी रह गये, पर रानी रणसे नहीं हटी। एक तीक्ष्ण बाण उसकी आंखमें लगा जिसको उसने हाथसे पकड़कर खींच लिया। फिर १ तीर उसकी गर्दनमें लगा। रानीने उसको भी खींचकर निकाल डाला पर अत्यन्त रुधिर बहनेसे रानीको हाथीके हौदेपर मूर्छा आने लगी। वैरीके हाथमें पड़नेके भयसे रानीने छातीमें बर्छी भोंककर प्राणत्याग दिये और सेनापतिलोग अपनी स्वामिनीके मृतक

शरीरपर टुकड़े २ होकर कटमरे। रानी दुर्गावतीने भाषाकवि, हरनाथको सवालक्ष रुपया इनाम दिया था । रानी दुर्गावतीके बनवाये मदन महलके खण्डहर अबतक बिझौरकी चट्टानोंके बीच जब्बलपुरसे ११ मील दूर पड़े हैं।

दुर्वासा ऋषि—अत्रि ऋषिके पुत्र । पुराणोंमें इनके क्रोधकी सूचक अनेक कथायें हैं—इन्होंने अनेकोंको शाप दिया था। एक बार इन्होंने राजा अम्बरीषको शाप किया कि तू मरजा । जब कृत्या अम्बरीषको मारने दौड़ी तो विष्णुका चक्र कृत्याको मारकर दुर्वासाके पीछे दौड़ा । दुर्वासा त्रैलोक्यमें घूम आये, पर शरण न मिली। अन्तमें विष्णु भगवानने शान्त होकर चक्रको वापस बुला लिया।

दुर्योधन—धृतराष्ट्रके सौपुत्र कौरवोंमें सबसे बड़ा था। जब धृतराष्ट्रने अपने सबसे बड़े भतीजे युधिष्ठिरको युवराज नियत करना चाहा तब दुर्योधनने विरोध करके युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवोंको १४ वर्षके लिये बनवास दिलवा दिया। जब पाण्डव वनवाससे वापस आये तो धृतराष्ट्रने उनको आधा राज्य सौंप दिया, पर दुर्योधनने जुआ खिलाकर उनका राज्य फिर जीत लिया और १४ वर्षके लिये फिर वनवास दिलवा दिया। बनवासके समय दुर्योधनने पांडवोंको मरवा डालनेके अनेक निष्फल उपाय किये। दूसरीबार वनवाससे लौटकर जब पांडव लोग आधे राज्यके दावेदार हुये तो दुर्योधनने देनेसे इनकार किया। लाचार महाभारतकी लड़ाई शुरू हुई जो १८ दिनतक रही । इस युद्धमें हिन्दोस्तान, चीन, फ़ारस, अफ़गानिस्तान, मध्य एशियाके सब राजे शरीक थे। कोई कौरवोंका और कोई पाण्डवोंका तरफदार था । १८ वें दिन जब सब कौरवदल शान्ति होचुका था तो दुर्योधन और भीममें मल्लयुद्ध हुआ, जिसमें दुर्योधन मारा गया। रणभूमिमें पड़े ससकते दुर्योधनको देख अश्वत्थामा उसके पास गया। दुर्योधनने उससे भीमका शिर काट लानेको कहा । निदान अश्वत्थामा पाण्डवोंके डेरेमें घुस गया। और धोकेमें आकर उनके पांच पुत्रोंके शिर काट दुर्योधनके पास लेगया। दुर्योधनका दम उस वक्त निकल रहा था। बच्चोंके शिर देखकर उसने कहा "मेरी शत्रुता तो भीमसे थी । हाय ! इन बच्चोंका गला वृथा काटकर क्यों वंश नष्ट किया।" इसका वास्तविक नाम सुयोधन था, पर अपने दुराग्रहके कारण यह दुर्योधन कहलाया।

दुष्यन्त-(चन्द्रवंशी प्राचीन राजा) महाभारत तथा पद्मपुराणमें लेख है कि "दुष्यन्त नामक चन्द्रवंशविभूषण, महातेजस्वी, वेदवेदाङ्ग पारङ्गत, सर्वराज-गुणान्वित पौरव राजर्षि था। वह धनुर्विद्यामें निपुण, रूपमें कामदेव, धैर्यमें हिमालय, गांभीर्यमें समुद्र, ऐश्वर्यमें कुवेर, प्रतापमें इन्द्र, तेजमें सूर्य, स्नेहमें चन्द्रमा और धर्म तन्त्रमें मनुके समान थे। उसने अपनी प्रजाओंका निजपुत्रोंकी समान पालन किया था।" शकुन्तलाके गर्भसे राजा दुष्यन्तके भरत नामक पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ। जिसके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा। प्राचीन नाम आर्य्यावर्त था।

दूलह त्रिवेदी-(कवि दूलह) वनपुरानिवासी उदयनाथ कवीन्द्रके पुत्र तथा कालिदासजूके पौत्र वि० सं० १८०३ में विद्यमान थे। भाषाकाव्य उत्तम करते थे। इनका बनाया "कविकुलकण्ठाभरण" भाषासाहित्यमें प्रमाणिक ग्रन्थ है।

दुःशासन-धृतराष्ट्रके सौपुत्र कौरवोंमेंसे एक बड़ा धूर्त था। जब पांडवोंने अपना राज्य तथा रानी द्रौपदीको दुर्योधनके पास जुयेमें हार दिया तब दुःशासनने द्रौपदीको सरदर्बार बाल पकड़कर घसीटा और उसके बदनपरसे चीर खींच डालना चाहा, पर श्रीकृष्णकी कृपासे चीर इतना बढ़ गया कि दुःशासन खींचते खींचते थक गया। उसी समय भीमसेनने क्रुद्ध होकर शपथ खाई कि मैं दुःशासनका रक्त पिऊंगा। महाभारतकी १६ वें दिनकी लड़ाईमें भीमने दुःशासनको मारकर उसका खून पिया और शपथ पूरी की।

देवजानीसकल्बी-(Diogenes) बड़ा प्रसिद्ध त्यागी हकीम सिकंदर आजमके वक्तमें यूनानमें हुआ। सिकंदरके तख्तपर बैठनेके समय सब विद्वान् हकीम लोग बधाई देनेको हाजिर हुये, पर देवजानीस नहीं गया। सिकंदरको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह स्वयं इसके मकानपर दर्शनोंको गया और इसको दिगंबर बैठापाकर बोला "जो मांगना हो सो माँगो।" इसने कहा "मेरे सामनेसे चलाजा, केवल यही मांगता हूं।" यह स्वभावका बड़ा चिड़चिड़ा था। या तो किसीसे बातही नहीं करता और यदि करता तो क्रुद्ध होकर। इसीलिये इसका नाम कल्बी अर्थात् कुत्तेकी तरह टांग लेनेवाला पड़-गया था।

देवदत्त-(भाषाकवि) वर्णके ब्राह्मण । जिला कानपुरके रहनेवाले । प्रायः वि० सं० १८३६ में विद्यमान थे. । राजा खुमानसिंह चर्खारीनरेशके यहां रहते थे । पद्माकर तथा ग्वालकविसे इनकी खूब छेड़छाड़ रहती थी । " धारा बाँधि छुटत फुहारा मेघमालासों " इत्यादि कवित्तमें राजा खुमानसिंहने दत्तजीको बहुत इनाम दिया था ।

दोस्त मुहम्मदखाँ सरदार-(रियासत भूपालके संस्थापक) यह अफगानिस्तानसे आकर सूबे मालवामें किसी राजाके यहां नौकर हुआ पश्चात् कुछ दिन तक बड़ी जागीरकी ठेकेदारी करता रहा । थोड़ेही दिनोंमें जगदीशपुर (इसलामनगर) आदि कई स्थान अपने अधिकारमें करके भूपालकी शहरपनाहं बनवाई और उसको फिरसे बसाया । स० हि० ११५३ में मरगया और अपने बनवायेहुए किले फतेहगढ़में दफन हुआ । प्रायः स० हि० १२०० में इनके पौत्र शरीफमुहम्मदखाँने गुन्नौरके किलेपर चढ़ाई की किला तो छलसे लेलिया और गुन्नौरकी राजपूतवंशोत्पन्न जगत् प्रसिद्ध सुन्दरी रानी कमलावतीकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेको उपस्थित होगया । रानीने कोई उपाय न देख अमूल्य वस्त्र और आभूषण खांसाहिबके लिये भेजे और दो२ घंटेके बाद निकाहका वक्त नियत किया। नियत समयपर वह आगया और रानीका मोहिनी रूप देख कामातुर हो बार बार वार्त्तालाप करने लगा । इतनेहीमें रंगमें कुछ और ही भंग होने लगा । कामातुर मुसलमानका मुख नीला पीला होगया, गर्मीसे मूर्च्छा होने लगी, जल जल पुकारने लगा, और अंतमें मर गया । रानीने जो कपडे भेजे थे तीक्ष्ण विषमें रंगे हुये थे । उसके बाद रानी किलेकी गुमटी परसे नर्मदा नदीमें कूद पड़ी और डूब गई ।

दौलतराव सेंधिया-(ग्वालियरनरेश) महाद सेंधियाके बाद स० ई० १७९४ में १५ वर्षकी उम्रमें ग्वालियरकी गद्दीपर बैठे । माधौजी सेंधिया इनके दादाके भाई थे। शुरूहीसे दौलतरावमें निजपूर्वजोंकी धीरता और वीरता झलकने लगी थीं । माधवराव पेशवाके मरनेपर जो झगड़ा गद्दीके लिये हुआ उसमें इन्होंने बाजीरावका पक्ष लेकर उसको गद्दी पर बिठा दिया । पश्चात् जसवंतराव हुलकरसे इनकी लड़ाई ठनी जिसमें बहुतसा मुल्क इनके हाथ लगा । कुछ दिनों तक जैसा इनका बलपराक्रम था वैसा हिन्दोस्तानभरमें किसी दूसरे राजाका न था । स०

ई० १८२० में जब पेशवाने ब्रिटिश गवर्नमेंटसे मेल मिलाप किया तो दौलतराव को यह बात बुरी लगी। इन्होंने यह उद्योग करना शुरू किया कि, मेल कायम न रहे। यह देखकर ईस्टइण्डिया कम्पनी इनसे लड़नेको उद्यत हो गई। अलीगढ, दिल्ली, असाई, आगरा, लस्वारी और अरगांवकी लड़ाइयोंमें दौलतरावकी हार हुई। आखिर सुलह हुइ, पर बहुतसा मुल्क इनके हाथसे निकल गया। यहांतक कि, ग्वालियर और गोहदका किलाभी इनके अधिकारमें न रहा। ४६ वर्षकी उम्रमें स० ई० १८२७ की साल वैजाबाई अपनी अपुत्र विधवाको छोडकर दौलतरावका देहान्त हुआ। वैजाबाईने जनकोजीराव सेंधियाको गोद बिठाया। जनकोजीकी अपुत्रविधवा रानीने महाराज जीवाजीराव सेंधियाको गोद लिया।

द्राह्यायण–इनके रचे सामवेदके श्रौतसूत्र मिलते हैं, जिनमें विविधभांतिके यज्ञ करानेके नियम हैं।

द्रुपद–पंजाबका प्राचीन राजा इसकी कन्या द्रौपदीको अर्जुनने स्वयंम्बरमें जीता था। महाभारतके युद्धमें चौदहवें दिन राजा द्रुपद द्रोणाचार्यके हाथसे मारा गया। दूसरे ही दिन द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणको मारकर अपने बापका बदला लिया। द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको मारडाला। द्रुपदके शिखंडन नामक पुत्र तथा शिखंडनी नामक कन्या और भी थी।

द्रोणाचार्य-भारद्वाज ऋषिके पुत्र थे। भीष्मपितामहकी सौतेली बहन कृपासे इनका विवाह हुआ था। अश्वत्थामा इनका पुत्र था। कौरवों तथा पांडवोंको धनुर्वेदकी शिक्षा इन्हींने दी थी। एकबार एक लाल नामक भीलने तिरस्कृत होकर इनकी मिट्टीकी मूर्त्ति बनाई और कल्पित रूपसे गुरुकी आज्ञा लेकर बाण चलाना आरम्भ किया, इसी प्रकार यह अर्जुनसे बढ गया, तब द्रोणाचार्य्यने इससे गुरुदक्षिणा स्वरूप दाहिना अंगूठा मांग लिया और इसकी निपुणता पंगु होगई। महाभारतके अवसरपर यह द्रोणाचार्य कौरवोंके तरफदार हो कौरवोंकी ओरसे लड़े थे। और भीष्मके मारे जानपर सेनापति नियत किये गये थे। इस पदको प्राप्त होनेके चार दिन बाद द्रोणने पाञ्चालाधिपति द्रुपदको वध किया। द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने दूसरेही दिन द्रोणको मार गिराया। द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको रणशायी किया।

द्रौपदी-पंजाबके राजा द्रुपदकी बेटी । पांडवोंको स्वयंवर रीतिसे विवाही गई थी । स्वयंवरका नियम रक्खा गया था कि जो कोई एक चक्रमें घूमती हुई मछलीकी और जलकी प्रतिच्छायामें देखकर वेध देगा उसीके साथ विवाह होगा । जब पांडव लोग द्रौपदीको ले घर आये तो उन्होंने अपनी मातासे कहा कि हम एक अपूर्व वस्तु लाये हैं । माताने सहज स्वभावसे कह दिया कि, पांचों आपसमें बांट लो । इसी कारण द्रौपदी पांचों पांडवोंकी पत्नी बनी। एक दफे जब श्रीकृष्ण-जी अपनी पटरानी सत्यभामा सहित पांडवोंकी सुध लेने वनमें पधारे थे तब सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा कि, महिषि जिस प्रकार तुम अपने पतिको वशमें रखती हो वह हमें भी बताओ । द्रौपदीने उत्तर दिया कि, स्त्रीका पातिव्रत धर्म निबाहना ही एक वशीकरण मन्त्र है । ऐसा करनेसे ससुराल और मायकेकी लाज रहती है और ईश्वरके यहां भी परमगति मिलती है। महाभारतके युद्धके अन्तमें द्रौपदीके पांच पुत्रोंको अश्वत्थामाने मार डाला था । बादको बहुकालतक राजसी सुख भोगकर महारानी द्रौपदी पांडवोंके साथ हिमालयपर जाकर बर्फमें सोजगई ।

धन्वन्तरिवैद्य-(आयुर्वेदके प्रकट करनेवाले) पुराणोक्त कथानुसार समुद्रके मथेजानेपर १४ रत्न निकले जिनमेंसे एक आयुर्वेदके प्रकट करनेवाले धन्वन्तरिवैद्य भी थे, जिनको भारतवासी ईश्वरका अंशावतार मानते हैं । इनसे कुछ काल पीछे दिवोदास नाम काशिराज आयुर्वेदका बड़ा विद्वान् धन्वन्तरि नामसे प्रसिद्ध हुआ । इस दिवोदास धन्वन्तरि द्वारा आयुर्वेदका बहुत कुछ प्रचार हुआ । और इसने चिकित्सातत्त्वविज्ञान, चिकित्सादर्पण तथा चिकित्सा-कौमुदी नामके ग्रन्थ रचे जो अब लुप्त होगए हैं । इसके बाद आत्रेय, पुनर्वसु, च्यवन, अगस्त्य, जाबालि, अश्विनीकुमार आदि ऋषियोंने ब्रह्मवैवर्त पुराणांतर्गत ब्रह्मखण्डके १९ वें अध्यायमें वर्णित अनेक वैद्यक ग्रन्थ रचे थे जो अब अप्राप्य हैं । बादको चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टऋषियोंने आयुर्वेदपर अपने २ नामकी बड़ी २ संहितायें बनाई जो अब बृहद्त्रयी नामसे प्रसिद्ध हैं । यह तीनों संहितायें परम उपयोगी हैं और इसीकारण इनके सामने प्राचीन वैद्यक ग्रन्थोंका प्रचार शनैः शनैः उठगया । अंतमें ४ और ५ सौ वर्षके बीच अनेक वैद्यक ग्रन्थ बने जिनमेंसे माधवनिदान, शार्ङ्गधरसंहिता और भावप्रकाश मुख्य हैं लघुत्रयी नामसे विदित हैं ।

धृतराष्ट्र–चन्द्रवंशी राजा। विचित्रवीर्यके निर्वंश मरजानेपर उस समयकी रीत्यनुसार विधवा रानियों अम्बिका और अम्बालिकामें व्यासजीसे गर्भाधान कराया गया। जिससे धृतराष्ट्र और पांडु दो पुत्र हुये और चन्द्रवंश नष्ट होनेसे बचा। धृतराष्ट्र जन्मांध थे, एवं राजा पांडु राज्य करते थे। जब पांडु राज्य छोड़ वनको चले गये तब धृतराष्ट्र राजा हुआ। धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि १०० पुत्र थे जो कौरव कहलाते थे और पांडुके युधिष्ठिर आदि ५ पुत्र थे जो पांडव नामसे प्रसिद्ध थे। जब धृतराष्ट्रके पुत्र तथा भतीजे समर्थ हुये तो उन्होंने आधा राज्य अपने पुत्रों और आधा अपने भतीजोंको बाँटकर दे दिया। कौरवोंने इसका विरोध किया, अनेक प्रकारसे पांडवोंको दुःख देने और उनकी प्रतिष्ठा भंग करना आरम्भ किया। अंतमें कौरवों और पांडवोंमें युद्ध छिड़ा. कुरुक्षेत्रके मैदानमें युद्ध हुआ जो १८ दिनतक जारी रहा और जिसका सविस्तर वृत्तांत वेदव्यासकृत महाभारतमें लिखा है। अंतमें सब कौरव और सब राजे महाराजे जो दोनों तरफ शरीक हुये थे मारे गये। पांचों पांडव श्रीकृष्णमहाराजकी मददसे जीते बचे, जिनमेंसे सबसे बड़े युधिष्ठिर गद्दीपर बैठे। महाराज धृतराष्ट्र अपने उपद्रवी पुत्रोंके मारेजानेसे दुःखी हो तपोवनको चले गये। वनमें एक दिन आग लगी उसीमें स्त्रीसहित जल मरे।

नकुल–(पांडव) महाराज पांडु हस्तिनापुराधीशके चतुर्थ पुत्र रानी माद्रीके उदरसे थे। सहदेव इनके सगे भाई थे और युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन सौतेले भाई थे। नकुलका रंग सांवला और डील डौल भारी था। इनकी माता रानी माद्री निज पतिके साथ सती होगई थी। सौतेली माता रानी कुन्तीने इनको पाला था, ये पशुचिकित्सामें निपुण थे। "वैद्यकसर्वस्व" इनका बनाया ग्रन्थ अब भी मिलता है। अंतमें पांचों पांडव हिमालयपर जाकर बर्फमें सीजगये। नकुल अस्त्र शस्त्र भी खूब चलाना जानते थे और ज्योतिषविद्यामें निपुण थे। द्रौपदीके सिवाय इनकी दूसरी रानीका नाम विजया था जिससे सुहोत्रनामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

नग्नस्वामी–ये चित्रकार विक्रमादित्य हर्ष महाराजा उज्जैनके दर्बारमें थे। इसने राज्यदर्बारको सुशोभित करनेके लिये उस वक्तकी जगत् प्रसिद्ध सुन्दरियोंके चित्र खींचे थे।

नन्द–(महाराजनन्द मगधनरेश) इनके बापका नाम महानन्दीन था। स० ई० से ३७० वर्ष पूर्व गद्दीपर बैठे और ५० वर्ष राज्य करके विष खिलाकर मार डाले गये। इनके वजीर शक्टारने अपमानित होकर एक महाक्रोधी, दृढप्रातिज्ञ विद्वान् ब्राह्मण चाणक्य नामकको भिड़ाकर अपनी मानहानिका बदला लिया। इनकी गद्दीपर इनका दासी पुत्र चन्द्रगुप्त बैठा।

नन्ददास–(भाषाकवि, अष्टछाप) इनकी रासपञ्चाध्यायीमें वही आनन्द आता है जो जयदेवरचित गीतगोविंदमें। इनकी कविताके विषयमें यह उक्ति प्रसिद्ध है कि, "और सब गढिया नन्ददास जडिया" गोस्वामी विठ्ठलनाथजी इनके गुरु थे। २५२ वैष्णवोंकी वार्तामें लिखा है कि ये पूरबके रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण और बड़े पंडित थे। बड़े भाईका नाम तुलसीदास था। एक बार अपने ग्रामके लोगोंके साथ द्वारिकापुरीके दर्शनोंको गये। जब यह भटकते हुये सिन्धुनदी पर पहुँचे तो वहां एक रूपवती खत्रानीपर मोहित हो उसके घरका फेरा करने लगे जब यह बात फैल गई तो उस स्त्रीके घरके लोग लोकनिन्दाके भयसे नगर छोड गोकुलको चल दिये। नन्ददासजी भी पीछे हो लिये। गोकुल पहुंच कर गो० विठ्ठलनाथके दर्शन और उपदेशसे चित्तकी वृत्ति लौटगई। निदान शिष्य हो वहीं रहने लगे। इन्होंने समग्र भागवतका भाषानुवाद किया था, परंतु यह सोच कि, ब्रजवासी व्यासोंके सामने मेरी कथाका कौन आदर करेगा? समग्र ग्रंथ जमुनाजीमें डुबा दिया। केवल रासपञ्चाध्यायी गो० विठ्ठलनाथजीके आग्रह करने पर रहने दी। अकबरने इनकी प्रशंसा सुन कर अपने दर्बारमें इन्हें बुलाया था। वहां पहुंच इन्होंने एक रासका पद सुनाया, जिसके अंतमें था कि, "नन्ददास तहां ठाढो निपट निकट" यह सुन अकबर पीछे पड़ गया कि, "निपट निकट" का भेद कहो। नन्ददासजीने उसी समय वहीं प्राण त्याग दिये। भक्तमालमें इन्हें रामपुरवासी चंद्रहासका पुत्र लिखा है। डाक्टर ग्रीअर्सनने इनके बनाये निम्नस्थ ग्रंथोंके नाम लिखे हैं:—नाममाला, अनेकार्थपञ्चाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, दशमस्कंध, दानलीला और मानलीला। इनका सिद्धांत था कि, सत्संग करने से अवश्य मोक्ष होजाता है। प्रायः वि० सं० १५८५ में जन्मे थे।

नन्दबाबा–(नन्दराय) महावन जिला मथुराके रहनेवाले जातिके अहीर थे। श्रीकृष्ण महाराजको पुत्र करके इन्होंने पाला था। इनकी रानीका नाम

यशोदाजी था । इनके अनेक गऊ बछडे थे और वे अपनी जातिके लोगोंके नायक थे । नन्दगांव जिला मथुरामें इन्हींका बसाया अबतक विद्यमान है । नन्दगांवमें रूपसिंह जाटका बनवाया नन्दबबाका एक मंदिर है । महावनमें नन्दबबाके महिल के अस्सी खम्भ अबतक मौजूद हैं--खम्भ पत्थरके हैं, और उनपर अतिसुन्दर खुदाई है । पर ये उतने पुराने नहीं दिखाई देते ।

नरहरि-(भाषाकवि) असनी ग्राम जि० फतेहपुरके रहनेवाले भाट महापात्र थे । दर्बार अकबरके बड़े कवीश्वरोंमें इनकी गणना थी । अकबरने असनी ग्राम इनको नानकार दिया था । इन्होंने उसमें कुलवान कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंको बसाया और जजमानीका काम भी नहीं किया । इनके वंशके लोग अबतक भाटोंमें सर्वोत्तम गिने जाते हैं । छप्पय इन्होंने बहुतसे कहे हैं । निम्नस्थ छप्पय गौओंके गलेमें बांध अकबरके सामने पेश करके इन्होंने गोवध बंद कराया था ।

छप्पय-अरिहु दन्त तृन दबहिं ताहि नहिं मारसकै कोई ।
हम सन्तत तृन चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होई ॥
अमृतपय नित स्रवहिं बच्छ महिथम्भन जावहिं ।
हिन्दुन मधुर न देहिं कटुक तुरकन न पियावहिं ॥
कहि नरहरि सुन शाहपद बिनवत गऊ जोरे करन ।
केहि अपराध मोहि मारियतु मुयेऊ चाम सेइयतु चरन ॥

नरहरिजीने रीवाँनरेश रामसिंहके यहां जाकर भी मान सन्मान पाया था । इनके पुत्र भाषाकवि हरनाथजी बड़े प्रतापी हुये हैं । नरहरिजी स० ई० १५५० में विद्यमान थे । बादशाहने इनको "महापात्र" की उपाधि दी थी और कहा था कि आपके सिवाय जो और भाट हैं वे गुणके पात्र हैं । इनके वंशज अब आरा, बनारस तथा बेटी जिला रायबरेलीमें मौजूद हैं । ग्राम असनी पर अब इनके वंशजोंका अधिकार नहीं है और इनका मकान भी गङ्गाजीने कटालिया ।

नरसीमेहता-(प्रसिद्ध भक्त) भक्तमालके लेखानुसार ये जूनागढ़ (गुजरात) के रहनेवाले थे । एक दिन भावजके तानेपर इनको दुःख हुआ और घर छोड़ भगवद्भक्तिको प्राप्त हुए । इनका कुल शाक्त था और जातिके नागर ब्राह्मण थे । समय इनका वि० सं० १५५० से १६५० के भीतर होना निश्चय है । ये

कविता भी करते और विष्णुपद खूब गाते थे । शामलियाशाह (श्रीकृष्ण) का इनकी बेटीके घर जाकर भात पहनाने तथा इनके बेटेकी शादी करनेकी. कथा जो भक्तमालमें लिखी है इनकी भगवद्भक्तिकी सूचक है ।

नल--ये निषध (मगधदेश) के राजा वीरसेनके पुत्र थे । विदर्भ (बरार) नरेश भीमसेनकी कन्या दमयन्तीसे इनका स्वयंवररीतिसे विवाह हुआ था । ये बड़े धीर वीर सर्वगुणसम्पन्न धर्मात्मा राजा थे । वेद विद्या, धनुर्विद्या और अश्वचिकित्सामें निपुण थे । घोड़ोंको हांकने तथा उन पर सवार होनेमें अद्वितीय थे और पांसा खेलनेके प्रेमी थे । विवाह होनेके बाद १२ वर्ष तक खूब सुख चैनसे बीती और इन्द्रसेन नामक पुत्र तथा इन्द्रसेना नामक कन्या पैदा हुई । इसके बाद राजा नलपर विपत्ति पड़ी । एक दिन अपने भ्राता पुष्करके साथ पाँसा खेलकर अपना सर्वस्व हार गये और पुष्करने राज्याधिकार पाकर ढंढोरा पिटवा दिया कि नलको राज्यभरमें कोई शरण न दे. राजा नलने निर्धन और निस्सहाय हो बच्चोंको ननिहाल भेज दिया और आप रानी दमयन्तीको साथ ले केवल एक धोती पहिने हुये जंगलका रास्ता लिया । रास्तेमें ३ दिन रात बिना अन्न जलके बीते । तब भूखसे व्याकुल होकर नलने पक्षियोंको पकड़नेके लिये अपनी धोती फेंकी । पक्षी धोती भी लेकर उड़गये । इसपर रानी दमयन्तीकी साड़ीके २ टुकड़े करके काम चलाया । फिर कुछ मछलियें पकड़कर भूनीं लेकिन जब राजा नल नहाने लगे तो भूनी हुई मछलियें तालाबमें चल पड़ीं । तबहीसे मसल मशहूर हुई कि "विपत्तिके समय भूंजी तालों जाती हैं ।" ऐसी आपदाके समय नलने दमयन्तीको नैहर चलेजानेको बहुत कुछ समझाया, पर उसने पतिका साथ त्यागना स्वीकार न किया और भूखसे व्याकुल हो पतिके गलेमें हाथ डाल एक पेड़के तले सो गई । राजा नल सोती हुई रानी दमयन्तीको अकेला वनमें छोड़ चलते हुये । रानी जब जागी तो उसने निज पतिको न पाकर विलाप किया और फिर इधर उधर ढूंढती हुई अनेक आपत्तियोंसे बचती, सुबाहुनामके नरेशके यहां पहुंचकर रानीकी दासियोंमें नौकर हो गई । वहांसे उसके पिताके भेजे हुये दूत उसको विदर्भको लेगये । उधर नल घूमते घूमते राजा ऋतुपर्ण अवधनरेशके दर्बारमें पहुंचकर घोड़ा हांकनेपर नौकर हो गये थे । दमयन्तीके पिताने हर जगह नलकी खोजमें दूत भेजे । अयोध्यासे लौटकर एक दूतने कहा कि, राजा ऋतुपर्णके यहां

बाहुक नाम घोड़ा हांकनेवालेके आंसू दमयन्तीका नाम सुनते ही बह चले थे। यह सूचना पाकर दमयन्तीके पिताने राजा ऋतुपर्णको उनके कोचवान सहित बुला भेजा। विदर्भ पहुंच राजा नलने जो कोचवानके भेसमें थे, अपनी रानी और बच्चोंको पाया। सबको आनन्द हुआ। राजा भीमसेनने नलको अपना राज्य दे विदर्भहीमें रहनेको कहा। परन्तु नलने सुसरालमें रहना अंगीकार न किया। तब राजा भीमसेनने अनेक रथ, घोड़े, हाथी, प्यादे सहित राजा नलको विदा किया और दमयन्तीको अपने पासही रहने दिया। निषध देश पहुंच राजा नलने पुष्करको बुला फिर चौसर खेलनेको तय्यार किया। ऋतुपर्णके यहां रहकर नलको चौसर खेलना खूब आगया था। अबकी दफ़ा उन्होंने अपना राज्य पुष्करसे जीत लिया। पुष्कर मारे डरके कांपने लगा। नलने कहा कि, जो हुआ सो भाग्यवश हुआ, तुम पहले काम करते थे वैसे ही काम करते रहो। फिर दमयन्तीको भी बेटा बेटी समेत बुला लिया और बहुत दिनोंतक राज्य किया।

नहुष—चन्द्रवंशी महाराज पुरूरवाके पुत्र थे। पुराणोक्त कथानुसार इन्होंने भूमण्डलका एक छत्र राज्य किया। परम प्रभावशाली राजा ययाति इनके पुत्र थे। नहुषने अपनी पालकी ब्राह्मणऋषियोंसे उठवाई, अतएव ब्राह्मणोंने शाप दिया जिससे राजा नहुष सांप होगया।

नागरीदास—(भाषाकवि) कृष्णगढ़नरेश महाराज यशवन्तसिंहका उप-नाम नागरीदास था। कवितामें कहीं २ नागर तथा नगरिया नाम भी लिखा है। ये वल्लभीय संप्रदायके वैष्णव थे। अनेक बड़े बड़े मन्दिर इनके बनवाये अबतक कृष्णगढ़में मौजूद हैं। इनके हृदयमें राज करते हुये भी विरक्तता समाई हुई थी। देखो इनका निम्नस्थ पदः—

आर०

पद—जहां कलह तहां सुख नहीं, कलह सुखनको शूल।
सबहि कलह एक राजमें, राज कलहको मूल॥
अपने या मन मूढ ते, डरत रहत हों हाय।
वृन्दावनकी ओरते, मत कबहू फिर जाय॥
लेत न सुख हरिभक्तिको, सकल सुखनको सार।
[illegible] भयो नृपहू भये, ढोवत जग बेगार॥

वि० सं० १८०८ में मुगलसम्राट् दिल्लीने इनको उपद्रव शान्ति करनेके लिये कुमायुं पर्वतपर भेजा था । वहां बड़ी वीरतासे लड़े और सन्धि करके दिल्लीको लौटे । दिल्लीसे बिदा हो फिर आप कृष्णगढ नहीं पधारे, परन्तु संसारको स्वप्न-वत् समझ वैराग्य धारण कर लिया । राजकुटुम्बसे मुहँ मोड़ा और राजसी ठाट त्याग वृन्दावनकी ओर गमन किया । इस विषयमें आप लिखते हैं कि:-

फिर वहे बीच राजस प्रवाह—गये इन्द्रप्रस्थ हिये विरहदाह ॥
तज दियो तहां सब प्रवृत संग—भये ब्रजसन्मुख फिर बढ्यो रंग ॥
तब चले चरण बरसाने ओर—किये पैग पैग तीरथ करोड़ ॥
ऐसो बरसानो निरख—बढि आयो पुनि प्रेम ॥
करत दण्डवत लुटत रज—छुटि गये राजसनेम ॥

इससे पहिले एक दफे और जब आपने ब्रजके तीर्थोंकी यात्रा की थी तो बड़े २ साधु महात्मा लोग आपको महाराज कृष्णगढ जान उदासिन भावसे अलग रहे थे, लेकिन जब सुना कि,नागरीदास ये ही हैं तब तो दौड़ २ कर आपको लिपट गये थे । जैसा कि, आपने इस दोहेमें लिखा है—

दो०—सुन व्यवहारिक नामसों, ठाढ़े दूर उदास ।
दौडमिले भरनैन सुन, नाम नागरीदास ॥

प्रसिद्ध भाषा कवि आनन्दघनसे आपकी बड़ी मित्रता थी ।

निम्नस्थ ग्रन्थ आपके बनाये हैं:—

बिहारचंद्रिका (वि० सं० १७८८), निकुंजविलास (वि० सं० १७९४), बृजसार (वि० सं० १७९९), स्वजनानन्द (वि० सं० १८०२), भक्तिमार्गदीपिका, युगलभक्तिविनोद (वि० सं० १८०८), वनविनोद (वि० सं० १८०९) बालविनोद, उत्सवमाला, तीर्थानन्द (वि० सं० १८१०), बनजनप्रशंसक (वि० सं० १८१९)

आपकी कविता माधुर्य और गूढ भाव तथा प्रेमरससे भरी हुई है ।

नागेश—(पं० नागेश प्रसिद्ध विद्वान). काशीके रहनेवाले महाराष्ट्र ब्राह्मण थे । हरदीक्षितजी इनके गुरु थे । वि० सं० की १८ वीं शताब्दीमें हुए । यह

अनेक शास्त्रोंके पूर्ण विद्वान् थे। विविधशास्त्रोंपर इनके बनाये ग्रन्थ मिलते हैं, वे नीचे लिखे हैं:—

विवरणनामक व्याख्यान भाष्यप्रदीपपर, मंजूषा, लघुशब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, तीर्थेन्दुशेखर, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, काव्यप्रदीप, रसगंगाधरव्याख्यान, सप्तशतीटीका, सप्तशतीप्रयोग, वाल्मीकिरामायणकी टीका और सांख्य तथा योगशास्त्रोंपर वृत्ति।

नागोजीभट्ट—(मनोरमा शेखरके कर्ता) ये संस्कृतविद्याके पूर्ण ज्ञाता थे। परतापगढ (अवध) के राजा रामबक्ससिंहने इनका मान सत्कार किया था। इनका बनाया मनोरमा शेखर नामक व्याकरण ग्रन्थ देशमान्य है। स० ई० १७७० के लगभग इनका समय है।

नाथकवि—उदयनाथ, काशीनाथ, शिवनाथ, शम्भूनाथ, हरनाथ, कवीश्वरोंने अपना भोग नाथ लिखा है पृथक् २ देखो।

नादिरशाह—(ईरान बादशाह) खुरासानके एक गडरियेका बेटा था। बचपनहीसे लड़ने भिड़नेका इसको शौक था, युवा होकर कुछ लुटेरोंको संग्रह करके आसपासके गांव लूटने लगा फिर एक बड़ी फौज संग्रह करके उसने खुरासानके अफगानोंको मार भगाया। फिर ईरानके बादशाहको गद्दीपरसे उतारकर इसने सूफीवंशके एक शाहजादेको तख्तपर बिठलाया। और कुछ दिनों पीछे आपही ईरानका बादशाह बन बैठा और काबुलकंधारतक राज्य बढाया। स० ई० १७३९ में ६५ हजार सेना लेकर हिन्दुस्तानपर चढाई की। मुगलसम्राट् मुहम्मदशाहने कर्नालके मैदानमें उसका मुकाबला किया पर हार गया और नादिरशाहके साम्हने चलागया। नादिरशाहने उसके साथ दोस्तीका बर्ताव किया और अपनी सेनासहित दिल्ली देखनेको आया। प्रथम नादिरशाहका इरादा कुछ दिन मेहमानके तौरपर दिल्लीमें रहकर ईरानको लौट जानेका था, परंतु एक दिन दिल्लीमें लोगोंने यह खबर उड़ादी कि नादिरशाह मरगया। यह खबर पातेही दिल्लीकी प्रजा नादिरशाहके सिपाहियोंपर टूट पड़ी और सैकडोंको मारडाला। प्रातःकाल उठकर जब नादिरने यह हाल देखा तो कत्ले-आमका हुक्म दिया। जब प्रजाका अधिक भाग कटगया तो मुगलसम्राट् मुहम्मदशाहने नादिरके पास हाजिर होकर

प्रार्थना की कि, यदि सब प्रजा काटडाली जायगी तो फिर बादशाहत किसपर की जायगी ? इसपर नादिरने कत्ल मौकूफका हुक्म दिया। हुक्म पातेही फौजके सिपाहियोंने तलवारें जहांकी तहां रोकली। नादिरशाहकी सेना उसका हुक्म ऐसी फुर्तीसे मानती थी कि जिसकी वजहसे " हुक्म नादिरशाही " प्रसिद्ध है। पश्चात् नादिरने दिल्लीको लूटा और ३२ करोड़ रुपयोंसे अधिकका धन लेगया, जिसमें तख्ते, ताऊस और कोहनूर हीरा भी शामिल था। सिन्धसे इस पारका मुल्क मुगलसम्राट् मुहम्मदशाहको अपनी तरफसे देगया। और बड़े २ सर्दारोंको समझा गया कि, बादशाहका हुक्म मानना नहीं तो तुम्हारे समझानेको मैं फिर हिंदोस्तान देखूंगा। इसके बाद ईरानकी तरफ कूंच किया, जिस गाँव और शहरमें होकर नादिरशाह और उसकी फौज निकलती थी प्रजागण अपनी जान लेकर भागते थे। आखिर रास्तेमें कांगड़के समीप एक साधु अपनी गुफामेंसे निकल निर्भय नादिरशाहके सामने चलागया और कहा कि, "बाबा अगर तू देवता है तो देवतोंके काम कर और जो पण्डित है तो लोगोंको मुक्तिका रास्ता बता और यदि तू बादशाह है तो प्रजाको सुख दे" इसके उत्तरमें नादिरने कहा कि, मैं न देवता हूं न पण्डित हूं, न बादशाह हूं, जो इनकेसे काम करूं, मुझको तो परमेश्वर अधर्मी और पापी लोगोंको सजादेनेके लिये भेजता है। शुरूमें नादिर दयालु था, परन्तु हिंदोस्तानसे लौटनेके बाद बड़ा निर्दयी होगया था। यहांतक कि, एक दिन क्रुद्ध होकर अपने बेटेकी आंखें निकलवा डालीं। स० ई० १७४७ में प्रजागणने उसको मारडाला। नादिरशाह जबतक जीता रहा किसीसे नहीं हारा। इसीकारण इस देशमें यह उक्ति अबतक प्रसिद्ध है " जबतक जियें नादिरशाह, तबतक सीस नवावें काहि "।

नानक—(सिक्खोंके प्रथम गुरु—खालसापन्थके संस्थापक) जिला लाहौरके तालवाडी नामक गाँवमें कालूमल क्षत्रीके घर वि०सं० १५२६ में कार्तिक सुदी १५ को जन्मे। इनके पिता तालवाड़ी गाँवके पटवारी थे। इनके बालचरित्रोंके पढनेसे मालूम होता है कि, बुद्धि शुरूहीसे अत्यन्त तीव्र थी और मन संसारी कामोंसे विरक्त था। थोड़ेही दिनोंमें इन्होंने कुछ फार्सी और हिसाब किताब शीघ्रही सीख लिया था। जब ये बड़े हुए तो पिताने बालानामक सिन्धी जाटके साथ इनको ४० रु० देकर व्यापार करनेके लिये बाहर भेजा। रास्तेमें कुछ

साधु मिल गये। इनके खिलाने पिलानेमें चालीसों रुपये खर्च कर नानकजी घरको लौट आये, निदान पिताने निराश हो इनको बहनके घर सुलतानपुर भेज दिया, और बहनोईने सिफारिश करके इनको नवाब दौलतखाँ लोदीका खजाञ्ची करा दिया और थोड़ेही दिन बाद जिला गुरदासपुरमें एक खत्रीकी बेटी सुलखनीसे इनकी शादी करादी, जिससे श्रीचन्द्र व लक्ष्मीदास दो पुत्र हुए। श्रीचन्द्रसे वेदी सम्प्रदाय और लक्ष्मीदाससे उदासी सम्प्रदाय चला। पुत्र होनेके बाद गुरुके चित्तमें विशेष वैराग्यका उदय हुआ। निदान एक दिन घरबार छोड़ जङ्गलको चलते हुये और सुलखनीजीको पुत्रों सहित नैहर पहुँचा दिया। बाला और मर्दाना दो जन गुरुके साथ रहते थे। मर्दाना जो रबाबी मुसल्मान था बाजा बजाता था। और गुरु ज्ञान मार्गके भजन गाते थे। हिन्दू मुसल्मानोंको मिलाकर एक कर देनाही इनका मुख्य उद्देश था। इनका सिद्धान्त था कि, ईश्वर एक है, जाति पांति कुछ नहीं है, और पन्थ वा मत कोई पदार्थ नहीं है। ये उत्तम साधु थे जीवन अच्छे कामोंमें विताते थे। अनेक तीर्थोंकी यात्रा की थी, मक्का भी गये थे। हिन्दू मुसल्मान दोनों इनके चेले हुये थे। वि० सं० १५९६ में ७० वर्षके होकर सिधारे। इनके मृतक शरीर पर हिन्दू मुसल्मानोंमें झगड़ा हुआ परन्तु चादर उठाकर देखा तो लाश नहीं पाई। नानककी जन्मभूमिपर एक मन्दिर बना है जिसको नानकाना कहते हैं। बाबरने जब हिन्दोस्तानपर चढाई की थी तो गुरुसे उसकी मुलाकात पञ्जाबमें हुई थी। इनके बनाये अनेक लावनी व भजन हैं और "गुरुकी साखी" नामक ग्रन्थ भी इन्हीका बनाया हुआ है।

नानाधुन्धूपन्थ—(नानासाहब) यह पूनाके अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीयका गोद लिया बेटा साक्षर और प्रशंसनीय चाल ढालका सुडौल हृष्टपुष्ट, मिलनसार, अपने पूर्वजोंके धर्मपर आरूढ और वर्णका ब्राह्मण था। कानपुरके निकट बिठूरमें रहता था. पेशवा बाजीरावके बाद बृटिश गवर्नमेण्टने वह पेन्शन जो बाजीरावको मिलती थी नानासाहबको नहीं दी, इसी वजहसे नानासाहब दिलमें बृटिश गवर्नमेण्टसे शत्रुता मानता था, पर कानपुरमें रहनेवाले अङ्गरेजों तथा मेमोंसे खूब मिलता और मित्रताभाव रखता था। स० ई० १८५७ के गदरमें नानासाहबने कानपुरवासी सब अङ्गरेजों, मेमों और उनके बच्चोंको बचानेका

वायदा किया था पर अफसोस है कि, बागियोंने नानासाहबके बिना जाने उन सबको मार डाला । गदरके समय नानासाहब जिधर होकर निकल जाता था सब म्लेच्छ कान टेंक जाते थे और दशों उंगलियें मुँहमें देकर प्राण बचाते थे । अन्तमें सर हेनरी हैवलाकसे परास्त होकर नानासाहब फतेहपुरके मुकामसे भागा और आजतक नहीं मिला । गदरके बाद, बृटिश गवर्नमेण्टने नानासाहबको कानपुरके किश्तोखूनका दोषी ठहराया और फांसीका हुक्म दिया लेकिन नानासाहबका पता कहीं नहीं लगा । अनेक लोग साधुके भेसमें पकड़ २ कर फांसी दे दिये गये । परन्तु विश्वास है कि, उनमेंसे कोई भी नानासाहब न था । स० ई० १८२४ में जन्मे ।

नानाफर्नवीस—(मरहटासर्दार) जातिके महाराष्ट्र ब्राह्मण थे । अंग्रेज इतिहास लेखकगण इस बातपर एक मत हैं कि नानाफर्नवीस बड़े सुप्रबन्धकार, राजनीतिनिपुण और चतुर पुरुष थे । नारायणराव पञ्चम पेशवाने इनको अपना वज़ीर बनाया । कुछही दिनों बाद आनन्दी बाईने अपने भतीजे नारायणरावको विष देकर मरवा दिया और नारायणरावके चचा रघुनाथराव पेशवा बन बैठे । मरनेसे कुछही महीने बाद नारायणरावके माधौराव नारायण नामक पुत्र हुआ जिसको रघुनाथरावने तो हराम का ठहराया लेकिन नानाफर्नवीस आदि सब मरहटा सर्दारोंने मिलकर उसको गद्दीपर बिठलाया और रघुनाथरावको उतार दिया । इस पर रघुनाथरावने अंग्रेजोंसे मदद चाही और नानाफर्नवीस फरासीसोंसे मिल गये; निदान युद्ध हुआ, नतीजा यह निकला कि माधौराव नारायण तो पेशवा रहे और रघुनाथरावको भी खर्चके लिये पेन्शन मिली । माधौराव नारायणकी नाबालिगीमें नानाफर्नवीसका अधिकार पूनादर्बारमें बहुत कुछ बढ़ा हुआ था । इसी कारण सेंधिया, हुल्कर, भोंसला तथा गैकवाड़ जो पेशवाके आधीन होकर राजस्व देते थे नानाफर्नवीससे जलने लगे और स्वाधीन होजाना चाहते थे । लेकिन जो जो इनमेंसे सिर उठाता गया, नानाफर्नवीसकी राजनीतिसे उसीको नीचा देखना पड़ा । सबसे पहले महादाजी सेंधियाने सिर उठाया और पूना दर्बारका आधिपत्य त्याग दिया । स० ई० १७९४ में उनकी मृत्यु हो गई । इसी समयके लगभग नानाफर्नवीसने निज़ाम हैदराबादपर राजस्व वसूल न होनेके कारण चढ़ाई की और फतेह पाई । स० ई० १७९५ में माधौरावनारायणने

२१ वर्षकी उम्रमें आत्मघात किया और बाजीराव द्वितीय अन्तिम पेशवा गद्दीपर बैठे। इनके समयमें गैकवाड़, भोंसला और निजामने पूना दर्बारसे मुँह मोड़ा। यह देख बाजीरावने नानाफ़र्नवीसकी रायमें अंग्रेजोंसे सन्धि हुई जिसके अनुसार पेशवाको कुछ अंग्रेजी फ़ौजका खर्चा सहन करना पड़ा और अंग्रेज़ोंने पूना दर्बारके शत्रुओंको परास्त करनेका वचन दिया। द्वितीय मरहटा युद्ध शुरू हुआ जिसमें गैकवाड़, भोंसला और निज़ामको परास्त होकर अपने अपने मुल्कका अधिकांश देकर सन्धि करनी पड़ी। फिर हुल्करने सिर उठाया लेकिन उस को भी अन्तमें भोंसला और गैकवाड़की तरह अंग्रेजी फ़ौजके मुकाबलेमें ढीला होना पड़ा। आपसके ईर्षाद्वेषका यह फल हुआ कि मरहटोंका बल पराक्रम नष्ट होकर उनको दूसरोंका आधीन बनना पड़ा।

नानाफ़र्नवीस स० ई० १८०० में मरे इनका असली नाम जनार्दन बालाजी था।

नाभाजी—(भक्तमालके कर्ता). इनका असली नाम नारायणदास था। इनके बाप रामदास ब्राह्मण तैलङ्ग देशमें गोदावरी तट उत्तर रामभद्राचल पर्वत पर रहते थे और हनुमानोपासक थे। बचपनहीमें नाभाजीके पिताका देहान्त हो गया और जब ५ वें वर्षके हुये तब इस देशमें घोर अकाल पड़ा, जिसमें बेचारी माता इनको वनमें छोड़कर चली गई। दैवयोगसे गुरु रामानन्दकी गद्दीके महन्त कील्हजी अपने पुत्र अग्रदाससहित उधरसे निकले और इनको अपने स्थानपर जो जयपुरके निकट गलतामें है ले आये। वहां रहकर साधुओंकी जूठन खाते खाते इनकी बुद्धि निर्मल हो गई। तब अग्रदासजीने इनको अपना शिष्य कर लिया और नाभादास नाम रक्खा। वि० सं० १६४२ और १६८० के बीच नाभाजीने निज गुरुकी आज्ञासे भक्तमाल नामक ग्रन्थ १०८ छप्पय छन्दोंमें लिखकर पूरा किया। भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदायके अनुसार इनकी गुरुपरम्परा यों है—

गुरु रामानन्दके शिष्य आशानन्द, उनके कृष्णदास पय अहारी, उनके कील्हजी उनके अग्रदास और उनके नाभाजी प्रसिद्ध महात्मा उल्लूकदासजी इनके गुरुभाई थे। पश्चात् स्वा० प्रियादास वृंदावनीने भक्तमालका तिलक कवित्तोंमें किया। इसके बाद भक्तमालके अनेक तिलक तथा अनुवाद बने और बनते जाते हैं। एक दफे

मथुरामें साधुसमाज हुआ था तब नाभाजीको गुसांईकी पदवी मिली थी । नाभाजी, जन्मांध थे ।

नारायणभट्ट गोस्वामी–(इनके पिताका नाम भास्कर तथा गुरुका नाम सनातन गोस्वामी था) । गुरुमुखसे भागवतकी कथा सुनकर इनको ब्रजकेरूप गुप्त स्थानोंके प्रकट करने तथा भगवतलीला दर्शन करनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई । तब इन्होंने पुराणोंसे पता लगाकर ब्रजके सब प्राचीन स्थानोंको प्रकट किया और रासलीलाका आरम्भ कराया । आज कल लोग इन्हींके प्रदर्शित पथसे ब्रजयात्रा करते हैं और इन्हींके आविष्कृत स्थान तथा देवता इस समय पूज्य हैं । वि० सं० १८१० में इन्होंने "ब्रजभक्तिविलास" नाम ग्रन्थ रचा जिसमें ब्रजके स्थानों और उनके माहात्म्यका वर्णन है । इस ग्रन्थमें १३३ वनोंका वर्णन है जिनमेंसे ४३ जमुनाजीके पार हैं । भक्तमालमें लिखा है कि, ये बड़े पंडित थे और ज्ञान तथा स्मार्तवादके खण्डनमें परम निपुण थे । ये दीक्षित भृगुवंशमें मथुरासे १३ कोस पर मन्दराज नामक ग्राममें जन्मे थे । और १२ वर्षकी उम्रमें गुरुकी आज्ञासे राधाकुंडपर आ बसे थे । ७ वर्ष पीछे फिर बरसानेके पास ऊंचे गांवमें जा रहे । इन्होंने वर्तमान शैलीकी रासलीलाका प्रचार ब्रज मंडलमें किया । डाक्टर ग्रिअर्सनके मतानुसार स० ई० १५६३ में ये जन्मे । खेड़ागांव जिला मथुरामें कदम्बखण्डीके समीप इनका बनवाया नारायण सरोवर नामक तालाब अबतक मौजूद है ।

नारायणराव–(पञ्चम पेशवा) बालाजी बाजीराव तृतीय पेशवा इनके बाप थे । अपने बड़े भाई माधौराव चतुर्थ पेशवाके बाद स० ई० १७७२ में ये गद्दी पर बैठे लेकिन् इनके चचा रघुनाथरावकी स्त्री आनन्दी बाईने स० ई० १७७४ में इनको विष दिलवाके मरवा दिया । इनकी मृत्युके कुछ महीने पीछे माधौराव नारायण नामक इनके पुत्र हुआ जो पेशवाकी गद्दीपर बैठा इनका वजीर नाना फर्नवीस बड़ा स्वामिभक्त और सुप्रबन्धकर्ता था । इन्हींके वक्तमें मरहटोंने दिल्लीपर चढ़ाई करके मुगलसम्राट् शाह आलम द्वितीयको कैद कर लिया था ।

निपट निरञ्जनस्वामी–(भाषाकवि) दिल्लीके रहनेवाले ब्राह्मण वि० सं० की १६ वीं शताब्दीमें हुए । ये गो० तुलसीदासके समान महान् सिद्ध हुए हैं ।

इनके रचे ग्रन्थोंकी संख्या ठीक नहीं मालूम होती, परन्तु पुराने संगृहीत पुस्तकोंमें इनके बनाये कवित्त सैकडों मिलते हैं। "शान्तिसरसा" तथा "निरञ्जन-संग्रह" इनके रचे ग्रन्थ हैं। इनकी कविता ऐसी प्रभावशाली है, कि इसके श्रवण कीर्तनसे काम, क्रोध, लोभ, मोहसे मनुष्य निस्संदेह छूट जाता है। निम्नस्थ प्रसिद्धपद इन्हींका है:-

कैते भये यादव सागर सुत केते भये। जातहू न जानें उत्तर तरैया प्रभातकी॥
बलु वेणु अम्बरीष मानधाता प्रहलाद। कहांलों गनाउँ कथा रावण ययातिकी॥
तेऊ न बचे कालकौतुकीके हाथ। भांति २ रची सेन सहे दुःख बातकी॥
चार २ दिनाको चाव सबकोऊ करै। अंत लुटजैहैं जैसे पुतरी बरातकी॥

निवासदास-(हिंदी भाषाके सुलेखक) मथुराके सेठ लक्ष्मीचंदके मुनीम लाला मंगीलाल अग्रवाल वैश्य इनके पिता थे। वि० सं० १९०८ में इनका जन्म हुआ। इनके दो बड़े भाई और थे। ये महाजनीकार्यमें बड़े ही चतुर थे, थोडीसी उम्रमें दिल्ली जाकर सेठ लक्ष्मीचंदकी कोठीका उत्तम प्रबन्ध किया था। पंजाब-गवर्नमेंटने इनको दिल्लीका म्युनिसिपलकमिश्नर नियत किया था और दर्बा-रियोंकी सूचीमें इनका नाम दर्ज किया था। ये वैष्णव थे लेकिन साम्प्रदा-यिक सङ्कीर्णता इनमें नहीं पाई जाती थी। हिन्दी भाषाके सुलेखकोंमें इनकी गणना है। तप्तासम्वर्ण, संयोगतास्वयंवर, रणधीर प्रेममोहिनी तथा परीक्षागुरु इनके रचे ग्रन्थ अच्छे हैं। जिन्होंने इनको देखा था वे कहते हैं कि, "विद्या, बुद्धि, धन, प्रतिष्ठा, सहृदयता, रसज्ञता, व्यवहारकुशलता, देशभक्ति तथा ईश्वर-भक्ति"इत्यादिगुणोंके लिहाजसे लाला श्रीनिवासदास उत्कृष्टश्रेणीके पुरुष थे। वि० सं० १९४४ में परलोकगामी हुए।

निम्बार्कस्वामी-(सनकादिक अर्थात् निम्बार्क सम्प्रदायके आचार्य) चौदहवीं शताब्दीमें हुए यह महाराष्ट्र ब्राह्मण अरुण ऋषिके पुत्र थे। माताका नाम जयन्ती था। गोदावरी तट मुंघेरमें रहते थे। परमविद्वान होनेके सिवाय बड़े सिद्ध भी थे। वेदान्तसूत्रोंपर इन्होंने भाष्य रचा था। अनेक स्तोत्र भी बनाये थे, जिनमें ईश्वरके रूप, जीव और मायाका निर्णय किया है। इन स्तोत्रोंपर व्याख्यायें भी रची हैं और उपासनाके लिये पद्धति बनाई हैं। एक

"दशश्लोकी स्तोत्र" भी निर्माण किया है, जिसमें यह सिद्ध किया है कि ईश्वर द्वैताद्वैत है: जैसे सर्पका कुण्डल सर्पसे भिन्न नहीं, जलकी तरंग जलसे भिन्न नहीं, ऐसेही यह जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं, केवल नाममात्रका फर्क है। निम्बार्क स्वामीकी सम्प्रदायके दो मुख्य स्थान हैं, अरुण (दक्षिण) और सलेमाबाद। इनका नाम निम्बार्क पड़नेका यह कारण हुआ कि एक दिन कोई अतिथि संन्यासी इनके घर आया। उसके लिये भोजन तैय्यार होते होते सूर्य छिप गया। सूर्यास्तके बाद संन्यासीने अपने नियमानुसार भोजन करनेसे इनकार किया। यह देखकर इनको खेद हुआ और इन्होंने ईश्वरसे प्रार्थना की। थोड़ीही देरमें निम्बवृक्षके ऊपर सूर्य चमकने लगा। संन्यासीने सूर्यको देख भोजन कर लिया। तबहीसे इनका नाम निम्बार्क (निम्ब = वृक्ष + अर्क = सूर्य) स्वामी पड़ा। इनके सम्प्रदायके लोग श्रीराधाकृष्णके युगलरूपका ध्यान पूजन करते हैं।

निहालसिंह-(महाराज राना निहालसिंह, सी० बी० धौलपुरनरेश) सं० ई० १८६२ की साल धौलपुरके जाटवंशोत्पन्न राज्यवंशमें जन्मे। आपके पूर्वजोंने सं० ई० की ११ वीं शताब्दीमें चम्बल नदीके किनारे कुछ मुल्क विजय किया था। दिल्लीके सम्राट सिकंदर लोदीने इस घरानेको रानाकी उपाधि दी, और स० ई० १७७८ में बृटिश गवर्नमेंटने महाराज रानाकी उपाधिसे विभूषित किया। महाराज निहालसिंह अपने दादे महाराज भगवन्तसिंह, के० सी० आई० ई० के बाद सं० ई० १८७३ में धौलपुरकी गद्दीपर बैठे। स० ई० १८९९ में तीराकी चढ़ाईमें संयुक्त होनेकी अभिलाषा प्रकट करनेके बदलेमें आपने वायसराय महोदयसे सी० बी० की पदवी पाई। अङ्गरेजी तथा संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता होकर अपने पूर्वजोंके सनातन धर्मपर आरूढ़ थे। एक समय चलती गोलियोंके बीच घुसकर आपने डांकुओंको पकड़ा था। आप अपनी प्रजाके भक्तिभाजन तथा उदार, गुणग्राही और सर्वप्रिय थे। स० ई० १८७७ के अकालमें आपने प्रजाकी बड़ी रक्षा की थी। आप सद्व्यवहार कुशल थे और अंग्रेजोंसे आपका बड़ा हेल मेल था। घुड़दौड़ तथा पोलोका शौक था। महाराज पटियाला आपके परम मित्र थे। उनकी मृत्यु की खबर सुनकर आप बीमार पड़ गये, और कुछ दिन बाद शिमलेमें स० ई० १९०१ की साल परमधामको सिधारे-आपकी महारानी बड़ी पतिव्रता थी, निदान महाराजकी मृत्युकी खबर पाते ही उसने भी देह त्यागदी। धौलपुर राज्यका

विस्तार १२०० वर्गमील है। बस्ती प्रायः २.५ लाख मनुष्योंकी है। राज्यमें १२९ सवार, १५८८ पैदल और ३१ तोपें हैं। तोपके १५ फैरोंकी सलामी महाराजको दी जाती है। महाराज निहालसिंहके सुशिक्षित पुत्र (वर्तमान नरेश) निज पिताके समानही सुयोग्य हैं।

नीलकण्ठ अध्वरी–(संस्कृत कवि) प्रसिद्ध पण्डित आचार्य दीक्षितके पौत्र वि० सं० १७ वीं शताब्दीके आरम्भमें द्राविड़ देशमें हुए। बड़े पण्डित, कवीश्वर तथा टीकाकार थे। श्रीकण्ठ मतपर चलते थे। अनेक यज्ञ करके इन्होंने "सर्वस्ववेदी" पदवी पाई थी। दक्षिण देशस्थ एक राजाके दर्बारसे इनका सम्बन्ध था। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:–व्याकरण भाष्य-प्रदीपव्याख्या, शिवतत्त्वरहस्य, शिवलीलार्णव महाकाव्य, नीलकण्ठविजयचम्पू।

नीलकण्ठ दैवज्ञ–(ज्योतिषकार) प्रसिद्ध ज्योतिषी अनन्तदैवज्ञ इनके पिता थे। ये गर्गगोत्री ब्राह्मण थे इन्होंने नीलकण्ठी नामक ज्योतिष ग्रन्थ जिसमें वर्षफलका विचार है ३० वर्षकी उम्रमें बनाया। "मुहूर्तचिन्तामणि"के रचयिता पं० रामदैवज्ञ इनके भाई थे। नीलकण्ठजी बादशाह अकबरके दर्बारमें प्रधान पण्डित थे। पं० गोविन्ददैवज्ञ जिन्होंने पीयूषधारा नाम मुहूर्त चिन्तामणिका तिलक रचा था इनके पुत्र थे। ये शाके शालिवाहन १४७९ में जन्मे।

नीलाम्बर शर्म्मा–(ज्योतिषी) ये मैथिल ब्राह्मण शम्भूनाथजीके पुत्र पटनाके रहनेवाले शाके १७४५ में जन्मे। पं० लज्जाशंकर ज्योतिर्विद्से विद्या पढ़ी। पं० जीवनाथशर्म्मा इनके ज्येष्ठ भ्राता थे। पं० नीलाम्बरजी अलवर-नरेश महाराज शिवदानसिंहकी सभाके प्रधान पण्डित थे। राज्य अलवरके पोलीटिकेल एजेण्ट कप्तान टामस कैडेल साहिबके कहनेसे यूरोपदेशकी रीत्यनुसार इन्होंने "गोलप्रकाश" नामक ग्रन्थ रचा था। लीलावतीपर एक तिलक भी बनाया था। शाके १८०५ में मणिकर्णिका घाट काशीपर परमधामको सिधारे। अपना तमाम धन सीतारामके मन्दिर बनवाने और उसकी प्रतिष्ठा करनेमें लगा दिया था।

नूरजहाँ–(दिल्लीके मुगलसम्राट् जहांगीरकी पृथिवी प्रसिद्ध सुन्दरी बेगम) इसका बाप मिर्जा ग्यास ईरानके वजीरका बेटा था। समयके हेर फेरसे गरीब होकर नौकरीकी तलाशमें हिन्दोस्तान आया। रास्तेमें कन्धारके समीप उसके येही

लड़की पैदा हुई । मिर्जा ग्यासके पास उस वक्त खानेतकको न था और बीवी सहित पैदल सफर करता था, निदान कलेजेपर पत्थर रख लड़कीको सड़कपर छोड़ आगेको चल दिया । पीछे २ सौदागरोंका एक काफिला आता था काफिलेके सर्दारने बच्चेको सड़कपर पड़ा देख उठा लिया । आगे बढ़कर मिर्जा ग्यास बीबी सहित जाते मिले काफिलेके सर्दारने ग्यासकी बीबीको लड़कीकी दाया नियत करके सवारी बैठनेको दी और खाना मुकर्रर किया । मिर्जा ग्यास और उनकी बीबीने अपने बच्चेको पाकर और उसकी खुशनसीबी देखकर परमेश्वरको लाख २ धन्यबाद दिया । हिन्दोस्तान पहुंच ग्यास बादशाह अकबरके यहां नौकर हो गये। जब यह लड़की. जिसका नाम मेहरुन्निसा था बड़ी हुई तो अकबरके बेटे सलीमकी इसपर आंख पड़ी । अकबरने यह बात पहिचान मेहरुन्निसका विवाह अलीकुलीखाँ एक ईरानीसे करके उसको बंगालका सूबेदार बना दिया । अकबरके बाद शाह-जादे सलीम (जहांगीर) को तख्तपर बैठकर मेहरुन्निसाकी याद आई । निदान उसने अलीकुलीखांके मारनेका इन्तज़ाम किया । पहले तो अलीकुलीखाँ खूनी हाथीसे लड़ाया गया, लेकिन उसने हाथीको मार भगाया । फिर निहत्थे होकर शेरसे लड़नेका हुक्म मिला, परन्तु उसने शेरकोभी पछाड़ "शेर अफ़गन" खिताब पाया । जब यह कोई तरकीब न चली तो जहांगीरने फौज भेज अलीकु-लीको मरवाडाला । और कुछ दिन बाद उसकी विधवाके पास शादीका पैग़ाम भेजा । जवाबमें मेहरुन्निसाने आँसू बिटोकर कहा कि "शेर अफगनसे खसमको गमाकर अब मैं क्या शादी करूंगी, बादशाह सलामतसे कहि देना कि, मुझ रांड पर अधिक जुल्म करना लाजिम नहीं है." इस उत्तरपर जहांगीरने निराश होकर मेहरुन्निसाको अपनी माँके खवासामें रखवा दिया और पश्चात् शोक शान्ति होने-पर उससे शादी करली, और नूरमहिल तथा कुछ दिन पीछे नूरजहांका खिताब दिया । जहांगीर नूरजहांका वशीभूत था, एक पलभी विना उसके कल नहीं पड़ती थी, सिक्केपर भी उसका नाम खुदता था । राजकाजमें उसका पूरा अधिकार था । और सर्कारी कागजोंपर भी वोही हुक्म देती तथा दस्तखत करती थी । उसके बाप मिर्जा ग्यासको वज़ीरका ओहदा मिला था और उसका भाई आसफुद्दौलाके पदपर नियत किया गया था । स० ई० १६२७ में जहांगीरने लाहौरके समीप परलोक गमन किया । शाहजहाने तख्तपर बैठकर २५ लाख रुपये वार्षिक

आयकी जागीर नूरजहां को दी। परन्तु उसको अन्तरसे संसार स्याह था। विधवा होनेके बाद रंगीन कपड़ा कभी नहीं पहना और इसी तरह शोकमें दिन काटती हुई १२ वर्ष पीछे आप भी चलबसी और लाहौरमें अपने पतिके मकबरेके पास दफन हुई। बड़ी हाजिर जबाब थी और फारसी कविता भी अच्छी करती थी।

नूह—(Noha) मुसल्मानों तथा ईसाइयोंकी धर्म पुस्तकोंके लेखानुसार इनके वक्तमें स० ई० से १६५६ वर्ष पूर्व एक दफे २४ दिनतक वर्षा मूसलाधार हुई। सर्वत्र पृथ्वी जलमें डूब गई और तूफान आगया, केवल हजरत नूह एक नौकापर सवार होकर अपने ७ बेटों सहित बचे जिनकी सन्तति बादको पृथ्वीपर सब जगह फैल गई। मुल्क काबुल और यूनानकी प्राचीन पुस्तकोंसे भी इस तूफानके आनेका पता लगा है। भागवतमें भी लिखा है कि राजा सत्यव्रतके समयमें एक तूफान आया जिसमें सब पृथ्वी जलमें डूब गई थी। केवल राजा सत्यव्रत सप्त-ऋषियों सहित एक नौकापर बैठकर बचा था। आधुनिक विद्वान लोग ऊंचे २ पहाड़ोंकी चोटियोंपर मछली आदि समुद्री जन्तुओंकी हड्डियें पानेसे भी इस तूफानका आना सिद्ध करते हैं। नूहके पुत्र सामकी औलादमें अरब और श्यामके लोग है। और उसके द्वितीय पुत्र हामके वंशमें अफरीकाके हबशी हैं और उसके तीसरे पुत्र याफिसके वंशमें एशिया और यूरूपके रहनेवाले हैं। पहिले पहिल नूहकी सन्तति फरात और दजला नदियोंके बीच मेसोपोटेमियासे रहती थी, बहुत अधिक होजानेसे भिन्न २ देशोंमें आबसी और राज्य स्थापन करनेमें समर्थ हुई।

नेपोलियनबोनापार्ट—(Napolean Bonaparte) मुल्क फ्रान्सका जगत् विजयी, परम पराक्रमी और बड़ा बहादुर बादशाह हुआ है। इसने सब यूरूपको हिला दिया था। यूरूपीय देशोंमें माता अपने बच्चोंको यह कहकर रोनेसे चुपाती थीं कि "बोना आया!" इसका कथन था कि, उद्योगके आगे कोई बात नामुमकिन नहीं है। ये कार्सीका द्वीपमें चार्लस बोनापार्टके घर स० ई० १७६९ में पैदा हुआ। १६ वर्षकी उम्रतक विद्या पढी और अस्त्र शस्त्रकी शिक्षा पाई। पश्चात् फ्रांस दर्बारकी फौजमें भरती हुआ, और लेफ्टिनेन्ट करनलके पदपर पहुंच कर टोलोनका किला फतेह किया। बादको बिग्रेडिअर जेनरलका ओहदा पाया और स० ई० १७९५ में फौजका कमान्डर बना दिया गया। एक ही वर्षबाद फ्रांसदर्बारने इसको कमान्डर इनचीफ नियत करके इटेली भेजा। वहां पहुंच

इसने ४ दफे आस्ट्रियाके बड़े भारी दलका सामना थोड़ीसी फौजसे करके विजय प्राप्त की । इन लड़ाइयोंमें इटेली, लोम्बार्डीका मुल्क फतेह हुआ और बहुतसा धन दौलत इसके हाथ लगा । स० ई० १७९७ में फ्रांसको लौट आया । और दूसरे साल मिश्रदेश विजय करणार्थ ३० हजार फौज लेकर लड़ाई की । और मुल्क शाम तथा मिश्रको विजय किया । इन्हीं दिनों फ्रान्समें कुछ फिसाद हुआ, निदान नेपोलियन फौजको छोड़ अकेला फ्रान्स आया और पञ्चायती राजको तोड़ सब राजकाज निज अधिकारमें करलिया । स० ई० १८०२ में फ्रान्स० वालोंने उम्र भरके लिये इसको "कान्सल" नियत किया । स० ई० १८०५ में इसने शाहन्शाही ताज शिरपर रक्खा और तख्तपर बैठा । थोड़ेही दिन पीछे जर्मनीपर चढ़ाई की और ३० हजार आष्ट्रिया वासियोंको कैद किया । स० ई० १८०५ में पार्शिया विजय किया और महाराजा रूसको परास्त किया । तथा पुर्तगालपर अधिकार जमाया । स० ई० १८०७ में स्पेन विजय किया । जिन २ मुल्कोंको फतेहकरता गया उनपर अपने भाई भतीजोंको बादशाह बनाता गया । स० ई० १८१२ में रूसके शहर मास्को को जलाकर बरबाद करदिया । अन्तमें रूस, आष्ट्रिया, पुर्शिया और इंग्लैंडकी फौजोंने मिलकर इसपर चढ़ाई की । नेपोलियनको परास्त हो तख्त छोड़ पेन्शन ले एल्वाके टापूमें जाकर रहना पड़ा परंतु इससे खाली न बैठा गया निदान एकही वर्ष पीछे फ्रान्समें आया । बहुत लोग इसके इर्द गिर्द इकट्ठे होगये और एक बड़ी सेना तैयार होगई, यह खबर पाकर स० ई० १८०५ इंग्लैंड, जरमनी और रूसकी फौजोंने मिलकर इसे चारोंतरफसे घेरा और वाटरलू की प्रसिद्ध लडाईमें वेलिजलीसाहिब अंग्रेजीसेनापतिने इसको परास्त करके ड्यूक आव वेलिङ्गटनका खिताब पाया और इस को पकड़कर सेन्ट हेलिनाके टापूमें कैद किया जहां पेटमें फोडा निकलने से बीमार होकर स० ई० १८११ में मरगया । फ्रान्सको लाश लाई गई और बड़ी धूम धामसे दफन हुई ।

नेलसन—(लार्ड होरेशियो नेलसन Lord Horatio Nelson) बृटिश गवर्नमेन्टकी समुद्री फौजका सर्वोच्च सेनापति था । इसके बाप पादरी थे । १२ वर्षकी उम्रमें इसने जहाजपर नौकरी की और निजयोग्यताके कारण मल्लाहसे लेकर एडमिरलके पदतक पहुंच स्पेन तथा फ्रान्सके जहाजी बेड़ेको इसने

ट्राफलगारकी लड़ाईमें वीरतासहित नष्ट करके प्रसिद्धि पाई । इसी लड़ाईमें नेलसनके गोली लगी थी । जिससे कुछ दिन बाद उसके प्राण नष्ट हुये । नेलसनकी वीरताके बदलेमें उसके भाई बहिनोंको पार्लियामेन्टने पेन्शन इनाम और जायदाद दी । नेलसन बड़ा साहसी, वीर और स्वदेशभक्त विचारशील पुरुष था ।

स० ई० १७५९ म जन्म, और स० ई० १८०५ में मृत्यु ।

नैपियर–सर चार्लस नैपियर (Sir Charles Napier) अंग्रेजी सेनामें बचपनहीसे भरती होगये थे और पहले पहल आयर्लैंडके उपद्रव शान्ति करनेमें इनसे काम लियागया था । स० ई० १८०६ में कप्तान बनाकर कोरन्नाकी लड़ाई पर स्पेन भेजे गये । इस लड़ाईमें नैपियरके कई घाव लगे, स० ई० १८१३ में इनको उत्तरीय अफरीकामें भेजा गया, वहां इन्होंने बड़े २ बहादुरी और साहसके काम किये. स० ई० १८४१ में बृटिश सेनाके कमान्डर इनचीफ नियत होकर हिन्दोस्तानको आये । स० ई० १८४३ में बड़ी वीरतासे मियाकी लड़ाईमें सिंधके अमीरोंको परास्त किया और सिंध विजय किया । स० ई० १८४७ में इंग्लैंडको वापिस गये जब ब्रिटिश गवर्नमेन्ट और सिक्खोंमें लढाई शुरू हुई तो नैपियर साहिब हिंदोस्तान फिर भेजे गये । स० ई० १८५० में दूसरी दफे इंग्लैंडको वापिस गये इनका मिजाज चिड़चिड़ा था ।

स० ई० १७८२ में लन्डनमें पैदा हुये, और स० ई० १८५३ में मरे ।

नौशेरवाँ–(ईरानका न्यायकारी राजा) कैकुवादका पुत्र स० ई० ४८९ में जन्मा । इसका असली नाम कैखुसरो था, लेकिन प्रजागण इसमें बचपनहीसे बडप्पनके लक्षण पाकर नौशेरवाँ नामसे पुकारते थे । कैकुवादने एक दिन नौशेरवाँ से कहा "बेटा मैं तुममें सब शुभ लक्षण पाता हूं, लेकिन एक अवगुण है कि, तुम दूसरोंको बहुत समझते हो। देखो जितने नुक्सान विश्वासरहित होनेसे होते हैं उतने विश्वास सहित होनेसे नहीं" स० ई० ५३१ में कैकुवादके बाद नौशेरवाँ ईरानका बादशाह हुआ । थोडेही दिन पीछे रूमपर चढाई की, बहुतसा मुल्क निज अधिकारमें किया और शाहन्शाह रूमसे खिराज वसूल किया । इसके बाद जीहूं नदीके उत्तर तातारके कई जिल तथा हिंदोस्तानके पश्चिमोत्तरमें बहुतसा मुल्क और अरबके भी अनेक सूबे स्वराज्यमें मिलाये । फिर नौशेरवांने

अपनी राजधानीके बनाउ सुधारमें मन लगाया । चीन व हिंदोस्तानके राजे नौशे-रवाँको प्रसन्न रखनेके लिये अपने २ देशके तोहफे भेजा करते थे । अंतमें स० ई० ५७९ की साल नौशेरवां शाह रूमसे एक लड़ाईमें हारकर भागा और बीमार होकर मरगया । और हुरमुज उसका बेटा तख्तपर वैठा । नौशेरवां बड़ा न्यायकारी था । वह कहा करता था कि, तरुणावस्थामें मैंने एक दिन देखा कि, एक मनुष्यने कुत्तेके ढेला मार कर उस्की टांग तोड दी । मनुष्य थोडी ही दूर गया था कि उसके एक घोड़ेने लात मारी घोड़ा थोड़ी ही दूर गया था कि उसकी टांग एक सूराखमें फँसकर टूट गई । उस दिनसे ईश्वरका भय कर मैं न्याय कर-नेपर कटिबद्ध हुआ । जरदश्तके मतपर चलता था और विद्याका रसिक था । इसका वज़ीर वुजुर्चे मेहर बड़ा चतुर था । वेदपाय नामक ईरानी हकीमको इसीने हिन्दोस्तान भजकर पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ मँगाया और उसका अनुवाद पहिल्वी भाषामें कराया था । वेदपाय हिन्दोस्तानसे शतरञ्जका खेल भी सीख-गया था । नौशेरवाँका दूसरा नाम किसरा था ।

न्युकोमन–(New Coman), डार्टमौथ (इंग्लैंड) में रहते थे और ताला बनानेका पेशा करत थे, पाहिले पहिल इन्हींने प्रायः सं० ई० १६८५ में एक धुएँसे चलनेवाली कल बनाई थी,जो अबतक इनके नामसे प्रसिद्ध है । पश्चात् इसी कलको जेम्सवाट साहिबने पूर्ण रीतिसे सुधारकर बनाया, जा आज कल रेलकी गाड़ियोंमें जोती जाती है । (देखो जेम्सवाट) । सं० ई० १७१३ में मरे.

न्युटन–(सर ऐजक न्युटन Sir Issac Newton) लिङ्कन शायर (इंग्लैंड) में जन्में । बाप इनका छोटासा छोड़ मरे थे । १२ वर्षकी उम्रमें माताने इनको ग्रेन्थमके महाविद्यालयमें पढनेको भर्ती कराया । वहां रहकर य यन्त्रकलामें अत्यंत निपुण हुये और फुर्सत पानेपर जलयन्त्र तथा वायुयंत्र इत्यादिकी रचनामें नियुक्त रहते थे । रफ्ते २ इन्होंने एक पवनचक्की तथा एक पवनघड़ी बनाई थी । १८ वर्षकी उम्रमें न्युटन काम्ब्रिजके विश्वविद्यालयमें विशेष विद्यापठनार्थ गय । वहां रहकर इन्होंने दर्याफ्त किया कि, मोटे कांचके टुकड़ेके छिद्रमेंसे बाहर निकले हुये प्रकाशका कैसा रूप हाता है और कि, प्रत्येक प्रकाशमान पदार्थके किरणोंमें वैसे ही ७ रङ्ग होते हैं जैसे इन्द्रधनुषमें । इन्होंने २२ वर्षकी उम्रमें बी० ए० की [illegible]-क्षा उत्तीर्ण की । स० ई० १६६५ में महामारीके फैलनेपर न्युटन कैम्ब्रिजसे अपनी

जन्मभूमिको लौट आये और एक दिन बागमें बैठे हुये फलोंको दरख्तोंपरसे पृथ्वी पर गिरते हुये देख पृथ्वीकी मध्याकर्षणशक्तिका रहस्यभेद किया और यह सिद्धांत स्थिर किया कि,आकाशमें जितने ग्रह और पिंड हैं वे सब परस्परके आकर्षणसे निराधार घूमते हैं।स०ई०१६६७में इन्होंने कैम्ब्रिज आकर एम०ए०की परीक्षा पास की,और २वर्ष पीछे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें इनको गणितशास्त्रके प्रधान प्रोफेसरकी जगह मिलगई। न्युटनमें इतने विद्वान् होते हुये भी गर्वका लेशमात्र न था और इसी लिये सर्वप्रिय थे।

स. ई. १७७२ में ८५ वर्षकी उम्रमें २० दिन बीमार रहकर मरे।

नृसिंहदैवज्ञ–(प्रसिद्ध गणक) इनके पिताका नाम कृष्णदैवज्ञ और छोटे भाईका नाम शिवदैवज्ञ था। विष्णु, मल्लार, केशव और विश्वनाथ इनके चचा थे; दिवाकर, कमलाकर, गोपीनाथ और रङ्गराज इनके पुत्र थे। नृसिंह दैवज्ञने गोदावरीतट गोल नामक ग्रामसे आकर काशीजीमें वेदान्तशास्त्र पढा और पश्चात् वहीं मकान बना लिया और सूर्यसिद्धांत आदि कई ग्रन्थोंकी टीका बनाई। आज कल जितने ज्योतिष (फलित) ग्रन्थ मिलते हैं, उनमेंसे अधिक इसी घरानेके लोगोंके बनाये हुए हैं। नृसिंहजीका जन्म शाके १५०८ में हुआ।

पतञ्जलि ऋषि–(आदिपतञ्जलि योगदर्शनकार) इनका होना सांख्यसूत्रकार कपिलसे पीछे और वेदव्याससे पहिले प्रतीत होता है। योगशास्त्र इन्होंने बनाया।

पतञ्जलि–(व्याकरणमहाभाष्यकार) अनेक कारणोंसे सिद्ध है कि, ये वि० सं० से प्राय: २०० या ३०० वर्ष पहले हुये। पटनाकी तरफके रहनेवाले थे। इनके समयमें कागज नहीं था, पत्तोंपर लेख लिखे जाते थे।

पतञ्जलि चरक–चरक मुनिका पूरा नाम है (देखो चरक) इनका समय व्याकरणकार पाणिनिसे भी प्राचीन है क्योंकि पाणिनिने अपने बनाये "कठचर-चाल्लुक्" सूत्रमें इनका नाम लिखा है।

पद्माकर भट्ट–(भाषाकवि) बांदावासी मोहनभट्टके पुत्र वि० सं० १८३८ में विद्यमान थे। रघुनाथराव पेशवा पनावालेने इनको निम्नस्थ कवित्तके इनाममें एक लक्ष रुपया दिया था।

कवित्त

सम्पति सुमेरुकी कुबेरकी जो पावै कहूं, तुरत लुटावै बिलम्ब उर धारैना ।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिनके, हलके हजारनको बितर विचारैना ॥
गंजगज बकस महीप रघुनाथराव, याही गज धोके कहूं तोहि देइ डारैना ।
याते गौरि गिरिजा गजाननको गोइ रही, गिरिते गरेते निज गोदते उतारैना ॥

कुछ कालतक पूनामें रहकर पद्माकरजी जयपुर गये और सवाई जगत्‌सिंहके नाम जगद्विनोद नाम ग्रन्थ बनाया तथा पहिले पहिल यह कवित्त भी भेंट किया था। और बहुतसा रुपया, हाथी, घोड़े पालकी इत्यादि इनाम पाया था।

कवित्त।

भट्ट तिलङ्गानेको बुन्देलखण्डवासी कवि, सुयश प्रकाशी पद्माकरसो नामा है।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भांति, संस्कृत प्राकृत पढोजु गुणग्रामा है॥
हैरथ, पालकी, गयंद, गृह ग्रामचार, आखिर लगायलेत लाखनकी सामा है।
मेरे जान मेरे तुम कान्हहो जगतसिंह, तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा है॥

अन्तमें पद्माकरजीने शेष काल गंगासेवनमें व्यतीत किया और भाषामें गंगा-लहरी नामक ग्रन्थ रचा।

पद्मावती—(सिंहलद्वीपकी पद्मिनी) राजपूतोंकी पतिव्रता शूरवीर स्त्रियोंमें रानी पद्मिनी निज सुन्दरता, कोमलता, सुबुद्धि, विद्या और गुणके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। अनेक कवियोंने इसका यश गाया है। ये हमीरसिंह चौहान सिंहलद्वीपनरेशकी राजकुमारी थी और चित्तौड़के राना भीमसिंहको व्याही थी। इसकी सुन्दरताईके विषयमें इतनाही कहना काफ़ी है कि, "न भूतो न भविष्यति"। चित्तौड़ दर्बारसे राघव नामक पण्डितने निकाले जानेपर दिल्ली गया और वहांके बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजीको पद्मिनीके स्वरूपकी प्रशंसा सुनाकर चित्तौड़पर चढाई करनेको उद्यत किया। निदान अल्लाउद्दीनने चित्तौड़ पर चढाई की, पर जब अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेका कोई उपाय न देखा तो रानासे विनय पूर्वक कहा कि, यदि आप रानी पद्मिनीके दर्शन मात्र मुझको करा दें तो मैं दिल्लीको लौट जाऊँ। राजपूतोंमें उस समय पर्दा न होनेके कारण रानाने इसमें अपनी कुछ अप्रतिष्ठा न समझ दूरसे रानी पद्मिनीका दर्शन करादिया

और बादशाहकी मीठी २ बातें सुनते हुये किलेके बाहर बादशाहके लश्कर तक चले गये। बादशाहने लश्करमें पहुँच रानाको कैद करलिया और निर्लज्ज होकर कह दिया कि, जबतक तुम रानी पद्मिनीको हमारे हवाले न करोगे तबतक नहीं छोड़े जाओगे। रानी पद्मिनीने यह सुनकर कुटुम्बियोंसे सलाह की और बादशाहसे कहला भेजा कि आप खाइयोंके इस पार लश्कर उठालाइये। मैं सब सहेलियों सहित आपसे शादी करने आती हूं। निदान ७०० डोलियाँ तैय्यार हुईं, जिनमें से प्रत्येकके भीतर एक एक शस्त्रधारी रणधीर क्षत्री और बाहर दो दो रानाके मरने मारनेवाले सिपाही कहारोंके भेषमें लशकरको चलते हुये। लशकरमें पहुँच रानी पद्मिनीको आध घण्टेका अवकाश रानासे अन्तिम बार मिलनेके लिये दिया गया। अल्लाउद्दीनकी खुशीका कुछ ठिकाना न था क्योंकि समझता था कि, आध घण्टे बाद रानी पद्मिनीसे शादी हो जायगी. परन्तु पलक मारतेमें कुछ और ही कौतुक दीख पड़ा। राना और रानी अत्यन्त शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार हो चित्तौड़की तरफ़ उड़ चले और रणकर्कशक्षत्री कपटरूप त्याग बादशाहके लशकरपर तलवारें लेकर टूट पड़े। लशकरमें गड़बड़ फैल गई, कोई किधर जान लेकर भागा और कोई किधर बहुतसे मारे गये। अल्लाउद्दीन अपनासा मुँह लेकर दिल्ली चले आये, परन्तु स्त्रीसे कान कटानेकी बड़ी लाज थी। निदान दूसरी दफ़े स० ई० १३०३ की साल फिर चित्तौड़पर चढ़ाई की। जब राजपूतोंने देखा कि, म्लेच्छोंके टीढीदलके साम्हने कुछ पेश नहीं जाती, तो वे अन्तिम जुहार करनेको तैय्यार होगये। जिसके सुन्नेसे रूंगटे खड़े होजाते हैं. किलेके भीतर गुफामें प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित कीगई जिसमें सब क्षत्रानियें सुकुमार पद्मिनी सहित जलकर राख होगईं। दूसरे दिन राना और उसके राजपूतोंने केसरिया वस्त्र पहिन किलेके फाटक खोल दिये और वीरता सहित लड़कर कटमरे। पश्चात् राना हमीरसिंह देवने चित्तौड़की गद्दीपर बैठकर ६४ वर्षके राज्यमें निजपूर्वजोंका राज्य फिर विजय किया।

परमानन्ददास–(भाषाकवि–अष्ट छाप) ये जातिके कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य थे, अष्टछापमें इनकी गिन्ती है। अष्टछापका विवरण विठ्ठलनाथके सम्बन्धमें देखो ये पहिले स्वयं स्वामी थे। लोगोंको चेला बनाते थे, और परमानन्ददेव कहलाते थे। पीछे वल्लभाचार्यके शिष्य होकर परमानन्द-

दास नामसे प्रसिद्ध हुये । सूरदासकी तरह इन्होंने भी बहुत पद बनाये थे, जिन-के संग्रहका नाम विठ्ठलनाथने परमानन्दसागर रक्खा था । इनके एक पदको सुनकर श्रीवल्लभाचार्यजी ऐसे प्रेममग्न होगये थे कि, कई दिनतक देहकी सुधि नहीं रही थी, इनका घर कन्नौजमें था । महाप्रभु वल्लभाचार्य सूरदासादि अपने शिष्यों सहित एकसमय इनके मकानपर कन्नौज गये थे । "संस्कृतरत्नमाला" नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है । ये श्रीकृष्णचन्द्रमें गोपियोंकी भांति प्रेम रखते थे । और इनके नेत्रोंसे जल बहता रहता था । और रोमाञ्च खड़े होते रहते थे । वि० सं०१५८७ में विद्यमान थे ।

परशुराम-(प्रसिद्ध क्षत्रीकुल द्रोही) जमदग्नि ऋषिके पुत्र । रेणुकाके उदर-से थे । एक समय जमदग्निने रेणुकापर क्रुद्ध होकर क्रमशः अपने चारों पुत्रोंसे उसके मारडालनेको कहा, पर उन्होंने माताके वध करनेसे इनकार किया । निदान जमदग्निने उनको शाप दिया कि, म्लेच्छ होजाओ । जब कनिष्ठ पुत्र पर-शुरामजी मकानपर आये तो इन्होंने पिताकी आज्ञा पाय माताका शिर काट डाला । इसपर प्रसन्न होकर पिताने परशुरामजीसे कहा "माँगो" । परशुरामने कहा कि, हमारी माताको जिला दीजिये । निदान जमदग्निने तपोबलसे उनकी माताको जिला दिया । एकदफ़े राजा सहस्रबाहु क्षत्रीने जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर आकर कुछ अपमान किया था । परशुरामजीने सहस्रबाहुको परिवारसहित जानसे मारडाला और कईबार क्षत्रीविहीन पृथ्वीको किया और मुल्क छीन २ कर ब्राह्मणोंको सौंपा । परन्तु ब्राह्मणोंको ब्रह्मविद्याके प्रचार तथा साधनसे इतनी फुर्सत कहां थी जो राजकाज सम्भालते । अन्तमें महाराज रामचन्द्रसे विवादमें तेजहत हो परशुरामजी वनको तपस्या करने चले गये । यह विवाद सीतास्वयंवर-के समय धनुष टूटनेपर हुआ था ।

परशुराम-(भाषा कवि) व्रजके रहनेवाले ब्राह्मण । प्रायः वि० सं० १६६० में जन्मे, इनके बनाये पद रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुममें बहुत हैं । ये श्रीभट्ट और हरव्यासजीके मतपर चलते थे । बड़े भक्त थे । इनकी कविता सरल और सुन्दर है । निम्नस्थ दोहे इन्हींके हैं ।

दो०-माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार ।
परशुराम इस जीवका, सगा सो सिर्जनहार ॥

दो०—राजा योगी अगिन जल, इनकी टेढ़ी रीत ।
डरता रहिये परशुराम, थोड़ी पारैं प्रीत ॥

"वैराग्य निर्णय" नामक इनके रचे ग्रन्थमें संसारकी अनित्यताका वर्णन है। तथा यह शिक्षा है कि पुनर्जन्मके दुःखोंसे बचनेके लिये धर्म कर्म करना चाहिये ।

पराशर—निरुक्तके अनुसार ये वसिष्ठ ऋषिके पुत्र थे और महाभारत तथा विष्णुपुराणके लेखानुसार वसिष्ठजी इनके दादा थे । ये वैद्यक, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्रमें निपुण थे । व्यासजी पुराणोंके कर्ता इन्हींके वीर्यसे उत्पन्न हुये थे । पराशर मुनिके बनाये अनेक ग्रन्थ अब भी प्रचलित हैं ।

परीक्षित—(चंद्रवंशी राजा) अर्जुनके पौत्र तथा अभिमन्युके पुत्र थे । अभिमन्यु तो महाभारतके युद्धमें मारे गये थे, निदान पांडवोंने हिमालयको जाते समय परीक्षित् अपने पोतेको राजपाट सौंपा । इन्होंने भारतवर्षका एक छत्र राज्य किया । अंतमें सांपके डसनेसे मरे । शुकदेवजीने भागवतकी कथा पहले इन्हींको ७ दिनमें सुनाई थी । दिल्लीमें परीक्षितपुरा इन्हींका बसाया हुआ है ।

पांडु—चंद्रवंशी राजा विचित्रवीर्य्यके निर्वंश मरजानेपर उनकी विधवा रानी अम्बालिकामें व्यासजीसे गर्भाधान कराया गया, जिससे पांडु उत्पन्न हुये । पांडु रोग होनेके कारण इनका रंग पीला था और इसीलिये इनका नाम पांडु पड़ा । ये बड़े होकर हस्तिनापुरकी गद्दीपर बैठे । कुन्ती तथा माद्री इनकी २ रानियें थीं जिनसे युधिष्ठिर आदि ५ पुत्र हुये जो पांडवनामसे प्रसिद्ध हैं । कुछ कालतक राज्य करनेके पश्चात् राजा पांडुके हाथसे १ ब्राह्मण ऋषि मर गया । तब राजा पांडु राज्य अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको सौंप कर वनको तपस्या करने चले गये । एक दिन पलक मारतेमें राजा पांडुने देह त्याग दी । मुनीश्वरोंने उनकी अन्तेष्टि क्रिया कराई । रानी माद्री सती होगई । दूसरी रानी कुन्तीने युधिष्ठिर आदि पांचों पुत्रोंका पालन पोषण किया ।

पाणिनि ऋषि—(संस्कृत व्याकरणके कर्ता) ये पणन ऋषिके वंशमें देवल मुनिके पौत्र थे । माताका नाम दाक्षी था । पिङ्गलाचार्य इनके छोटे भाई थे और शालातुर (कंधार) के रहनेवाले थे । इनका समय संस्कृत विद्वानोंके मतानुसार कलियुगके प्रारम्भसे ७०० या ८०० वर्ष पीछे है क्योंकि इन्होंने जनमेजय नामके

सिद्ध करनेके लिये "एजः खश्" सूत्र बनाया है। राजा जन्मेजय राजतरङ्गिणीके लेखानुसार कलियुगके प्रारम्भसे ६०० वर्ष पीछे हुये। अंगरेजी विद्वान् स० ई० से केवल ८०० वर्ष पहले इनका होना निश्चित करते हैं। निम्नस्थ ग्रंथ इनके बनाये हुये हैं:—व्याकरण अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ। शिक्षा पाणिनिके छोटे भाई पिंगलकी बनाई हुई है, परन्तु व्याकरणसे पहिले पढाई जानेके कारण पाणिनिजीक नामसे प्रसिद्ध है।

पाणिनि द्वितीय—(पाटलाविजय काव्यके कर्ता). स० ई० से प्रायः ४०० वर्ष पहिले महाराज नन्द मगधनरेशके समयमें हुये। कहते हैं कि, जब पटनामें महाराज नन्दका राज्य था तो वहां उपवर्ष नामक पंडित रहते थे जिनके व्याडि, वररुचि और पाणिनि ३ शिष्य थे। इन पाणिनिजीने पाटलाविजय नामक काव्य रचा है, जिसमें अत्यन्त कठिन पदोंका प्रयोग किया गया है। पाणिनि द्वितीयका गोंडामें आकर भी कुछ समयतक रहनेका पता लगता है।

पारखजी—(मथुरामें द्वारकाधीशके मंदिरके बनवानेवाले) इनका जन्मनाम गोकुलदास था, बोलने चालनेका नाम राधामोहन था। ये गुजराती वैश्य थे और ग्वालियरकी महारानी बैजाबाईके यहां रहकर रत्नोंकी परीक्षा किया करते थे और इसीलिये पारखजी कहलाते थे। ये बड़े दयालु, तथा धार्मिक होकर और वल्लभसम्प्रदायके वैष्णव थे। धर्मात्मा महारानी बैजाबाईकी भी इनपर इसी कारण कृपा थी। सेंधियाकी फौज जब उज्जैनकी लूटका माल ग्वालियरमें लाई तो महारानी बैजाबाईने उसको अपने कोषमें नहीं रखने दिया, क्योंकि उसमें ब्राह्मणों तथा देव मन्दिरोंका भी धन होनेकी सम्भावना थी। और आज्ञा दी कि पारखजी इसको ब्रजमें ले जाकर पुण्यार्थ खर्च कर दें। पारखजी करोड़ों रुपयेका माल लेकर मथुरा आये। साथमें उनके केवल एक बड़भागी खण्डेलवाल वैश्य आया जिसका नाम मनीराम था और जो धर्मका दिगम्बरी जैन था। मथुरामें पारखजीने द्वारकाधीशका मंदिर बनवाया जो स० ई० १८२५ में तैयार हुआ। इसके खर्चके लिये २६ हजार रुपये वार्षिक आयकी जायदाद लगाई। सिवाय एक छोटे भाईके पारखके कोई रिश्तेदार नहीं था। लेकिन पारखको भाईसे प्रीत न होकर अपने दारिद्री मित्र मनीराम तथा उनके ३ पुत्र लक्ष्मीचंद, राधाकृष्ण तथा गोविन्ददाससे अधिक प्रेम था। अन्तको पारखजीने अपनी समस्त सम्पत्तिका उत्तरा-

धिकारी मनीरामके ज्येष्ठपुत्र लक्ष्मीचंदको बनालिया। मनीराम जब अपनी जन्म-भूमि जयपुरसे आये थे तो पानी पीनेको लोटातक पास नहीं था, अब इन्हींका पुत्र करोड़ों रुपयेकी सम्पत्तिका मालिक होगया। तकदीर इसको कहते हैं। अंतमें पारखजीको दस्तोंकी बीमारी हुई और स्वर्ग सिधारे। छतुरी इनकी जमुनाबाग मथुरा में देखने लायक बनी हुई है। पारखजीका शरीर स्थूल था, दस्तोंके कारण अन्तमें शक्ति इतनी घटगई थी कि, बिना किसीकी सहायताके करवटभी नहीं ले सकते थे। व्रजमें अबतक यह कहिन प्रसिद्ध है।

लाला बाबू मरगये, घोड़ा टोप लगाय।
पारखके कीरा पड़े, विधिसों कहा बिसाय॥

पार्श्वनाथ-(जैनियोंके २३ व तीर्थंकर)। ये वेदमें विश्वास नहीं रखते थे। यज्ञकर्मको मिथ्या मानते थे। ईश्वरके बिना कर्मका फल बतलाते थे। पूजा पाठका सर्वथा खण्डन करते थे। गुरुसेवा तथा तीर्थंकरादिके माननेका उपदेश करते थे। जैनधर्मकी अत्यन्त उन्नति इनके उपदेशोंसे हुई। जैनियोंके मन्दिरोंमें इनकी नंगी मूर्ति पूजती है। स० ई० से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व हुये।

पिङ्गलाचार्य-(पिङ्गलशास्त्रके रचयिता) पिङ्गलशास्त्र जिसको छन्दशास्त्र भी कहते हैं इन्हीका रचा हुआ है। व्याकरण शिक्षाभी जो इनके बड़े भाई पाणिनि ऋषिके नामसे प्रसिद्ध है इन्हीकी बनाई हुई है। इनका विशेष वृत्तान्त पाणिनिके सम्बन्धमें देखो।

पिथागोरस-(Pythogoras) इन्होंने यूनान तथा इटलीमें तत्त्वविज्ञान (साइन्स) और ब्रह्मज्ञान (फ़िलासोफ़ी) की मूलरोपण की और यूरूपके अन्य मुल्कोंमें इन्हींकी देखा देखी इन विद्याओंका प्रचार हुआ। यूनानके सैमोसद्वीपमें एक मुहर खोदनेवालेके घर स० ई० से ५८० वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ। पहिले इन्होंने मिश्रप्रदेशमें शिक्षा पाई। पश्चात् एशियाके अनेक देश देशान्तरोंमें भ्रमण किया और हिन्दोस्तानमें बहुत दिनोंतक रहकर अनेक शास्त्र पढ़े। इस देशवासियोंने इनका नाम यवनाचार्य रक्खा था। भारतवासियोंके १८ ज्योतिषसिद्धांतोंमेंसे एक यवनाचार्यकृत हैं। ये गणितशास्त्रके पूर्णज्ञाता थे और रेखागणितके अनेक साध्य इन्होंने सिद्ध किये थे। हिन्दोस्तानसे लौटकर पिथागोरस यूनान गये और थोड़ेही दिनों बाद इटलीमें जाबसे और पाठशाला जारी की। ३०० से अधिक इनके

शागिर्द हुये, जिनकी अन्तमें १ बिरादरीही पृथक् बनगई थी। पिथागोरसका रहन सहन और धर्मसम्बन्धी विचार हिंदुओंकेसे थे। मांस नहीं खाते थे। और आवागमनको मानते थे। अपने अनेक पूर्वजन्मोंका हाल इन्हे याद था। योगाभ्यास भी खूब करते थे। और ज्योतिष तथा संगीतशास्त्रके पूरे विद्वान् थे। इनके मतानुसार संसार चक्रका बिन्दु सूर्य्य है और पृथ्वी तथा अन्यग्रह पिंड उसके चारों तरफ़ घूमते हैं। इनकी रची २८० पुस्तकें अब लुप्त होगई हैं। अन्तमें शत्रुओंने इनको अनेक चेलों सहित एक मकानमें बन्द करके आगसे जला दिया। स०ई० से ५७० वर्ष पूर्व ८० वर्षकी उम्रमें जलकर मरे फ़ीसागोरस भी इन्हींको कहते हैं।

पीटरदीग्रेट–(Peter the Great) यह बड़ा परिश्रमी, विचारशील, प्रजापालक और देशहितैषी मुल्क रूसका बादशाह हुआ है। और इसी कारण पीटरदीग्रेट अर्थात् महान् पीटर इसको कहते हैं। इसका बाप अलेग्जंडर स० ई० १६७६ में इसको ५ वर्षका छोड़कर मरगया। अनेक झगड़ोंके बाद पीटर १० वर्षकी उम्रमें तख्तपर बैठा। उस समय रूसका राज्य इतना बड़ा न था और बिलकुल उजाड़ था। प्रजागण असभ्य थे और राज्यके अनेक विभाग नियमबद्ध न थे। पीटरने तरुण हो सुधारकी ओर ध्यान दिया। निदान उसने परशिया, हालैण्ड, इटेली, जर्मनी, इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, डेन्मार्क और फ्रांस इत्यादि देशोंमें रहकर साधारण मनुष्यकी तरह अनेक शास्त्र तथा विविध भाँतिकी शिल्पविद्या सीखी और राज्यके अनेक विभागोंका प्रबंध करना जाना। पीटर विदेशमें रहकर दिनको तो पढता तथा दस्तकारी सीखता और रातको स्वराज्यसे आई हुई डाक देखता और उचित हुक्म देता था। कई वर्ष बाद ७०० कारीगरोंको साथ लेकर पीटर लौटा और अपने मुल्कमें सड़कें, नहरें, शफाखाने, स्कूल, डाकघर, पुस्तकालय, यन्त्रालय, बाग, अजायबखाने और आकाश लोचन बनवाये और प्रजागणको शिक्षा दिलवाकर असभ्यसे सभ्य बनाया। पश्चात् सेण्टपीटर्सवर्ग नाम नगर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया। प्राचीन राजधानी मास्को थी। स्वीडेनके बादशाह चार्लस १२ वेंने जो उस समय बड़ा प्रतापी बलवान् था पीटरको युद्धमें हराया। इसपर पीटरने कहा कि, अनेक बार स्वीडेनवाले हमको हराकर अन्तमें सिखला देंगे कि वे कैसे हराये जासकते हैं। ९ वर्ष पीछे स० ई० १७०९ की सालमें पीटरने स्वीडेनवालोंको पल्टावाके मैदानमें परास्त करके उनका बहुतसा मुल्क छीन

लिया। पश्चात् तुर्कोंसे अनेक दफे लड़कर विजय प्राप्त की। ये सब कामोंके करनेमें स्वयं लवलीन हो जाता था। खोज करनेकी शक्ति इतनी बढी हुई थी कि, बतानेवाला थक जाता था। रास्तेमें मुसाफिरोंसे बातें करता और नई बात सुनकर पाकेटबुकमें लिखलेता था। गाँववालोंसे खेतीवाड़ीका हाल पूछता था और उन्हें कामकी बातें बतलाता रहता था। स० ई० १७२४ में समुद्रकी तरफ़ गया और वहां एक किश्ती डूबते देख पानीमें कूद पड़ा और बहुतोंकी जान बचाई। इससे थोड़े ही दिन बाद ५३ वर्षकी उम्रमें मर गया। पीटरका पुत्र उसके सामने ही मरचुका था। निदान उसकी मलिका कैथेरायन गद्दीपर बैठी लेकिन उसने कुछ महत्त्वका काम न किया।

स० ई० १६७२ में उत्पत्ति, और स० ई० १७२५ में मृत्यु।

पुरु—(चन्द्रवंशका छठा राजा) यह राजा ययातिके पुत्र शर्मिष्ठाके उदरसे हुये। बड़े प्रभावशाली राजा थे। इसी कारण इनकी संतति पौरव नामसे प्रसिद्ध हुई। युदुवंशियोंके पूर्वज राजा यदु इनके भाई थे। यदुके वंशमें महाराज श्रीकृष्ण हुये।

पुलस्त्यऋषि—१० प्रजापतियों तथा सप्तर्षियोंमें इनकी गणना है। ये ब्रह्माजीके मानसीपुत्र थे। रावण, कुम्भकर्ण इत्यादि इनके पौत्र थे।

पुलह—१० प्रजापतियों तथा सप्तऋषियोंमें इनकी गणना है। ये भी ब्रह्माजीके मानसी पुत्र थे।

पेरीक्लीज (Perecles) यह ऐथेन्स (यूनान) का रहनेवाला सुप्रसिद्ध सेनापति तथा प्रबन्धकर्ता था। हकीम अनैक्सा गोरस इसका उस्ताद था। यूनानी लोग पेरीक्लीजको बहुत पसंद करते थे, निदान उन्होंने राजा साइमनको इसके कहने पर निकाल बाहर किया था, जिससे यह स्वेच्छाचारी होगया। पश्चात् इसने सिसलीवालोंको “ पेलोपोनीसस ” की लड़ाईमें परास्त किया और फिर बैजेण्टियम तथा सैमोस द्वीपको जीत लिया। यह शिल्पकारों तथा विद्वानोंका गुणग्राही था। ऐथेन्सके किलेमें इसने तीन बड़े सुन्दर मकान बनवाये थे, जिनमेंसे एक माइनर्वा देवीका मन्दिर था। बादको ऐथेन्समें महामारी (ताऊन) फैली, जिससे प्राय: ऐथेन्स बरबादही होगया और इसीमें पेरीक्लीजकी जान गई।

स० ई० से ४९५ वर्ष पूर्व जन्मा, स० ई० से ४२९ वर्ष पूर्व मरा।

पोप—(अलग्जेंडर पोप Alcxander Pope) इनके बाप लन्डनके रहने वाले बजाज थे और रोमन कैथोलिक मतपर चलते थे। बचपनमें इन्होंने अंग्रेजी, लैटिन व ग्रीक भाषायें पढी थीं. जब इनकी उम्र १२ वर्षकी थी तो इनके बापने विंडसरके जंगलोंमें एक बड़ी जायदाद खरीदी थी और ये अपने बापके साथ वहीं चले गये थे. १६ वर्षकी उम्रमें इनकी रची ४ पुस्तकें अंग्रेजीपद्यमें छपीं। पश्चात् कवि होमारकृत इलियड तथा उडेसीका अनुवाद इन्होंने अंग्रेजी-पद्यमें किया।

स० ई० १६८८में पैदा हुये। स० ई० १७४४ में मरे।

पोरस—(पंजाबका राजा). इसका असलीनाम पुरू था, लेकिन सिकंदरके साथी यूनानियोंने इसको पोरस नामसे अपने ग्रन्थोंमें लिखा है। स० ई० से ३२७ वर्ष पूर्व इसको सिकंदर आजमने परास्त किया। परास्त होकर ये सिकंदरके पास चला गया और अपनी तलवार सामने करदी। सिकंदरने पूँछा तुम्हारे साथ कैसा वर्ताव किया जाय। इसने जवाब दिया "जैसा बादशाहोंके साथ बादशाहोंको करना लाजिम है"। इस उत्तरपर प्रसन्न होकर सिकंदरने पोरसका राज्य लौटा दिया। स० ई० से ३१७ वर्ष पहले युडामसने धोकेसे पोरसको मारडाला।

पौलिश—(पौलिश नाम ज्योतिषसिद्धांतके रचयिता) अलबरूनीके लेखानुसार ये यूनानके रहनेवाले थे और हिन्दोस्तानमें आकर बहुत दिनोंतक रहे थे। संस्कृत अच्छी तरह पढे थे। भारतवासियोंके १८ ज्योतिषसिद्धांतोंमेंसे एक पौलिशकृत है.

प्रोफेसर वेबर (wcper) के मतानुसार इनका पूरा नाम पौलस अलेग्जेंड्रीनस (Paulus) Alcxandrinus) था। डाक्टर कर्न (Dr. Kern) की सम्मति है कि प्रायः स० ई० २५० में पौलिशसिद्धांतका वर्तमान दशामें सङ्कलन किया गया था।

पृथु महाराजा—वाल्मीकि रामायणके लेखानुसार ये महायशस्वी लोकोपकारी नरेश सूर्य्यवंशकी ८ वीं पीढीमें हुये। दुनियाका इतिहास इस बातका

साक्षी है कि, प्रथम इन्हींके समयमें अनेक विद्याओंका प्रचार भूमण्डलपर हुआ। भूमण्डलका नाम पृथ्वी इन्हीं नामसे प्रसिद्ध हुआ। भागवतादि पुराणोंमें वर्णित "धरणीदोहन" की अलंकाररूपक कथानक इन्हींके विषयमें है। पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीने उक्त कथनका उल्लेख अलंकार रहित भाषापद्यमें किया है जो बुद्धिसम्मत होनेके कारण यहां लिखा जाता है:—

धरणीदोहन।

धरणी दोहन किया पृथुने जैसा जिस विधिके अनुसार।
उसका किंचित् वृत्त सुनाते सुनिये पाठक बुद्धि अगार।
पृथुराजाके जिस मतलबको व्यास मुनीने है गाया।
उसी अर्थका अनुधावन कर कहते हैं कुछ मन भाया।
सब ऋषियोंसे बृहस्पतिमें बुद्धि थी अति विपुल अपार।
नियत किया पृथुने इसकारण करनेको उन्हें वेद विचार।
सब देवोंसे बली देखकर पृथुने कही इन्द्रसे बात।
धनसंचय बलवीर्य वृद्धिकी युक्ति सोच लिखो मम तात।
गंधर्वोंमें श्रेष्ठ जानकर विश्वावसुसे कहा बनाव।
गीतशास्त्रके अच्छे अच्छे ग्रन्थ भरे परिपूरण भाव।
अनुसृष्टिके तत्त्वविशारद नाम अर्य्यमा थे गुणशील।
श्राद्धविषयको प्रणीत करिये कहा पृथुने तजके ढील।
धरणीगर्भशास्त्रके ज्ञाता कपिल मुनीको जान कहा।
अणिमादिकका वर्णन लिखिये जिससे संशय फिरै वहा।
यक्ष भूत राक्षस वृन्दोंमें रुद्रहि था सबसे धीवान।
आविष्कार किया उसहीने मादक द्रव्योंका बलवान।
अहि दंदूषक नाग आदिके विषको तक्षकने जाना।
कहा पृथुने उससे लिखिये विषका वर्णन मन माना।
वनस्पतिके तत्त्वोंको तब नन्दीश्वरने कुल जाना।
गरुड़ाचार्य मुनीने सबही नभचर भेदोंको छाना।

इसी तरहसे जिसकी जिसमें देखी पृथुने रुचि प्यारी ।
उसी विषयमें उत्तेजित कर लिया काम उससे भारी ।
सब विषयोंकी हुई उन्नति भारतमें सहसा मारी ।
जिसे देखकर चकित हुये उन वक्तोंके नर नारी ।
उन वक्तोंके सब लोगोंने कही बात ये ही निर्धार ।
धरणीको दुहिलिया पृथुने छोड़ा नहिं कुछ उसका सार ।

पृथ्वीराजचौहान–(अन्तिम हिन्दूपति दिल्ली व अजमेर) इनको राय-पिथोरा भी कहते हैं । अजमेरके राजा सोमेश्वरराजके घर वि० सं० १२०५ में जन्मे । सोमेश्वरराजका विवाह दिल्लीके राजा अनङ्गपालकी कन्यासे हुआ था । अनङ्गपालके कोई पुत्र न था, एँव उसने अपने दौहित्र पृथ्वीराजको वि० सं० १२१२ में गोद लिया और उसी साल राज पाट उसको सौंप कर मृत्युको प्राप्त हुआ । पिताके मरनेपर अजमेरका राज्य भी पृथ्वीराजको मिल गया । यह बात कन्नौजके राजा जयचन्दको बुरी लगी क्योंकि वह अपनेको दिल्लीके तख्तका हक़दार समझता था । येही कारण जयचन्द और पृथ्वीराजके बीच ईर्षाद्वेष बढ़नेका हुआ । निदान वि० सं० १२४२ में जयचन्दने राजसूय यज्ञ किया जिसमें सब राजे दूर दूरसे आकर शरीक हुये लेकिन पृथ्वीराज तथा सो-मर्सी राना चित्तौड़ नहीं आये क्योंकि इनको जयचन्दके यहां दासकृत्य करना स्वीकार न था । इस बातपर चिढ़कर जयचन्दने दोनोंकी स्वर्ण मूर्तियाँ बनवाकर एकको जूती उतारनेकी जगहपर और दूसराको जूँठ बर्तन मांजनेकी जगह खड़ा करवा दिया था । यज्ञके अन्तहीमें जयचन्दने अपनी राजकुमारी संयोगिताके स्वयम्वर रचनेका ठहराव किया था । संयोगिता और पृथ्वीराजमें आन्तरिक प्रेम था । निदान चुने हुये सिपाहियोंको ले पृथ्वीराज कन्नौजमें आकर पहिल-हीसे छिप रहा था । स्वयम्वरके समय संयोगिता जेमाल लेकर निकली और सब राजोंको देख भाल उसने पृथ्वीराजकी स्वर्णप्रतिमाके गलेमें माला डाल दी । पृथ्वीराजभी अवसर पाकर वहां पहुँच गये और अपनी प्राणवल्लभाको घोड़ेपर लाद दिल्लीकी तरफ चल पड़ा । जयचन्दने पीछे सेना दौड़ाई । ७ दिनतक कन्नौज और दिल्लीके बीच घोर युद्ध हुआ, दोनों तरफकी बहुतसी सेना और बड़े बड़े वीर योद्धा काम आये । परन्तु पृथ्वीराज अपनी दुलहिन

सहित कुशलसे दिल्ली पहुँच गये। यह अप्रतिष्ठा जयचन्द न सहसका, पर अकेला कुछ कर भी नहीं सकता था, निदान उसने अफगानिस्तान नरेश शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरीको मदद देनेका वायदा करके दिल्लीपर चढ़ाई करनेको बुलाया। सूचना पातेही वि० सं० १२४७ में शहाबुद्दीनने दिल्लीपर आक्रमण किया पर बेतरह हारा। इसी तरह कई दफे हारकर वि० सं० १२४९ में बड़े ठाठके साथ शहाबुद्दीनने दिल्लीपर फिर चढ़ाई की और रायपिथौरा थानेसरके मैदानमें परास्त होकर ४४वर्षकी उम्रमें मारा गया इस तरह परस्परके निरंतर विरोधके कारण दिल्लीके हिंदूराज्यका नाश होकर मुसलमान राज्यकी मूलरोपण हुई। महाराज पृथ्वीराजने महोबके राजा परमारादिदेव (परमाल) का भी सर्वनाश करदिया था और उस झगड़ेमें पृथ्वीराजके भी कई पुत्र मारे गये थे। यदुवंशियोंका मुल्क जीतकर पृथ्वीराजने अपने राज्यको बढाया था तथा गुजरात पंजाब इत्यादिके राजोंको परास्त करके उनसे अपना आधिपत्य स्वीकार कराया था। पृथ्वीराजके वंशजोंने इधर उधर जाकर छोटे २ राज्य स्थापित कर लिये थे जिनकी सन्तति अबतक सिरोही, रजौर इत्यादिमें राज्य करती है। महाराज पृथ्वीराजका मन्त्री चन्दवर्दाई बड़ा वीर वफादार था, उसने "पृथ्वीराज रासो" बृहत् ग्रन्थ रचकर अपनी स्वामिभक्तिका पूर्ण परिचय दिया है। पृथ्वीराज महान शूरवीर, बली तथा पराक्रमी राजा थे, शब्दभेदी तीर मारते थे और हाथ उनके इतने लम्बे थे कि पृथ्वीसे छूते थे।

पृथुयश–(ज्योतिषी) षट्पञ्चाशिका ज्योतिष ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है। ये वराहमिहिरके पुत्र थे। (देखो वराहमिहिर)

प्रजापति–ब्रह्माजीके १० मानसी पुत्रोंको प्रजापति कहते हैं। देव, असुर, मनुष्य इत्यादि सब उन्हींसे उत्पन्न हुये। प्रजापतियोंके नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, दक्ष, भृगु और नारद हैं।

प्रतापसिंह राना–(चित्तौड़ नरेश) इनके पिता उदयसिंहके वक्तमें मेवाड़राज्यका अधिकांश मुगलोंने छीन लिया था यहांतक कि चित्तौड़ भी छूट गया था। वि० सं० १६२८ में राना उदयसिंहके मरनेपर प्रतापसिंहजी गद्दीपर बैठे, लेकिन इनको अपने पूर्वजोंके मुल्क छीन जानेका बड़ा अफसोस

था और अकबर बादशाहकी सेवा करना भी मंजूर न था। निदान इन्होंने मुगलों-से लड़ाई जारी रक्खी। बादशाहने बहुत चाहा कि, अन्यराजोंकी तरह या नाम मात्रको कुछ थोड़ाहीसा राना भी हुक्म उठावें, भेंट भेजें और खिलत तथा मन-सब लेवें परन्तु रानाने यह बात बिलकुल नहीं मंजूर की। लाचार होकर वि० सं० १६३३ में अकबरने राजा मानसिंहको रानाके दमन करनेको भेजा, हल्दीघाटपर रानाने मुकाबिला किया पर हारा और मण्डलगढ तथा उदयपुर भी छूट गये और रानाको कुम्भलमेरुमें जाकर रहना पड़ा। २ वर्ष पीछे कुम्भल-मेरु भी छूट गया और तमाम मुल्कमें बादशाही थाने बैठ गये। ६ वर्षतक राना बड़ी विपत्तिमें रहा, मेवाड़के पहाड़ोंमें भी उसे रहनेको जगह न मिली। निदान आबूके पास एक पहाड़ीमें छिपी हुई सेना एकत्र करता रहा। फिर मौका पाकर रानाने चित्तौड़, मंडलगढ, उदयपुर इत्यादि अपना सब मुल्क जीतलिया आर बादशाही थानेदारोंको मारकर भगादिया। इसके पीछे १० वर्षतक न्यायपूर्वक राज्य करके वि० सं० १६५३ में रानाका देवलोक हुआ। अन्तसमय रानाका दम नहीं निकलता था। तब सल्लूमरके रावतने पूछा कि, आपके प्राण काहेमें अटके हैं? कहा कि मैंने निज पूर्वजोंके राज्यको छीननेमें बड़ा कष्ट भोगा है सो मुझे फिक्र है कि मुसलमान फिर न छीन लें। कुँवर अमरसिंहका तो मुझे विश्वास नहीं कि स्वतन्त्रताके लिये इतना कष्ट उठावे। यह बात सुन सब सर्दारोंने उठ कर कहा कि तनमें प्राण रहते ऐसा कदापि नहीं होने देंगे। यह सुनते ही रानाके प्राण मुक्त होगये। निम्नस्थ सोरठा मेवाडमें अबतक प्रसिद्ध है।

सोरठा—हिंदूपति परतापु, पति राखी हिंदुआनकी।
सहै विपत सन्तापु, सत्यशपथकर आपनी॥

प्रतापसिंह—(महाराजा प्रतापसिंह, इन्द्र महेंद्र बहादुर, जी० सी० यस० आई० काश्मीर व जम्बूनरेश) महाराज रणवीरसिंह, जी० सी० यस० आई० के घर स० ई० १८५० में जन्मे। पिताके परमधामको सिधारनेपर स० ई० १८८५में कश्मीरकी गद्दीपर बैठे, उस समय राजकाजकी दशा अच्छी न थी। निदान आपने ५ वर्षके लिये ४ सर्दारोंकी कौन्सिल सहित जो ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी तरफसे स्था-पन की गई थी, राज्य करना स्वीकार किया। इस कौंसिलने अनेक सुप्रबन्ध किये फिर तबसे महाराजा साहिब विना किसी मददके प्रशंसनीय राजप्रबन्ध कर रहे

हैं। अपने पूर्वजोंके सनातन धर्मपर आरूढ हैं। पंडित विद्वानोंका सत्कार करते हैं और प्रजापालक हैं। रियासतका विस्तार ७९७८४ वर्ग मील है और सालाना आमदनी प्राय: ९० हजार पौंडको है। ८००० फौज और २८८ तोपें हैं। महाराजकी सलामी तोपके २१ फैरोंकी है। पंजाब केशरी महाराज रणजीतसिंहके घरानेसे पंजाब फतेह होनेके बाद स. ई. १८४६ में वृटिशगवर्नमेंटने आपके दादे सर्दार गुलाबसिंहको जो खालसा फौजके मुख्य अफसर थे, कश्मीर व जम्बूका राज्य सौंपा था। महाराज गुलाबसिंहजीके पूर्वज भी कश्मीरके राजा थे, परन्तु कुछ कालसे राज्य छिन गया था। कश्मीरकी तारीफमें किसी फार्सी कवीश्वरने कहा है कि पृथ्वीपर साक्षात् वैकुंठ है। कश्मीरके शाल दुशाले और मेव प्रसिद्ध हैं। और वहांके मनुष्य खासकर कश्मीरी पण्डितोंकी स्त्रियां अत्यन्त सुन्दरी हैं।

प्रतापसिंह–(महाराजा सर कर्नल प्रतापसिंह,जी. सी.यस.आई.ईडरनरेश) ये जोधपुरनरेश महाराजा जस्वंतसिंह, जी. सी. यस. आई. के छोटे भाई हैं। महाराज तख्तसिंहके मरनेपर स. ई. १८७३ में महाराज जस्वंतसिंहजी जोधपुरकी गद्दीपर बैठे और महाराज प्रतापसिंहजी मन्त्रीके पदपर नियुक्त हुए। आपके काम से ब्रिटिश गवर्नमेन्ट तथा महाराज जस्वंतसिंहजी खूब प्रसन्न रहे। ब्रिटिश गवर्नमेंटने आपको मन्त्रीके पदपर रहते ही राजोंके समान जी. सी. यस. आई. की पदवी प्रदान की थी और महाराजा जस्वंतसिंहजीने अपने बराबर महाराजाका खिताब आपको दिया था। ब्रिटिश सेनाके आप अवैतानिक कर्नल हैं। तीराकी चढाई पर, चितरालकी लड़ाई पर तथा चीनके युद्धपर आपने ब्रिटिश गवर्नमेंटकी मददके लिये जोधपुरकी सेना लेजाकर अपनी वीरता और साहसका पूर्ण परिचय दिया था। श्रीमान् केसरीसिंहकी मृत्युसे ईडरकी गद्दी खाली होनेपर ब्रिटिश गवर्नमेंटने महाराजा प्रतापसिंहको ईडरका राज्य स. ई. १९०२ में दे दिया। आप सुशिक्षित सहज वीर पुरुष हैं और उदारता, न्यायपरता इत्यादि सर्वगुण सम्पन्न हैं। आप सूर्यवंशी राठौर राजपूत हैं, सम्राट एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकमें आप इंग्लैंड बुलाये गये थे।

प्रवरसेन प्रथम–(कश्मीरनरेश) इन्होंने सेतुबंध नामक प्राकृत महाकाव्य रचा है, जिसका नाम बाणभट्टकृत श्रीहर्षचरितके निम्नस्थ श्लोकमें आया है।

श्लो०—कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥

सेतुबंधकी प्रदीप नाम्नी व्याख्यासे मालूम होता है कि, प्रवरसेन भूपतिके निमित्त छत्रधारी राजा विक्रमादित्य हर्ष उज्जैनवालेकी आज्ञासे कवि कालिदासेने सेतुबंध काव्य रचा था। हिरण्य तथा तोरमाण इनके २ पुत्र थे । हिरण्य इसके बाद कश्मीरको गद्दीपर बैठा और ३० वर्ष राज्य करके सिधारा । पश्चात् प्रवरसेन द्वितीय गद्दीपर बैठा और छत्रधारी राजा हुआ । (सो देखो–)

प्रवरसेन द्वितीय–(कश्मीरनरेश) प्रवरसेन प्रथमका पोता तथा हिरण्यके भाई तोरमाणका पुत्र था । इसकी माता अञ्जना इक्ष्वाकुवंशी राजा वज्रेंद्रकी बटी थी । जब हिरण्य गद्दीपर बैठा तो तोरमाण उसका मन्त्री बना । तोरमाणने अपने नामके सिक्के ढलवाये, इस लिये हिरण्यने उसको कैद कर दिया । इसके कुछ ही महीने बाद तोरमाणकी स्त्री अञ्जनाने हिरण्यके भयसे एक कुम्हारके घरमें छिपकर प्रवरसेन नामक पुत्र जना । जब यह कई वर्षका हुआ तो इसकी विलक्षण बुद्धि और अपने बहनोईकी छबिसे मिलती सूरत देख राजा जयेंद्रको सन्देह हुआ कि यह मेरा भांजा है । जब पता लगाकर जयेंद्र उस कुम्हारके घर गया । जहां प्रवरसेन रहता था तो अपनी बहनको पाया । भाई बहन मिलकर बहुत रोये । इसी अर्सेमें हिरण्यने तोरमाणको कैदसे छोड़ दिया, पर वह कैदसे निकलते ही मर गया । इस अवसर पर प्रवरसेनने माताको सती होनेसे रोका और आप तीर्थाटनको चल दिया । कुछ ही दिन बाद हिरण्यने भी अपुत्र मरकर कश्मीरका सिंहासन खाली कर दिया । उस समय चक्रवर्ती राजा विक्रमादित्य हर्षका उज्जैनमें राज्य था, निदान उसने अपने दर्बारमें आये हुए एक गरीब पंडित मातृगुप्तको कश्मीरका राज्य देदिया । जब मातृगुप्त प्राय: ४ वर्ष राज्य करचुका था तो प्रवरसेन तीर्थसे लौटा और त्रिगर्त (कोटकांगडा) इत्यादि देश जीतकर महाराज विक्रमसे लड़नेको आगे बढा । रास्तेहीमें उसने चक्रवर्ती राजाविक्रमके मरनेके समाचार सुने और दूसरे ही दिन मातृगुप्तके राज त्याग संन्यासी होजानेका हाल मालूम किया । इसके बाद प्रवरसेन कश्मीरकी गद्दीपर बैठा । सब राजोंको जीत चक्रवर्ती राजा हुआ । और महाराज विक्रमके पुत्र सिलादित्य प्रतापशीलको जिसको शत्रुओंने राजरहित कर

दिया था उज्जैनकी गद्दीपर बिठाया और निज पूर्वजोंका ३२ पुतलियोंका सिंहासन जिसको विक्रम (सम्भवतः विक्रमादित्यसकारी) कश्मीरसे उज्जैनमें ले आया था फिर कश्मीरमें पहुंचाया। प्रवरसेनने झेलम नदीके तीर छोटे बड़े सब मिलाकर ३६ लाख गृहोंका एक विचित्र नगर बसाया था, जिसके बीचमें बड़े ऊंचे २ मकान तथा एक पहाड़ी और प्रवरेश्वर महादेवका मन्दिर था और नगरके दर्वाजोंपर श्री आदि देवियोंके मन्दिर थे। ६० वर्ष राज्य करनेके पश्चात् जब एक दिन राजा प्रवरसेन प्रवरेश्वर महादेवपर जल चढा रहा था तो कलशमेंसे ताम्रपात्रपर लिखा हुआ यह श्लोक गिरा।

श्लोक—कृतकृत्यं महद्दत्तं भोगा भुक्ता वयो गतम्।
किमन्यत्करणीयं ते एहि गच्छ शिवालयम्॥

श्लोकका अर्थ समझ राजा राज त्याग कैलासको चल दिया। इसकी रानीका नाम रत्नप्रभा था। इसका पुत्र युधिष्ठिर इसके बाद कश्मीरकी गद्दीपर बैठा। राजा प्रवरसेन द्वितीय रागद्वेष रहित था।

प्रवीणराय पातर—(भाषाकवि) उड़छानरेश इन्द्रजीतसिंहके यहां ये पातर रहती थी। कविता करनेमें परम चतुर थी। बादशाह अकबरने इसकी तारीफ सुन दर्बारमें हाजिर होनेका हुक्म दिया। जब वह हाज़िर न हुई तो इन्द्रजीतपर १ करोड़ रुपया जुर्माना किया। कवि केशवदासजीने जो इन्द्रजीतके दर्बारमें रहते थे आगरे जाकर अकबरके मन्त्री राजा बीरबलको एक सवैया सुनाया और शिफारिश कराके जुर्माना माफ़ करा दिया। (देखो केशवदास), परंतु प्रवीणके हाज़िर होनेका हुक्म जारी रहा निदान प्रवीणने इन्द्रजीतके सामने आकर निम्नस्थ कवित्त पढ़ाः—

कवित्त—आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हैं प्रभु शास्त्रनमें सब विधि मति गोई।
प्राण तजौं कि भजौं सुल्तानैं मैं न लजौं लजि है सब कोई॥
बचो रहै परमारथ स्वारथ चित्त विचार कहौ प्रभु सोई।
जामें रहै प्रभुकी प्रभुता और मोर पतिव्रत भङ्ग न होइ॥

इस कवित्तको सुनकर भी जानेही की आज्ञा देनी पड़ी। जब प्रवीण अकबरके साह्मने लाई गई तो अकबरने उससे कहा—"ऊँचे है सुर वश किये, सम

है नर वश कौन।" प्रवीणने उत्तरमें कहा "अब पताल बलिवश करन, उलट पयानो कौन।" इस प्रकारके अनेक प्रश्नोत्तर होनेके बाद प्रवीणके चित्तमें खी होनेके कारण सन्देह हुआ, निदान उसने अकबरसे कहा—

दो०—विनती राय प्रवीणको, सुनियो शाह सुजान ।
जूंठी पातर भखत हैं, बारी वैस और स्वान ॥

यह सुन अकबरने प्रवीणको बिदा कर दिया। कवि केशवदासजीने प्रवीणके नामसे "कविप्रिया" ग्रन्थ बहुत उत्तम रचा ह और उसके शुरूमें प्रवीणकी बड़ी तारीफ़ की है। उड़छा (बुन्देलखण्ड) में वि० सं० १६४० में जन्मी।

प्रभाकर—(मीमांसादर्शनके आचार्य) कुमारिलभट्टके प्रधान शिष्य थे। इनका समय वि० सं० ६४७ से ७०७ तक निश्चय है। जब कुमारिलभट्ट सेतुबन्ध रामेश्वरके दर्शनोंको गये थे तो दक्षिण देशमें किसी ग्रामके समीप मार्गमें सायंकालके वक्त बालकोंको खेलते देख पूंछने लगे कि "गाँव यहांसे कितने कोस है ?" यह सुन उनमेंसे एक लड़का हँसकर बोला कि, "आप यह नहीं जानते कि सायंकालके वक्त लड़के गाँवसे कितने कोस दूर खेलनेको चले जाते हैं ?" कुमारिलजी लड़केका ऐसा वचन सुन विस्मित हुये और उसके मकानपर जा ठहरे। कुछ देरबाद कुमारिलजीने भोजन बनानेके लिये उसी लड़केसे अग्नि मँगवाई। लड़केने चारों तरफ देख जब अग्नि रखनेको कुछ न पाया तो हाथ पर रेता बिछा उसपर अग्नि रखलाया। ऐसी विलक्षण बुद्धि देख कुमारिलजीने उस लड़केको उसके बापसे मांग लिया। यह लड़का प्रभाकर ही था जो कुमारिलजीसे पढ़कर सब शास्त्रोंका पारगामी होगया। एक दिन कुमारिलजी स्वरचित कोई ग्रन्थ शिष्योंको पढ़ा रहे थे, उस समय उस ग्रन्थकी "अत्र तु नोक्तं तत्रापि नोक्तमिति द्विरुक्तम्" पंक्तिको बहुत देर बिचारा परन्तु समझमें न आई। तब तो कुमारिलजीने मध्याह्नका समय जान उस पाठको वहीं छोड़ दिया। यह देख प्रभाकरने उस पंक्तिके "अत्र तुना उक्तं तत्र अपिना उक्तम्" पदच्छेद लिख पुस्तकपर रखदिया। जब कुमारिलजी फिर पढ़ानेके लिये पुस्तक देखने लगे तो पदच्छेदोंको देख तुरन्त अर्थ समझ लिया और यह भी निश्चय करलिया कि, प्रभाकरके सिवाय इसप्रकार पदच्छेद कोई नहीं कर सकता। तबसे कुमारिलजीने प्रभाकरजीका नाम

गुरु प्रसिद्ध करदिया । प्रभाकर ऐसी विलक्षण बुद्धिके थे कि, इन्होंने मीमांसा-दर्शनके सम्पूर्ण अधिकरण कुमारिलजीसे विपरीत योजन किये हैं ।

प्रतापनारायण सिंह—(आनरेबिल राजा प्रतापनारायण सिंह, के. सी. आई ई. अवधनरेश) स० ई० १८७५ में अपने नाना महाराज मानसिंहके बाद अयोध्याकी गद्दीपर बैठे । आप विद्वान्, प्रतिष्ठित, धर्मात्मा, गर्वरहित तथा विचार-शील पुरुष हैं । गवर्नमेण्टने कई दफ़े आपको युक्तप्रान्तके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरकी व्यवस्थापक सभाका मेम्बर बनाया है और के. सी. आई. ई. की उपाधिसे विभूषित किया है । अयोध्यामें पुराने महिलकी जगह नया राजभवन आपने उत्तम बनवाया है और उसमें गैसकी रोशनी, कलसे चलनेवाले पंखे तथा टेलीफ़ोन इत्यादिका उत्तम प्रबन्ध है । राजभवन इस रीतिसे बना हुआ है कि, उसका प्रत्येक भाग सबकी आँखोंके सामने होनेपर भी जो चीजें उसमें गुप्त रखने लायक हैं उन्हें कोई नहीं देख सकता । भवनके देखनेकी सर्व साधारणको इजाज़त है, नित्यप्रति यात्रियोंकी भीड़ लगी रहती है जो आप सरीखे ऋषिसन्तानको "अवधनरेश" महा पवित्र नामसे विभूषित जान द्विगुण श्रद्धासहित साष्टाङ्ग दंडवत करना अपना सौभाग्य समझते हैं । भवनके भीतर नवीनरीतिसे आपका बनवाया तथा सजाया हुआ श्रीराधाकृष्ण इत्यादि देवताओंका मंदिर है जिसकी नियत समयपर झाँकी होती है और जहां बैठकर नित्यप्रति आप पञ्च महायज्ञ करते हैं । झांकीके समय शृङ्गार विलक्षण होता है । दर्शकोंके चित्त परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं और स्मरण होता है कि—"विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहं विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं" । आपके महिलके सामने मुसलमानोंका एक प्राचीन मैला कबरिस्तान था जो रास्ता रोककर यात्रियोंको बड़े कष्टका कारण होता था, आपने नया राजभवन बनवाते समय, किसीके बिना कान हिलाये हुए, बेधड़क उसको खुदवाकर फिंकवा दिया और उसकी जगह सुन्दर सड़क निकलवाकर गैसकी रोशनी तथा फुव्वारे इत्यादिका प्रबन्ध करके प्राचीन अयोध्या नगरीकी शोभा बढ़ाई और भारतको कृतकृत्य किया । आपका आतङ्क असाधारण है । बिना आज्ञा आपके सन्मुख कोई नहीं बोलता है. और सब लोग भय, प्रति-ष्ठाकी दृष्टिसे जो प्रेमसे भी रिक्त नहीं है आपको देखते हैं । अयोध्यामें नये घाटकी सड़कपर भी बगीचेके भीतर आपका बनवाया श्रीराधाकृष्णका

एक छोटासा अत्यन्त मनोहर मन्दिर है जो बिलकुल संगमरमरका है। आपके समयका अधिक भाग पूजापाठ तथा देवदर्शन करने और इलाकेके मामलातकी देख भाल रखनेमें बीतता है। आप आमदनी तथा खर्च पर सदैव दृष्टि रखते हैं।

आपके रचे निम्नस्थ ग्रन्थ देखने योग्य हैं:—रसकुसुमाकर सचित्र (भाषासाहित्य) मीमांसादर्शादर्श (मीमांसाविषय), द्विजदेवकृत शृङ्गारलतिकाका तिलक। स० ई० १९०३ में महाराज प्रतापकी उम्र प्राय: ५० वर्षकी मालूम होती है, अभी तक आपके कोई पुत्र नहीं है। परमेश्वर आपको चिरायु करे और पुत्रका सुख दिखलावे।

प्रतापसिंह सवाई—(जयपुरनरेश) ये सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह सवाईके पौत्र थे। कविता अच्छी करते थे और वैद्यकशास्त्रपारंगत थे। अमृतसागर इन्हींका रचा हुआ है। स्नेहसंग्राम (स. ई. १७९५) इत्यादि ग्रंथ भी इन्हींके रचे हुए हैं। पदपूर्ति "व्रजनिधि" नामसे करते थे। अलवरके राव इन्हींके समयमें जयपुर राज्यकी आधीनता त्याग स्वाधीन हुए। स.ई. १८०३ में सिधारे।

प्रिन्सेप—(जेम्सप्रिन्सेप--JamesPrinsep). युवावस्थामें इंग्लैंडसे हिंदोस्तान आकर बनारसमें टकसालमें नौकर हुए और "स्केचेज—आफ बनारस" नामक पुस्तक अङ्गरेजीमें लिखी। स.ई. १८३२ में एशियाटिक सुसाइटी कलकत्तेके दैनिक समाचारपत्रके सम्पादनका काम इनके सुपुर्द हुआ कुछ महीने पीछे एशियाटिक सुसाइटी कलकत्तेके मन्त्रीका ओहदा इनको मिला। उक्त ओहदेपर रहकर इन्होंने संस्कृतविद्याके अनेक प्राचीन तथा गुप्त रहस्योंका खोज किया और सिकंदर आजमसे लेकर अपने समयतकके सब बादशाहोंके सिक्के एकत्र किये। स. ई. १८४०में ४० वर्षके होकर मरे।

प्रियादासनाभा—(भक्तमालके टीकाकार) वृन्दावनके रहनेवाले बड़े महात्मा ब्राह्मण थे। नाभाजीकी आज्ञासे भक्तमालकी टीका भाषा कवित्तोंमें रचकर वि० सं० १७६९ की साल इन्होंने सम्पूर्ण किया।

फतेहसिंह—(महाराना सर फ़तेहसिंहजी, जी.सी.यस.आई. मेवाड़ नरेश) स. ई. १८५० में जन्मे और महाराना सज्जनसिंहके बाद स० ई० १८८४ में उदयपुरकी गद्दीपर विराजे। आपके समयमें राज्यमें सड़कें तथा नहरें जारी हुईं और स्कूल, शफ़ाखाना, कचहरी, जेल, सिपाहियोंकी बारक इत्यादि बड़ी बड़ी

इमारतें बनवाई गई । स्त्रियोंके लिये भी कई शफाखाने खोले गये और लेडी डाक्टर नौकर रक्खीं गई । आपकी एक ही शादी हुई है जिससे कई बच्चे हैं। शादी तथा ग़मीके खर्चोंके घटानेका श्रीमान् अपने राज्यमें उद्योग करते हैं । क्योंकि, मध्यमश्रेणीके मनुष्य इन खर्चोंके कारण बहुधा ऋणी हो जाते हैं। महाराना फ़तेहसिंहजी बड़े विवेकी तथा न्यायकारी हैं । रहन सहन साधारण है, शिकारका शौक है और प्रजागण श्रीमान्को प्यार करते हैं । ब्रिटिशगवर्नमेन्टको मेवाड़ राज्यकी तरफ़से २० हजार पौंड वार्षिक राजस्व दिया जाता है । अंग्रेजी अमल्दारीमें महारानाकी सलामी तोपके २१ फ़ैरोंकी है। सवार, पैदल मिलाकर २१॥ हजार फ़ौज रियासतमें है जिसमें भीलोंकी भी १ पलटन शामिल है। नैपाल, प्रतापगढ, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, अलीराजपुर और धरमपुर इत्यादिके महाराजे, महाराना साहबके कुटुम्बी हैं। अकबर इत्यादि मुसलमान बादशाहोंके समयमें अन्य सब राजपूत राजाओंने बादशाहसे शादी सम्बन्ध करना स्वीकार किया था परन्तु राना चितौड़ने तनमें प्राण रहते कभी ऐसा करना स्वीकार न किया था । महाराना फतेहसिंहजी भी अपने पूर्वजोंके प्रणका विचार रखते हैं, "कुछ दिन हुए आपके इकलौते पुत्रको पक्षाघात हुआ, जब अनेक उपाय करने पर भी राजकुमारको आराम न हुआ तब सर्दारोंने महाराना साहबको रतलामके रहनेवाले किसी करामाती मुसल्मान फकीरका पता देकर कहा कि, राजकुमारको उसके हाथसे अवश्य आराम हो जायगा, परन्तु धन्य है ऐसे दृढप्रतिज्ञ नरेशको जिसने स्पष्ट कह दिया कि मुसलमानको हाथ जोड़ना तो हमारे वंशकी प्रतिज्ञाके विरुद्ध है" । महाराना फतेहसिंहजीका एक रानीके रहते दूसरी शादी न करनेका दृढ़ व्रत है। १९ बड़े दर्जेके और ३२ छोटे दर्जेके सर्दार श्रीमान्को राजस्व देते हैं । महाराना मेवाड़ श्रीरामचन्द्रजीके वंशावतंस सूर्य्यवंशी हैं, इस वंशमें होने वाले नरेश सदासे क्षत्री धर्मका पालन करके अपने वंशकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करते आये हैं और इसीलिये यह वंश हिन्दोस्थान भरके राज्यवंशोंसे अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है।

फ़र्रुखसियर–(मुगलसम्राट् दिल्ली) जहांदारशाहके मारे जानेके पीछे स० ई० १७१३ में दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। इसके समयमें अजीतसिंह जोधपुर नरेशने अपने राज्यकी सब मसजिदें गिरवा दी थीं और उनकी जगहपर मन्दिर

बनवा दिये थे । फर्रुखसियरके दर्बारमें इस्ट–इण्डिया–कम्पनीकी तरफसे २ राजदूत भेजे गये थ, जिनमें से एक डाक्टर हैमिल्टन नामकने फर्रुखसियरको कठिनरोगसे चंगा किया था जिसके बदलेमें कम्पनीको बंगालमें ३८ गांवकी जमीदारी खरीदनेकी आज्ञा मिली और अंग्रेजी मालपर महसूल माफ किया गया । सिक्खोंके गुरु बन्दासाहब इसीके वक्तमें मार गये । ये बड़ा बेअक्ल था । इसके समयमें सदैव फिसाद रहा जिससे सलतनत तबाह हो चली थी । ६ वर्ष राज्य करनेके पीछे मार डाला गया ।

फातिमा–(बीबी फातिमा) मुसल्मानोंके पैगम्बर मुहम्मद साहिबकी इकलौती बेटी थी । प्रायः स० ई० ६०६ में मक्कामें पैदा हुई । मुहम्मद साहिबसे ६ महीने बाद स० ई० ६३२ में मदीनामें सिधारी । हजरत अलीसे इसका विवाह हुआ था । हसन और हुसेन इसीके पुत्र थे ।

फाह्यान–(चीनीसन्त) ये चीनका रहनेवाला बौद्ध साधु । प्रायः स.ई.४०० में मध्य एशियामें होता हुआ हिन्दोस्थान आया । पहिले काबुल कन्धारमें ठहरा और देखा कि बौद्ध मत खूब उन्नतिपर था । पश्चात् पेशावरमें आया और बौद्धमतका एक बड़ा बुर्ज देखा । बादको सिन्धुनदी पारकर मथुरा गया और देखा कि वहां उस समय ३ हजार बौद्ध साधु रहते थे । पश्चात् राजपूताना और मध्यहिन्दमें गया और वहाँके सब राजाओंको बौद्धमतानुगामी पाया । फाह्यान लिखता है कि उक्त सब राज्योंमें अपराधियोंको जिस्मानी सजाके बदले जुर्माना किया जाता था । कई दफेके अपराधीका सीधा हाथ काटाजाता था, चांडालोंके सिवाय कोई शिकार नहीं करता था, न खाता था, न बेंचता था, न सुअर, मुर्गे इत्यादि पालता था । शराबकी भट्टी नामको भी कहीं न थी, और बौद्धोंके स्तूप सब जगह बने हुए थे जिनके खर्चके लिये बड़ी २ जायदादें मुकर्रर थीं । स्तूपोंमें रहनेवाले या आकर ठहरनेवाले साधुओंको भोजन, वस्त्र, दूध, चटाई इत्यादि आवश्यक चीजें मिला करती थीं । पश्चात् फाह्यान कन्नौज, अयोध्या, गया, कपिलवस्तू, पाटलीपुत्र तथा अनेक और राजधानियोंमें जिनके अब नामतक मिट गये हैं विचरता फिरा । पाटलीपुत्र (पटना) में फाह्यानने २ वर्ष रहकर बौद्धमतकी अनेक धर्मपुस्तकोंका जो चीनमें नहीं मिलती थीं पालीसे चीनी भाषामें अनुवाद किया । इसके बाद एक व्यापारी जहाजपर सवार

होकर फाह्यान १४ दिनमें सिंहलद्वीप पहुंचा। सिंहलद्वीपमें फाह्यानके लेखानुसार उस समय एक ४७९ फिट ऊंचा बुर्ज था। तथा एक स्तूप भी था जिसमें ५ हज़ार बौद्धसाधु रहते थे। सिंहलद्वीपमें ठहरकर फाह्यानने विनयपताका नामक बौद्धोंकी धर्मपुस्तककी एक प्रति लिखी। फ़ाह्यान लिखता है कि, पहिले सिंहलद्वीपमें कोई नहीं रहता था। धीरे २ इधर उधरसे व्यापारी लोग आ बसे और सिंहलद्वीप एक बड़ा राज्य बन गया। पश्चात् उपदेशकोंने हिन्दोस्तानसे जाकर उनको बौद्धमत ग्रहण कराया। स्वदेश छोड़ हुये जब कई वर्ष होगये थे, तो एक दिन सिंहलद्वीपके किसी मन्दिरमें एक व्यापारीको चीनका बना हुआ पंखा बुद्धकी २२ फिट ऊँची जमुरदकी मूर्त्तिको भेंट करते हुये देख फाह्यानको स्वदेशका स्मरण हो आया और उसके आँसू निकल आये। निदान कुछेक दिन बाद वह एक व्यापारी जहाज़पर सवार हो चीनको चल दिया। रास्तेमें तूफान आनेसे जहाज़की पेंदीमें छेद होगया और फाह्यानको ५ महीनेके करीब, सुमात्रा तथा जावाके टापुओंमें पड़े रहना पड़ा। फाह्यानके लेखानुसार उक्त द्वीपोंमें उस समय वैदिकमतका प्रचार था, और गणेश, देवी, शिव इत्यादिकी पूजा होती थी। पुनः एक व्यापारी जहाज़ पर सवार होकर जिसपर वैदिकमतानुगामी २०० मनुष्य और सवार थे फ़ाह्यानने यात्रा की और ८२ दिनमें चीन पहुँच गया। उपरोक्त लेखसे प्रतीत होता है कि, उन दिनों हिन्दोस्तान और चीनके बीच खूब व्यापार होता था। इस यात्राके वृत्तान्तमें फ़ाह्यानने एक पुस्तक रची थी जो बड़ी रोचक है। फ़ाह्यान जब हिन्दोस्तान आया था तब बौद्धमत यहांपर उन्नतिके उच्च शिखरपर था। पर वैदिकमत भी बिलकुल नष्ट नहीं होगया था।

फ़िर्दौसी—(फ़ार्सी कवि) पूरा नाम इनका हकीम अबुलकासिमहसन फ़िर्दौसी था, और इनके बाप इसहाक, तूस (ईरान) के रहनेवाले कृषीकार थे। फ़िर्दौसीको शुरूहीसे पढ़ने लिखनेका बड़ा व्यसन था। और कविता तारीफके लायक करते थे। इन्होंने सुलतानमहमूद ग़ज़नवीके हुक्मसे "शाहनामा" नामक फार्सी पुस्तक रची थी। महमूदने प्रतिशेर (दोहा) फ़िर्दौसीको १ अशर्फी देने कहा था, परन्तु जब ३० वर्षबाद १२०००० शेरों (दोहों) का बृहत ग्रन्थ रचकर फ़िर्दौसीने पेश किया तो महमूद घबराया और देने दिलानेकी कुछ बात न की। बहुत दिनोंबाद जब फिर्दौसीने याद दिलाई तब महमूदने १२०००० रुपये

भेजे। फिर्दौसीने लेनेसे इन्कार किया और महमूदकी निन्दा लिखी। जिसको देख महमूदने १२०००० अशर्फियें भेजी। लेकिन् अफसोसकी बात है कि शहरके एक दर्वाजेसे तो महमूदके सिपाही अशर्फियोंके तोड़े लेकर घुसे और दूसरे दर्वाजेसे फिर्दौसीका जनाजा निकला। फिर्दौसीके कोई बेटा नहीं था। निदान सिपाही अशर्फियें लेकर उसकी इकलौती बेटीके पास गये। बेटीने लेनेसे इनकार कर दिया।

फिर्दौसी स० ई० १०२० में ८० वर्षके होकर मरे।

फिरिश्ता–(इतिहासकार) इसका असलीनाम मुहम्मदकासिम था। इसके बाप मौलाना अलीहिंदूशाह, ऐष्ट्राबादके रहनेवाले बड़े विद्वान् थे और इसको बचपनहीमें लेकर हिंदोस्तान चले आये थे। और अहमदनगर (दक्षिण) के नव्वाबके यहां पढानेपर नौकर हो गये, परन्तु थोड़ेही समय पीछे मर गये थे। बड़े होकर फिरिश्ता नव्वाब बीजापूरके दर्बारमें गया और उन्हींके कहनेसे उसने तारीख फिरिश्ता लिखी। फिरिश्ता बीजापूरके नव्वाब इबराहीम आदिलशाह द्वितीयके दर्बारमें स० ई० १५८९ से १६१२ तक रहा। तारीख फिरिश्तामें स० ई० ९७५ से १६०५ तकका हिंदुस्तानका इतिहास लिखा है। इस तवारीखका अंगरेजी अनुवाद डोसाहिबने किया है।

स० ई० १५५० में पैदा हुआ, और स० ई० १६१२ में मरा।

फीरोजशाहतुगलक–(सम्राटदिल्ली) मुहम्मदतुगलक् सम्राट्दिल्लीका चचेरा भाई था। इसने स० ई० १३५१ से १३८८ तक दिल्लीके तख्तपर बादशाहत की। यह बड़ा रहम दिल था, फौज और प्रजा सब इससे प्रसन्न थी, अन्याय इसके समयमें नहीं होने पाता था। विद्वान भी था "फुतूहाते फीरोजशाही" नामक फार्सी पुस्तक इसीकी बनाई हुई है। इसके समयमें बहुतसा मुल्क फतेह हुआ था। और इसके अधिक नम्र होनेके कारण बंगाल और दक्षिणके सूबे स्वाधीन हो गये थ। अमीरोंकी साजिशोंके कारण तथा सदैव रोगी रहनेकी वजहसे भी इसको बड़ा कष्ट भोगना पडा था। इसने बहुतसे पुल, सराय, तालाब, पाठशाला, जमुनाकी नहर, शफाखाने और मसजिदें बनवाई थीं, पुरानी दिल्लीमें फीरोजाबादका किला इसीका बनवाया हुआ है। स. ई. १३८७ में राजपाट अपने बेटेको सौंप

विरक्त होगया था परन्तु बेटा निकम्मा निकला और थोड़ेही दिनबाद तख्तसे उतार दिया गया। निदान इसको फिर तख्तपर बैठना पड़ा स. ई. १३८८ में ८० वर्षका होकर मरा। पुरानी दिल्लीमें इसकी कबर है।

फ्रैंकलिन—देखो बेञ्जमिन फ्रैंकलिन।

बन्दीगुरु—(बन्दासाहिब) इनके बाप रामदेव राजपूत, इलाके पूंछके रजोरी ग्रामके रहनेवाले थे। १६ वर्षकी उम्रमें बंदीगुरु, जिनका नाम प्रथम लक्ष्मणदेव था किसी वैरागीके शिष्य हो गये और वैरागी साधुओंकी मंडलीके साथ तीर्थ यात्रा करते फिरे। पश्चात् पञ्चवटीपर रहकर बहुत दिनोंतक जप तप करते रहे फिर सिक्खोंके गुरु गोविन्दसिंहजीके पास पहुँच गुरुदीक्षा ली और खालसापंथ धारण करके बन्दा नाम पाया कुछ दिन बाद गुरुने इनको पंजाबकी तरफ मुसलमानोंको नीचा करनेके लिये भेजा। जहां २ बन्दासाहिब पहुँचे वहां २ सिक्ख लोग, जो अपने गुरुओंके दुःखोंपर आंसू बहा रहे थे, हथियार ले लेकर मददको आ गये। फिर तो बन्दासाहिबने लाखों मुसलमान बूढे, बच्चे, औरत, मर्द कटवाडाले, लाशें जलवा दीं, मसजिदें गिरवादीं, मुसल्मानोंके गांवके गांव फुकवा दिये और लुटवालिये। खुलासा यह है कि, मुसल्मानोंको नाक चने चबा दिये। पञ्जाबके पहाड़ी राजे बन्दा साहिबसे डरते थे, मुसल्मान इनके नामसे कांपते थे। बन्दासाहिब घोड़े पर खूब सवार होते थे, सिकार खूब खेलते थे और करामाती साधू थे। इनके २ विवाह हुए थे। और इनका वंश अबतक वजाराबाद (पंजाब) में है। फर्रुखसियर मुगलसम्राट दिल्लीने २० हजार फौज भेजकर इनको बड़े जोड़ तोड़से पकड़वा लिया और मरवाडाला परन्तु इनको जो कुछ करना था कर चुके थे। स० ई० १६७० में जन्मे।

बनमालीदास मुंशी—(भाषाकवि) ये गुसांई थे और वि. सं. १७१३ में पैदा हुए थे। अर्बी, फारसी और संस्कृत खूब पढे थे। दाराशिकोहके मुंशी थे। वेदान्त विषयमें इनके दोहे बड़े चुटीले हैं। देखा—

दो०—जैसे मोती ओसको, वैसे है संसार।
झलकत देखो दूरसे, जात न लागे वार ॥

रघुनाथकृत राजतरंगिणी और विद्याधरकृत राजावलीका संस्कृतसे फ़ारसीमें इन्होंने उल्था किया था ।

बल्लालसेन–(भोज प्रबन्धके कर्त्ता)–लक्ष्मणसेन बंगालके अन्तिम राजा इनके पिता थे । "अद्भुत सागर" नामक ग्रन्थ भी इन्होंने शा० शा० ११८९ में बनाया था ।

बभ्रूवाहन–अर्जुन पांडवका बेटा, मणीपुरकी राजकुमारी चित्रांगदाके उदरसे था । अपने नानाके मरनेपर मणीपुरका राजा हुआ ।

बर्क–एडमंडबर्क–(Edmund Burke.) इनके बाप वकील थे और इन्होंने डबलिन यूनीवर्सिटीमें शिक्षा पाइ थी, इंग्लैंडमें बहुत दिनों तक फौजके मीरबख़शी रहे । सच्चेमित्र, परमेश्वरसे डरनेवाले, सुन्दर स्वभावके और दानी थे । शिल्पविद्या, कृषि और इमारतका इनको शौक था । अन्तमें पार्लियामेंटके मेम्बर होगये । इनकी वक्तृता प्रभावशाली होती थी. कई ग्रंथ भी अंग्रेजीमें इन्होंने रचे थे ।

स० ई० १७३० में जन्मे, और स० ई० १७९७ में मरे ।

वरदराज–(तार्किकरक्षाके कर्ता)–सूक्ष्मविचारसे इनका समय वि० स० १०४१ और ११४७ के बीच निर्णय किया जा सकता है ।

वरदराज २ (लघुकौमुदीके रचयिता)–ये तैलङ्ग ब्राह्मण दक्षिणसे आकर काशीमें बसे थे । सिद्धांतकौमुदीके कर्ता भट्टोजीदीक्षित इनके विद्यागुरु थे । वि० सं० १६७६ और १७१६ के बीचमें इनका समय निर्णय किया जा सकता है । सिद्धांतकौमुदीको बालकोंके लिये कठिन जान इन्होंने मध्यकौमुदी, लघुकौमुदी तथा सारकौमुदी रची थीं ।

वरदराज ३ (सामवेदीयकल्पसूत्रकी व्याख्याके कर्त्ता) ये कौशिक गोत्री पं० वामनाचार्यके पुत्र थे । अब (स० ई० १९०३) से ५०० वर्ष पूर्व इनका समय प्रतीत होता है ।

वरदराज ४ (मीमाँसक)–नैविवेक ग्रंथकी टीका इन्होंने बनाई थी । इस टीकाकी एक प्रति बनारस संस्कृतकालिजमें ४०० वर्षसे कुछ अधिक पुरानी मिलती है । इनके गुरुका नाम सुदर्शनाचार्य और पिताका नाम रङ्गनाथ था ।

वर्धमान गुरु–देखो महावीर स्वामी।

वर्नियर–(फ्रांसिसवार्नियर–Francis Bernier) आंजू (फ्रांस) के रहनेवाले प्रसिद्ध पथिक और डाक्टर हुए हैं। ये हिन्दोस्तान आकर १२ वर्षतक औरंगजेबके दर्बारमें रहे थे। जिसमेंसे प्राय: ८ वर्षतक औरंगजेबके राजवैद्य रहे. अमीरदानिशमंदखाँके साथ इन्होंने कश्मीरकी सैर की थी। स्वदेश लौटकर इन्होंने अपनी यात्राके वृत्तांतमें एक पुस्तक रची।

पैरिसमें सा० ई० १६८८ में मरे।

वररुचि–विक्रमहर्षके दर्बारके नवरत्न नामक ९ प्रसिद्ध पंडितोंमें इनकी गणना है। इन्होंने "प्राकृत व्याकरण" रचा था जिसमें महाराष्ट्री, शूरसेनी, पिशाची तथा मागधी भाषाओंका, जो संस्कृतसे बिगड़कर बनी हैं, वर्णन है।

वराहमिहिर (ज्योतिषी)–इनके बाप आदित्यदास सिंहलद्वीपी ब्राह्मण (मगध) पटनाके रहनेवाले बड़े ज्योतिषी थे। पितासे विद्या पढ वराहमिहिरजी आजीविकाके लिये विक्रमहर्षके दर्बारमें उज्जैन गये। यावनी भाषा भी जानते थे। विक्रमने इनकी प्रतिष्ठा की और दर्बारके नवरत्न नामक प्रसिद्ध पंडितोंमें इनको रक्खा। निम्नस्थ ग्रंथ इनके बनाये हुये हैं:–

पञ्चसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुजातक, योगयात्रा, विवाहपटल, समाससिद्धांत और होडाशास्त्र। पञ्चसिद्धांतिकामें वराहमिहिरने निम्नस्थ ५ प्राचीनसिद्धांतोंके आशयको संग्रह किया है। पौलिश सिद्धांत, रोमकसिद्धांत, वशिष्ठसिद्धांत, सूर्य्यसिद्धांत और पितामहसिद्धांत। वराहमिहिरकृत "बृहत्संहिता" में १०६ अध्याय हैं जिनमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ग्रह, मेघ, वायु, भूकम्प, उल्कातारा, इंद्रधनुष, बिजली, आँधी, वनस्पति, जीवजन्तु, अनेकधातु, जवाहरात और बाग लगाने तथा मूर्त्ति, मकान बनाने और सजानेका वर्णन है। वराहमिहिरने ज्योतिषशास्त्रके कई ग्रंथ प्राकृत तथा भाषामें भी रचे थे और उनमें केवल अनुभव सिद्ध बातें लिखी थीं जिनको लोग भड्डुली कहते हैं। आजकल भड्डुली शब्द उन जोशियोंके लिये इस्तेमाल किया जाता है जो उपरोक्त ग्रंथोंके अनुसार फल बताते फिरते हैं। वराहमिहिराचार्यके पुत्र पं० पृथुयश भी बड़े भारी ज्योतिषी थे। (सो देखो)

स० ई० ५०५ में जन्मे और स० ई० ५८७ में मरे. अनेकोंकी सम्मति है कि १०० वर्ष जीकर स० ई० ६०५ में मरे थे ।

बलदेवजी (श्रीकृष्णचन्द्रके ज्येष्ठ भ्राता) वसुदेवजीके पुत्र रोहिणीके उदरसे थे । मथुराके राजा कंसके डरसे रोहिणीजी गोकुलमें नन्दबाबाके घर रहती थीं । बल्देवजीका विवाह राजा रेवतकी कन्या रेवतीसे हुआ था जिससे २ पुत्र हुये । बल्देवजी बड़े बलवान् थे । हल तथा मूसल इनके हथियार थे । बलरामजी सब लड़ाई झगड़ोंमें श्रीकृष्णजीके साथ रहे और श्रीकृष्णजीसे पहिलेही द्वारकामें परमधामको सिधारे ।

बलभद्रमिश्र (ज्योतिषी). कन्नौजवासी दामोदरके पुत्र थे । प्रसिद्ध ज्योतिषी रामदैवज्ञ इनके गुरु थे । ये बंगालके सूबेदार शाहशुजाके पास राजमहल (बंगाल) में रहा करते थे । शाहशुजा दिल्लीके बादशाह शाहजहाँका पुत्र था । "हायनरत्न" नामक ताजकग्रंथ वर्षफल विचारमें इन्होंने शाके १५६४ में रचा था । ज० श० १५१४.

बलभद्र–(भाषाकवि) ये प्रसिद्ध कवि केशवदास सनाढ्य ब्राह्मणके भाई वि. सं. १६२७ में विद्यमान थे । इनका बनाया नखशिख सब कविकोविदोंमें प्रामाणिक है । बालकृष्ण त्रिपाठी तथा काशीनाथ इनके दोनों पुत्र भी अच्छे कवि थे । विशेष वृत्तान्त इनका कवि केशवदासके सम्बन्धमें देखो ।

वल्लभाचार्यमहाप्रभु–(गोकुलस्थ सम्प्रदाय प्रवर्तक) इनके पिता लक्ष्मणभट्ट तैलङ्ग ब्राह्मण थे और इनकी माताका नाम इल्लमगारू था । जब इनके माता पिता काशीको आ रहे थे तो मिती वैशाख वदी ११ को वि. सं. १५३५ की साल चम्पारन–सारनके पास चौरागांवमें इनका जन्म हुआ । काशीमें ५ वर्ष की अवस्थामें इन्होंने सुप्रसिद्ध पं० माधवाचार्यसे विद्याध्ययन किया । इनके दो भाई और थे, बडे रामकृष्ण और छोटे रामचन्द्र, वे दोनों संस्कृतके अच्छे कवि थे । पिताके देहांतके बाद वि० सं० १५४८ की साल १२ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने दक्षिणकी ओर गमन किया और विजयनगरके राजा कृष्णदेवकी सभामें पहुँच शाङ्कर मतवालोंको शास्त्रार्थमें जीता । डाक्तर ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं, कि ये कृष्णदेव सम्भवतः कृष्णारायलू हैं जो स० ई० १५२० में राज्य करते थे । उस समय विष्णु स्वामीकी गद्दी खाली थी, सब महन्त आचार्योंने इन्हें उस

गद्दीपर बैठाया और वल्लभाचार्य इनका नाम हुआ । इस दिग्विजयके पीछे इन्होंने काशीमें जाकर वहांके पंडितोंको शास्त्रार्थमें जीता फिर ब्रजगये और गिरिराजपर श्रीनाथजीकी स्थापना करके वात्सल्यभावसे सेवाकी एक नवीनही प्रणाली निकाली । कुछ दिन पीछे औरंगजेबके उपद्रवके कारण श्रीनाथजीकी मूर्तिको मेवाडमें उठा लेगये जहां अब उनका बडा भारी वैभव है तथा लाखा रुपया वार्षिक भोग रागमें व्यय होता है । इसके बाद महाप्रभुने तीन दफे भारत भ्रमण करके निज मतका प्रचार किया । भारतवर्षके प्रायः सब तीर्थों तथा देवस्थानोंमें महाप्रभुकी बैठक हैं । जहां २ बैठकर एक सप्ताहमें श्रीमद्भागवतका सम्पूर्ण पारायण किया है वहीं २ बैठक स्थापित हुई । ऐसी ८४ बैठकें हैं । Catalogus Cataloorum के अनुसार इन्होंने ५२ संस्कृत ग्रन्थ बनाये थे । भागवतपर सुबोधिनी तिलक, ब्रह्मसूत्रपर अणु भाष्य और जैमिनीय सूत्रपर भाष्य इनके बनाये हुए हैं । इनके मुख्य शिष्य ८४ थे जिनका वृत्तान्त इनके पौत्र गोस्वामी गोकुलनाथजीने "चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता" नामक ग्रंथमें लिखा है । इनमेंसे बहुतेरे हिंदीके प्रसिद्ध कवि थे । सूरदास, परमानन्द, कृष्णदास और चतुर्भुजदास तो ऐसे प्रसिद्ध हुए कि अष्टछापमें गिने गये । इनकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीबहूजी था । और इनके दो पुत्र थे—गोस्वामीगोपीनाथजी और गोस्वामी विट्ठलनाथजी । गोपीनाथजीका वंश नहीं चला । गोस्वामी विट्ठलनाथजी बहुत प्रसिद्ध हुये (सो देखो) । महाप्रभुने सिती आषाढ वदी २ को वि० सं० १५८७ की साल काशीजीमें हनुमान घाटपर देह त्यागी । उस समय संन्यास लेलिया था और सशरीर गंगाजीमें अपने पुत्रोंको उपदेश करत २ प्रवेश किया । महाप्रभु भाषा कविताके बड़े उन्नायक थे परंतु स्वयं भाषाकविता नहीं करते थे । ब्रजवासियोंसे तथा ब्रजभूमिसे महाप्रभुको बड़ा प्रेम था बहुधा कहा करते थे कि "ब्रजवासी बल्लभ सदा मेरे जीवन प्राण" ।

वल्लभ रसिकजी–(भाषाकवि) ये स्वामी हरिदासजीके शिष्य थ और ब्रजमें रहते थे । जन्म इनका स० ई० १६२४ में हुआ । " मांझ " नामक छन्दोंमें इन्होंने राधाकृष्णका विहार वर्णन किया है ।

वल्लभन्यायाचार्य–(न्यायलीलावतीके कर्ता) बनारसकालिजके मासिकपत्र "पंडित" में इनका समय स. ई. की ११ वीं तथा १४ वीं शताब्दीके बीच निर्णय किया है ।

बलि-(राजा बलि) पौराणिक कथानुसार ये वैरोचनके पुत्र थे, प्रह्लाद इनके पितामह थे। और हिरण्यकश्यप प्रपितामह थे। ये दैत्यवंशोत्पन्न पाताल (अमेरिका) के राजा थे विष्णुने वामनरूप रखकर इनसे ३ पैग पृथ्वी मांगी थी। परंतु तीनही पैगमें सब पृथ्वी नापली।

वशिष्ठऋषि-१० प्रजापतियों तथा सप्त ऋषियोंमें इनकी गणना है। ऋग्वेदमें लिखा है कि, ऋषि मित्रावरुणके वीर्यसे जो उर्वशी अप्सराको देखकर पतन हुआ वशिष्ठ तथा अगस्त्य ऋषि जन्मे थे। सूर्य्यवंशकी पुरोहिताई ६१ पीढीतक इनके वंशमें रही और इनकी सन्तति अनेक पीढीतक वशिष्ठ नामसे पुकारी जाती रही. योगवासिष्ठ ग्रंथ इन्हींका बनाया हुआ है। ये राजा दशरथ तथा रामचंद्रमहाराजके समयमें मौजूद होकर पुरोहितके पदको प्राप्त थे और यज्ञ कराया करते थे तथा मन्त्रीका भी काम देते थे। नन्दिनी गऊके पीछे इनसे और राजा विश्वामित्रसे लड़ाई हुई थी (देखो विश्वामित्र) एक ज्योतिषसिद्धांत इनका बनाया हुआ है और ऋग्वेदका सातवाँ मण्डल इन्हींने प्रगट किया था। इनके गोत्रके ब्राह्मण अब भी बहुतेरे हैं। इन्होंने ऋग्वेदीय धर्मसूत्र भी रचे थे। तपोबलद्वारा इन्होंने उच्च बुद्धि प्राप्त की थी, त्रिकालदर्शी थे। संसार इनके करतल पदार्थकी भांति था।

वसुदेव-(श्रीकृष्णके पिता) शूर नामक यदुवंशीके पुत्र थे, पांडवोंकी माता कुन्ती इनकी बहिन थी। इन्होंने कंसके चचा आहुककी ७ लड़कियोंसे, जिनमेंसे सबसे छोटी देवकी थी विवाह किया। देवकीके उदरसे श्रीकृष्ण जन्मे थे और दूसरी स्त्री रोहिणीके उदरसे बलदेवजीका जन्म हुआ था। इनका घर मथुरामें था परंतु श्रीकृष्णके द्वारकाको सिधारनेपर यहभी कुटुम्बसहित द्वारका चलेगये थे। वहीं इनका देहांत हुआ और ४ स्त्रियां इनके साथ सती हुई।

बहिरामगोर-(ईरानका बादशाह) स.ई. ४२० में विद्यमान था। २३ वर्ष राज्य करके एक शिकार करते हुये घोड़ासहित गढ़ेमें गिरकर मरगया। गोरखरके शिकारका इनको बड़ा शौक था। इसीलिये बहिरामगोरनामसे मशहूर हुआ।

वाक्पति (गौड़वध प्राकृत महाकाव्यके रचयिता) विक्रमकी ७ वीं शताब्दीमें हुए। ये कन्नौजके राजा यशोवर्म्मनकी सभाके अलङ्कार थे। गौड़वध काव्यमें राजा यशोवर्म्मनके दिग्विजयका वर्णन है-

वाग्भट्ट-(आयुर्वेदकी अष्टाङ्गहृदय संहिताके निर्माणकर्ता)-"रसरत्न-समुच्चय" वैद्यक ग्रंथ भी इन्हींका बनाया हुआ है। इनकी बनाई अष्टाङ्गहृदयसंहितामें सूत्रस्थान आदि छः स्थान और कांय आदिवैद्यकके ८ अंगोंका वर्णन है। पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर रायल साहिबने लिखा है कि, भारतमें वाग्भटकी चिकित्सा सर्वोत्तम है और अरब देशके हकीमोंने यह विद्या इसीसे सीखी थी। रायट आनरेबिल एलफिन्स्टन साहबने अपने सुविख्यात भारतवर्षके इतिहासमें लिखा है कि "भारतवर्षहीके वाग्भट्टसे यूनानी आदि यूरोपदेशवासियोंने हिकमत सीखी थी।" वाग्भट्टजी विक्रमकी १२ वी शताब्दीसे पहिले हुये क्योंकि इनकी रची वैद्यक संहिताके सबसे प्राचीन टीकाकार पं० हेमाद्रि थे जो वि० सं० १२ वें शतकमें हुये।

वाचस्पति मिश्र-(न्यायवार्तिक तात्पर्यके कर्ता)-ये वि० सं० १०३२ में जीवित थे। "खण्डनोद्धार" नामक ग्रंथ भी इन्हींका रचा हुआ है जिसमें श्रीहर्षकृत "खण्डनखण्डखाद्य" का समाधान किया है।

बाजीराव प्रथम-(द्वितीय पेशवा) निजपिता बालाजी विश्वनाथके बाद स० ई० १७२० में पूनाकी गद्दीपर बैठे। इन्होंने दक्षिणदेशवर्त्ती उस सब मुल्कको जिससे चौथ वसूल करनेका अधिकार दिल्लीदरबारने इनके पिताको दिया था। अपने राज्यमें पूर्ण रीतिसे मिला लिया और १५ वर्ष निरन्तर लड़कर स० ई० १७३६ में मालवेका सूबा तथा विन्ध्याचल पर्वतके उत्तरोत्तर चम्बल और नर्मदानदियोंके बीचका मुल्क अपने अधिकारमें करलिया। स० ई० १७३९ में पेशवाने पुर्तगालवालोंसे वैसीनका शहर छीन लिया। अंतमें पेशवाने निजाम हैदराबादपर चढ़ाई की पर सन्धि करनी पड़ी स० ई० १७४० में पेशवा बाजीराव का देहांत हुआ।

बाजीराव २-(अन्तिम पेशवा) यह रघुनाथराव पेशवाके पुत्र थे। और छठा पेशवा माधवराव नारायणके आत्मघात करनेपर स० ई० १७९५ में पूनाकी गद्दी पर बैठे। इतिहास प्रसिद्ध नाना फर्नवीस ब्राह्मण इनका वजीर था। इनके समयमें हुल्कर आदि मरहठा सरदारोंने जो पेशवाके आधीन होकर राजस्व दिया करते थे ज्यादह सर उठाया निदान इन्होंने बृटिश गवर्नमेंटके साथ अहिद नामा

करके २६ लाख रुपये सालाना अंग्रेज़ी फौजके खर्चेके लिये देनास्वीकार किया और अंग्रेजोंने इनकी मदद करने तथा इनके शत्रुओंको परास्त करनेका वचन दिया। हुल्कर, सेंधिया और भोंसला नामक मरहठा सर्दार मिलकर उक्त अहि-दनामाके तोड़नेको कटिबद्धहुये—इसी वजहसे अंग्रेजों और मरहठोंमें युद्ध ठना, जो स० ई० १८०३ से १८०४ तक जारी रहा और जिसका नतीजा यह हुआ कि सेंधिया तथा भोंसला आदि मरहठा सर्दारोंको परास्त होकर अपने २ मुल्कका अधिकांश अंग्रेजोंको देना पड़ा। इसके बाद कुछ समय तक सब झगड़े दबगये परंतु स० ई० १८१८ में पेशवा, हुल्कर और नागपुरके भोंसलाने पृथक् २ बृटिश गवर्नमेंटसे फिर युद्ध ठाना पर परास्त हुये। पेशवाने परास्त होकर बृटिश गव-र्नमेंटकी शरण ली। निदान उनका राज्य सूबे बंबईमें मिला लिया गया और उनको ८ लाखकी पेन्शन देकर कान्हपुरके समीप विठूरमें रहनेका हुक्म दिया गया जहां उन्होंने अपनी बाकी उम्र आरामसे काटी। नाना साहिब जिनका स० ई० १८५७ के गदरके बाद कुछ पता नहीं। पेशवा बाजीरावके दत्तक पुत्र थे। "राजच्युत होनेपर पेशवा बाजीरावके पास वह भारी सेना तथा वीर मंडली न थी जो इनको सदा घेरे रहा करती थी। परंतु वह विप्र मंडली साथ थी जिसने उनके प्रचंड प्रतापका समय अपनी आंखोंसे देखा था और जो उनकी उदारताके सामने भूमंडलके राजामहाराजाओंको कुछ नहीं समझती थी। दूर २ से पंडित विद्वान आते थे और योग्यताके अनुसार पेशवासे पुरस्कृत होते थे। वेद-पाठकी ध्वनिसे विठूर उनके समयमें भरपूर रहता"।

बाणभट्ट—(प्रसिद्ध उपन्यासकार) इनके बापका नाम चित्रभानु और माताका नाम राज्यदेवी था। भद्रनारायण, ईशान इत्यादि इनके बालपनके मित्र थे। १४ वर्षकी उम्रमें इनके पिताका देहांत होगया था। बड़े होकर इन्होंने सिलादित्य हर्षवर्धन महाराज कन्नौजके दर्बारमें प्रतिष्ठा पाई। सिलादित्य हर्षवर्धन का राजकाल स० ई० से ६१० से ६५० तक है इससे इनका समय भी निर्णय होसक्ता है। निम्नस्थ ग्रंथ इनके रचे हुये हैं:—

रत्नावली, नागानन्दनाटक, कादम्बरी, हर्षचरित्र, चंडिकाशतक और पार्वती-परिणय नाटक।

इन सब ग्रंथोंमें कादम्बरी बहुतही ललित है उसके विषयमें विद्वान लोग कहते हैं कि "कादम्बरीरसज्ञेभ्य आहारोपि न रोचते।" नलचम्पूके टीकाकार गुण-विनय नामक जैनने कादम्बरीको "मुकुटताड़का" नामसे लिखा है।

सूर्यशतकके कर्ता पं० मयूर भट्टकी बेटी पं० बाणभट्टको विवाही थी। ये ससुर जमाई दोनों महाराज श्रीहर्षकी सभामें थे (देखो मयूरभट्ट तथा श्रीहर्ष)। श्रीहर्षने बाणको कादम्बरी तथा श्रीहर्षचरित लिखनेके पुरस्कारमें "महाकवि चक्रचूड़ामणि" की उपाधि दी थी।

वात्स्यायन—पद्मपुराणमें इनका नाम अकसर आया है। आधुनिक तत्त्ववेत्ताओंके मतानुसार वात्स्यायन नामक ऋषि स० ई० ६०० में विद्यमान थे जिनका दूसरा नाम मल्लनाग था। वात्स्यायन ऋषिने कामसूत्र रचे थे।

बादरायण—देखो व्यास।

बापूदेव शास्त्री, पंडित महामहोपाध्याय, सी० आई० ई० (गणितशास्त्र पारंगत) इनके परदादे पं० चिन्तामणिदेव परांजपे, कोंकणप्रदेशसे रत्नागिरी जिलेके वेलणेश्वर नामक ग्राममें आकर बसे थे। वेलणेश्वरसे कुछ दिनोंबाद गोदावरी तट अहमदनगरके टोंका गांवमें जा रहे थे। चिन्तामणिदेवके पुत्र सदाशिव देव हुये जिनके पुत्र सीतारामदेवके घर सत्यभामाके उदरसे स० ई० १८१९ की साल नृसिंहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका उल्लापन नाम बापूदेव शास्त्री है। पं० सीतारामदेव अच्छे विद्वान् थे और लेन देन तथा अन्यान्य व्यापार करने के निमित्त कभी पूना और कभी नागपुरमें रहते थे। इनके ३ पुत्र थे जिनमें बापूदेव सबसे छोटे थे। १६ वर्षकी उम्रतक बापूदेवको अष्टाध्याई, अमरकोष, सिद्धांतकौमुदी, पिंगलसूत्र, ऋग्वेद, शिक्षा तथा रघुवंश पढाया गया था जिससे व्युत्पत्तिज्ञान वास्तवमें इनको अच्छा होगया था। बादको ये पूनाकी महाराष्ट्री पाठशालामें गणित पढनेके लिये गये, गणितमें इनका खूब मन लगा। गुरुकी सब विद्या थोड़े ही दिनोंमें हरली। पश्चात् ये पिताके साथ नागपुरको चले आये और पं० ढुंढिराज मिश्रसे भास्करकृत लीलावती तथा बीजगणित पढने लगे। फिर तो इनको गणितशास्त्रका व्यसन लग गया था अहर्निश उसीमें लवलीन रहते थे। स० ई० १८४० में सीहोरके पोलीटिकेल एजेन्ट विल्किन्सन साहबने इनकी

ख्याति सुनी और परीक्षा करनेके बाद सीहोरकी पाठशालामें व्यक्त गणित पढ़ाने की २०) मासिककी जगह इनको दी और हुक्म दिया कि, सिद्धांती पंडित सेवारामजीसे सिद्धांत शिरोमणि पढ़ा करो । हररोज तीसरे पहरको साहब भी खुद इनको रेखागणित तथा पदार्थ विज्ञान पढ़ाया करते थे । इस प्रकार दो वर्ष में इनकी खूब विद्योन्नति हुई । स० ई० १८४२ में विल्किन्सन साहबने सिफ़ारिश करके बनारस संस्कृत कालिजमें नेचुरल फिलासोफी तथा गणितका प्रोफेसर इनको करा दिया । बनारसमें आकर इन्होंने अंग्रेजी पढ़ी और दामोदर शास्त्रीसे षट दर्शनकी शिक्षा पाई । स० ई० १८५० में मेकलौड साहब बनारसके कलेक्टरकी आज्ञानुसार इन्होंने हिंदी बीजगणित रचकर लोकल गवर्नमेंटसे दो हजार रुपये इनाम पाया । इसी बीजगणितको जब दूसरी दफे छपवाया तो म्यूरसाहब लफ्टिनेन्ट गवर्नरने १ हजार रुपया तथा एक दोशाला इनाम दिया । लन्डनकी रायल एशियाटिक सुसायटी, बंगालकी एशियाटिक सुसायटी और कलकत्ता तथा प्रयागके विश्वविद्यालयोंने इनको अपनी २ सभाओंका मेम्बर नियत किया था । बृटिश गवर्नमेंटने अपूर्व विद्याके पुरस्कारमें इनको महामहोपाध्याय तथा सी० आई० की उपाधियें दी थीं । वि० सं० १९३५ के साल काशीके सब लोगोंने सभा करके इनको अभिनन्दनपत्र दिया था जिससे प्रतीत होता है कि, जैसी प्रतिष्ठा इनकी सरकारमें थी वैसे ही लोकसभामें भी आदर थी । स० ई० १८७३ में चंद्र तथा सूर्य ग्रहणका शुद्ध गणित करके इन्होंने महाराजा कांश्मीरके पास भेजा था जो ठीक घड़ीसे मिला । महाराजने प्रसन्न होकर १ हजार रुपये तथा ५०० रु० का एक दोशाला इनाममें दिया । वि० सं० १९३३ से काशी नरेशकी आज्ञानुसार ये प्रति वर्ष पञ्चाङ्ग बनाकर २०० रु० इनाम पाया करते थे । काशीकी पंचक्रोशी यात्रामें कई वर्षसे गड़बड़ थी । लोग भिन्न २ मार्गोंसे यात्रा करने लगे थे, एवं काशीनरेश तथा इञ्जिनियर साहबकी आज्ञासे यन्त्रादि द्वारा इन्होंने शुद्ध मार्ग निर्णय किया । स० ई० १८५८ में इन्होंने भास्कराचार्यकृत सिद्धांत शिरोमणिके कतिपय उदाहरणोंको चलगणितसे उत्पन्न कर सिद्ध किया था कि, भारतके प्राचीन लोग चलगणितसे भी खूब वाकिफ़ थे । स. ई. १८६१ में "बंगाल एशियाटिक" सुसाइटी "बिबलीओथीकाइन्डीका" नामक ग्रंथमालामें इन्होंने "सूर्यसिद्धांत सोपपत्ति तथा सटिप्पण" छपवाया था । स० ई० १८८९ में १००

रु० मासिककी पेन्शन ली और १४ महीने बाद ७ जून स० ई० १८९० को पर-लोकगामी हुये। ३ स्त्रियोंके निस्सन्तान मरनेपर इन्होंने चौथा विवाह किया था जिससे दो पुत्र और १ कन्या है। पं० बापूदेवशास्त्री वक्तके बड़े पाबन्द थे। शरीर वृद्धावस्थातक दृढ रहा, प्रातः ३ बजेका गंगास्नान मरणतक नहीं छोड़ा। वे स्वभावके सीधे थे, अहंकारका स्पर्श भी उनमें नहीं था और अपनेको यहांतक तुच्छ जाना करते थे कि बातचीतमें विद्यार्थियों तकसे आप कहकर बोलते थे। घरपर भी विद्यार्थियोंको पढाते रहते थे। पं. महामहोपाध्याय सुधाकर दुबे, पं. चंद्रदेव पांड्या, विनायक शास्त्री इत्यादि काशीके वर्त्तमान विद्वान आपही के शिष्य हैं। एक दिन विनोदमें आपने एक यंत्र निर्माण किया था और उसका नाम अतुल यन्त्र रक्खा था। निम्नलिखित पद्यमें उक्तयंत्रका उपयोग दिखाया:—

दिनमिति यथाभीष्टं कालं नतं च समुन्नतं। निरयणतनुं सांशां भानोश्चराय-मदिग्लवान्। सपदि नरभाग्रेक्षामाभादवेतिनरोयतस। तदिदमतुलं यंत्रं काश्यां जयत्यनिशं स्फुटम्।

निम्नस्थ ग्रन्थ बापूदेव कृत हैं:—विचित्र प्रश्न संग्रह, तत्त्वविवेक परीक्षा, ज्यो-तिषाचार्याशयवर्णन, सायनावाद, फलित विचार और मान मंदिर वर्णन।

बाबरशाह—(हिंदोस्तानमें मुग़ल राज्यके संस्थापक), इन्होंने वि० सं० १५५० में फरगाना (मध्यएशिया) का राज्य अपने बाप उमरशेख मिर्जासे पाया। इसके बाद ११ वर्ष पर्य्यंत तुर्किस्तानमें अपने सपिंडियों तथा उज़बक जातिके सर्दारोंसे इनका झगड़ा रहा। अंतमें इनके पैर वहांसे उखडगये और ये भागकर काबुलमें आये वहां कुछ दिन ठहरकर इन्होंने फौज एकत्र की और अपने दादा अमीरतैमूरकी राजधानी समरकंदको विजय किया। परंतु उज़बक लोगोंने इनको कुछ दिन बाद वहांसे भी निकाल दिया। तब तो इन्होंने अपने अपने पूर्वजोंके मुल्कका ख्याल छोड़ हिंदोस्तान फ़तेह करनेका इरादा किया। हिंदोस्तानमें उस वक्त आपधापथी, आपसमें फूट थी। बाबरने इसको सुअवसर जान हिंदोस्तानपर चढ़ाई करदी और वि० सं १५८१ में सुलतान इबराहीम लोदीको पानीपतके मैदानमें परास्त करके दिल्लीका राज्य छीन लिया और आग-रेकी तरफ कूंच किया राजपूत राजाओंमेंसे चित्तौड़नरेश राना सांगाके सिवाय

और कोई साम्हने न पड़ा । रानाके राजपूतोंने बाबरकी फ़ौजके दांत खट्टे कर दिये । तब तो बाबरने अपने सर्दारोंके साम्हने क़सम खाई कि, अगर रानापर फ़तेह पाऊं तो शराब पीना छोड़ दूं और दाढ़ीबढ़ाऊं । अंतमें फ़तेहपुर सीकरीके मैदानमें कई नमकहराम सर्दारोंके बिगड़ जानेसे रानाकी हार हुई । दूसरे वर्ष बाबरने चन्देरीका किला मेदनीरायसे फ़तेह किया । कुछ दिनोंबाद पठानोंने पूर्वमें इकट्ठे होकर फ़िसाद करना चाहा । निदान बाबरको उनके दमन करनेके लिये भोजपुर और पटनातक जाना पड़ा । इसके कुछ दिनबाद शाहजादे हुमायूंके, जो अपनी जागीर सम्भलमें रहताथा, बीमार होनेकी खबर आई । बादशाहने तुरंत उसको राजधानी आगरेमें बुलालिया, जब उसके बचनेकी कोई सूरत न देखी तो बाबर उसके पलंगकी परिक्रमा करके ऊपरको मुख और दोनोंहाथ उठाकर ईश्वरसे प्रार्थी हुआ कि, "या मौला ! इसको आरामकर और मुझको ले." उसी घड़ीसे हुमायूंको आराम हो चला और बाबर बीमार पड़कर मरगया । ये बड़ा न्यायकारी, ज्योतिष तथा रमलविद्याका जाननेवाला और प्रजापालक बादशाह था । रात तथा दिनको अकसर वेष बदल २ कर प्रजागणका हाल दरयाफ्त किया करता था। अपने बच्चोंसे इसको अधिक प्रेम था । मरते वक्त अपने ज्येष्ठपुत्र हुमायूंसे कहगया था कि, अपने छोटे भाइयोंको किसी तरहकी तकलीफ़ न देना ।

इसने स० ई० १५२६की साल अयोध्याके रामकूट मंदिरको विध्वंसकर रघुवंशियोंकी जन्मभूमिपर मसजिद बनवाई थी जो अबतक मौजूद है ।

वि० सं० १७८७ में ४८ वर्षकी उम्रमें मरा—

वामन पंडित—इन्होंने वृत्तिसहित काव्यालंकार सूत्रोंको रचा था । काश्मीर राजतरङ्गिणीके लेखानुसार वामनजी काश्मीरनरेश जयापीड़के मंत्री थे । विक्रमकी ८ वीं व १० शताब्दीके बीच इनका समय है । काशिकाके भी कुछ अध्याय वामनजीके बनाये हुये हैं । काशिका उस सरलवृत्तिका नाम है जो पाणिनीय सूत्रोंपर सूत्रक्रमके अनुसार है ।

बालशास्त्री—(काशीवासी वेद वेदाङ्गके अद्वितीय पंडित). गोविन्दभट्ट रानाडे नामक ब्राह्मण कोंकणप्रदेशसे काशीमें अस्सीघाटपर आकर रहे थे, इनके

घर वि० सं० १८९६ में काशीबाईके गर्भसे विश्वनाथ नामक पुत्रका जन्म हुआ जो बालशास्त्री नामसे जगतमें विख्यात हुआ। गोविन्दभट्ट अपने पुत्र बालको ५ वर्षका छोड़कर मरगये, घरमें कोई और था नहीं एवं मरती समय उन्होंने अपने मित्र पं० रामकृष्ण दीक्षितको बुलाकर कहा कि, "भाई! हमतौ अब जाते हैं, ये लड़का नादान है घरमें जो है सो तुम जानतेही हो, अब तुम्हारा ही भरोसा है, जहांतक होसके इनको पीठ नहीं देना"। यह कह गोविन्दभट्ट ५ वर्षके लड़के और २३ वर्षकी विधवाकी नौका मँझधारमें छोड़ चलबसे। पं० रामकृष्णने मैत्रीधर्म खूब निबाहा, पिताका सबकार्य यथासाङ्ग कराके बालकको अपनी शिक्षामें लिया और उसको उसकी माताको कोई कमी न रखकर किसीके द्वारपर नहीं जाने दिया। बालकी बुद्धि तथा धारणाशक्ति ऐसी प्रबल थी कि, बहुत थोडी उम्रमें चारोंवेद उसे कंठाग्र होगये थे। और पं० रामकृष्णके साथ राजच्युत पेशवा वा बाजीरावके दरबारमें बिठूर जाकर उसने अपने वेदगानसे बड़े २ पंडितोंको चकित किया था। पेशवाने भी प्रसन्न होकर उसको "बाल सरस्वती" कहकर पुकारा था और कुछ आर्थिक सहायता भी दीथी। चित्रकूटके पेशवा विनायक रावके दर्बारमें भी इसी प्रकार उसका आदर हुआ था। इससिमय विद्याधरभट्टने ज्योतिष्टोमयज्ञ किया था और बाल सरस्वतीकी विलक्षण ख्याति सुन यज्ञमें मैत्रावरुणका कठिन प्रयोग उनको दिया था जो उन्होंने बड़ी तारीफ़के साथ किया था। पश्चात् बालसरस्वती माता सहित ग्वालियर गये, वहांके चीफ़जस्टिस पं० कुप्पाशास्त्रीने उनका कुछ निबन्ध कर दिया और शास्त्र तथा व्याकरण पढनेका उपदेश किया निदान उन्होंने बाबाशास्त्री बापटसे सिद्धांतकौमुदी और पूनाके मोरशास्त्रीसे, जो उन दिनों ग्वालियरमें थे, न्याय तथा मीमांसाशास्त्र पढ़े। उस वक्त बालसरस्वतीकी उम्र १६ वर्षकी थी निदान ग्वालियरके सामुद्रिक पंडित बच्चाशास्त्रीने अपनी कन्या उनको विवाह दी। पश्चात् काशीमें आकर उन्होंने पं० राजाराम शास्त्रीसे समस्त व्याकरणके ग्रन्थ पढ़े और वि० सं० १९१९ में संस्कृत कालिज बनारसमें साङ्ख्यके असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसरका पद पाया तथा वि० सं० १९३१ में तरक्की पाकर धर्मशास्त्रके प्रोफ़ेसर उक्तकालिजमें होगये। शास्त्रीजी घरपर भी विद्यार्थियोंको पढ़ाते रहते थे म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री, म० म० पं० गंगाधर शास्त्री सी० आई.

ई, म० म० पं० दामोदर शास्त्री तथा तात्याशास्त्री आदि आजकलके अपूर्व विद्वान् अपनेको बालशास्त्रीका शिष्य बतलाते हैं। काशीमें आनेवाले राजे महाराजे बाल शास्त्रीजीका दर्शन किये बिना नहीं जाते थे। काशीराजके यहां भी इनकी निर्णित व्यवस्थाका आदर होता था। काशीस्थ ब्राह्मणदलके यह शिरमौर थे। यज्ञ करानेवाला दूसरा पंडित इनके समान नहीं था। यज्ञके सब बड़े बड़े प्रयोग इन्होंने किये थे। एक निर्धनी दक्षिणी ब्राह्मण इनके उपकारसे यज्ञ करनेमें समर्थ हुआ था। जब विद्यासागरके उद्योगसे बंगालमें और वहांकी देखा देखी दक्षिणमें विधवा विवाहकी चर्चा अत्यन्त प्रबल हुई थी तो इन्होंने देश देशांतरोंमें पूज्यपाद गुरु पं० राजाराम शास्त्री तथा अनेक शिष्योंके सहित जाकर धर्मविरुद्ध चर्चाके प्रवाहको रोका था। वि० सं० १९३१ में पं० राजाराम शास्त्रीकी मृत्युसे इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ। वि० सं० १९३४ में इन्होंने कालिजकी नौकरी छोड़ दी और व्याकरण तथा न्यायादिशास्त्रोंके बदले वेदान्त पढाने तथा अग्निसेवा करनेमें शेष समय बिताया। मण्डी (पंजाब) के राजा विजयसेन शिष्य होकर आपको आर्थिक सहायता देते थे। सन्तानके सिवाय आपको कोई दुःख न था। दो स्त्रियोंके मर जानेपर इन्होंने तीसरा विवाह किया था लेकिन सन्तान नहीं थी। वि० सं० १९३७ में शास्त्रीजीने शीतला घाटपर यज्ञशाला बनवाई और अग्निष्टोम याग किया। वि० सं० १९३९ में शास्त्रीजी बीमार पड़े साथ ही पतिव्रता पत्नी भी बीमार होगई। शास्त्रीजीको तो आराम होगया लेकिन वह चलबसी। मृत्युसे पहले सब लोगोंने शोच विचारकर एक ब्राह्मणके ४ वर्षके लड़केको उसकी गोदमें बिठाल विष्णुदीक्षित नाम रक्खा। इसके बाद शास्त्रीजीने समय निकट समझ यज्ञ शालामें पुष्पवाटिका तथा शिवमंदिर बनवाया और १ महीना ८ दिन बाद आप भी चल बसे। माता काशीबाई जो २३ वर्षकी उम्रमें विधवा हुई थी अपुत्र हुई और घर छोड़ दत्तकको लेकर यज्ञशालामें आ रही। शास्त्रीजीके शिष्योंने यज्ञशालामें "बालसरस्वतीभवन" नामक पुस्तकालय स्थापन किया और उसमें शास्त्रीजीकी सब पुस्तकोंको रख दिया।

बालाजीविश्वनाथ (प्रथम पेशवा)—मुगल सम्राट् औरंगजेबके मरनेपर महाराज शिवाजीके पौत्र राजा शाहू मुगलोंकी कैदसे छूटकर तथा दिल्लीके तख्तका आधिपत्य स्वीकार करके अपने राज्यमें लौटकर आये। लेकिन प्रजागण थोड़े

ही दिनोंमें उनसे उकता उठे। निदान घोर उपद्रव रोकनेके लिये राजा शाहूने ई० स० १७१२ के सालमें महाराष्ट्र देशका सर्वत्र राज्य अपने मन्त्री (पेशवा) बालाजी विश्वनाथ नामक विद्वान् तथा राजनीति निपुण ब्राह्मणको दे दिया। पशवाने राज्याधिकार पाय पूनामें अपनी राजधानी स्थापन की और ऐसे न्याय तथा योग्यतासे राजकाज चलाया कि पेशवाका पद पुश्तैनी होकर ७ पीढीतक उसके वंशमें चला। शाहू तथा उनके उत्तराधिकारी सतारामें रह गये नाम मात्रके राजा थे। महाराष्ट्र देशका शासन यथार्थमें पेशवा पूनामें रहकर करता था। स० ई० १७१८ में बालाजी विश्वनाथने मुगल सम्राट् दिल्लीको फौजकी मदद दी थी, इसके बदलेमें दक्षिण देशसे चौथ उघानेकी आज्ञा तथा पूना और सताराके बीच-का मुल्क पाया था। स० ई० १७२० में इनका देहान्त हुआ।

बालाजी बाजीराव (तृतीय पेशवा)—यह द्वितीय पेशवा बाजीरावके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके समयके समान मरहटाराज्यकी उन्नति किसी पेशवाके समय-में नहीं हुई। हुल्कर, सेंधिया, भोसला तथा गैकवाड़आदि मरहटा सरदार इनको राजस्व देते थे और इन्हींकी कृपासे बहुत नीचे दर्जोंसे उच्च पदोंको प्राप्त हुए थे। निजाम हैदराबादने भी परास्त होकर अपने मुल्कका उत्तरी-पश्चिमी भाग इनको दे दिया था तथा वार्षिक भेंट भी देना स्वीकार किया था। स० ई० १७६१ में काबुल कन्धारके बादशाह अहमदशाह अबदालीने मरहटोंको पानीपतके मैदानमें परास्त किया। इसी शोकसे पेशवा बालाजी बाजीराव जो बड़े साहसी वीर शासक थे, परलोक गामी हुए। स० ई० १७४० में राज्य सिंहासन पर बैठे और स० ई० १७६१ में परलोक गमन किया।

बालादित्य (काश्मीरके गोनर्द वंशका अन्तिम राजा)—यह राजा रणादित्य छा पुत्र वि० सं० ५३० में काश्मीरका राजा हुआ। बंगालदेश विजय करके वहांपर इसने एक पथिकाश्रम बनवाया था तथा काश्मीरमें भी एक अग्रहार बन-वाया था और इसकी रानीने विश्वेश्वर नामक शिव मन्दिर निर्माण किया था। राजा बालादित्यके अनङ्गलेखा नामक एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी जिसकी जन्मपत्री देख किसी ज्योतिषीने राजासे कहा था कि “ आपके पीछे आपका जामात्र काश्मीरका राजा होगा ”। इस फलादेशको सुन राजाने अनङ्गलेखा-का विवाह अपने अश्वशालाके दारोगा दुर्लभवर्द्धन नामक एक स्वरूपवान्

परन्तु सामान्य कायस्थसे कर दिया । अनङ्गलेखा निज पतिको कुछ न गाठकर मुख्यमन्त्री खङ्गसे फँसी हुई थी और पुंश्चलीके निम्नस्थलक्षण उसमें पाये जाते थे ।

"पीछे हँसते खेलते रहना और पतिके आते ही उदासीन हो जाना । विना कारण उठ खड़े होना और मुसकुराके मार्गकी ओर देखने लगना ; पतिके कोप करनेपर भौं, नेत्र, ठोड़ीनचानेकी चेष्टा करके अवज्ञा करना । पति कुछ वुराक हैं तो हँसकर आँखें मीच लेना । पतिके गुण सुन उदास होना और उसके शत्रुकी स्तुतिमें प्रसन्न होना । पतिके कहनेपर ध्यान न देना पतिके चूमने पर गर्दन ढलका देना और उसके आलिङ्गनसे घबराके भागना । पतिके संगसे क्लेश मानना और उसकी शय्या पर लेटतेही सोजाना ।"

एकदिन रात्रिके समय जब दुर्लभ वर्द्धन महलोंमें आया तो मन्त्री खङ्ग और अनङ्गलेखाको पलँग पर पड़े एक साथ सोते पाया । कुचों तथा अन्यान्य अङ्गों-के फड़कनेसे विदित होता था कि, रतिक्रीड़ासे छुट्टी पाकर अभी सोये हैं । पहिले तो दु० वर्द्धनने खंखके मारनेका इरादा किया परन्तु कुछ शोच विचार उसके दामनपर निम्नस्थ अक्षर लिख छुपकेसे चला आया:—"स्मरण रखना कि आज तुझको वध योग्य होनेपर भी छोड़ दिया है ।" होनी अमिट है, थोड़ेही दिन पीछे राजाबालादित्य निर्वंश मर गये और कृतज्ञमन्त्री खङ्गने जोड़ तोड़ लगा-कर दुर्लभ वर्द्धनको काश्मीरका राजा बना दिया । दुर्लभवर्द्धनसे काश्मीरका कर्कोटक राज्यवंश चला ।

वाल्मीकिऋषि (आदि काव्य रामायणके कर्ता)—किसी भीलने एक तुरन्त-के जन्मे बालकको घासपर पड़ा देख उठालिया और निःसन्तान होनेके कारण पुत्रवत् उसको पाला । बड़े होनेपर उसका विवाह होगया जिससे कई वच्चे हुये और वह चिड़ीमारका पेशा करने लगा । एकदिन अकस्मात् उसकी कई ऋषियोंसे भेंट हुई जिन्होंने उसको ज्ञान उपदेश किया और उसने भी एकाग्र चित्त हो"राम" मन्त्रके जपनेमें मन लगाया । चित्तके स्थिर होनेसे उसकी वुद्धि निर्मल होगई और तभीसे उसका नाम वाल्मीकि जगत्में प्रसिद्ध हुआ । वाल्मीकि ऋषिने २४ हजार श्लोकोंमें उत्तरकाण्ड सहित रामायण रची । उत्तरकाण्डमें जो कुछ

लिख दिया था उसीके अनुसार रामचन्द्र महाराजने अन्ततक सब काम किये। वाल्मीकिजी मिथिलाके राजा जनकसे भाईका नाता मानते थे और राजा दशरथसे भी उनकी मित्रता थी, इसी कारण महाराज रामचन्द्रने लोकापवादके भयसे सीताजीको त्यागकर उनके आश्रमके समीप छुड़वा दिया था। उन्होंने भी गर्भवती सीताकी पुत्रीके समान रक्षा की थी और उनके कुश व लव नामक जुरिहा पुत्रोंका पालन पोषण करके अनेक शास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। जब रामचन्द्र महाराजने नैमिपारण्यमें अश्वमेधयज्ञ किया तब वाल्मीकिऋषि भी सीताजीको तथा लव व कुश दोनों बालकोंको साथ लेकर आये थे। सीताजीने तो उस अवसरपर देहत्याग दिया था और कुश तथा लवके मुखसे वाल्मीकि ऋषिने स्वर सहित रामायण २० अध्याय प्रति दिनके हिसाबसे ३० ॥ दिनमें रामचन्द्र महाराजको सुनवाई थी जिससे सन्तुष्ट होकर महाराजने उन दोनोंको १८। १८ हज़ार अशर्फियें देनेकी आज्ञा की थी। लेकिन उन्होंने लेनेसे इनकार किया था और कहा था कि, हम ऋषि आश्रमपर वनमें रहनेवाले धनको लेकर क्या करेंगे। यज्ञके अन्तमें महाराज रामचन्द्रने वाल्मीकि ऋषिके समझाने पर अपने दोनों पुत्रोंको अंगीकार किया था। वाल्मीकिऋषिकी जन्मभूमि प्रयागके समीप कड़ामानकपुरमें थी। पश्चात् गंगातट बिठूर जिला कानपुरमें इन्होंने अपना आश्रम नियत किया था जिसके निकट अनेक ऋषि मुनि बाल बच्चों सहित पर्णशाला बनाकर रहते थे। रामायणके लेखोंसे ज्ञात होता है कि "उस समय विन्ध्यापर्वतके उत्तरोत्तर आर्य्यावर्तदेशमें पञ्जाब, मध्य, कौशल, मिथिला आदि मण्डलोंके भिन्न २ आर्य्यराजे थे जिनकी अयोध्या, अवन्ती आदिराजधानियें सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरपूर थीं और देशके शेष भागमें जहां तहां ऋषि मुनियोंके आश्रम थे। विन्ध्यासे दक्षिणका देश पशुओं तथा गोंड, भील आदि असभ्य जातिके मनुष्योंका निवासस्थान होकर सर्वत्र जंगलसे ढका हुआ था। सबसे पहिले महाराज रामचन्द्रहीने दक्षिण देशके असभ्य राक्षसादिकोंको जीतकर सर्वत्र हिन्दोस्तानका एक छत्र राज्य किया। उस समय वेद शास्त्रमें अत्यन्त कुशलता तथा स्त्री पुरुष दोनोंहीकी विद्यामें तत्परता और कला कौशलादिमें निपुणता पाई जाती है और यह भी ज्ञात होता है कि, "उस समय आर्य्यपुरुष संस्कृतभाषण करते थे और असभ्य लोग कोई अन्य भाषा"।

वास्तुपालतेजपाल—इन दोनों भाइयोंने आबू पर्वतपर देवलवाड़ेमें जैनियोंके तीर्थंकर नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथका मन्दिर स. ई. १२३६ में बनवाया था। विमलशाहके मन्दिरको छोड़कर कोई दूसरा जैनमन्दिर इसके समान नहीं है। (देखो विमलशाह)। कहते हैं कि जिस स्थानपर यह मन्दिर बना है वहांपर पहिले एक प्राचीन शिव मन्दिरके खण्डैर थे। वास्तुपाल तेजपालने बड़ी कठिनता सहित सिरोही दर्बारसे उक्त स्थानको खरीदा, रुपये भर जमीनका एक रुपया देना पड़ा। पश्चात् उक्त स्थानको सीधे कराने तथा भरवाने में ५६ लाख रुपये खर्च हुये और उसपर मन्दिर बनवानेमें १८ करोड़ रुपये उठे। मन्दिर सुन्दरता तथा कारीगरीमें निहायत उमदा है। उसमें संगतराशीके १० हाथी हैं जिनपर मन्दिर बनवानेवालोंकी तथा उनके चाचा आदि अन्य कुटुम्बियोंकी मूर्तियें सवार हैं। यह मन्दिर १४ वर्षमें बना था। वास्तुपालतेजपाल दोनों भाई अनहिल (पट्टन) के रहनेवाले पोरवाल वैश्य थे और गुजरातके बघेला राजाके यहां दीवानके पदपर नियुक्त थे।

विक्टोरिया कैसरे हिन्द (Victoria Empress of India) आपका जन्म स० ई० १८१९ की साल २४ तारीख मईको एडवर्ड ड्युक आफ् केन्टकी पत्नी मेरीलुयजाके गर्भसे हुआ था। जन्मसे एकवर्षके भीतर ही आपके पिताका देहान्त होगया था और जार्ज ४ तथा विलियम ४ नामक उनके दो बड़े भाइयोंने क्रमशः राज्य भोगकर स० ई० १८३८ की साल निःसन्तान मरकर इङ्गलैण्ड इत्यादिके राज्यकी वारिस आपको बनाया था। छः वर्षकी उम्रसे आपको शिक्षा देना आरम्भ कर दिया गया था और तबहीसे पार्लियामेन्टने, आपके वार्षिक व्ययके लिये छः हजार पौन्ड नियत किये थे। वंशमें शिवाय आपके कोई दूसरा बालक न होनेके कारण प्रथमहीसे आशा की जाती थी कि, किसी दिन आपको तख्त मिलेगा और इसी लिये देशकी वर्तमानस्थितिके अनुसार आपको शिक्षा दी गई थी। ग्रीक, जर्मन लैटिन तथा इटेलीकी भाषायें और गणित शास्त्र, नाचना, गाना, तीरन्दाजी, घोड़ेपर चढना आदि आपको सिखाया गया था। स० ई० १८४० में श्रीमतीने राजरीतिके अनुसार पार्लियामेण्टसे आज्ञा लेकर अपने फुफेरे भाई प्रिन्स ऐल्बर्ट आफ सैक्सीको बर्ग ऐन्डगोथाके साथ शादी की (देखो ऐल्बर्ट) । दम्पतिमें अत्यन्त प्रेम हुआ। और प्रिन्सऐल्बर्ट बहुधा श्रीमतीको राजकाजमें भी मदद

हेते थे। सन् ५७ के गदरके बाद पार्लियामेन्टने हिन्दोस्थानका राज्य भी ईस्ट इन्डिया कम्पनीके अधिकारसे निकालकर श्रीमतीको सौंपा। उन दिनों श्रीमतीको सब सुख प्राप्त थे। धन, प्रभुत्व, सुहाग, सन्तति, स्वास्थ्य, देश प्रियता इत्यादि सब कुछ प्राप्त था लेकिन सुखके बाद दुःखकी बारी आई अर्थात् स० ई० १८६१ में राज्ञीपति एेल्वर्टका देहांत होगया। यह दुःख श्रीमतीके शरीरके साथही गया। पश्चात् ४ पुत्र तथा पुत्रियोंमेंसे दो पुत्र १ पुत्री तथा कई पौत्र पौत्रियोंका दुःख श्रीमतीको सहना पड़ा। स० ई० १८७७ में श्रीमतिने कैसेरोहिन्द (Empress of India) का खिताब धारण किया। कैसरेहिन्दका राज्य पृथ्वीके प्रत्येक भागमें इतना बढ़गया था कि "उसपर सूर्य्य कभी नहीं छिपता था"। आपके बृहत् राज्यका प्रत्येक स्थान रेलकी सड़क, भापसे चलनेवाले जहाज तथा बिजलीके तारसे जोड़ा गया था। यूरोप अमेरिका, एशिया, अफरीका, आष्ट्रेलिया, तथा अन्यान्य द्वीपोंमें सबही जगह आपका राज्य हो गया था जिसके चिरस्थाई रहनेकी सब प्रकार पूरण आशा है। विद्या, शिल्प तथा व्यापारकी असाधारण उन्नति आपके समयमें हुई। प्रजागणके रहन सहनमें पहिलेकी अपेक्षा जमीन आसमानका फर्क पड़गया। बृटिशगवर्नमेन्टकी सेना आपके वक्तमें ७॥ लाख थी। आप बड़ी दयामयी थीं, सेनापतियों तथा अन्यान्य कर्मचारियोंको आपसे बड़ी उत्तेजना मिलती थी और प्रजाके दुःखपर आप आँसू बहाती थीं। लेडीडफरिनने आपहीसे उत्तेजना पाकर हिंदोस्थानमें जनाना हस्पताल खोले थे। (देखो डफरन)। स० ई० १९०१ में अशक्ति बढजानेसे श्रीमतीका देहांत हुआ। ३५॥ हजार पौन्ड अन्त्येष्टिक्रियामें लगे। पतिकी समाधिके पास समाधि पाई। ज्येष्ठ पुत्र एडवर्ड सप्तम उत्तराधिकारी हुये और राज्यभरमें आपके स्मारक चिह्न स्थापित हुये। श्रीमतीके समयमें जितने युद्ध हुये उनमें बृटिशगवर्नमेन्टकी पराजय बहुत कम हुई। इंग्लैण्डमें राजकोशका धन प्रजाका समझा जाता है, इसी प्रथाके अनुसार श्रीमतीको ३७१८०० पौन्ड वार्षिक वेतन मिलता था और राज्यघरानेके अन्य पुरुषोंका भी इसी प्रकार वेतन नियत था। टेलीफोन, माइक्रोफोन, गैसकी रोशनी, गैसके पंखे, गैससे चलनेवाली गाड़ियें तथा फोनोग्राफ् आदिका भी आविष्कार आपहीके समयमें हुआ था जिससे पृथ्वीकी काया पलट होगई। आपका शासनकाल असाधारण उन्नतिका समय था।

पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र—हिन्दी साहित्य प्रेमियोंमें ऐसा कौन पुरुष है जिसने अनेक ग्रन्थोंके अनुवादक संशोधक और सम्पादक तथा हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखक मुरादाबाद निवासी पं० बलदेवप्रसादजी मिश्रका नाम न सुना हो । आप यजुर्वेद भाष्यकार विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रके कनिष्ठ तथा पं० कन्हैयालालजी मिश्रके ज्येष्ठ भ्राता थे । पण्डितजीने अल्प समय और अल्प अवस्थामें हिन्दी साहित्यकी जो सेवा की है उसका वर्णन करना मानो सूर्यको दीपक दिखाना है । पण्डितजीके शरीरसे जो कार्य सम्पादन हुआ है उसको कई शरीर मिलकर भी इतने अल्प समयमें नहीं कर सकते थे । आप हिन्दी साहित्यके ही नहीं किन्तु उर्दू, फारसी, गुजराती, बङ्गला, महाराष्ट्री, कनाड़ी और अङ्गरेजी भाषाके भी अद्वितीय विद्वान् थे । आप पहाड़ी भाषा भी भली भांति जानते थे। आप राजनीतिक विषयमें लोकमान्यको सबसे श्रेष्ठ समझते थे, और उनके गुणानुवाद अपने इष्ट मित्रोंको सुनाते रहते थे । आप सनातनधर्मके कट्टर पक्ष पाती थे, उसकी उन्नतिका भी आपको पूरा ध्यान रहता था । सत्यार्थ-प्रकाशके खण्डनमें दयानन्दतिमिर भास्कर नामक ग्रन्थ छपा उससे आर्यसमाजके-तवेलेमें एक दम सन्नाटा छा गया और किसी भी आर्यसमाजकी हिम्मत न हुई जो उस पुस्तकका समुचित उत्तर दे । तथापि मेरठके पं० तुलसीरामजीने भास्कर-प्रकाश नामक पुस्तक लिखी जिसमें व्यर्थकी लीपापोतीके सिवाय और कुछ न था । पं० बलदेवप्रसादजीने "धर्मदिवाकर" नामक पुस्तककी रचना की जिसका आजतक किसी भी आर्यसमाजीने उत्तर देनेका साहस नहीं किया ।

पं० बलदेवप्रसादजीका जन्म पौष शुक्ला एकादशी सम्वत् १९२६ को हुआ था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । आपके पूर्वज पटनेसे मुरादाबाद आये, पंडितजीके पिताका नाम पं० सुखानन्दजी मिश्र था । पं० बलदेवप्रसादजी हिन्दी भाषाका कुछ ज्ञान प्राप्त करके गवर्नमेण्ट हाईस्कूलमें दाखिल हो गये, और इन्होंने पांच छः वर्षतक अंग्रेजीका अध्ययन किया । आपकी योग्यता अंग्रेजी भाषामें बड़े ऊंचे दर्जेकी थी । आपने १८ वर्षकी अवस्थासे हिन्दीमें लेख लिखना प्रारंभ किया । पं०बलदेवप्रसादजी मिश्रने जिस समय हिन्दी साहित्यकी वृद्धिके लिये कार्य प्रारंभ किया उस समय भारतवर्षमें हिन्दी लेखकोंकी संख्या गिनी-चुनी थी और मुद्रण-यन्त्रालय भी कलकत्ता बम्बई जैसे बड़े २ नगरोंकी शोभाको बढ़ा रहे थे । पंडित-

जीकी हिन्दी रोचक ओजस्विनी और सर्वजनप्रिय होती थी। पंडितजी अखबार पढ़नेके बड़े शौकीन थे, २० वर्षकी अवस्थासे २८ वर्षकी अवस्थातक आपने साहित्यसरोज, सत्यसिंधु, भारतवासी, भारतभानु और सोलजर पत्रिका आदि कई समाचार पत्रोंका सम्पादन किया। आप तन्त्र विद्याके भी बड़े ज्ञाता थे, तन्त्रशास्त्रके उद्धारके लिये आपने तन्त्र प्रभाकर प्रेस खोला तन्त्र प्रभाकर पत्र भी निकाला था। उसमें तन्त्र सम्बन्धी कई एक ग्रन्थ भी छपे थे। पंडितजीको मेस्मेरिज़िम विद्यासे अधिक प्रेम था आप उसमें सिद्धहस्त थे। सबसे प्रथम आपने मेस्मेरिजिमकी 'जागती कला' नामक पुस्तक लिखी, जिसका कि जनताने यथेष्ट सन्मान किया। इसके बाद आपको पुस्तक प्रणायनका चस्का पड़ गया और आप एकके बाद एक ग्रन्थ लिखने लगे। कल्कि पुराण, महानिर्वाण तन्त्र, कामरत्न, बृहत्संहिता, सूर्यसिद्धान्त, नित्यतन्त्र, रसेन्दुचिन्तामणि, आदि अनेक ग्रन्थ बंगला और मराठीसे अनुवादित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त संसार वा महास्वप्न, जीवन प्रभात, प्रभास मिलन नाटक, प्रफुल्ल, रमलभास्कर, और प्रेम परिणामआदि पुस्तकें इन्होंने स्वयं ही अपनी कल्पना शक्तिसे रची हैं। आपने पुरुषसूक्तपर भी अच्छी व्याख्या की है। गुजराती और मराठीमें आपने कई पुस्तकें रची हैं। आपकी अन्तिम भेट "टाड राजस्थान" नामक ग्रन्थ देखने योग्य है आपने इस ग्रन्थको बड़ी खोजके साथ लिखा है। आप इसको पूरा लिखने भी न पाये थे कि आपको बहुत जल्दी संसार छोड़ देना पड़ा। इसके उपरान्त टाड राजस्थानकी पूर्त्ति पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रने की। पंडितजी परिश्रमी इतने थे कि प्रातः कालसे लेकर संध्यातक काम करते रहने पर भी इनका चित्त न भरता, तो रात्रिके दो बजेतक लिखा पढा करते थे। पण्डितजी बड़े मिलनसार थे, अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आपने ३६ वर्षकी अवस्थामें ही इस संसार सागरसे यात्रा कर दी। आपका शरीरान्त श्रावण शुक्ल सप्तमी मंगलवार संवत ११६१ को हुआ था।

पं० बलदेवप्रसादजी मिश्रके बृहद पुस्तकालयमें हजारों पुस्तकें हिन्दी–संस्कृत गुजराती–मराठी–अंगरेजी उर्दू और बंगला आदि भाषाओंकी अभी तक मौजूद हैं।

अधिकतर पंडितजीके ग्रन्थ श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमें प्रकाशित हुए हैं। धर्मरत्न सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी, श्रीछतरपुर नरेश, श्रीटिहरी नरेश आदि नरेंद्र शिरोमणि आपका बड़ा सन्मान करते थे।

मुरादाबादमें जो इस समय विद्याकी चर्चा सुननेमें आती है वह अधिकांश मिश्रजीके ही कारणसे है । पं० बलदेवप्रसादजी मिश्रकी प्रथम पुण्यतिथि बम्बई में श्रीतुलसी जयन्तीके साथ ता०८ अगस्त १९३२को बड़े समारोहके साथ मनाईगई।

विक्रमादित्यशकारी (सम्वत्कार)—यह धारानगरीके राजा धारके दौहित्र थे । भर्तृहरि इनके बड़े भाई थे और इनके पिताका नाम गन्धर्वसेन था । धारानरेश अपुत्र थे एवं उन्होंने अपने दौहित्रोंको पालकर राजसी शिक्षा दिलवाई थी। धारा नरेशके मृत्युको प्राप्त होनेपर भर्तृहरि राजा हुये और विक्रमादित्य राजमन्त्री। भर्तृहरि स्त्रैण थे, राजकाजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे । विक्रमादित्यने उनको जब सचेत करना चाहा तो रानीकी कुमंत्रणा मान उन्होंने विक्रमका अपने पास आना भी बन्दकर दिया । इसप्रकार अपमानित हो विक्रमादित्य देशाटनको चले-गये और विविध जातीय शिल्पशिक्षा तथा राजनीति सीखते फिरे । उन्हीं दिनों ढाकेके दक्षिणभागमें जाकर विक्रमपुर बसाया था । इससे थोड़ेही दिनों पीछे राजा भर्तृहरि योगी होगये। यह समाचार पाकर विक्रमादित्य लौटे और राज्य-सिंहासनपर बैठकर उज्जैनको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया । फिर तो महाराज विक्रमने बंगाल, कूचबिहार, गुजरात, सोमनाथ तथा उड़ीसा प्रभृति नानादेशोंको जीतलिया और दिल्ली, मगध तथा कन्नौजके राजाओंको परास्त करके अपने आधीन बनाया तथा शक, यून म्लेच्छ जातियोंको स्वदेशसे बाहर निकालकर शकारी नाम प्राप्तकिया और अपने नामका सम्वत् चलाया जो अबतक जारी है । अन्तमें प्रतिष्ठानपुर (प्रयागके समीप) के राजा शालिवाहन-से विक्रमका युद्ध ठना जिसमें वृद्ध राजा विक्रमादित्य मारेगये । छत्रधारी राजा होनेपर भी विक्रमादित्य सामान्य शय्यापर सोते थे, मट्टीके बर्तनोंमें खान पान करते थे, शिप्रानदीसे जल भर लाते थे, प्रजाका हाल जाननेके लिये रात्रिमें वेश बदलकर घूमा करते थे और ऐसे न्यायसे शासन करते थे, कि, जिससे उनकी विमल कीर्ति आज तक प्रकाशित है । राजा विक्रम बड़े वीर, साहसी, विद्वान्, स्वरूपवान्, दानी, चतुर तथा धार्मिक नरेश थे । प्राचीन अयोध्या नगरीका उन्होंने जीर्णोद्धार किया था । पुराणोंसे पता लगाकर अयोध्या, मथुरा, काशी आदि पवित्र स्थानोंमें तीर्थस्थापन किये थे और बहुतसे मन्दिर बनवाये थे जो महमूदगजनवी तथा शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी आदि

बादशाहोंके द्वारा नष्ट किये गये । उन्होंने कालिदास प्रथमको अध्यक्ष नियत करके पंडितोंकी एक सभाके द्वारा प्राचीन ग्रन्थोंको शुद्ध श्रेणीबद्ध कराया था । सिंहासन बत्तीसी आदि ग्रन्थोंमें लेख है कि इन्द्रने कञ्चनकी ढली हुई ३२ पुतलियोंका सिंहासन राजा विक्रमको दिया था । और कल्हण कृत कश्मीर राजतरंगिणीके अनुसार उक्त सिंहासन महाराजा काश्मीरके यहांसे विक्रमको प्राप्त हुआ था । इससे प्रतीत होता है कि कश्मीर नरेशोंको पूर्वकालमें इन्द्र कहते थे । अयोध्यामें रघुवंशियोंकी जन्मभूमि पर रामकूट नामक मन्दिर, मथुरामें श्रीकृष्णकी जन्मभूमि पर कृष्णकूट नामक मन्दिर और बनारसमें विश्वेश्वरनाथका मन्दिर जिनको बाबर तथा औरंगजेब बादशाहोंने विध्वंस किया महाराज विक्रमहीके बनवाये हुए थे । बैताल पचीसी तथा सिंहासन बत्तीसीकी कहानियें इन्हींके विषयमें हैं ।

विक्रमादित्य हर्ष–(उज्जैननरेश)–यह विक्रम शकारीके वंशमें राजा श्रीहर्षके पुत्र थे । स० ई० ५१५ में उज्जैनकी गद्दीपर बैठे । हिंदोस्थानके अनेक राजे इनके आधीन थे, इस कारण यह छत्रधारी राजा थे । यह बड़े विद्वान्, दानशील, गुणग्राही तथा स्वच्छंद गामी नरेश थे । पंडित मातृगुप्तको इन्हींने कश्मीर मण्डलका राज्य दिया था (देखो मातृगुप्त) । नवरत्न नामक ९ प्रसिद्ध पंडित इन्हींके दर्बारमें थे । उनके नाम कालिदास, वररुचि, शंकु, वेतालभट्ट, धन्वन्तरि, घटकर्पर, क्षपणक, वराहमिहर और दण्डी थे । इनके समयमें पदार्थ, साहित्य, काव्य, गणित तथा शिल्पादि विद्याओंकी असाधारण उन्नति हुई थी । नग्रहार नामक चित्रकारने इन्हींके राज्य दर्बारको सुशोभित करनेके लिये जगत्‌की प्रसिद्ध सुंदरियोंके चित्र खींचे थे । विक्रम हर्षने एक भूगोलका ग्रन्थ रचा था । यह शिवपूजक थे परन्तु बौद्धों तथा ब्राह्मणोंका समान आदर करते थे । इनके पश्चात् शिलादित्य प्रतापशील इनके पुत्रको शत्रुओंने राजरहित कर दिया था लेकिन कश्मीर नरेश प्रवरसेनने मदद देकर उनको फिर उज्जैनकी गद्दीपर बिठलाया था और विक्रम शकारीको निज पूर्वजोंका दिया हुआ ३२ पुतलियोंका सिंहासन उज्जैनसे कश्मीरको ले गया था ।

विक्रमसाह–(उड़छानरेश) देखो विजयबहादुर ।

विग्रहराज—अजमेरके राजा अरण्यराज इनके पिता थे और अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहानके बाप सोमेश्वरराज इनके भाई थे। इनके विषयमें दिल्ली सेवालकपर अङ्कित शिलालेखका आशय यह है कि, "राजा विग्रहराजने हिमालय और विन्ध्याके बीचका देश जीतकर कई दफा म्लेछोंको नष्ट किया था और इस देशको आर्य्यावर्त बनाया था।"

विचित्रवीर्य्य—यह चन्द्रवंशी राजा शन्तनुके पुत्र थे। अपने बड़े भाई चित्राङ्गदके निःसन्तान मरनेपर हस्तिनापुरकी गद्दीपर बैठे। काशी नरेशकी अम्बिका तथा अम्बालिका नामक दो राजकुमारियोंसे इनका विवाह हुआ था। विवाहसे ९ वर्ष बाद इनका देहांत होगया। वंश नष्ट होता देख इनकी माता सत्यवतीने अपने सौतेले पुत्र भीष्मकी सम्मतिके अनुसार इनकी विधवा रानियोंमें व्यासजीसे गर्भाधान कराया जिससे धृतराष्ट्र तथा पाण्डु दो पुत्र जन्मे।

विजयबहादुर (भाषाकवि)—विक्रमसाहि बुन्देला चरखारी नरेशका उपनाम विजयबहादुर था। इन्होंने विक्रमविरदावली तथा विक्रमसतसई नामके ग्रन्थ भाषापद्यमें रचे थे। स० ई० १७८५ में जन्मे, स० ई० १८२८ में मरे। भाषाकवि वेताल इनके दर्बारका कवीश्वर था।

विट्ठलनाथ गोस्वामी—गोकुलस्थसम्प्रदायके आचार्य्य महाप्रभु वल्लभाचार्यजी इनके पिता थे। वि० सं० १५७२ में इनका जन्म चिनार जि० मिर्जापुरमें हुआ था। यह बड़े विद्वान् महात्मा थे। Catelogus Catalogorum के अनुसार इनके बनाये ४९ संस्कृत ग्रन्थ हैं। भाषा कविता यह नहीं करते थे परन्तु भाषाकाव्यका प्रोत्साहन इनके द्वारा बहुतकुछ हुआ। इनके मुख्य शिष्य २५२ थे जिनका चरित्र इनके पुत्र गोकुलनाथजीने "२५२ वैष्णव भक्तोंकी वार्ता" नामक ग्रन्थमें किया है। इन शिष्योंमेंसे गोविन्ददास, छीतः स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास भाषाके प्रसिद्ध कवीश्वर थे। गो० विट्ठलनाथजीने इन चारोंको तथा अपने पिताके सूरदासादि ४ शिष्योंको अष्ट छापकी उपाधि दी थी जो अबतक सर्वमान्य है। श्रीनाथजीके मन्दिरका वैभव इनके समयमें बहुत कुछ बढ़ा। दो विवाहोंसे इनके ७ पुत्र थे जिनमेंसे प्रत्येकके भागमें श्रीवल्लभाचार्य्यके सात मुख्य ठाकुरद्वारोंमेंसे १। १ आया और श्रीनाथजीके मन्दि-

पर सबका अधिकार रहा। इसप्रकार गोकुलस्थियोंकी ७ गद्दियें स्थापित हुई जिनमेंसे मेवाड़में ३, कोटामें १, कामवनमें २ और गोकुलमें १ है। प्रत्येक गद्दी का खर्च अबतक ५०। ६० हजार रुपया वार्षिक है, इन गद्दियोंके मन्दिरोंमें पहले तो पूजासेवाके समय सब लोग केवल संस्कृत ही बोलते थे। अब प्रायः ब्रजभाषा बोलते हैं। विधर्मियोंका नामतक नहीं लिया जाता। गाजीपुरको गुलाबका गांव, मिर्जापुरको मिर्चका गांव, मुसल्मानोंको बड़ी जाति और ईसाइयोंको टोपीवाले कहते हैं। गो० विट्ठलनाथजी बड़े क्षमाधारी और सहनशील थे, वि० सं० १६३२ में परलोकगामी हुए। कृष्णदास तथा छीतः स्वामीके सम्बन्धमें इनका कुछ विशेष वर्णन है सो देखो।

विद्यारण्यस्वामी-इन्होंने वेदांत शास्त्रका पंचदशी नामक ग्रन्थ १५ प्रकरणमें निर्माण किया था। ये संन्यासी थे, पूर्वनाम इनका सायणाचार्य था सो देखो।

विदुर-(प्रसिद्धनीतिज्ञ)-चंद्रवंशी राजा विचित्रवीर्यकी शूद्रादासीके उदरसे इनका जन्म हुआ। यह बड़े ज्ञानी, विद्वान् और चतुर हुए। महाराज पांडु तथा धृतराष्ट्रने क्रमशः इनको अपना मंत्री नियत किया। महाभारतके युद्धमें पांडवोंकी तरफसे लड़े, अंतमें महाराज धृतराष्ट्रको नीति सुनाई और उन्हींके साथ वनको चलेगये और वहाँ अग्निमें जलकर मरे। श्रीकृष्णजीको इनसे बड़ा प्रेम था।

विप्रगुप्त-ब्रह्मगुप्तज्योतिषीका दूसरा नाम विप्रगुप्त है (देखो ब्रह्मगुप्त)॥

विवेकानन्दस्वामी-कलकत्तेमें एक नामी वकीलके घर जन्मे थे। पूर्वनाम इनका नरेन्द्रनाथ था, अंग्रेजीमें बी. ए. पास थे और रामकृष्ण परमहंसके शिष्य होगये थे। गुरुके समाधिस्थहोनेके पीछे भारतके अनेक स्थलोंमें भ्रमण करते हुये ये मदरासमें गये, वहाँ सर्व मिलकर इनसे संसारके समस्त धर्मोंकी पार्लियामेंटमें जो शिकागो (अमेरिका) में होनेकी थी हिंदूधर्मका प्रतिनिधि बनाकर जानेका अनुरोध किया जिस्को इन्होंने स्वीकार किया। इनका विवाह नहीं हुआ था, ब्रह्मचर्य अखंड था। काव्यसंगीत वेदादि विद्याओंके ज्ञाता थे और नाचना, तसबीरें व नक्शे बनाना जानते थे। ढंगचाल दिव्यपुरुषोंकीसी और सूरत लुभानेवाली थी। अमेरिका पहुँचनेपर वहाँके सर्वसाधारणका अनुराग

इनकी ओर बहुत कुछ बढा । लोग अहर्निश इनको घेरे रहते थे । पार्लिया-मेंटमें इनके लेक्चर सर्वोत्तम ठहराये गये । वहांके समाचार पत्रोंने भी बड़ी प्रशंसा की । पक्केसे पक्के क्रिश्चियन भी यह विना कहे न रुकसके कि "विवेकानन्द मनुष्यमण्डलीमें राजाके सदृश हैं ।" पार्लियामेंट हो चुकनेपर अमेरिकन लोगोंने स्वामीको आग्रहपूर्वक ठहराया । शीघ्रही उनके प्रेमियोंकी एक मंडलीका सङ्गठन हुआ । और स्वामीने अमेरिकाके अनेक नगरोंमें भ्रमणकरके वेदवेदान्तका उपदेश किया । पश्चात् न्यूयार्कमें ठहरकर वेदांत फिलासोफी तथा भगवद्गीता आदि ग्रन्थोंकी शिक्षाके लिये एक स्कूल जारी किया जिसमें छात्रोंकी योग्यताके अनुसार ४ दर्जे नियत किये । इस स्कूलमें शिक्षा ग्रहणकरनेवालोंकी इतनी भीड़ हुई कि स्थानका अभाव होगया । जो लोग प्रथम प्रेमी बने थे उन्हींने सबसे पहिले स्वामीजीके शिष्योंकी सूचीमें नाम लिखाया, फिर पीछे तो हजारों स्त्री पुरुष विश्वास लाये । २ वर्षपर्यंत इसतरह अमेरिकामें रहकर स्वामीने निरन्तर परिश्रम किया । वेदांत स्कूलमें शिक्षा देने, धर्म्मोपदेश करने, दुनियाके अनेक भागोंसे आये पत्रोंका उत्तर देने, जिज्ञासुओंका भ्रमोच्छेदन करने, और विश्ववासियोंके लिये धर्मसम्बंधी सरल पुस्तकें रचनेमें रातदिन बीतता था । स्वामी योगकी शिक्षा भी देते थे, प्रसिद्ध डाक्टर स्ट्रीट साहब योगी होकर ज्ञानानन्द-नामको प्राप्त हुये थे । पश्चात् स्वामी इङ्गलैंडको पधारे और लन्डनमें ठहरे । यहां भी शिक्षा और उपदेशोंकी वैसीही धूम रही जैसी अमेरिकामें हुई थी । सब श्रेणीके मनुष्य आये और वैदिक मतके ग्रंथोंका अंग्रेजी अनुवाद ढूंढ ढूंढकर पढने लगे । बड़े २ पादरी तथा रईसोंने लेक्चर सुनकर स्वामीकी प्रशंसा की । अंग्रेजी अखबारोंके कालमके कालम स्वामीकी प्रशंसा और करतूतसे भरे हुये निकलने लगे । लन्डनके ड़ेलीक्रानीकेलने छापा था कि "विवेकानन्द स्वामी नामक महाशय जो भारतके अत्यंत प्राचीन धर्मका उपदेश करने शिकागो (अमेरिका) की धर्मसम्बंधी महासभामें जाकर बड़ा नाम पाचुके हैं आज कल इङ्गलैंडमें ठहरे हैं और आगामी सितम्बरमें भारतको लौटेंगे । इस महापुरुषकी स्थिर ढंगचाल, प्रतिष्ठित सूरत, सरलतासे गूढ़ ब्रह्मविद्याके प्रकट करनेकी शक्ति और अंग्रेजी भाषा पारङ्गत होनेकी योग्यताने अमेरिकन लोगोंसे ऐसा असाधारण आदर सत्कार स्वयंही करालिया..." । पश्चात् स्वामी हिंदोस्तान को लौटे और कोलंबो

(लंका) में जहाज़से उतरे । स्वदेशियोंने स्वामीके आगमन पर देशहितका परिचय दिया । फिर स्वामी हिमालय पर्वतांतर्गत अनेक स्थलों तथा पंजाबमें भ्रमणकरके अमेरिकाको फिर चलेगये । पैरिसफ्रांसकी प्रदर्शिनीमें विद्यमान रहकर स्वामीने अनेक लेक्चर दिये थे । पैरिससे कान्स्टैन्टीनोपिल होते हुये स्वामी बम्बईको पधारे और वहांसे कलकत्ते पहुँचकर सन् १९०२ की साल सिधारगये । स्वामीके निरन्तर उद्योगसे न्युयार्क, ब्रुकलिन, कैलीफोरानिया, सैन फ्रान्सिसको, शिकागो तथा लन्डन इत्यादि नगरोंमें वेदांतशास्त्रके स्कूल जारी हुये । जो चलते रहेंगे । कैलीफोरानियामें एक शान्ति आश्रम भी खोला था । तथा वहां एक मंदिर बनवानेका इरादा किया था परंतु कालकी गति कराल है । अमेरिकामें स्वामीके रोपण किये हुये धर्मोपवनका कार्य अब गुरुभाई अभयानन्द फरासीस तथा तुरीयानन्द रूसी सम्पादन करते हैं । मुर्शिदाबादमें एक अनाथालय, बनारसमें १ अतिथ्यालय, अल्मोड़ा इत्यादि स्थानोंमें वेदांतशिक्षाके केंद्र और हरिद्वारके समीप कनखल व हृषीकेश नामक ग्रामोंमें रोगी साधुओंको अन्नवस्त्र तथा औषधि देनेके लिये "रामकृष्ण सेवाश्रम" स्वामीजीके उद्योगसे खुले थे । स्वामीके अमेरिकन तथा फिरंगी शिष्य जो गुरु भाई या गुरु बहिन कहलाते हैं हिन्दुओंकी तरह नाम धारण करते हैं, तिलक लगाते हैं, भक्ष्याभक्ष्यका ख्याल रखकर चौकेमें भोजन करते हैं, धोती बांधते और वेद शास्त्र तथा उपनिषदोंके वाक्योंको मानते हैं । स्वामीने पुराणोंकी शिक्षा नहीं की । लोग आक्षेप करते हैं कि, स्वामीकी शिक्षामें बौद्ध मतके सिद्धान्तोंका सम्मिलन है, परन्तु स्वामीने स्वयं एक दफे अपने व्याख्यानमें कहा था कि—"मैं बौद्ध नहीं हूं, लेकिन महात्मा बुद्धसे विमुख भी नहीं, जिनको हिन्दू लोग विष्णुका अवतार मानकर बुद्ध भगवान् कहते हैं ।"

विमलशाह—इन्होंने आबू पर्वतपर देवलवाड़ेमें जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवजीका मन्दिर बनवाया था जो वि० सं० १०८८ की साल बनकर तैयार हुआ । ये मन्दिर सङ्गमर्मरका बना हुआ है । लोग कहते हैं कि आगराके ताजमहलको छोड़कर भारत वर्षमें कोई दूसरी इमारत इसके समान नहीं है । मन्दिरके आगे एक मण्डपमें प्रायः ४ फीट ऊंचे संगमर्मरके ९ हाथी हैं जिनपर विमल शाह तथा उसके वंशके लोगोंकी मूर्तियें सवार हैं । विमल शाहकी मूर्ति-

को मुसल्मानोंके वक्तमें खण्डित करादिया था, वर्तमान मूर्ति चिकनी मट्टीकी बनी हुई है। उक्त हाथियोंपर नकाशीका काम है। पत्थर काटकर विचित्र फूल पत्तियें निकाली गई हैं। बिमलशाह गुजरातके रहनेवाले जैनी व्यापारी बड़े धनाढ्य थे।

विष्णुशर्मा (पञ्चतन्त्रके रचयिता)—यह नीतिज्ञ ब्राह्मण स. ई. की छठी शताब्दीमें दक्षिण देशमें हुए थे। इनका रचा ग्रन्थ पञ्चतन्त्र राजनीतिसे भरपूर है। पञ्चतन्त्रका फ़ारसी अनुवाद ईरानके बादशाह नौशेरवाँने कराया था। फारसीसे अरबीमें और अरबीसे प्रायः स० ई० १०८० की साल ग्रीक भाषामें इसका अनुवाद हुआ। ग्रीकसे लैटिनमें और लैटिनसे हेबरुभाषामें स० ई० १२५० के लगभग इसका अनुवाद किया गया। पश्चात् सब फिरङ्गी मुलकोंने अपनी २ भाषाओंमें इसका अनुवाद करलिया। अनवार सुहेली, कलैलादमना और हितोपदेश इसीके फारसी, अरबी तथा संस्कृत अनुवादोंके नाम हैं।

विश्वनाथसिंह महाराजा रीवाँ (भाषाकवि)—आपके पिता महाराजा जयसिंह बघेलेने एक बृहत् ग्रन्थ "हरिचरितामृत" नामक भाषापद्यमें रचा था जिसमें विष्णुके २३ अवतारोंकी कथा वर्णित है। महाराजा विश्वनाथ सिंह भाषाके सुकवि होनेके सिवाय संस्कृत विद्याके भी अपूर्व विद्वान् थे तथा ग्रन्थ रचनामें सिद्धहस्त थे। आप कवियोंके कल्पतरु थे और आपके आश्रयसे उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचे गये थे। निम्नस्थ ग्रन्थ आपके रचे हुये हैं।

सर्वसंग्रह (संस्कृत), कबीरके बीजक तथा तुलसीकृत विनय पत्रिकाका तिलक, रामचन्द्रकी सवारी, परमतत्त्वप्रकाश, आनन्दरघुनन्दन नाटक, रिवाई गद्यमें धनुर्विद्याका तिलक, अष्टजामका आह्निक (वि० सं० १८८७), गोस्वामी जमुनादास उपनाम ब्रजजीवनकृत गीत रघुनन्दन पर "प्रमाणिका" नामक टीका (वि० सं० १९०१) आपके पुत्र जगत् प्रसिद्ध महाराजा रघुराज सिंहदेव स० ई० १८३४ की साल आपके उत्तराधिकारी हुये (सो देखो)। महाराज विश्वनाथसिंहने स० ई० १८१३ से १८३४ तक राज्य भोगा।

बिसाहूराम—(भाषाकाव्य कृष्णायणके कर्ता) इनका उपनाम रसिक शिरोमणि दास है। जन्म इनका स० ई० १८६८ की साल रायपुर (मध्य

प्रदेश) के किसी ग्राममें बखारी पोतदारके घर हुआ। सिमगा जि० रायपुरके वरनेक्यूलर स्कूलमें अब (स० ई० १९०३) में हेडमास्टर हैं। बचपनहीसे हरिकथा तथा कीर्तनके प्रेमी हैं। तुलसीकृत रामायणके ढङ्गपर इन्होंने निम्नस्थ ७ काण्डोंमें कृष्णायण रची है।

बालकाण्ड, रहस्यकाण्ड, मथुराकाण्ड, मंगलकाण्ड, पाण्डवकाण्ड, उद्धव-काण्ड और उत्तरकाण्ड।

यद्यपि भाषा पद्यमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंके निरूपक व्रजविलासादि अनेक ग्रन्थ हैं लेकिन कृष्णायण अपने ढंगकी निराली होकर उन सबसे अधिक आदरणीय है।

बिस्मार्क शाहिजादा (Price Bismark)—यह प्रुशिया अर्थात् जर्मनी राज्यके मुख्य मन्त्री थे। बर्लिनके विश्वविद्यालयमें इन्होंने विद्या पढ़ी थी और पश्चात् फ्रांस तथा आस्ट्रियामें जर्मनराज्यकी तरफसे राजदूत रहे थे। स. ई. १८६१ में जर्मनीके महाराजने इनको विदेशी विभागका मन्त्री नियत किया और स. ई. १८६५ में कौण्टकी पदवी इनको दी। आस्ट्रिया तथा जर्मनीके राज्योंमें जो घोर युद्ध हुआ था उसमें बिस्मार्कने बड़े २ साहसपूर्ण काम करके असाधारण उपाधि प्रिन्स (शाहिजादा) की पाई। प्रिन्स बिस्मार्क बड़े चतुर और दूरदर्शी थे। महाराजा जर्मनी सदैव इनकी सम्मतिसे काम करते थे। इनका कथन है कि आजकलके राज्यसम्बन्धी झगड़े बातोंसे नहीं बरन् खड्गसे फैसला करना चाहिये। स. ई. १८१५ में जन्मे।

विश्वामित्र (ब्रह्मर्षि)—वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ५१—६५ में लिखा है कि प्रजापतिके पुत्र कुश हुये, कुशके पुत्र, कुशनाभ, कुशनाभके पुत्र कन्नौजके राजा गाधि और राजा गाधिके पुत्र विश्वामित्र हुये। राजा विश्वामित्र वहुत दिनोंतक बड़े धर्म्म तथा न्यायसे राज्य करनेके बाद एकदफे देश देशान्तरोंमें दौरा करते हुये वशिष्ठजीके आश्रमपर पहुँचे। वशिष्ठजीने सेना सहित उनकी दावत की। चलते समय राजाने वशिष्ठजीसे नन्दिनी गौ मांगी जिसका त्याग करना उनको स्वीकार न हुआ। निदान गौको बलपूर्वक छीन लेनेकी राजाने आज्ञा दी किसी तरह न मानने पर वशिष्ठजीने ब्रह्मबलसे राजाकी सब सेना तथा उसके १०० पुत्र नष्टकर दिये। परास्त होकर राजाने अपने एक पुत्रको राज्य सौंप दिया

और आप तप करणार्थ हिमालयके समीप चले गये । वहां रहकर साङ्गोपाङ्ग उप-निषद, रहस्य सहित धनुर्वेद और देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादिकोंकी युक्तियें तथा उनके अस्त्र शस्त्र चलानेकी रीतियोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया । ऐसा होनेपर राजा विश्वामित्रको अहंकार हुआ एवं वशिष्ठजीके आश्रम पर जाकर उन्हें नष्ट करनेके लिये अस्त्र शस्त्र बरसाने आरम्भ किये लेकिन वशिष्ठजीने एक ब्रह्म-दण्डहीके द्वारा उन सबका निवारण किया और राजाको परास्त किया । यह देख राजाने ब्रह्मबलकी अपेक्षा क्षत्रिय बलको तुच्छ जाना और रानी सहित दक्षिण दिशाकी ओर तप करने पधारे जिसके प्रभावसे राजर्षिपद पाया और हविष्यन्द, मधुष्यन्दादि अनेक महारथी पुत्र उत्पन्न किये । उन्ही दिनों वशिष्ठजीसे सूर्य्यवंशी राजा त्रिशंकु कोई ऐसी यज्ञ क्रिया करानेका प्रार्थी हुआ कि, जिससे वह सशरीर स्वर्गमें चला जाय । वशिष्ठजीने ऐसा होना असम्भव बतलाया एवं उसने वशिष्ठ-जीके १०० पुत्रोंके पास जाकर, जो दक्षिणमें तप करते थे, अपनी इच्छा प्रकट की । इस बातसे पिताके वचनका अनादर होता जान वशिष्ठ पुत्रोंने त्रिशंकुको चांडाल होजानेका शाप दिया । ऐसी दशामें त्रिशंकुने ऋषि विश्वामित्रकी शरण गही विश्वामित्रको उसपर दया आगई । निदान उन्होंने वशिष्ठपुत्रोंको डोम होजानेका शाप दिया और गुरुशापित त्रिशंकुका स्वर्गमें स्थान पाना असम्भव जान दक्षिण दिशामें एक नया स्वर्ग स्थापन किया और उसके लिये नये सप्त ऋषि तथा अनेक छोटे २ नक्षत्रों सहित अश्विन्यादि २७ नक्षत्र कायम किये और उन सबके बीच नीचेको शिर किये हुए एक देदीप्यमान त्रिशंकु नाम नक्षत्र रूप ठहरा दिया । त्रिशंकु अपने साथके अन्य नक्षत्रों सहित जो उसके पीछे घूमते हैं दक्षिण दिशामें स्थित है और ज्योतिषशास्त्र वर्णित नक्षत्रोंके विचरनेके "वैश्वानर" नामक सनातन मार्गसे बाहर है । ऋषि विश्वामित्रके तेजसे डरकर सबने त्रिशंकु आदि उनके स्थापन किये हुए नक्षत्रोंको स्वीकार किया था । पश्चात् विश्वामित्रने साथके सब ऋषियों मुनियों सहित पुष्करमें जाकर तप किया । उन्हीं दिनों सूर्य्यवंशी राजा अम्बरीषने यज्ञ करना आरम्भ किया और उसमें बलिदान देनेको वह ऋचीकमुनिसे मोल लिये हुए उनके शुनश्शेफनामक मँझले पुत्रको साथ लिये हुए पुष्करमें आया । शुनश्शेफने दौडकर ऋषि विश्वामित्रके चरण पकड लिये और शरण चाही । निदान ऋषि विश्वामित्रने मधुष्यन्दादि अपने पुत्रोंमेंसे किसी

एकको राजाके साथ जाकर शुनश्शेफकी जान बचानेकी आज्ञा पिताकी आज्ञाका निरादर किया जिससे अप्रसन्न होकर विश्वा। पुत्रोंके सदृश निजपुत्रोंको भी डोम होजानेका शाप दिया और शुनश्शे. युक्ति बतलादी जिससे राजाका तो यज्ञ पूरा हो गया और उसके प्राण भी गये। पश्चात् मेनका नामक अप्सराने पुष्करमें पहुंचकर विश्वामित्रको कामस मोहित किया और शकुन्तलानामक कन्या उत्पन्न कराई। मदन मद घटने पर अपना तप क्षीण होता जान विश्वामित्र पुष्करसे चल कर उत्तराखण्डमें कौशि- की नदीके तीर पहुंच ब्रह्मचर्य्य सहित ब्रह्मर्षि बननेके लिये पुनः तप करने लगे। कुछ दिनों बाद रम्भा अप्सराने जाकर उनको मोहित करना चाहा लेकिन बुद्धि- मानों (देवताओं) की चाल समझे हुए ऋषि विश्वामित्रने क्रोधमें आकर उसको फटकार दिया। फिर ऋषि विश्वामित्र यहांसे भी चल दिये और पूर्व दिशामें जाकर घोर तप करने लगे और क्रोधको तपकी क्षीणताका कारण जान भोजन करना, बोलना तथा सांसतक लेना बन्दकर दिया और अनेक विघ्न उपस्थित होने पर भी अन्तःकरणमें क्रोध न आने दिया। ऐसा करनेसे ब्रह्मर्षि पद तथा बड़ी आयुष उनको प्राप्त हुई और वशिष्ठजीसे भी मेल हो गया। महर्षि विश्वामित्र वेदविद्या, वायव्यकला, धनुर्वेद तथा सङ्गीत शास्त्रके पूर्ण ज्ञाता होकर बड़े वीर्यवान थे और बुद्धि उनकी ऐसी निर्मल थी कि कोई काम उनके लिये कठिन नहीं था। सर्वत्र पृथ्वीपर उन्होंने भ्रमण किया था और रामलक्ष्मणको धनुर्विद्या सिखाई थी। सहस्रों ऋषि मुनि तथा राजे महाराजे उनको शीश नवाते थे। अनेक तरहके फल फूल तथा अन्नभी उन्होंने प्रकट किये थे और ऋग्वेदके तीसरे मण्डलकी ऋचाओंको संग्रह किया था।

विरजानन्द सरस्वती (प्रज्ञाचक्षु)—यह पंजाब प्रदेशान्तर्गत कर- तारपुरके गंगापुरनामक ग्राममें नारायणदास सारस्वत ब्राह्मणके घर जन्मे थे। ५ वर्षकी उम्रमें चेचक निकलनेसे अन्धे हो गये थे, ११ वर्षकी उम्रतक पिताने इनको सारस्वतचंद्रिका पढाई थी। १२ वर्षकी उम्रमें इनके माता पिताका देहान्त हो गया और १५ वर्षकी उम्रमें भावजसे दुःखित हो घरसे निकल हृषीकेश पहुँचे। वहां तीन वर्षपर्य्यंत रहकर इन्होंने अपने दग्ध हृदयको शान्त किया और पश्चात् हरिद्वारमें आकर पूर्णानन्दसरस्वतीसे संन्यासधर्ममें दीक्षा ली और विर-

ाम पाया। हरिद्वारमें कुछ कालतक ठहरकर स्वामीजीने
पढाया और स्वयं मध्य तथा सिद्धान्तकौमुदीका विचार किया।
स्वामीजी गंगाके किनारे किनारे बनारसको गये और वहां रहकर उन्होंने
ा, शेखर, न्याय तथा वेदान्तके ग्रन्थ पढे और प्रज्ञाचक्षु उपाधि पाई।
बनारससे चलकर गया होते हुए कलकत्ता गये और वहांसे लौटकर सोरों जिला
एटामें कुछ दिनोंके लिये ठहरे। पश्चात् अलवर, भरतपुर, मुर्सान इत्यादिमें
विचरते हुए स्वामीजी वि० सं० १८९३ की सालमें मथुरा पहुंचे और वहां पाठ-
शाला स्थापित करके अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, निघण्टु आदि ग्रंथोंके पठन-
पाठनमें आयु बिताई। वि० सं० १९१७ में स्वामी दयानन्द सरस्वती इनके पास
विशेष विद्या पढ़ने आये। कई वर्ष बाद जब शिक्षा सम्पूर्ण हुई तो सुफलमें उनसे
स्वामी विराजानन्दजीने यह बात चाही कि, स्वार्थपरता तथा मूर्खता फैलानेवाले
सम्प्रदाई ग्रन्थोंकी जड़पर कुल्हाड़ी फेरकर ऋषिकृत ग्रन्थोंका प्रचार करना और
अन्धकारको मिटाना। वि० सं० १९२९ की साल ७९ वर्षकी उमरमें स्वा० विर-
जानन्दका देहान्त हुआ। स्वा० दयानन्दने यह समाचार सुन कहा कि "आज
भारतसे विद्याका सूर्य अस्त होगया।" और उस रोज दिनभर जल तक नहीं
पिया। स्वा० विरजानन्दकी स्मरणशक्ति ऐसी निर्मल थी कि, जो ग्रंथ एकदफे
ध्यानसे सुनलेते थे वह उनको याद होजाता था। भिन्न भिन्न ऋतुओंमें स्वामीजी
वैद्यकशास्त्रानुसार कोई २ विशेष वस्तु खाना छोड़ देते थे।

बिल्वमंगलसूर—देखो सूर—

बिल्हणइतिहासकार—यह काश्मीरवासी ब्राह्मण प्रायः स० ई० १०८३ में
विद्यमान थे। विक्रमाङ्कचरित्र १८ सर्गोंमें इनका रचा ग्रन्थ उत्तम है। विक्रमाङ्क-
चरित्रमें कश्मीरके बड़े २ शहरों, प्रसिद्ध पुरुषों और कश्मीरके चालोक्यराजवं-
शका सविस्तर वृत्तांत है।

विशाखदत्त (मुद्राराक्षसनाटकके कर्त्ता)—यह सावन्तवटेश्वर दत्तके
पौत्र तथा महाराज पृथुके पुत्र थे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द लिखते हैं कि
पृथु दिल्लीके अन्तिम हिंदूपति पृथ्वीराज चौहानका दूसरा नाम है। वि० सं० की
१२ वीं शताब्दीमें विशाखदत्तका जीवनकाल है। मुद्राराक्षस अन्य नाटकोंकी

अपेक्षा अधिक विलक्षण है क्योंकि इसमें राजनीतिका अंश बहुतही उत्तमतासे दरशाया गया है।

विशुद्धानन्दसरस्वती (भारत विख्यात विद्वान् संन्यासी)– संगमलालशुक्ल कान्यकुब्ज ब्राह्मण जिला सीतापुरके वाड़ी नामक ग्रामसे आजीवन तथा देशभ्रमणके लिये दक्षिणकी तरफ गये थे। हैदराबादके समीप कल्याणीमें पहुंच वहांके नवाब मोहनशाहके सेनानायक लछीरामसे इनकी भेंट हुई। लछीरामभी अवध प्रान्तके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। निदान उन्होंने अपनी बहन यमुनाका विवाह इनके साथ कर दिया जिसके गर्भसे बंसीधर नामक पुत्रका जन्म हुआ जो देशमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीके नामसे विख्यात है। संसारभरके बालक प्रथम जिन शब्दोंका उच्चारण करते हैं वे गृहस्थोपियोगी "मामा बाबा" आदि शब्द इन्होंने नहीं बोले थे किन्तु सबसे पहिले एक दिन अकस्मात् यह कहा था कि "मेरी पुस्तक कहां है।" और फिर कई मासतक यही रट लगी रही थी। ११ वर्षके होनेके पहिले माता पिताका देहांत होगया और निःसंतान मामा मामीने इनको पुत्रवत् पाला था। लड़कपनमें ये बड़े उद्दण्ड थे और नबाब मोहनशाहके लड़कोंके साथ कई बर्षतक कुश्ती, दण्ड, पटा, तीरन्दाजी, कोटखाई दीवार आदिका फांदना और घोड़ोंका फेरना इत्यादि फौजी व्यवसाय सीखते रहे थे। उनदिनों इनकी उम्र १६ वर्षकी थी, लेकिन सुन्दर सुडौल बलिष्ठ शरीरके देखनेसे २५ वर्षके जवान मालूम देते थे और नबाबके लड़कोंसे सब कसरतोंमें बाजी मारा करते थे। इसी कारण एक दिन द्वेष वश उन्होंने एक घोड़ा मरजानेके अपराधमें इनको थोड़ी देरके लिये हवालात करा दी। यद्यपि मामा सुनते ही इनको छुड़ा लाये थे लेकिन इस घटनासे इनका मन संसारसे उदास होगया। निदान उसी रातको चुपचाप घरसे निकल नासिक क्षेत्रको चलते हुये। वहां पहुंच ३ वर्षमें इन्होंने संहिता, अष्टाध्यायी, अमरकोष आदि ग्रन्थ कंठ किये। पश्चात् विशेष विद्यापठनार्थ उत्तरकी ओर गमन किया और दौलताबाद, ओंकारनाथ, उज्जैन तथा ग्वालियर होते हुये विठूर (कानपुर) में आये। समय उन दिनों आज कलकासा नहीं था एवं इनको इस सफ़रमें बड़े २ कष्ट सहन करने पड़े। लेकिन कभी नहीं घबराये, मूल मंत्र सदैव ये ही रहा कि "कार्य्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयं"। विठूरमें ३ वर्ष रहकर प्रसिद्ध पंडित राघवेंद्राचारीसे व्याक-

रणके समस्त ग्रन्थ पढ़े और उन्होंने एक सहपाठीको बड़ी बहादुरीसे गंगामें डूबनेसे बचाया । थोड़े दिनोंमें विठूरसे सिधारे और जोशीमठ, हृषीकेश, कनखल तथा हरिद्वारमें ३ वर्ष पर्य्यंत ठहरकर स्वामीजीने गोविन्दाश्रम आदि महात्माओंसे योग तथा ब्रह्मविद्याका अभ्यास किया । इन तीन वर्षोंमें इन्होंने अनेक तीर्थोंके दर्शन, बहुतसे योगियों संन्यासियोंका सत्संग, अनेक प्रकारके चांद्रायणादि व्रत तथा गायत्री आदि मन्त्रोंका जप भी किया था कि जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि होकर बुद्धि निर्मल हो और हृदयमें विद्याका प्रकाश हो । स. ई. १८५० के साल उत्तराखण्डसे लौटकर काशीमें आये और महात्मा गौड़ स्वामीसे संन्यास धर्मकी दीक्षा लेकर अनेक शास्त्रोंका अध्ययन उनसे किया । वि. सं. १९१६ में सब लोगोंके कहनेसे गौड़ स्वामीकी गद्दीपर बैठना तथा दशाश्वमेध घाटपर अहल्याबाईकी धर्मशालामें रहकर विद्यार्थियोंको पढ़ाना इन्होंने स्वीकार किया । (देखो गौड़स्वामी) । इनके पढ़ाये हजारों विद्वान् आजकल देशभरमें वर्तमान हैं । भारतविख्यात वक्ता पं० दीनदयालु शर्म्मा तथा महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री सरीखे अद्वितीय विद्वान् अपनेको स्वामी विशुद्धानन्दका शिष्य बतलानेमें गौरव समझते हैं । स्वामीजी धनिकोंसे सदैव दूर भागे । लेकिन वे अन्ततक उनके साथ ही रहे, इसीको कहते हैं "भोक्तांक भोगकी प्रबलता" । कश्मीर, जयपुर, इन्दौर, दरभंगा आदिके राजों महाराजोंने शिष्य होकर स्वामीजीकी पाठशालाके खर्चके निमित्त लाखों रुपये दिये । पाठशालामें सैकड़ों संन्यासी वेदान्तका सूक्ष्म विचार करते तथा अन्नवस्त्र पाते थे । सैकड़ों ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ भी अनेक शास्त्रोंकी शिक्षा पाते थे और आवश्यकता होनेपर उनको भी भोजन वस्त्र दिया जाता था । काशीके सब ब्राह्मण तथा साधू अपना अग्रगण्य समझ स्वामीजीके कहेमें चलते थे । उनके होते हुये कोई विद्वान् शास्त्रार्थमें काशीसे जीतकर नहीं गया । उनकासा तेजस्वीपन तथा आतङ्क काशीके किसी दूसरे विद्वानका नहीं था । वि० सं० १९५६ की साल ९३ वर्षकी उम्रमें स्वामीजीका देहपात हुआ । कलकत्ता आदि नगरोंमें उनके नामसे विद्यालय खोले गये । उनके मृत्युकी खबर सुनकर सबने येही कहा कि "विद्याका सूर्य अस्त होगया ! काशीका कलश गिरगया !!"

बिहारीमल कछवाहा (जयपुरनरेश)—इनको भोरूमल तथा पूरण-मल भी कहते थे। आमेर इनके वक्तमें राजधानी थी, यह निज पिता पृथ्वीराजके बाद गद्दीपर बैठे थे और दिल्लीके तख्तको राजस्व देते थे। नारनौल इन्होंने गुलाम-शेरखांसे फतेह किया था। और हैमूंबक्कालकी पराजयके समय भी यह मौजूद थे। पहिले पहिले जब मुगलसम्राट् अकबरने इन्हें अपने दर्बारमें बुलाया तो यह पागलहाथी पर सवार होकर गये थे। अकबरको इन्होंने अपनी बेटीका डोला दिया था और पञ्च हजारी मनसब पाया था। राजा भगवानदास इनके पुत्र थे और दर्बार अकबरीके नवरत्न महाराजा मानसिंह इनके पौत्र थे। (सो देखो)। बिहारीमलकी रानी मथुरामें दशावतारकी गलीके साम्हने जमुनातट जहां सती हुई थी वहांपर लालपत्थरका ५० फीट ऊँचा सतीबुर्ज अबतक मौजूद है। उक्त बुर्जको मुगलसम्राट् औरंगजेबने ऊपरसे तुड़वादिया था जिसके चिन्ह अवतक पाये जाते हैं।

बिहारीलाल (भाषाकवि) परम्परासे इनके विषयमें प्रसिद्ध है कि—

दो०—जन्म ग्वालियर जानिये, खण्ड बुंदेले वाल।
तरुणाई आई सुभग, मथुरा वस सुसराल॥

खड्ग विलासप्रेस बांकेपुरसे मुद्रित बिहारीलालके जीवनचरित्रकी पुस्तकमें सुयोग्य लेखकने उपरोक्त दोहे तथा सतसईके अनेक प्रमाणोंके आधारपर सिद्ध किया है कि यह भाषा कवि केशवदासके पुत्र वर्णके ब्राह्मण नानाके घर ग्वालि-यरमें जन्मे थे। अनुमान १८ वर्षकी उम्रतक पिताके पास उड़छा (बुंदेलखण्ड) में रहे, जब इनके पिताका देहान्त होगया और उनके सत्कार करनेवाले नरेशकी जगह भी दूसरा राजा उड़छाकी गद्दीपर बैठ गया तौ बिहारीलालजी अपनी कविताका यथार्थ आदर न पाय उड़छासे अपनी सुसरालको मथुरामें चले आये। पश्चात् मथुरासे जयपुरनरेश जयसिंहके दर्बारमें गये, राजासाहब उनदिनों अपनी नवयौवना रानीके प्रेममें ऐसे मुग्ध थे कि रातदिन रनवासमें रहकर राजकाजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे। यह देख बिहारीलालने निम्नस्थ दोहा लिख राजाके पास पहुंचाया:—

दो०—नहिं पराग नहिं मधुरमधु, नहिं विकास यह काल।
अली कलीहीसों रम्यो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहेका मतलव समझ जयसिंहनरेश तुरंत वाहर निकल आये और विहारीलालको १०० मुहरें इनाम दीं। बादको विहारीलालजी जयपुरमें रहते रहे और समय २ पर दोहे बनाकर सुनाते रहे तथा इनाम पाते रहे। स० ई० १६६२ में ७०० दोहे बनजानेपर विहारीलालजीने सबको एकत्र किया और सतसईनाम रक्खा। सतसईके दोहोंपर 'अजरकामधेनु' की कहावत घटती है, ४८ मात्राके छन्दमें ऐसी सुन्दरतासे इतने गम्भीरभावोंको भरकर मूर्तिमान् बना आंखके साम्हने खड़ाकर देना सहज काम नहीं है, विद्वान्लोग कहते हैं:—

दो०—सतसैयाके दोहरा, ज्यों नावकके तीर।
देखनके ओछे लगैं, करैं घाव गम्भीर॥

राजा जयसिंहका प्रेम विहारीलालके साथ इतना बढ़ गया था कि बहुधा युद्धके अवसरपर भी वह इनको अपने साथ ही रखते थे। स० ई० १६२५ काबुलकी चढ़ाईपर दोनों साथही साथ गये थे और विहारीलालजीने अवसरपर कहा था कि—

दो०—यों दलकाढे वलखतें, तैं जय साह भुआल।
वदन अघासुरके परे, ज्यों हरिगायग्वाल॥

स० ई० १६६६ में राजा जयसिंहके उद्योगसे शिवाजीमरहटा और औरंगजेबमें संधि होकर बड़ा भारी युद्ध मिटा था उस अवसरपर विहारीलालजीने कहा था कि—

दो०—घर २ हिन्दुनि तुरकनी, देहि असीस सराहि।
पतिनराख चून्दर चुरी, तैंराखीं जयसाहि॥

स० ई० १६६७ में राजा जयसिंहका देहांत हुआ और इसके बाद विहारीलालजीका भी कुछ पता नहीं लगता। सतसईको विचारसहित पढनेसे ज्ञात होता है कि, विहारीका स्वभाव उच्च और खरा था। झूंठ खुशामदी न थे। कृष्णोपासक थे, हृदय उदार भावोंसे परिपूर्ण था, मतमतांतरोंके झगड़ों तथा दुराग्रहको नापसंद करते थे। संस्कृतके पूर्णविद्वान् थे, फारसी भी भलीभांति जानते हों तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि फारसीके शब्द बड़े सौंदर्य और मौकेसे

इनकी कवितामें पायेजाते हैं और हिंदीमें तो ऐसी बोलचाल तथा ऐसे गठे हुये शब्द किसी अन्य कविकी कवितामें मिलतेही नहीं। निम्नलिखित दोहेमें जिस सरीखे सतसईमें सैकड़ों हैं विहारीने सागरको गागरमें भरा हैः—

दोहा—कितीन गोकुलकुल वधू, काहिन केहि सुखदीन।
कौनै तजी न कुल गली, है मुरली स्वरलीन॥

विज्ञानेश्वर—(नीतिविशारद) यह बड़े महात्मा थे, धर्मशास्त्र तथा राजनीतिके मर्मोंको खूब जानते थे। याज्ञवल्क्यस्मृतिका मिताक्षरा नाम तिलक इन्होंने रचा था। मिताक्षराका बना राजा भोजके समयसे पहिले सिद्ध है क्योंकि भोजके समयमें मिताक्षराका व्यवहार सर्वत्र न्यायालयोंमें था। पांडित्य इनका मिताक्षराके देखनेसे प्रकट होताही है। और इसमें भी कुछ शक नहीं कि, यह वर्णके ब्राह्मण थे।

बीकासिंह (राव बीकाजी बीकानेर राज्यके संस्थापक)—मारवाड़नरेश राव जोधाजी इनके बाप थे। बीकाजीने पिताके किसी कटुवचनपर नाराज़ होकर अपने पूर्वजोंके राज्यका दावा छोड़ दिया था और निजभुजबलसे माड़वाड़का उत्तरीय भाग जैसलमेरके भाटियोंसे विजय करके वि० सं० १५४२ में बीकानेर बसाया था और इधर रेवाड़ी फतेह करके दिल्लीकी तलहिटीतक और उधर हांसीहिसारतक स्वराज्यको बढ़ाया था और कई लड़ाइयोंमें मुगलसम्राट दिल्लीपर भी विजय पाई थी। रावजोधाजीके पश्चात् भाइयोंकी मददपर जाकर इन्होंने अजमेरके सूबेदारको परास्त किया था। इनका देहान्त वि. सं. १५६१ में हुआ। श्रीमहाराज गंगासिंहजी वर्तमान बीकानेरनरेश आपहीके वंशावतंस हैं।

बीरवर—देखो बीरबल.

बीरबल (अकबरके मन्त्री)—यह जिला हमीरपुरके किसीग्राममें और अनेकोंकी सम्मतिके अनुसार कालपीमें स० ई० १५६० की साल एक साधारण कान्यकुब्जब्राह्मणके घर जन्मे थे और महेशदास इनका नाम पड़ा था। माता इनको ७ वर्षका छोड़कर मरगई थी और पिताने इनको बचपनहीमें अनेक

कवित्त तथा श्लोक ऐसे कंठकरा दिये थे, जो राजा महाराजाओंके सामने पढ़े जाते हैं । कई वर्षबाद इनके पिताका भी देहान्त होगया और तब इन्होंने सुन्दर-लाल एक विद्वान् ब्राह्मणसे अल्पकालहीमें संस्कृत तथा फारसीके बड़े २ ग्रन्थ पढ़े । एकदिन सुन्दरलाल छत्तपरसे गिरकर मरगये, इसके बाद इन्होंने जय-पुर नरेश भगवानदासके दर्बारमें कवीश्वरोंमें नौकरी करली । भगवानदासने इनकी विलक्षणबुद्धिपर रीझकर तोहफ़ेके तौरपर इनको बादशाह अकबरकी भेंट करदिया । अकबरने प्रथम इनको कविरायकी पदवी दी और कुछही दिनों बाद इनको सर्वगुण सम्पन्न पाकर अपना मुशीरेआला बनालिया और पञ्ज-हज़ारीका मन्सब तथा साहिबदानिश्वर राजा बीरबलका ख़िताब दिया । इन्हीं दिनों कांगड़ेके राजा उद्योतचन्द किसी कारण कैद किये गये, अकबरने उनका राज्य जागीरमें इनको देना चाहा लेकिन इन्होंने स्वीकार न किया निदान कालिञ्जरके समीप एक बड़ी जागीर इनको दीगई । गुजरातकी लड़ाईमें बीर-बलने अपना समरनैपुण्य दिखलाकर बड़ी प्रशंसा पाई थी, यह अकबरके साथ ही रहते थे और जब कोई भारीसे भारी काम आन पड़ता था तो वह इन्हींको सौंपा जाता था । स० ई० १५५६ में काबुलके अफग़ानोंने सिर उठाया, अक-बरने एक सैनिकदल उनकी सरकोबीको बीरबलकी मातहितीमें रवाना किया, काबुल पहुँच बीरबल संयोग वश पहाड़की एक घाटीमें फँस गये और मुँह मोड़ना स्वीकार न कर सेना सहित कटमरे । अकबर अपने सखाकी मृत्युके समाचार सुन शोकाकुल हो ज्ञानशून्य होगया, कई दिनतक खाना न खासका । और सच पूंछो तो मरणपर्य्यंत इस दुखको न भूला, जब कभी बीरबलकी याद आजाती थी तो कहा करता था कि "सब शोभा दर्बारकी गई बीरबल साथ ।" बीरबलकी लाश नहीं मिली थी, इसी आधारपर बादशाहका शोक घटानेके लिये लोगोंने कई दफ़े यह बात उड़ाई कि, बीरबल मारे नहीं गये हैं किन्तु संन्यासी-के भेषमें कांगड़ेमें विचरते हैं । अकबरने विश्वास करके अनुसन्धान कराया परन्तु यह सब खबरें गप्प निकलीं । मौल्सीन साहब अपने हिन्दोस्तानके इति-हासमें लिखते हैं कि "बीरबल बड़ा सुप्रबन्धकर्ता, राज्यका स्तम्भ, सभ्य, दृढ़-चित्त और दीर्घ आशयवान पुरुष था । मधुरभाषी था पर सुप्रतिष्ठाका बड़ा ध्यान रखता था । स्वभाव प्रहसनयुक्त था लेकिन ऐसा प्रहसन नहीं करता था जो

सभ्यता और राज्यप्रतिष्ठासे बाह्य हो।" ऊँचे २ मनसबधारी अमीर, बेगमें और शाहिजादे बीरबलकी कृपादृष्टिको अपना सौभाग्य समझते थे क्योंकि, यह बादशाहके मुंह लगे थे और बादशाह इनकी सिफारिशको मानता था। बीरबल अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता होकर शीलके समुद्र, दानमें कर्ण, धर्मकर्ममें जमदग्नि और बुद्धिमें बृहस्पतिके सदृश थे। कविगंगको छप्पयमें १ लाख रुपया इन्होंने इनाम दिया था और इन्द्रजीत उडछा नरेशका १ करोड़ रुपया जुर्माना कविकेशव दासकी सिफारिशपर अकबरसे कहकर माफ करादिया था (देखो केशवदास) ज़ि० कानपुरमें वाराअकबरपुर इन्हींका बसाया हुआ है, इनके उद्योगसे गोवध बंद होकर हिंदू मुसल्मानोंमें मेलझोल बढ़ा था, लेकिन मुसल्मान इनसे सदैव जलते रहते थे क्योंकि, उनको गुमान था कि, यह अकबरको हिन्दू मतकी तरफ झुकाते हैं। इनके टूटे फूटे महल तथा, इनकी बेटीके, जो बड़ी चतुरा थी, महिलोंके खण्डेर अबतक फतेपुरसीकरी जि० आगरामें पड़े हैं। और इनका इकलौता बेटा लाल इनसे कुछही दिन पीछे अपना सर्वस्व लुटाकर संन्यासी होगया था। यह कवितामें अपना भोग ब्रह्म कहते थे। प्रसिद्ध है कि—

दो०—उत्तम पद कविगंगको, उपमाको बलवीर।
केशव अर्थ गंभीरको, सूर तीनगुण धीर॥

राजा बीरबलकी मृत्युके शोकमें कवि केशवदासजीने कहा था कि—

पापके पुंज पखावज केशव, शोकके शँख सुने सुखमामें।
झूंटकी झालर झाँझ अलोककी, कौतुक भो कलिके कुनबामें।
भेदकी भेंरि बड़ेडरके डफ, आवत जुत्थन जानि जमामें।
जूझत ही बलबीर बजे बहु, दारिदके दर्बार दमामें।

वीरसिंह (बुंदेलोंके मूल पुरुष)—इनके पिता हेमकरन जो बनारसमें राज्य करते थे, मुसल्मानोंसे परास्त होकर स. ई. के १३ वें शतकमें इधर आये थे। बीरसिंहने बड़े होकर "बुन्देला गोत्र" धारण किया और इसी कारण इस देशका नाम बुन्देलखण्ड पड़ा। इनके वंशज अबतक पन्ना, अजयगढ, चर्खारी, विजावर, उड़छा तथा दतिया इत्यादिमें राज्य करते हैं।

वीरसिंहदेव बुंदेला (उड़छानरेश)—मुग़लसम्राट् जहांगीरके वक्तमें बड़े प्रतापी हुये थे, इन्होंने शहर झांसीको फिरसे बसाया था और ३३ लाख रुपयेके खर्चसे मथुरामें केशवदेवजीका मंदिर बनवाया था। इनके पिताका नाम मधुकरसाहि था (सो देखो)।

वीरसेन (बंगालका राजा)—इन्होंने स. ई. ९८६ से स. ई. १००६ तक बंगालमें राज्य किया। राजधानी इनकी ढाकाके समीप विक्रमपुरमें थी। डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र, एल. एल. डी. के मतानुसार इन्हीका दूसरा नाम अदीसुर था। कहते हैं कि, अदीसुर नरेशने कन्नौजसे ५ ब्राह्मण तथा ५ कायस्थ बुलाकर बंगालमें बसाये थे जिनकी औलादमें बंगालके कुलीन ब्राह्मण और कुलीन कायस्थ हैं। राजा लक्ष्मणसेन जो स. ई. १२०२ में बख्तियारखिलजीसे पराम्त होकर पुरीको भाग गये, इसी वंशके अन्तिम राजा थे।

वीसलदेव चौहान (महाराजा अजमेर)—शाकम्भरी भूपति अनिल्लदेव इनके पिता थे और दिल्ली अजमेरके राजा पृथ्वीराज चौहान इनकी छठीं पीढीमें हुये थे। कवि नरपतनाल्ह "वीसलदेवरासौ" में लिखता है कि, वीसलदेवकी ६० रानियोंमेंसे एक धारानगरीके राजा भोजकी कन्या राजमती भी थी, जिसके दहेजमें वीसलदेवको सैंभर, टोंक तथा गढमंडलके इलाके मिले थे। "पृथ्वीराजरासौ" में कविचन्द लिखता है कि "वीसलदेवने वि. सं. १०२२ से १०८६ तक अजमेरकी गद्दीपर वड़ी अनीतिसे राज्य किया। इन्होंने गुजरात विजय किया था, उड़ीसाके राजाको परास्त किया था और अनेक अप्रियरानियोंने मिलकर किसी तरकीबसे इनको नपुंसक करा दिया था। इस दशामें वीसलदेवने बहुत दुःखी हो गुजरात जाकर गोकर्णेश्वर महादेवके दर्शन किये जिसके प्रभावसे पुंस्त्वको पुनः प्राप्त होकर वहाँ एक देवदर्शन मठ बनवाया और अपने नामका वीसल नगर बसाकर नागर ब्राह्मणोंको दान किया।" अजमेरके समीप एक तालाब इनका बसवाया अबतक मौजूद है और जयपुर राज्यांतर्गत राजमहलके निकट भी "वीसलपुर" नामक ग्राम इन्हींका बसाया हुआ है। अन्तमें वाजीकरण की औषधियोंके खानेसे कुकर्मोंके करने तथा साँपके काटनेसे वीसलदेव पागल होगये थे और उस हालतमें अपने इकलौते पुत्र सारङ्गदेवको वध किये थे। वीसलदेवके बाद सारङ्ग-

देवका पुत्र आनाराजा गद्दीपर बैठा जिसका बनाया आनासागर अबतक अज-मेरके समीप विद्यमान है।

बुकरातहकीम (Hippocrates)—प्राचीन इतिहासोंमें लेख है कि बुक-रातके वंशमें २०० वर्षसे हिक्मतका पेशा होता था। इनके पूर्वज एस्क्युलापियस प्रथमने यूनानी चिकित्साकी मूल रोपण की थी। जिसका पूर्णतया सुधार वादको इन्होंने किया। एस्क्युलापियस प्रथमके पहिले रोगियोंका इलाज मन्त्र तन्त्रादि-द्वारा हुआ करता था। बुकरातने परथ्य निदान, जर्राही इत्यादिके नियम अन्वे-षणकरके ७२ पुस्तकें रची थीं और इसकारण ये ही प्रचलित यूनानी हिक्मतके प्रथम आचार्य गिने जाते हैं। बुकरातके कथनानुसार रोगके दो कारण हैं, एक तो ऋतु तथा स्थानका प्रतिकूल होना, दूसरे भोजन और निद्रामें फर्क पडना। स. ई. से ४६० वर्ष पहिले यूनानमें जन्मे, स. ई. से ३५७ वर्ष पहिले मरे।

बुद्ध (बौद्ध मतके आचार्य)—शाक्यसिंह, शाक्यमुनि, सर्वार्थ सिद्ध तथा गौतमबुद्ध इन्हींके नाम हैं, पृथ्वीके धर्मप्रचारकोंमें इनका दर्जा सबसे ऊंचा है। किसी समय तो इनके मतका प्रचार सर्वत्र भूमंडलपर होगया था लेकिन अब भी दुनियाके एक तिहाई लोग इसमतपर चलते हैं। चीन, जापान, लंका, ब्रह्मा और तिब्बतमें इसी मतके माननेवाले हैं। यह कपिलवस्तुके सूर्यवंशी राजा शुद्धो-दनके घर स० ई० से ५५७ वर्ष पहिले जन्मे थे, माता मायादेवी इनको ७ वर्षका छोड़कर मरगई थी, निदान मौसी गौतमीने इनको पाला था। बड़े होकर धनुर्वेदादि अनेक विद्या इन्होंने थोड़ेही कालमें सीखली। संसारकी तरफसे इनका चित्त शुरूहीसे विरक्त मालूम पड़ता था। निदान पिताने शीघ्रही संसारके बन्धनोंमें फँसानेके लिये इनके विवाहकी फिक्र की। राजा सोमराजकी कन्यासे इनका विवाह स्वयम्वर विधानसे होगया जिसके बाद १० वर्षतक इन्होंने राजसी सुख भोगोंपर मनमें यही विचार रहा, कि, संसार असार है और मनुष्यके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं। ३० वर्षकी उम्रमें इनके एक पुत्र हुआ। इससे कुछही दिन पीछे एक रोज आधीरातके वक्त अपनी स्त्री तथा पुत्रको सोते छोड़, राजसीसुखसे मुँह मोड़, घोड़ेपर सवार हो यह तपोवनको सिधारे। घरसे कुछ दूर पहुँच इन्होंने अपने वस्त्र किसी पथिकके चिथडोंसे

बदललिये थे घोड़ा तथा आभूषण नौकरके हाथ पिताके पास भेजदिये । और आप चलते हुये । गयामें पहुंच ५ वर्षतक तप किया और बुद्धपदको प्राप्त हुये । ४० वर्षकी उम्रमें काशीमें आये और निजमन्तव्योंका उपदेश करना प्रारम्भ किया । कौशल तथा मगधके राजे इनके चेले होगये । और मगधकी राजधानी राजगृहमें ठहरकर इन्होंने बहुत दिनोंतक धर्म्मोपदेश किया । स० ई० से ५२१ वर्ष पहिले ये गेरूआ वस्त्र पहिने अपने पितासे मिलनेको आये । पिता इनकी दशा देख अप्रसन्न हुये लेकिन इन्होंने कुछ ख्याल न किया । इनके आगमनकी खबर सुन सब नातेदार तथा प्रजागण दर्शनोंको धाये केवल इनकी धर्मपत्नीने मान किया, लेकिन उसके चित्तकी बात समझ यह उसके पास खुदही चलेगये । पतिव्रतापत्नीके नेत्रोंसे स्वामीको देखतेही अश्रुधार बहनिकली और वह दौड़कर इनके चरणोंको लिपटगई । राजा शुद्धोदनके मरनेके पीछे इनकी पत्नी तथा मौसीने बौद्धमत ग्रहण करलिया और इनके पुत्र रहूलाने भी ९ वर्ष पीछे राजपाट त्यागदिया । ८० वर्षकी उम्रमें बुद्धजी किसी गांवमें उपदेश करनेगये थे, वहां मीठे चांवल रोटी खाकर उदरशूलसे पीडितहुये और निवार्णपदको प्राप्त हुये । इनका मुख्यस्थान गयामें उस जगह था जहाँ अब बुद्धगयाका मंदिर बना हुआ है । बर्सातके ४ महीने गयामें रहते थे और वर्षके शेष ८ महीने देशदेशान्तरोंमें उपदेश करते विचरते थे । भिक्षाकरके भोजन करते थे । और अनेक चेले भी इधर उधर उपदेशकरणार्थ भेजे थे । बौद्धमत जो साङ्ख्ययोगशास्त्रानुकूल है, इनके जीवनकालही में दूर २ फैलगया था और बादको अशोक, कनिष्क तथा शिलादित्य प्रतापी नरेशोंने भी उसका प्रचार बहुत कुछ किया । इस मतमें वर्णव्यवस्था नहीं मानीजाती, कर्म प्रधान समझा जाता है और सचाई, सफाई, ईमान्दारी, दान देने और प्राणीमात्रकी रक्षा करनेका उपदेश किया जाता है । पुराणोंके अनुसार बुद्धजी विष्णुका अवतार श्रीकृष्णजीके बाद हुये लेकिन बुद्धजीने स्वयं ऐसा कभी नहीं कहा ।

बुअलीसईना हकीम–(Avisina) यह मुसल्मानोंमें सबसे पहिले हकीम हुये हैं । वलखके समीप किसी गांवमें स० ई० ९८५ का साल जन्मे और शहिर बुखारामें रहकर इन्होंने विद्या पढी तथा वैद्यक (तिबावत) सीखी । २० वर्षकी उम्रमें एक औषधालय खोला और अनेक असाध्यरोगियोंका जिनमेंसे

वलख बुखाराका हाकिम भी था चङ्गा करके बडी प्रतिष्ठा पाई। बादको हाकिमोंसे वलख बुखारके कुतुबखानेके देखनेकी आज्ञा मांगी जिस दिन यह कुतुब-खानेकी सब पुस्तकोंको पूर्णरीतिसे देख चुके, दैवयोगसे उसमें आग लगी जिससे वह जलगया। लोगोंने हाकिमको बहुत कुछ उभाड़ा कि, बुअलीने अपनी रची हिक्मतकी पुस्तकोंका प्रचार करनेके लिये कुतुबखानेको नष्ट किया है, लेकिन हाकिमने यह बात कान नहीं की। इससे कुछही दिन पीछे हाकिम मरगया, तब तो बुअली ख्वारज्मके हाकिमके दरबारमें जाय सत्कार प्राप्त करनेमें समर्थ हुए। बहुत समय नहीं बीतने पाया था कि, सुल्तान महमूदगजनवीने ख्वारज्म-पर चढ़ाई करके वहांके हाकिमको परास्त किया और हकीम बुअलीको शिया-मतानुगामी होनेके कारण वधकर डालना चाहा लेकिन यह भाग बचे और नेशापूर-आदिस्थानोंमें बहुतदिनोंतक छिपेरहे। इन्हीं दिनों इन्होंने शाहक़ावूसके एक नातेदारको आराम किया उसका रोग किसीकी समझमें नहीं आता था। निदान इन्होंने उसकी नाड़ीपर उंगली रख शहरके सब मुहल्लोंके नाम लिये। उस मुहल्लेके नाम पर कि जिसमें रोगीका प्रेमी रहता था नाड़ी भड़क उठी। फिर एक जानकार आदमीसे उस मुहल्लेके स्त्रीपुरुषोंके नाम लिवाये। जिस स्त्रीके नामपर नाड़ी भड़की उसीके कटाक्षसे रोगीको घायल हुआ जान हकीमजीने पलक मारतेमें इलाज करवादिया क्योंकि, रोगी लज्जाके कारण अपना हाल किसीको बतलाता नहीं था। शाहकावूसने हकीमजीका उचित सत्कार किया और अपने दरबारमें रखलिया लेकिन कुछ काल पीछे शाहकावूसको प्रजागणके उपद्रवसे राज्यरहित होनापड़ा। इसके बाद हकीमजी हुमेदां तथा अस्फ़हानके हाकिमोंके दरबारमें रहे लेकिन किसीको इनका आगमन शुभ न हुआ। अंतमें ६२ वर्षकी उम्रमें ज्वरसे पीड़ित होकर मरे। प्रायः १०० पुस्तकें इन्होंने भिन्न २ शास्त्रों-पर रची थीं।

बेञ्जामिनफ्रैंकलिन (Benjamin Franklin) यह एक साधारण अमेरिकावासी अंग्रेजके १७ बच्चोंमेंसे थे। दरिद्रताके कारण स्कूलमें नहीं पढ़ाया-गया था जो कुछ विद्या इनको आती थी वह निजके तौरपर परिश्रम करके इन्होंने सीखली थी। इनके बड़े भाईने एक छापाखाना खोला था। निदान पिताने इनको १२ वर्षकी उम्रमें समय बितानेके लिये बड़े भाईको सौंप दिया। दिन भर तो

यह छापेखानेमें काम करते थे और आधीरातनक पढ़ा करते थे । अन्नवस्त्रके लिये जो दाम इनको बड़े भाईसे मिलता था यह उसमेंसे कुछ बचाकर पुस्तकें मोल-लेलेते थे और जो पुस्तकें नहीं खरीद सकते थे उनको औरोंसे मगनई ले आते थे । लेकिन इनका भाई निठुर था एवं इनको कुछही दिनबाद नौकरीकी खोजमें फिलेडेल्फियानगरको जाना पड़ा, और वहांसे लन्डननगरमें जा किसी छापेखानेमें नौकर होगये । समयपर उपस्थित रहकर ध्यान तथा फुर्तीसे काम करनेके कारण स्वामी इनसे सन्तुष्ट रहता था । इसी तरह प्रायः डेढ़वर्ष लन्डनमें रहकर इन्होंने खर्चके बन्धेजसे कुछ धनसञ्चय कर लिया और फिले-डेल्फियामें जाकर एक छापाखाना खोला तथा एक समाचारपत्र जारी किया । फिर तो दिन प्रतिदिन इनकी आय बढ़ती गई । जितना धन इनके पास बढ़ता गया यह उतने ही नम्र होगये और कभी न इतराये । बादको इन्होंने अपना विवाह किया, स्त्री शीलस्वभावकी अच्छी मिली और दम्पतिमें खूब प्रेम रहा । पश्चात् इन्होंने एक पुस्तकालय स्थापन किया जिसमें चन्दा देनेवालोंको पुस्तकें मिलती थीं और जो अपनी भांतिका पहिला ही पुस्तकालय था । फिर इन्होंने पुलिसविभागकी दशा सुधारनेके लिये अनेक चेष्टायें कीं और आगका बीमा करने-वाली सभायें स्थापन कीं, एक स्कूल भी खोला था और स्वदेशरक्षाके लिये गवर्न-मेंटसे प्रयत्न करके सेना रखवानेमें भी सफलता पाई थी । इसी समय इन्होंने "दी वेंट्र वेल्थ" नामक ग्रंथ छपवाया जिसकी खूबही बिक्री हुई । अन्तमें इन्होंने विज्ञानकी तरफ मन लगाया और सिद्धकर दिखाया कि, कृत्रिम तथा अकृत्रिम बिजलीमें कुछ भेद नहीं है । जब यह बात निश्चय होगई तो इन्होंने बड़े २ मकानोंको बिजलीसे बचानेकी युक्ति सोची । युक्ति यह थी कि मकानों-में कच्चे लोहेकी छड़ लगाई जावे जिसका एक सिरा धरतीमें गढ़ा रहे और दूसरा मकानके ऊपर निकला रहे, बिजली ऊपरके सिरे पर गिरकर मकानको हानि पहुंचाये बिना छड़की रास्ता धरतीमें समा जायगी । विद्वान् तथा वैज्ञानिक होनेके अतिरिक्त यह देशहितैषी भी पक्के थे । यूनायटेड स्टेट (अमेरिका) की राजकीय सभामें इनको कुर्सी मिलती थी और सन्धि तथा विग्रहमें भी इनकी अनुमति लीजाती थी । अमेरिकावासी अंग्रेजोंपर प्रथम इंगलैण्डका आधि-पत्य था लेकिन इन्होंने उद्योग करके उनको स्वतंत्र कराया । निदान उन

सबने एकमत होकर इनको अपना प्रेसीडेण्ट (प्रधान) नियत किया, इस स्वतन्त्राके विषयमें जो सन्धि पत्र लिखा गया था उसपर फ्रैंकलिनहीने हस्ताक्षर किये थे। एक दफे किसी परदेशी मनुष्यने इनको खत लिखकर सहायता माँगी, इन्होंने उसको १० अशर्फियें भेजीं और लिखा कि जब तुमको उऋण-होनेकी सामर्थ्य हो तो यह रकम किसी ऐसेही मनुष्यको दे देना जो तुम्हारी सी वर्तमान दशामें हो और जो कुछ मैंने तुमको लिखा है सो उसको भी जता देना। ऐसा करनेसे तुम उऋण होजाओगे और इस रकमसे बहुतोंका काम निकलेगा। स० ई० १७९० में ८५ वर्षके होकर मरे।

वेतालभट्ट—यह विक्रमादित्य हर्ष महाराजा उज्जैनके दर्बारके नवरत्न नामक प्रसिद्ध पण्डितोंमेंसे थे। "नीतिप्रदीप" नामक संस्कृत ग्रन्थ इनका रचा हुआ है। वेताल पञ्चविंशतिका जिसका लल्लूलालजीने अनुवाद करके बेताल पचीसी नाम रक्खा है, इनकी रची हुई नहीं है। उसके कर्ता कोई शिव-दास कवि हुये हैं।

वेताल (भाषाकवि)—यह भाट स. ई. १८२० में राजा विक्रमसाह उड़छा नरेशके दरबारमें थे। इनका पूरा नाम सन्तोषराय वेताल था। और ये उर्दू भी खूब जानते थे। इनके बनाये नीति सामयिक छप्पय सुन्दर हैं।

वेदपारग—यह ब्राह्मण पण्डित नौशेरवाँ शाह ईरानके दरबारमें स. ई. की छठी शताब्दीमें था। वजीर बुजुर्चमेहरने इसके द्वारा हिन्दोस्तानसे पञ्चतन्त्र नामक ग्रन्थ मंगाकर उसका अनुवाद पहिलवी भाषामें कराया। शतरञ्जके खेल-का प्रचार भी प्रथम ईरानमें किया।

वेनीमाधवदास (भाषाकवि)—यह महात्मा ब्राह्मण जि० गोंडाके रहनेवाले वि. सं. १६५५ में जन्मे। गो० तुलसीदास इनके गुरु थे और इन दोनोंने साथ २ बहुत दिनोंतक भ्रमण किया था। तुलसीदासजीका जीवन-चरित्र इन्होंने "गुसांई चरित्र" नामक पुस्तकमें लिखा है। पदपूर्तिके लिये यह अपना नाम "दास" लिखते थे। वि. सं. १६९९ में सिधारे।

बेनीसिंह हुजूरी—यह पन्नानरेश हिन्दूपतिके दरबारमें दीवानके पदको प्राप्त थे और बड़े साहसी, दानी तथा वीर होकर कविकोविदोंके सन्मानी थे।

मरहटों तथा बाँदाके मुसल्मानोंको इन्होंने कई दफे परास्त किया । बुन्देल-खण्डी भाट तथा कवीश्वर अबतक इनका यश गाते हैं । विजयराघौगढ़ (मध्य-प्रदेश) के ठाकुर जगमोहनसिंह इन्हींके वंशज हैं ।

बेला (रायपिथौराकी बेटी)—यह महोबेके राजा परमालके पुत्र ब्रह्मा-को विवाही गई थी । इसके गौनेकी विदापर परमाल तथा पृथ्वीराज (राय-पिथौरा) की फौजोंमें घोर संग्राम हुआ जिसमें राजा परमालका सर्वनाश हो-गया और बेलाका पति ब्रह्मा भी मारा गया । बेलाके कई भाई भी मारे गये और पृथ्वीराजके बड़े २ वीरसावन्त चौंड़ियाराय इत्यादि रणशायी हुये । बेला निज पतिका सिर गोदमें लेकर सती होगई । जिस स्थानपर सती हुई थी उस जगह बेलौन नामक नगर बस गया है और वहांपर एक मठमें प्रतिवर्ष लाखों मनुष्योंसे बेलाभवानी नामसे पूजी जाती है । दिल्लीमें एक लाटकी बुनियाद इसने रखवाई लेकिन मुसल्मानोंके हमलेके कारण वह पूरी तौरसे न बन सकी पश्चात् कुतुबुद्दीनने उसको पूरा किया (देखो कुतुबुद्दीन.)

बैकन (फ्रेन्सिस बैकन—Francis Bacon) यह इङ्गलैण्डवासी सर निको-लस बैकनके पुत्र परमनीतिज्ञ, सुप्रबन्धकार तथा चतुर थे । बचपनहीसे होन-हार मालूम देते थे, बड़े होकर अंग्रेजी भाषाके प्रसिद्ध विद्वान हुए और ब्रिटिश-गवर्नमेण्टकी चाकरीमें हाई चेन्सेलरके पदको प्राप्त हुए । स० ई० १६२० में इनका रचा अङ्गरेजी ग्रन्थ "नोवम आरगेनम" छपा । इनके लिखे विधर्म अंग्रेजी साहित्यमें अनुपम सामग्री हैं, उक्त निबन्धोंका आशय कठिन है । लार्डकी पदवी भी इनको ब्रिटिश गवर्नमेंटने प्रदान की थी । अन्तमें नमकहराम नौकरोंके कारण इनको घूंस लेनेका दोषी ठहरना पड़ा था ।

बैजाबाई (दौलतरावसेंधियाकी रानी)—यह मरहटा सर्दार श्रीजा-रावघटकेकी बेटी ग्वालियरनरेश दौलतराव सेंधियाको व्याही थी । सेंधियाने यह विवाह ऐसी धूमधामसे किया था कि, ख़ज़ानोंमें फ़ौजकी तनख्वाह चुकाने तकको रुपया न रहा था । बैजाबाई बड़ी मोहिनीरूप थी एवं महाराजा सेंधियाका उसपर बड़ा प्रेम था । स० ई० १८२८ में बैजाबाई विधवा होगई, उसके कोई पुत्र न था और उसकी उम्रभी उस समय बहुत थोड़ी थी, सेंधियाने अपने जीते जी

किसीको गोदभी नहीं लिया था। बाईकी इच्छा अपने पिताके वंशमेंसे किसीको गोद लेकर गद्दीपर बिठलानेकी थी परंतु सेंधियाके वंशमेंसे सुगत रावको उसे गोद लेना पड़ा। सुगतरावके बचपनमें बाई राजकाज बड़ी बुद्धिमानीसे करती रही लेकिन जब बडे होकर सुगतरावने सब काम अपने अधिकारमें करना चाहा तो रानीको यह स्वीकार न हुआ। निदान सुगतरावने ब्रिटिशगवर्नमेण्टकी शरण ली, उक्त गवर्नमेंटने बीचमें पड़कर निबटारा किया और सुगतरावको आलीजाह जनकोजी सेंधियाके नामसे गद्दीपर बिठला दिया। वाई अपना धन, दौलत, सिपाही लेकर आगरेमें आ बसी। पश्चात् ब्रिटिशगवर्नमेंटने बाईके उच्चपदके अनुसार पेन्शन नियत करादी और फर्रुखाबादमें उसे रहनेका हुक्म दिया। कुछ समय पीछे ग्वालियर दरबारने बाईको कुछ और अधिक वार्षिक देनेका ठहराव इस शर्तपर किया कि वह दक्षिणमें अपनी जागीरपर जाबसे। यह बात मानकर वाई वहीं जा रही। स० ई० १८५७ के गदरमें बाईने वागीयोंसे सेंधियाके कुलवालोंकी रक्षा की और उनके प्राण बचाकर क्षिप्रानदीके किनारे भाग गई और थोडेही दिनों बाद परलोक सिधारी। फैनीपार्क साहिबकी मेम अपनी यात्राके ग्रन्थमें लिखती है कि "जब मैं बाईसे मिलने गई वह सुनहरी गद्दीपर बैठी थी। एक तरफ उसकी पौत्री गजराज साहिब भी विराजमान थी, नौकरनियें दोनों ओर दुशाले तथा सुनहरी वस्त्र पहिरे आदर पूर्वक खडी थीं, सेंधियाका खड्ग बाईके समीप गद्दीपर रक्खा था, बाईके बाल सुफेद थे, मुसकान अत्यंत प्रिय थी, निस्सन्देह युवावस्थामें वह बडी ही मोहिनीरूप रही होगी, हाथमें सुवर्णकी एक चूड़ीके सिवाय वह कुछ आभूषण नहीं पहिने थी और विधवा होनेके कारण बहुतसे शारीरिक कष्ट सहती तथा नेमव्रत रखती थी। उसके मुखपर दैवीज्योति दीप्तमान थी और उसकी चाल ढाल अत्यन्त प्रशंसनीय थी"। रानी बैजाबाईने बनारसमें गंगातट पत्थरका घाट बनवाना शुरू किया था लेकिन वह अध बनाही पीछेकी ओर धसक गया। धसका हुआ घाट अब तक पड़ा है। उसके देखनेसे मालूम होता है कि, यदि बनकर तैयार हो जाता तो पृथ्वीपर अद्वितीय घाट होता। जब उज्जैनकी लूटका माल ग्वालियरमें लाया गया था तो रानी बैजाबाईने उसको अपने कोषमें इस विचारसे नहीं रखने दिया था कि उसमें ब्राह्मणों तथा साधुओंकाभी धन अवश्य ही था और इसी कारण उस अटूट धनको अपने खजाँची गोकुलदास उपनाम

पारखाजीको देकर देवमन्दिर इत्यादि निर्माण करानेकी आज्ञा दी थी । उसी धनसे पारखाजीने मथुरामें द्वारिकाधीशका मंदिर बनवाया तथा मथुराके सेठ वंशकी मूल रोपण की ।

बैजूबावरा (प्रसिद्ध संगीतज्ञ)—मशहूर गवैयोंकी सूचीमें इसका भी नाम है । यह बादशाह अकबरके वक्तमें हुआ । कुछ पागलसा था और हरवक्त मन्दस्वरसे गाता रहता था । जातिका ब्राह्मण था और पूरा नाम इसका बैजनाथ था ।

वैवस्वतमनु (भूमण्डलके प्रथमनरेश)—यह महाराजा सूर्यके पुत्र तथा कश्यपजीके पौत्र सब प्रजाओंके पति सबसे प्रथम राजा हुए । इनके पुत्र इक्ष्वाकुने ४८ कोस लम्बी तथा १२ कोस चौड़ी अयोध्यानगरी बसाकर उसको अपनी राजधानी बनवाया था (देखो वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड ७० सर्ग)। वेदोंके अनुकूल राजा तथा प्रजाके हितार्थ वैवस्वतमनुने "मानवधर्मसूत्र" रचे थे जिनके आशयपर बादको भृगुऋषिने "मनुस्मृति" बनाई । वशिष्ठ तथा गौतमकृत-धर्मसूत्रोंमें मानवधर्मसूत्रोंका नाम आया है । मानवधर्मसूत्र लुप्त होगये । अब नहीं मिलते हैं । मनुका नाम थोड़े हेरफेरसे अनेक देशोंकी प्राचीन पुस्तकोंमें मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि यह पृथ्वीके पहिले चक्रवर्ती राजा थे । मिश्रदेशकी प्राचीन पुस्तकोंसे पता लगता है कि वहांके सबसे पहिला बादशाह मैनुस बड़ा उपकारी था । इसी प्रकार यूनानी भी कहते हैं कि, मनुस ईश्वरका पुत्र सबसे पहिला हाकिम हुआ । मनुष्य शब्द मनुहीके सम्बन्धसे बना है । पृथ्वीपर प्रथम इन्होंने खेती करने, मकान बनाने, कपड़ा बुनने, भोजन बनाने तथा आपसमें सभ्यताका बर्ताव करनेका प्रचार किया । मत्स्यपुराणके प्रथम अध्यायमें तथा महाभारतवनपर्वके १८७ अध्यायमें लिखा है कि, महाराज वैवस्वत मनुके समयमें पानीका तूफान आया था जिसमें सब सृष्टि डूबकर नष्ट होगई थी । केवल सप्त ऋषियों सहित महाराजा मनु जीते बचे थे । इस तूफानका अन्यदेशोंके प्राचीन ग्रंथोंमेंभी उल्लेख है । ईसाई लोग स. ई. से २०१६ वर्ष पहिले इस तूफानका आना मानते हैं । महाराज मनु बड़े सत्यव्रत थे ।

बैरमखाँ खानखाना—इनके पूर्वजोंने जो तुर्किस्तानके रहनेवाले थे कई पीढीतक तैमूरवंशमें चाकरी की थी। इसने बड़े होकर मुगलसम्राट् हुमायूंकी चाकरी स्वीकार की और सेनापतिके पदको प्राप्त हुआ। तैमूरकी सप्तम पीढीमें हुमायूं हुआ है, इसने हुमायूंका हरहालतमें साथ दिया और इसीके बल पराक्रमसे हुमायूं अपना हिंदोस्तानी राज्य अफगानोंसे वापिस लेनेमें समर्थ हुआ। जब हुमायूं शेरशाहसूरसे हारकर ईरानको भागा तो उस अवसरपर बैरम उसके साथ था, ईरान पहुंचनेपर हुमायूंको वहांके बादशाह तहिमासपने फौजकी मदद दी और बैरमखाँको खानखानाका खिताब दिया। फौज लेकर हुमायूं तथा बैरम हिंदोस्तानको वापिस आये, बैरमने मच्छीवाडेके मैदानमें सिकन्दरसूर तथा उसके अफगानोंको परास्त करके और पानीपतके मैदानमें हैमूंको परास्त करके स. ई. १५५६ की साल हुमायूंको पुनः हिंदोस्तानका बादशाह बना दिया: पश्चात् हुमायूं-ने बैरमको अपने पुत्र अकबरका अतालीक नियत किया और खानबाबाका खिताब दिया। इसके थोड़े ही दिन बाद हुमायूं मर गया, अकबरकी उम्र उस समय १३ वर्षकी थी निदान राजकाज बैरम करता रहा। बैरमका राज्य प्रबन्ध अच्छा था, परन्तु वह अत्यन्त घमन्डी तथा निर्दई होचला था, इसलिये सब लोग उससे विगड़ उठे थे। १८ वर्षकी उम्रमें अकबरने सब राजकाज अपने अधिकारमें करलिया, बैरमको यह बात बुरी लगी, एवं उसने सर उठाया लेकिन परास्त हुआ। पश्चात् अकबरने उसे माफ कर दिया और पेन्शन देकर मक्काकी यात्राके लिये भेज दिया। जब बैरम गुजरातके समीप पहुंचा तब तक एक मनुष्यने उसे मारकर अपने बापका बदला लिया। दर्बार अकबरीके नवरत्न अब्दुलरहीम खानखाना इसके पुत्र थे, इसका बनाया एक फार्सी दीवानभी मिलता है। पहले इसकी कबर गुजरातमें बनवाई गई थी बादको इसके, नश्यमानपदार्थोंको उखाड़ कर मशहद (तुर्किस्तान) में दफनाया गया, जहां कबर अबतक मौजूद है। कहते हैं कि एक दफ़े शेरशाहसूरसे हारकर बैरमखाँ गुजरातको भागा जाता था, अबुल-क़ासिम एक आधीन कर्मचारी साथमें था, रास्तेमें शेरसूरके एक सेनापतिने आकर घेर लिया और अबुलक़ासिमकी दिव्यसूरत देख जाना कि यही बैरम है। बैरमने तुरन्त आगे बढ़कर कहा कि "नहीं मैं बैरम हूं"। इसपर अबुलक़ासिम

बोला "कि ये मेरा स्वामीभक्त सेवक है और मेरे बदले जान देना चाहता है" निदान अबुलकासिम मारा गया और बैरम बच गया।

वैलेन्टायन—(डाक्टर जे. आर. वैलेन्टायन—Dr. J. R. Wallantyne)—ये २६ भाषाओंके ज्ञाता विद्वान स० ई० १८६४ में इंगलैन्डसे क्वीन्सकालिज बनारसके प्रिन्सिपिल नियत होकर आये थे। संस्कृतके अच्छे पंडित थे। इनकी पूरी तस्वीर अबतक क्वीन्सकालिज बनारसमें मौजूद है।

बोपदेव—यह वैदिक धर्मके विरुद्ध चलता था, वि० सं० की १२ वीं शताब्दीमें हुआ। महाभारतभाष्य, भागवतभाष्य, मुग्धबोध व्याकरण तथा पदार्थदर्श इसके रचे ग्रन्थ हैं। इसका रचा व्याकरण पाणिनीय मतके विरुद्ध है और इसके रचे महाभारत तथा भागवतभाष्यका मतलब भी असली आशयके प्रतिकूलही है। इस रचनाका अभिप्राय यह था कि व्यासकृत भागवत तथा महाभारतका प्रचार उठजाय पर ऐसा न होसका।

बौद्धायन—इन्होंने वेदान्त सूत्रकी संक्षेपसे एक वृत्ति बनाई थी जो अब नहीं मिलती लेकिन उसका किसी समय अधिक प्रचार था।

व्यासमहर्षि—यह पराशरमुनिके पुत्र महाभारतके युद्धके समयमें हुए। कविवरचंद "पृथ्वीराजरासौ" में लिखता है कि महाभारतका युद्ध ८१४ गतकलि में हुआ और काश्मीरराजतरङ्गिणीकार पं० कल्हण ३५० गतकलिमें इस युद्धका होना सिद्ध करते हैं जिससे व्यासजीका जीवनकाल निर्णय होसकता है। यह यमुनानदीके किसी द्वीपमें उत्पन्न होकर कृष्णवर्णके थे इसीलिये कृष्णद्वैपायन इनको कहते हैं। यह वेदविद्यापारङ्गत थे और इसी कारण वेदव्यास कहलाते थे। बदरिकाश्रममें भी ये बहुत दिनोंतक रहे थे जिससे इनका नाम बादरायण प्रसिद्ध होगया था। चारों वेदोंको संग्रहकरके इन्होंने श्रेणीबद्ध किया था। इन सरीखा ब्रह्मज्ञानी विद्वान् तथा बृहत् ग्रन्थकार भूमण्डलपर दूसरा नहीं हुआ। कवि होनेके सिवाय यह इतिहासकार, सूत्रकार, भाष्यकार, स्मृतिकार तथा ब्रह्म विद्याप्रचारक भी थे। दिव्य, आदिव्य तथा दिव्यादिव्य सबही चरित्रोंका इन्होंने स्वरचित्तग्रंथोंमें निःशेष कर दिया है। जैमिनि, वैशम्पायन तथ उग्रश्रवा सूत सरीखे ३५०००

अद्वितीय विद्वान् इनके शिष्य थे और शुकदेवजी इनके पुत्र थे।इन्होंने वेदोक्त देवासुरसंग्राम तथा ऋषिप्रक्रियादिभेदके आशयपर पुराणसंहिता रचकर अपने शिष्य लोमहर्षणसूतको पढाई थी। पश्चात् लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाने पुराणसंहितामें अपने प्रश्नोत्तर मिलाकर निम्नस्थ १८ पुराण पृथक् २ रचे। मत्स्य पु० मार्कंडेय पु० भविष्यत् पु० भागवत पु० ब्रह्मवैवर्त पु० ब्रह्माण्ड पु० ब्रह्म पु० वाराह पु० अग्नि पु०विष्णु पु० वामनपु० लिङ्गपु० गरुडपु० कूर्मपु० स्कन्दपु० पद्मपु० शिवपु० और नारद पु०। भारतका इतिहास भी इन्होंने२४००० श्लोकोंमें बनाया था।पश्चात् विद्वानोंने भिन्न २ समयमें होकर बहुतसे और उपाख्यान उसमें मिलादिये तब लक्ष श्लोकोंसे युक्त होकर वह महाभारतनामको प्राप्त हुआ। इसी प्रकार उपरोक्त १८पुराणों में भी जैनीआदि धर्मविरोधी पंडितोंने पीछेसे ऐसी २ बातें मिलादी हैं कि जिनसे पुराणोंकी ओरसे चित्तमें घृणा उत्पन्न होती है। उन्हीं विधर्मियोंने पुराणोंकी कथाके अनेक स्थलोंमें गाथाके हेरफेरसे परस्परका विरोध भी कर दिया है जिससे पुराण विश्वास योग्य दृष्टि गोचर न होकर आधुनिक प्रतीत होते हैं। वर्त्तमान काल तक इस तरहकी मिलावट पुराणोंमें होती रही है क्योंकि, पद्मपुराणमें अत्यन्त नवीन माधवआदिकोंकी प्रशंसा है। विजयमुक्तावली तथा वेदान्त सूत्र भी व्यासकृत हैं और १८ उपपुराणोंमें वर्णित अनेक विषय भी व्यास प्रणीत हैं। परन्तु इसमें भी शक नहीं कि, एक हजार वर्षके भीतर ही भीतर उपपुराणोंका परिवर्तन अनेक विद्वानोंके द्वारा वर्तमान दशामें हुआ है। पार्सियोंकी धर्मपुस्तक जेन्दावस्तामें लिखा है कि महर्षि व्यास, जरदश्तसे शास्त्रार्थ करने बलखबुखारा गये थे, शास्त्रार्थ· में शाहईरान मौजूद था और विषय यह था कि "यदि मनुष्य अन्याय कर सकता है तो देहधारियोंमें सर्वोत्तम क्यों है।" इन्होंने एक दूरदर्शक यन्त्र भी बनाया था। हिन्दू लोग इनकी गणना अवतारोंमें करते हैं, वास्तवमें इन्होंने ऐसे काम किये जो मनुष्यको करना कठिन है। बड़े २ राजा महाराजाओंकी गद्दियें नष्ट होगईं परंतु व्यासगद्दी भारतमें लगी हुई है, प्रत्येकवर्ष आषाढ शु० १५ के दिन घरघर व्यासपूजा होती है और "नमोऽस्तु ते व्यास विशालवुद्धे" की ध्वनि गूंजती है। व्यासजी दीर्घजीवी हुए, चंद्रवंशकी प्रायः ५ पीढियोंने इनके सामने राज्य किया, धृतराष्ट्र तथा पांडुने इन्हीके वीर्यसे राजा विचित्र वीर्यकी विधवा रानियोंके उदरमें गर्भधारण किया था (देखो भीष्म पितामह)।

ब्रजवासीदास (भाषाकवि)—यह वृन्दावनवासी ब्राह्मण स०ई० १७५३ में जन्मे। यह बड़े श्रीकृष्णोपासक थे, स. ई. १७७० में इन्होंने ब्रजविलास ग्रन्थ भाषापद्यमें रचा। ब्रजविलासमें श्रीकृष्णचंद्रकी अनेक लीलायें वर्णित हैं।

ब्रजनिधिकवि—(देखो प्रतापसिंह सवाई)।

बृन्दकवि (बृन्दसतसईके कर्ता)—इन्होंने ७५१ नीतिके दोहे बना कर उनके संग्रहका नाम बृन्दसतसई रक्खा। बृन्दसतसई वि० सं० १७६१ की साल ढाकेमें सम्पूर्ण हुई। "भावपंचाशिका" नामक ग्रन्थ भी इन्हींका रचा हुआ है।

ब्रह्मकवि—(देखो बीरबल)।

ब्रह्मगुप्त (ज्योतिषी)—इनके बापका नाम जिष्णु था, उज्जैनके रहने-वाले थे और चापवंशी राजा व्याघ्रमुखके समयमें हुए थे। मिस्टर बैन्टली साहब स० ई० ५२७ में इनका होना सिद्ध करते हैं। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त तथा खण्डखाद्य नामक ग्रन्थ इनके रचे हुए हैं। इन्होंने ब्रह्मकल्पकी गणनाका प्रकार स्थापन किया कि, जिसपर आधुनिक ज्योतिषका आधार है और ऐतिहासिक सम्वतोंका भी जिसके अनुसार परिवर्तन हुआ है (vide Asiatic Researches Vol. VIII P. P. 236-7)

ब्लैवैटस्की (मैडम ब्लैवैटस्की)—यह थियासोफी धर्मकी मूल स्थाप-णकर्ता एक फौजी अफसरके घर स० ई० १८३१ की साल मुल्करूसमें पैदा हुई थी। बचपनमें यह बहुधा बीमार रहती थी, १७ वर्षकी उम्रमें इनकी शादी अमे-रिकाके एक गवर्नरके साथ जो ६० वर्षका था हुई। लेकिन उक्त सम्बन्ध इनको पसन्द नहीं आया एवं विवाहका बन्धन तोड़ना पड़ा। पश्चात् यह देशाटनके विचारसे हिंदोस्तानको आई और तिब्बतमें कई वर्ष तक रहकर महात्मा सिद्धोंसे योगकी शिक्षा पाई तथा अध्यात्मविद्या (मेस्मेरिज्म) सीखी। बादको मिश्र तथा रूस होती हुई अमेरिकाको वापिस गई और वहांके लोगोंको अनेक कारश्में दिखलाये, स० ई० १८७४ में कर्नेल आलकट साहब इनके शागिर्द हुए जिनकी मददसे इन्होंने थियोसोफिकेल सोसाइटी स्थापन की लेकिन पादरी लोगोंने सफ-लता नहीं होने दी। निराश होकर यह कर्नेल आलकट साहब सहित स० ई०

१८७९ की साल हिन्दोस्तानको वापिस आई, बड़े २ शहरोंमें जाकर उपदेश दिये और हिन्दूधर्मकी बड़ी प्रशंसा की तथा अनेक करिश्मे दिखलाये, इन सब बातोंके प्रभावसे मद्रास इत्यादिनगरोंमें थियोसोफिकेलसमाजें स्थापन होगईं, जिनमें बड़े विद्वान् शरीक होगये । हिन्दू मुसलमान पारसी,ईसाई सब ही रुजू हुए। हजारों रुपये फीसके आने लगे, बड़ी २ किताबें तथा समाचार पत्र छपने लगे, और हर तरफ टेबिल टरनिङ्ग, प्लान्चेट तथा मेस्मेरिज्मकी चर्चा फैली । हिंदोस्तान लंका तथा अमेरिकामें इनके मतानुगामी बहुत हैं । थियोसोफिकेल सोसाइटीके "थियोसो फिष्ट" नामक मासिक पत्रका सम्पादन पहिले कई वर्ष तक इन्होंने किया था । यह महाभारत, रामायण तथा भागवतादि पुराणोंकी कथानकोंको जो साधारण बुद्धिके मनुष्योंकी समझमें न आनेके कारण असम्भव गिनी जाने लगी हैं,सर्वथा सत्य और सम्भव जानती थीं । वास्तवमें उच्चबुद्धिको प्राप्त थीं, मांसाहार नहीं करती थीं और विद्या तथा बुद्धिबलसे निम्नस्थ सरीखी अनेक आश्चर्यजनक बातें खेलके तौरपर करके दिखा देती थीं ।

१. नष्ट वस्तूका कई वर्ष पीछे पता लगाना ।

२. जंगलमें बरतन तथा खाने पीनेकी चीजें तुरन्त मंगालेना ।

३. टूटी रकाबी तथा अन्य पात्र साबित कर देना ।

४. मुर्दोंकी रूहोंको बुलाकर उनसे बात करना तथा उसकी सूरत दिखलाना ।

५. हवाके द्वारा पत्रोंका उत्तर मँगाना ।

भगवतसिंह (सर भगवतसिंह,के०सी०आई०ई०,एम०डी०,यम०आर०सी० डा०सी०यल०, यल०यल०डी० गोन्डलनरेश)—चंद्रवंशी ठाकुर संग्रामजीके वर स० ई० १८६५ की साल आपका जन्म हुआ । पिता आपको ४ वर्षका छोड़कर सिधारगये थे, ९ वर्षकी उम्रमें आपको राजकोट कालिजमें पढ़नेके लिये भेजा गया था और वहां कईवर्षतक पढ़नेके उपरांत अंग्रेजी शिक्षक वैन्काकसाहबके साथ विशेष विद्यापठनार्थ बृटिश गवर्नमेन्टकी आज्ञासे यह यूरुपको गये । स० ई० १८८३ में यूरुपसे हिंदोस्तानको वापिस आये और अपनी यात्राका वृत्तांत कई भाषाओंमें पुस्तकाकार छपवाया । कुछही दिनोंबाद स० ई० १८८४ में आपका राज्याभिषेक हुआ, इसी साल बम्बईकी यूनीवर्सिटीने आपको अपना फेलो

नियत किया । राज्याभिषेकके समय प्रजागणपर जो राज्यका ऋण था वह आपने छोड़ दिया था । स० ई० १८८६ में स्काट्लैंडको पधारे और १५ महीने एडिन्बरो यूनीवर्सिटीमें रहकर एल. एल. डी. की उपाधि पानेमें समर्थ हुये । श्रीमती विक्टोरियाकी जुबिलीके अवसरपर भी काठियावाड़ी रईसोंकी तरफ़से आप इङ्गलैंडको पधारे थे और इसीअवसरपर के. सी, आई. ई. का खिताब आपको मिला था । स० ई० १८८७ में आपकी सलामी तोपके ११ फैरोंकी नियत हुई । स० ई० १८९० में रानीसाहब का इलाज कराने आप फिर इङ्गलैंड जाकर दोवर्ष ठहरे, इस अवसरपर एडिन्बरो यूनीवर्सिटीने यम. बी., यम. डी. तथा यम. आर. सी. की उपाधियें, आक्स्फोर्ड यूनीवर्सिटीने डी. सी. यल की उपाधि आपको प्रदान की । स. ई. १८९३ में आस्ट्रेलिया, अमेरिका, चीन, जापान तथा लंका होते हुये आप निजराजधानीको पधारे । आपके समयमें रियासत गोन्डलमें अनेक सड़कें स्कूल, हस्पताल, चुंगीघर, धर्मशाला, मुहताजखाने, डांकघर, तारघर और न्यायालय बनाये गये हैं । भूखों तथा रोगियोंको अन्न वस्त्र और औषधि देनेका आपने स्वराज्यमें अच्छा प्रबन्ध किया है, शिक्षा विभागकी भी बहुत कुछ उन्नति आपके शासनमें हुई है । इन्हीं सुप्रबन्धोंके कारण बृटिशगवर्नमेन्टने आपके राज्यकी गणना दूसरे दर्जेसे पहिले दर्जेमें की है, प्रजागणने भी आपकी अत्यंत सुंदर पाषाण मूर्ति बनवाकर शहरमें पधराई है। आपने प्रजापरसे अनेक दुःखदाई कर उठादिये हैं और अपने हुक्मसे स्वराज्यमें गोवध बन्द कर दिया है । " भावनगर गोन्डल " तथा " गोन्डल पूर्वन्दर " रेल्वेजमें आप ५० लाख रुपयेके शरीक हैं जुग २ जियो ! परोपकारी नृप ।

भगवन्तदास—देखो भगवान्दास कछवाहे ।

भगवानदास कछवाहे (जयपुरनरेश)—निज पिता विहारीमलके बाद गद्दीपर बैठे । आमेर आपके वक्तमें राजधानी थी । आपने अकबरके पुत्र शहजादे सलीमको अपनी बेटीका डोला दिया था और अकबरने आपको अमीरूल उमराका खिताब, पंचहजारीका मनसब तथा पंजाबकी सूबेदारी दी थी । गुजरातमें तथा राना चितौड़से लड़कर आपने सबलता पाई थी । अन्तमें अकबरने आपको जाबुलिस्तानका हाकिम नियत किया, वहां जाना आपको पसन्द न था लेकिन जाना पड़ा । जब अटक पार पहुंचे तो बीमार होकर पागल

होगये और इलाज करनेके लिये जब हकीम आपके सामने आया तो आपने छुरी भोंकली लेकिन शाही हकीमोंकी कोशिशसे शीघ्रही आराम होगया। मथुरामें एक बड़ा भारी मंदिर जिसको औरंगजेबने ढवा दिया और गोवर्धनमें हरदेवजीका मंदिर आपने बनवाया था। आप वि० सं० १६४५ की साल लाहौरमें परलोकगामी हुये और राजा मानसिंह आपके मृतक पुत्र गद्दीपर बैठे।

दास (भाषाकवि)—यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण किठावां ग्राम जि० फैजाबादके वासी थे। नासिकेतोपाख्यान वि० सं० १६८८ में इन्होंने बनाया। वि० सं० १७१४ में मरे।

भगवत रसिकजी (भाषाकवि)—यह हरदास स्वामीके शिष्य थे, ब्रजमें रहते थे। स० ई० १६२४ में जन्म थे। इनके पिताका नाम माधवदास था। इनके रचे बहुतसे ग्रन्थ हैं जिनमेंसे थोड़ोंके नाम नीचे लिखते हैं:—

अनन्य निश्चयात्मक, निश्चयात्मक, श्रीनित्य विहार जुगल ध्यान, निर्बोध मनरंजन, अनन्यरसिकाभरन और भगवत रसिकजीकी मांझ।

भट्टनारायण (वेणीसंहार नाटकके रचयिता)—यह उन ५ ब्राह्मणोंमेंसे थे जिनको बंगालाधिपति अदीशूरने स० ई० १०७२ के लगभग कनौजसे बुलाकर बंगालमें बसाया था। यह संस्कृतके सुकवि थे। काशी मरणमुक्तिविचार, प्रयोगरत्न, वेणीसंहार नाटक और गोभिल सूत्र भाष्य इनके रचे ग्रन्थ हैं। इनके वंशोत्पन्न ब्राह्मणोंको बन्धोपाध्याय (बनर्जी) कहते हैं।

भड्डलि (ग्रामीन कवि)—इनके रचे भड्डलि पुराणकी एक प्रति जो वि० सं० १६६९ को लिखी है, विद्याप्रचारिणी जैनसभा जयपुरके पुस्तकालयमें विद्यमान है। भड्डलिपुराण पद्यमें है, उसकी भाषा ग्रामीण हिन्दी है और उसमें ज्योतिषके चुटकुले तथा पानी बरसने इत्यादिके शकुन हैं। भड्डलि कृषीकारोंका ज्योतिषी तथा कवीश्वर था और उसके ग्रन्थमें उन्हीं मतलबकी बातें भी हैं।

भट्टभास्कर—तैत्तरीयसंहिताका भाष्य, स्पन्दनसूत्रका वार्तिक, वेन्दान्तसूत्रका भाष्य तथा "ज्ञानयज्ञ नामक "यजुर्वेद भाष्य इन्होंने रचे थे। "ज्ञानयज्ञ" के लेखोंसे विदित होता है कि ये वि० सं० की ९ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें जीवित थे।

भट्टराघव–(न्यायसार विजयके कर्ता) ये वि० सं० ११९६ में जीवित थे ।

भट्टिकवि–(भट्टिकाव्यके रचयिता) पता लगता है कि, यह वल्लभी राजा श्रीधरसेनके समकालीन थे । वड्डीपुरीमें राजा वीतरागके पुत्र वसन्तराजका एक दानपत्र मिला है जिससे विदित होता है कि, महाकवि तथा प्रसिद्ध वैया-करण भट्टि वि० सं० ३८० से विद्यमान थे (देखो प्राचीन लेखोंके विषयमें डाक्टर कील्हार्नसाहबका अंग्रेजी ग्रन्थ) । डाक्टर भाउदाजी अनेक कारणोंसे इनको भर्तृहरिजीका पुत्र अनुमान करते हैं । भट्टिकाव्य वल्लभी भाषामें है, उसमें १२ सर्ग हैं और उसमें रामकथा तथा व्याकरणका साथ २ वर्णन है ।

भट्टपाद–पं० कुमारिल भट्टकी उपाधि भट्टपाद थी (देखो कुमारिल भट्ट) । भट्टपादके गुरु पं० गौड़पादाचार्य थे । भट्टपाद प्रयागके रहनेवाले थे ।

भट्टोजिदीक्षित–(सिद्धांतकौमुदीके रचयिता) ये काशीवासी महाराष्ट्र ब्राह्मण वि. सं. की १७ वीं शताब्दीमें हुए । इन्होंने पाणिनिसूत्रोंके क्रमसे महाभाष्यका सारभूत "शब्दकौस्तुभ" नामक व्याख्यान रचा और "सिद्धान्तकौमुदी" नामक उदाहरणसहित पाणिनिसूत्रवृत्ति रची । सिद्धान्तकौमुदीमें प्रत्युत सन्धि-आदि कार्य्योंके विधायक सूत्रोंको छाँटकर पृथक् २ प्रकरण बनादिये हैं और जिसप्रकरणमें जिन २ सूत्रोंकी आवश्यकता पड़ी है वह सूत्र भी उन्हीं प्रकर-णोंमें वृत्तिसहित संयुक्तकर दिये हैं । "मनोरमा" नामक सिद्धान्तकौमुदीकी टीका भी भट्टोजिदीक्षितकृत है । धर्मशास्त्रमें तिथिनिर्णय, तन्त्राधिकार निर्णय इत्यादिग्रन्थ इन्हीके रचे हुये हैं । पं० हरदीक्षितजी इनके पौत्र थे । (सो देखो) इनके पिताका नाम पं० लक्ष्मीधर था । लघुसिद्धान्तकौमुदीके रचयिता पं० वर-दराज इत्यादि अनेक विद्वान् इनके शिष्य थे ।

भवभूति कवि–इनका दूसरा नाम श्रीकण्ठ था, बरारमें एक ब्राह्मणके घर इनका जन्म हुआ था और कुमारिलभट्ट इनके गुरु थे । महाराजा यशोवर्म्म-ने कन्नौजनरेशके दर्बारमें इनका सत्कार किया था । जब ललितादित्य कश्मीर नरेशने कन्नौज विजय किया तो वह इनको अपने साथ लेगया । मालतीमाधवना-टक, महावीरचरित्र तथा उत्तररामचरित्रनाटक इनके रचे हुये हैं । कविकालि-दासने स्वयं उत्तररामचरित्रनाटककी प्रशंसा की है–

श्लो०—नाटके भवभूतिर्वा वयमेव वा ।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥

प्रोफेसर विल्सन साहबके मतानुसार भवभूति कवीश्वर स. ई. ७१८ में विद्यमान थे। यह भवभूति कवि दूसरे थे जिन्होंने काशीने आकर राजा भोजके दर्बारमें सत्कार पाया था और जिनकी प्रशंसामें कवि कालिदासने कहा था कि—

श्लो०—अहो मे सौभाग्यं मम च भवभूतेश्च भणितम् ।
सुघटद्यामारोप्य प्रति फलति तस्यां लघिमनि ॥

भवानी—(बङ्गालप्रदेशान्तर्गतनाटौरकी पुण्यात्मा रानी) यह राजशाही जिलेमें छातिनगांवके चौधरी आत्माराम ब्राह्मणकी पुत्री नाटौरके राजा रामजीवन रायके पुत्र रामकान्तको व्याही थी। यह जैसी सुन्दरी थी वैसी ही सुलक्षणी थी, बचपनहीसे धर्म और परोपकारमें निष्ठावती थी । दयारामतली राजारामजीवनका पुराना शुभचिन्तक दीवान था, रामकान्तको रियासतके काममें बेफिक्र देख एक दिन दयाराम समझाने लगा जिससे नाराज होकर रामकान्तने दयारामको निकाल दिया । दयाराम जमींदारीके काममें बड़ा लायक था, निदान बंगालके सूबेदार अलावर्दीखांके यहां जाकर नौकर होगया । एक दिन अवसर पाकर दयारामने अलावर्दीसे कहा कि "जहांपनाह ! राजा रामकान्तने ३२ लाखरुपये घरमें जमा किये हैं और दोलाख रुपयेका एक सरपेंच मोल लिया है परंतु सरकारी मालगुजारी नहीं देता है" अलावर्दीने तुरन्त हुक्म दिया कि रामकान्तका परवार लूटलिया जावे और उसके चचेरे भाई देवीप्रसादको गद्दीपर बिठलादिया जावे । हुक्म पातेही फौजने जाकर राजबाड़ी घेरली, रामकान्त रानी भवानी सहित चोर दर्वाजेसे निकल मुर्शिदाबादको भागा ; भवानी उन दिनों गर्भसे थी, तिसपर भी पैदल चलना पड़ा लेकिन आपदाकी मारी ज्यों त्यों भागी गई मुर्शिदाबाद पहुँच दम्पत्तिने जगत् सेठकी शरण ली । कई वर्ष पीछे एक दिन राजा रामकान्तने खिड़कीमेंसे दयारामको पालकी पर जाते हुये देख पुकारकर कहा कि "दयाभाई ! हमको इस विपत्तिमें कबतक रक्खोगे । दयाराम तुरंत रामकन्तके पास आया और अपने पुराने स्वामीकी दीनदशा देख कहने लगा कि, यदि ५० लाख रुपये हों तो तीनही दिनमें फिर तुमको राज्य

दिलवा सकता हूं। रामकान्तने ठंडी सांस भर कर कहा कि, मैं तो आजकल रोटी तकको पराधीन हूं। रानी भवानीने पतिको अधीर होते देख अपने सब आभूषण उतार दिये और दयारामने उसको बेंच सब दुकानदारों तथा रास्तेमें बैठनेवाले लोगों और अलावर्दीखांके समीप रहनेवाले नौकरोंको ५ से ५० तक रुपये बांट-कर कहदिया कि, जब देवी प्रसाद सर्कारसे मिलनेको आवे तो उसे सुनाकर यह कह देना कि "देखो, यह वही भाग्यहीन जाता है"। जब देवी प्रसाद आया तो हज़ारों मनुष्योंने उसपर आवाजकसे निदान वह अलावर्दीके साम्हने जाकर रोया। अलावर्दीने कहा कि जिसको सर्व साधारण भाग्यहीन कहैं वह अवश्यही भाग्य-हीन है और दयारामसे पूछा कि क्या कोई और रामजीवनके वंशमें गद्दीके लायक नहीं हैं ? उत्तरमें दयारामने कहा कि, उनका बेटाही मौजूद है। उसी वक्त रामकान्तको राजगीका खिलत दिया और देवीप्रसाद निकाला गया। तबसे रामकान्त दयारा-मको बहुत मानता रहा और १६ वर्ष राज्यकरके सिधारा । रानी भवानीके कोई सन्तान न थी अतः रियासतका काम उसे खुद सम्हालना पड़ा। वह बड़ी पुण्या-त्मा थी, दान धर्ममें बड़े २ राजाओंको मात करती थीं, १ लाख ८० हजार रुप प्रतिवर्ष पंडित, साधु, सन्त, बैरागियोंको दिया जाता था और ५ लाख बीघे जमीन मुआफीमें दे रक्खी थी, परदेशी यात्रियोंके लिये ३०० मकान काशीमें मोल लिये थे, अनेक बङ्गवासियोंको जो काशीवास करने आते थे आजन्म भोजन वस्त्र दिया जाता था। काशीमें विश्वेश्वरनाथ, अन्नपूर्णा, दुर्गा, तारा, राधाकृष्ण इत्या-दिके मन्दिर तथा गया, नाटौर, राजशाही और मुर्शिदाबादमें अनेकानेक मन्दिर उसने बनवाये थे। काशीमें पञ्चकोसीकी सड़कपर पेंड लगवाये थे तथा कुँवे खुदवाये थे, कई धर्मशालायें और तालाब भी खुदवाये थे, सदावर्त भी जारी किया था जो नित्य प्रति ८ मन भीगे चने तथा २५ मन चावल काशीमें बाँटता था और १०८ मनुष्योंको प्रतिदिन इच्छा भोजन कराया जाता था। जीवजन्तु पखेरुओंके चुगानेके लिये तथा चीटीयोंके बिलोंमें शक्कर डालनेके लिये आदमी नौकर थे, ८ वैद्यभी नौकर थे जो रियासतभरमें औषधि लेकर घर २ घूमते थे और उनके साथ बीमारोंकी टहलके लिये सेवक भी रहते थे। हरवक्त महारानी तक दरिद्री लोग नहीं पहुंच सकते थे निदान आज्ञा थी कि १ रु० तक पोतदार, ५ रु० तक खजाञ्ची, १० रु० तक मुत्सद्दी और १०० रु० तक दीवान जिसको

पात्र समझ विना पूछे दे देते । महारानीके चाकर भी अपनी स्वामिनीके समान ही धार्मिक थे । सिंहासनभरके ब्राह्मणोंकी कन्याओंका खर्च राज्यकोषसे दिया जाता था, नवरात्रिमें ५० हजार रु० पण्डितोंको और दो हजार वस्त्र तथा नथनियें सुहागिनियों तथा कुमारियोंको दीजाती थीं । एकमात्र इलाकेकी आमदनी आनेमें देर हुई तब महारानीने नक्स आभूषण बेंच जो जिसका निबन्ध था वह चुका दिया पर वचन नहीं तोड़ा । महारानी नित्य चारघड़ीके तड़के उठकर भजन करती थीं, प्रातःकाल स्नान करके पूजा पाठ करती थीं और धर्मशास्त्र सुनती थीं, फिर कुछ जलपान करके अपने हाथसे रसोई बनाती और १० ब्राह्मणोंको जिमाकर आप भोजन करती थीं । पश्चात् दीवानखानेमें कुशासनपर बैठ काम काज करती थीं और कागजोंपर हस्ताक्षर करती थीं । सन्ध्यासमय चार घड़ी तक ईश्वराराधन करके भोजन करती तत्पश्चात् डेढ़ पहररात गये तक राजकाजकी सुधि लेती तथा दर्बार करती थीं । ३१ वर्षकी उम्रमें विधवा हुई थीं और ८९ वर्षकी उम्रमें ५० करोड़ रु० धर्मार्थ खर्च करके वैकुण्ठवासिनी हुईं । महारानीके दत्तकपुत्र रामकृष्णको मुगलसम्राट् शाहआलमने "महाराजाधिराज पृथ्वीपति बहादुर" का खिताब दिया था । स० ई० १७५७ में महारानी मौजूद थी ।"

भरत (सूर्यवंशीनरेश)—यह महाराज रामचन्द्रसे अनेक पीढ़ी पहिले हुये । महाराज सूर्य्यके वृत्तान्तमें इनका वंशवृक्ष देखो ।

भरत (राजादशरथके पुत्र)—यह रानी कैकईके उदरसे जन्मे थे, बचपनहीमें नाना अश्वपति केकयाधीशने इनको अपने यहां बुला लिया था और वहीं इन्होंने शिक्षा पाई थी । जब दशरथजीने रामचन्द्रको युवराज नियत करनेका विचार किया तो रानी कैकईने हठ करके भरतको युवराज तथा रामचन्द्रको बनवासका हुक्म दिलवाया । दशरथजीके रामवियोगमें देहत्याग देनेपर राजपुरोहित वसिष्ठजीने भरतजीको ननिहालसे बुलाया । अयोध्या पहुँच भरतजीने पिताकी अन्तेष्टि क्रिया की और माताको उसके कर्तव्यपर धिक्कारा तथा कुवाक्य कहे, यथा तु० कृ० रामायण—

दो०—हंस वंश दशरथ जनक । रामलषणसे भाइ ॥
जननी तू जननी भई । विधिसों कहा बिसाइ ॥

पिताके श्राद्धके बाद भरतजी सब लोगोंको साथ ले रामजीके लौटानेको गये परन्तु रामजीने १४ वर्ष व्यतीत होनेके पहिले लौटनेसे इनकार किया और भरतजीको समझाकर राज्यकी देखभालके लिये अयोध्याको वापिस भेजा। जब रामजी वनवाससे लौटे तो भरतजीने राजपाट उनको सौंप दिया, रामजीने राज्यसिंहासनपर बैठकर जिस देशका प्रबन्ध भरतजीको सौंपा था वह देश भरतखण्ड नामसे अबतक प्रसिद्ध है। रामायणादि ग्रन्थोंको देख भरतजीके सदाचरणके विषयमें यही कहे बनता है कि "न भूतो न भविष्यति"। रामजीने स्वयं उनकी प्रशंसा की है यथा तु० कृ० रामायण—

चौ०—जो न होत जग जन्म भरतको। सकलधर्मधुर धरनि धरत को॥

भरतजीने अपने निष्कपट प्रेम, मृदुल गम्भीर स्वभाव तथा सहनशीलतासे अपनी माता कैकईके कलंकरूपी कालौंचको अपने परिवार तथा प्रजाके चित्तमेंसे धोकर निर्मूलित किया, उनमें सांसारिक सुखोंमें प्रेम तथा राजमद और स्वार्थका लेशमात्र भी न था, वह बड़े योधा थे और धनुर्विद्यामें निपुण थे। रामवनवासके बाद भरतजीने अपनी मातासे कभी बात नहीं की यथा तु० कृ० रामायण गीतावली—

कैकेई जबलौं जियतरही। भरत भूल मुख सन्मुख कुछ कबहुं न कही॥

भरतजीके मामू केकयदेशके राजा युधाजित्के प्रार्थना करनेपर महाराज रामचन्द्रने गन्धर्वोंका देश विजय करनेके लिये भरतजीको भेजा और हुक्म दिया कि केकयाधीश भी मदद पहुंचावें। भरतजीने गन्धर्वोंको परास्त करके उनका सर्वत्र देश जो सिन्धसे कन्धारतक था छीन लिया और महाराजकी आज्ञानुसार निज पुत्र तक्षको सिन्धदेशका राज्य देकर उनके लिये तक्षशिला (Taxila) नामक नगरी बसाई। दूसरे पुत्र पुष्कलको गन्धार (कन्धार) देशका राज्य देकर पुष्कलावतनामकपुरी उनके लिये बसादी। फिर कई वर्षतक उस देशमें रहकर भरतजीने निज पुत्रोंका राज्य पुष्ट किया, पश्चात् अयोध्याको लौट आये।

भरत चंद्रवंशी—यह महाराजा दुष्यंतके पुत्र शकुन्तलाके गर्भसे जन्मे थे यह बड़े पराक्रमी नरेश थे, इस देशका नाम भारतवर्ष इन्हींके सम्बन्धसे पड़ा। इनकी ९ वीं पीढ़ीमें कौरव पांडव हुए।

भरत--इस नामके एक विद्वानने प्राचीनसमयमें होकर "नाट्य शास्त्र" रचा था जो अब भी मिलता है।

भर्तृहरि (नीत्यादिशतकत्रयके कर्ता)--इनके पिता गंधर्वसेनको धारानगरीके राजाकी कन्या विवाही थी जिसके गर्भसे विक्रमादित्यका जन्म हुआ। भर्तृहरिने गंधर्वसेनके वीर्यसे धारानगरकी एक दासीके उदरमें गर्भधारण किया था। धारानरेशके कोई पुत्र नहीं था इसलिये उसने इन दोनों लड़कोंका पालन पोषण किया और अनेक शास्त्रोंकी शिक्षा दिलवाई। जब यह लड़के युवावस्थाको प्राप्त हुये तो धारानरेशने अपनेको अत्यन्त वृद्ध समझ राजपाटका भार विक्रमादित्य को सौंपना चाहा लेकिन उन्होंने कहा कि "बड़े भाई भर्तृहरिके होते हुये हमको राज्य सिंहासनपर बैठना उचित नहीं है। एवं हम उनका मंत्रित्व करेंगे"। यह सुन धारानरेशने भर्तृहरिको राज्य सौंपा और विक्रमादित्यको मंत्रीके पदपर नियुक्त किया। लेकिन भर्तृहरि अत्यन्त विद्वान् होनेपरभी ऐसे स्त्रैण थे कि, अहर्निश रनिवासमें रहकर राजकाजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे। इनके दो रानियें थीं, एकका नाम पिंगला और दूसरीका अनङ्गसेना था, पिंगला पतिव्रता थी, और अनङ्गसेना दुश्चरित्रवाली थी। लेकिन राजाको यह हाल विदित नहीं था एवं वह दोनोंपर अत्यंत प्रेम करता था। एक दिन राजाने शिकारसे लौटकर किसी स्त्रीकी तारीफ की जिसको उसने सती होते देखी थी। पिंगलाने यह सुनकर कहा कि पतिव्रता स्त्री तो पतिकी खबर सुनतेही प्राण त्याग देती हैं। लेकिन राजाको इस बातका विश्वास नहीं हुआ निदान परीक्षा करणार्थ उसने एक दिन कई कर्मचारियोंके द्वारा रक्तमें भिगोकर अपने कपड़े रानीके पास भेज दिये और कहला भेजा कि "राजाको शेरने खालिया"। पिंगलाने इस खबरके सुनतेही प्राण त्याग दिये। राजाने जब भवन पर आकर हाल सुना तो अत्यंत शोकातुर हुआ लेकिन इस चरित्रसे उसका प्रेम दूसरी रानी अनङ्गसेनाकी तरफ दुगुना होगया। क्योंकि दोनोंकी जगह अब एकही रानी रहगई थी। निदान राजा उसके प्रेममें मुग्ध होकर पहिलेकी अपेक्षा अधिक राजकाजकी तरफसे बेपरवाई करनेलगा। यह देख विक्रमादित्यने राजाको कई दफे सचेत किया लेकिन उसने कुछ न सुना और रानीकी कुमन्त्रणा मान उनको अपने पास बुलाना भी बन्द

कर दिया । इसप्रकार अपमानित हो विक्रमादित्य देश देशान्तरोंमें भ्रमण करने चले गये, इनके कई वर्षबाद किसी योगीने राजाको एक अमरफल लाकर दिया, राजाने वह फल अपनी प्यारी रानीके हाथ रक्खा, रानी किसी आधीन कर्मचारि-से फँसी हुई थी एवं उसने वह फल उसको दे दिया । उक्तकर्मचारीका प्रेम एक वेश्यापर था । निदान वह अमूल्य फल उस वेश्याके पास पहुँचा, वेश्याने सोचा कि, इतनी ही उम्रमें मैंने क्या थोड़ा पाप किया है जो अमरफल खाऊँ । निदान धनप्राप्त करनेकी इच्छासे वेश्याने वह फल राजाभर्तृहरिको जाकर दिया । राजाने फलको देखकर अनुसन्धान करना शुरू किया, रानी पिंगलाने इस खबरके सुनते ही भयके मारे कोठेपरसे कूदकर देह त्यागदी । यह सब त्रियाचरित्र देखकर राजा-के चित्तमें वैराग्यका उदय हुआ । निदान उसने अमरफल खालिया और राज-पाट छोड़ वनको चल दिया । यह समाचार पाय विक्रमादित्य आये और राज्य-सिंहासनपर बैठे । निम्नस्थ ग्रन्थ भर्तृहरिकृत हैं—

नीत्यादिशतकत्रय, वाक्यप्रदीप, पातञ्जलप्रणीत महाभाष्यपर सेतु नामक टीका । मालूम होता है कि, ये ग्रन्थ महाराजभर्तृहरिने योगकी हालतमें लिखे थे ।

भावनकवि—इनका असली नाम भवानी प्रसाद था । मौरवां जिला उन्ना-वके रहनेवाले थे और प्रायः वि.सं० १८९१ में जन्मे थे । काव्यशिरोमणि (काव्य कल्पद्रुम) इन्हींका रचा हुआ है । इस ग्रन्थमें पिङ्गल, अलङ्कारनायका भेद, दूती, नवरस, षट्ऋतु इत्यादिके सब अङ्गोंका वर्णन है ।

भागीरथ (सूर्य्यवंशीनरेश) निजपिता राजा दिलीपके बाद राज्यको प्राप्त हुये । इन्होंने गंगोत्रीके समीप हिमालय पर्वतमें स्थित अतुल हिमराशिसे निकलते हुये जलको, जिसके प्रवाहरूप होनेपर किसी दिन भारतकी सहस्रों बस्तियोंके नष्ट हो जानेका भय निश्चय होता था । वास्तुविद्याकी अपूर्व युक्तियोंके द्वारा गोमुखसे निकाला और प्रायः १५०० मील लम्बी पहिलेसे खुदवाकर तैयार कराई हुई नहरमें बहाकर बंगालकी खाड़ीमें मिला दिया । भागीरथके इस कार्यसे हजारों बस्तियें डूबकर मरनेकी अकाल मृत्युसे बचगई और भारतके जलप्रिय प्रजागणको नहाने धोने, खेतसींचने, मुर्देबहाने तथा पीनेके लिये स्वच्छ सुमिष्ट पाचक जल प्राप्त करनेका स्वर्गीय सुख मिला । सागरतटसे १४०००

फीट ऊँचे गंगोत्री नामक स्थानपर गोमुखसे भागीरथी गंगाकी धारा निकलती है और प्राय: १५०० मील बहनेके पश्चात् १० मीलचौड़ी धारासे बंगालकी खाड़ीमें गिरती है। भगीरथके बताये हुये गोमुखसे ११मील और आगे गंगाका मुख्य स्रोता है। वहां प्राय: ३०० फीट ऊँचे एक बर्फके ढेरसे, जो सागरतटकी अपेक्षा आकाशकी समान अगम्य ऊंचाई पर स्थित है, लगभग २५ फीट चौड़ी तथा २। ३ फीट गहरी गङ्गा निकली है।

भावमिश्र (वैद्य)—विल्सन साहबके मतानुसार यह वि. सं. की १६ वीं शताब्दीमें काशीमें हुए। इनके रचे "भावप्रकाश" में चोपचीनी, फिरङ्गरोग आदि कई नवीन विषय अधिक लिखे हैं जिनका पता प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है। इनके पिताका नाम लटकन मिश्र था।

भारतीचन्द (बुंदेलखण्डके राजा)—यह मधुकर साहके पुत्र थे, (सो देखो)।

भारद्वाज—यह मुनिराज प्रयागमें रहते थे। रामचन्द्र महाराज वनवासको जाते समय तथा वहांसे लौटते समय आश्रमपर जाकर इनसे मिले थे। यह बड़े विज्ञानी थे। इनका गोत्र प्रचलित है।

भारवि (महाकाव्यकिरातार्जुनीयके कर्ता)—इनका रचा महाकाव्य अर्थगाम्भीर्यमें सम्पूर्ण काव्योंसे शिरोमणि है, प्रसिद्ध है कि "भारवेरर्थगौरवम्"। ये वि. सं. की पाँचवीं व छठी शताब्दीके बीचमें हुए।

भास्कराचार्य (गणकचक्रचूड़ामणि)—यह शांडिल्यगोत्रोत्पन्न महेश्वर उपाध्यायके पुत्र स.ई.१११४ की साल बीजापुरमें उत्पन्न हुये थे। निम्नस्थ पुस्तकें इनकी रची हुई हैं:—लीलावती, गणिताध्याय, गोलाध्याय, बीजगणीत, सिद्धांतशिरोमणि, कर्णकुतूहल, ब्रह्मतुल्य और सर्वतोभद्रयन्त्र। "स्वयंवह" नामक घड़ी जलके बलसे चलनेवाली इन्होंने बनाई थी जिसका वृत्तान्त गोलाध्यायमें है। इनके रचे ग्रन्थोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि, ये बड़े भारी व्याकरणी होकर सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता थे। सिद्धांतशिरोमणिमें इन्होंने ज्योतिष, अङ्कगणित तथा बीजगणितके वे सब गूढ़रहस्य अन्वेषण करके लिखे हैं जो फिरङ्गी विद्वानोंको स. ई. की १७ वीं शताब्दीसे पहले नहीं मालूम हुये। यह इटेली भी गये थे। इस सफरका

वृत्तांत रोमक सिद्धांतमें लिखा है। ७० वर्षकी उम्रमें मरे, कोई पुत्र नहीं हुआ था केवल लीलावती एक कन्या थी। सो वह भी कुँवारी ही चल बसी थी। कहते है कि एक दिन जब भास्करजी अपने मकानकी खिड़कीमें बैठे हुये थे तब एक साग बेचनेवाली डलियामें सोये तथा चूकेका साग रक्खे हुये यह आवाज लगाती हुई निकली कि "सोया चूका"। यह सुन इन्होंने सिद्धांत किया कि, सोनेसे आदमी चूकता है और उसी दिनसे सोना त्याग दिया। रात्रिभर तारागणोंको देखा करते थे।

भास्करानन्दस्वामी (जीवनमुक्त)—ये मैथीलालपुर जिला कानपुरमें मिसरीलाल कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घर स० ई० १८३३ में जन्मे थे। माता पिता इनके बड़े धार्मिक जन थे और उन्होंने सब तीर्थोंकी यात्रा की थी। इनका पूर्व नाम मोतीलाल था, १७ वर्षकी उम्रतक इन्होंने सब शास्त्र पढलिये थे। पश्चात् इनका विवाह होगया, स्त्री भी बड़ी सुन्दरी मिली, बहुत समय नहीं बीतने पाया था कि, एक पुत्र इनके पैदा हुआ, पुत्रका मुख देखते ही इनके हृदयमें वैराग्यका उदय हुआ निदान घरबार छोड़ चलते हुये और उज्जैन पहुँच एक मंदिरमें ठहरे और १० वर्षतक वहां रहकर आत्मतत्त्वकी खोज की तथा वेदान्तशास्त्रके सूक्ष्म विषयोंका विचार किया। इसके बाद प्रायः ३० वर्षकी उम्रमें भ्रमण करना शुरू किया, हिन्दोस्तानके प्रायः सबही तीर्थोंमें घूमे और सर्वत्र कठिन स्थलोंमें गये। उन दिनों इनके पास केवल एक लवादा तथा एक दण्ड था। घूमते २ अपनी जन्म-भूमि मैथीलालपुरमें आये और वहां दण्ड तथा लवादा भी त्याग दिया और बनारस जाकर आनन्दबागकी गुफामें कमलासन लगाकर बैठ गये और अन्त समय-तक वहीं रहे। आप बड़े विद्वान थे,अहर्निश हरि भजनमें लवलीन रहते थे। विषय-भोगकी वासनाका लेश मात्र भी आपमें न था। सबलोग आपको जीवनमुक्त समझते थे, बड़े २ राजा महाराजा आपको ताज पहने सीस नवाते थे। और इंगलैंड, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, नार्वे, रूस इत्यादि देशोंके बड़े २ विद्वान् तथा कर्मचारीगण आपसे मिलनेको आते थे। आप दिगम्बर रहते थे और दिव्यदृष्टि थे। भिन्न २ स्वतन्त्र राज्योंके अफसर आकर भविष्य मुल्की मामलात तथा युद्धोंके परिणामके विषयमें आपसे दरयाफ्त किया करते थे। स० ई० १८९९ में देह त्यागी हुये। स्वामीजीकी अन्तिम आज्ञा थी कि "मेरे मृतक शरीरको चिमटोंसे तोड़कर

खेलोंको खिलाइना" परन्तु ऐसा करना उचित न समझ शिष्यगणोंने आनन्द बाग बनारसमें समाधि दी । उपनिषदोंकी संस्कृत टीका तथा वेदान्तका अमूल्य ग्रन्थ "स्वाराज्यसिद्धि" स्वामीजीके नामसे छपवाकर धर्मार्थ वितरण किये गये । अवधनरेश प्रतापनारायणसिंह जो स्वामीजीके शिष्य हैं एक दफे काशी गये थे, किसी आवश्यक कार्यके कारण उनको शीघ्रही अयोध्या आनेकी जरूरत हुई । शीघ्रतासे असबाब स्टेशनको भेज स्वामीजीसे आज्ञा मांगने गये । नरेशके अत्यन्त आग्रह करनेपर भी स्वामीजीने उस दिन यात्राका निषेध किया और कहा कि "आज तुमको यहीं ठहरना होगा" । दूसरे दिन सुना कि, रेलगाड़ी जिसमें महाराज प्रताप अयोध्या जानेको थे रास्तेमें लड़ गई जिससे कई मुसाफिर मरे और बहुतोंके चोट आई ।

भिखारीदासबाबा (भाषाकवि)—अरवलदेश (बुंदेलखण्ड) अन्तर्गत टेडङ्गानगरके वासी कायस्थ थे । इनके पिताका नाम कृपालुदास, पितामहका वीरभानु, प्रपितामहका रामदास और भाईका चैनलाल था । छन्दोर्णव पिंगल, रससारांश, काव्य निर्णय, प्रेमरत्नाकर, शृंगारनिर्णय और बागबहार इनके रचे ग्रन्थ अत्युत्तम हैं । इन ग्रन्थोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि भिखारीदासजी केवल भाषाहीके विद्वान न थे वरन संस्कृत काव्य कोषके भी पूर्ण अधिकारी थे । इनका रचा काव्यनिर्णय मम्मटकृत काव्यप्रकाशका भाषान्तर विदित होता है । दास नामसे इन्होंने पदपूर्ति की है । वि० सं० १७४५ में जन्मे और वि० सं० १८२५ में सिधारे ।

भीमसेन (पांडव)—ये राजा पांडूके द्वितीय पुत्र बड़े बलवान, हृष्टपुष्ट अनूपम योधा तथा डीलडौलवाले हुये । युद्धमें सहस्त्रोंका साम्हना अकेले करते थे । और इनका गदायुद्ध यूनानी हरक्युलिजके गदायुद्धसे कहीं बढ़कर था । इनको भूख बहुत थी इसी लिये वृकोदर कहलाते थे। और द्रोणाचार्य तथा बलरामजीसे इन्होंने शस्त्र शास्त्रकी शिक्षा पाई थी । महाभारतकी लड़ाईमें इन्होंने बड़े २ वीरताके काम किये । धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन तथा दुश्शासन इन्हींके हाथसे वध हुये ।

भीष्मपितामह—ये चंद्रवंशी राजा शन्तनुके पुत्र रानी गंगाके उदरसे थे । पश्चात् राजा शन्तनुने सत्यवती नाम एक नवयौवनासे शादी करना चाहा लेकिन

उसके माता पिताने यह शर्त ठानी कि, सत्यवतीके गर्भसे जो पुत्र होगा वहही शन्तनुके बाद हस्तिनापुरकी गद्दीपर बैठेगा लेकिन भीष्मके होते हुये यह सर्वथा असम्भव था, निदान भीष्मने पिताकी विषयवासना पूर्ण करनेके लिये शपथ की कि मैं न तो विवाह करूंगा, न राजसिंहासनपर बैठूंगा और अपने भाई भतीजोंके राजकाजमें सदैव सहायता करता रहूंगा । जब भीष्मने ऐसा प्रण कर लिया तौ सत्यवतीका विवाह शन्तनुके साथ होगया और चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य दो पुत्र उसके गर्भसे हुए । इन दोनोंने निजपिताके बाद राज्य किया और भीष्म देख भाल करते रहे । लेकिन यह दोनों निर्वंशही मरगये । निदान भीष्मने अपनी सौतेली माता सत्यवतीकी सलाहसे राजा विचित्रवीर्यकी अम्बिका तथा अम्बालिका विधवारानियोंमें व्यासजीसे गर्भाधान कराया जिससे धृतराष्ट्र तथा पांडु उत्पन्न हुए और चन्द्रवंश नष्ट होनेसे बचा । पांडु तथा धृतराष्ट्रके बचपनमें भीष्म राजकाजकी देखभाल करते रहे और बादको मुख्यसेनापतिके पदका भार इन्होंने अपने सिरपर लिया । महाभारतके युद्धमें भीष्मपितामह कौरवोंकी तरफ़से लड़े और दशवें दिनकी लड़ाईमें अर्जुनके हाथसे घायल हुये और ५८ दिन पीछे मरे । महाभारतका युद्ध ८१४ गतकालिमें कविचन्दके लेखानुसार हुआ है । भीष्मपितामहसरीखे योधा अब नहीं होते ।

भूषणत्रिपाठी (भाषाकवि)–यह टिकमापुर जिला कान्हपुरके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण मुगल सम्राट औरंगजेबके समयमें हुये । इनका पूरानाम ब्रजभूषण था और मतीराम जटाशङ्कर तथा चिन्तामणि इनके सहोदर थे । (देखो चिंतामणि) । मतीरामजी औरंगजेबके दर्बारमें नौकर थे, जितना रुपया वह घरको भेजते थे भूषणजी उस सबको सुमार्गमें खर्च कर देते थे । मतिरामको यह बात नापसंद थी लेकिन प्रगट कुछ नहीं कहते थे । जब भूषणजीने यह बात समझी तौ विचारा कि पैदाकरके खर्च करना मुनासिब होगा । यह सोच यह पन्नानरेश छत्रसालके दर्बारमें गये, छत्रसालजीने इनकी अनुपम कवित्वशक्तिपर प्रसन्न होकर खूब सत्कार किया, पन्नासे छः महीने बाद सतारागढ की तरफ़ पयान किया और वहां पहुंच महाराज शिवाजी मरहटाको निम्नस्थ कवित्त सुनाय ५ हाथी तथा ५०००० मुद्रा नकद इनाम पाये–

कवित्त–इन्द्र जिमि जंभपर बाड़व सुअंभपर।
रावण सुदंभपर रघुकुल राज हैं॥
पवन वारिवाहपर शम्भु रतिनाहपर।
ज्यों सहस्रबांहपर राम द्विजराज हैं॥
दावाद्रुम दुण्डपर चीता मृगझुंडपर।
भूषण वितुंडपर जैसे मृगराज हैं॥
तेज तिमिरंसपर कान्ह जिमि कंसपर।
त्यों मलेच्छवंशपर शेर शिवराज हैं॥

पश्चात् भूषणजीने बहुत दिनोंतक शिवाजीके दर्बारमें रहकर "शिवराज भूषण" नामक ग्रन्थ रचा और उसके उपलक्षमें अनेक सामान सहित २१ लाख रुपये नकद इनाम पाये। अन्तमें जब भूषणजी अपने घरको लौटे तौ रास्तेमें महाराज छत्रसालके यहां पन्नामें ठहरे, छत्रसालजूने विचारा कि "हम इनको शिवाजीसे अधिक क्या दे सकते हैं निदान पन्नासे चलते वक्त इनकी पालकीका बांस कन्धेपर रख लिया, ब्राह्मण कोमल हृदय तौ होतेही हैं एवं यह प्रसन्न हो बोले कि "साहू-को सराहौं कि सराहौं छत्रसालकौ" घरपर पहुंच भूषणजी बहुत दिनोंतक नहीं ठहरे बरन देश देशान्तरोंमें घूमते फिरे और महाराज शिवाजीका यश विस्तृत करते रहे, जब कुमायूं जाय इन्होंने वहांके राजाको एक कवित्त सुनाया तौ उसने समझा कि, यह जो सुना था कि महाराज शिवाजीने इनको निहाल कर दिया है सो मिथ्या है, ऐसा सोच कुमायूं नरेशने अनेक हाथी, घोडे बहुतसे रुपयों सहित इनकी भेंट किये लेकिन इन्होंने लेनेसे इनकार किया और कहा कि हम तौ यहां केवल यह देखने आये हैं कि महाराज शिवराजका यश यहां तक विदित हुआ है या नहीं। भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास तथा शिवराज भूषण इनके रचे ग्रन्थ रौद्र, वीर, भयानक रसके दरशानेमें प्रधान हैं।

भोज (महाराजा धारानगर)—पिता सिन्धुल इनको ५ वर्षका छोड़ मरे थे, निदान चचा मुञ्जने गद्दीपर बैठकर इनको पाठशालामें पठनार्थ भेजदिया। जब १५ वर्षकी उम्रमें भोज पढ लिखकर तैयार हुए तो

चचा मुञ्जने इनको मारडालनेकी फिक्र की लेकिन शीघ्रही जिनमें वैराग्य उदय होनेके कारण राजपाट इनको सौंपदिया और आप वनको चलागया । उसी-साल भोजकी शादी पटनाकी राजकुँवारी लीलावतीसे होगई । पश्चात् भोजने निज राजधानी धारमें लड़कों तथा लड़कियोंके लिये अनेक पाठशालायें खोलीं, राज्य भरमें १०० । १०० घर पीछे १ । १ चौकीदार नियत किया, मनुस्मृति तथा मिताक्षराके अनुसार न्याय होने लगा, राजभवनमें रेशमकी डोरीमें बांध कर सोनेकी घण्टियें लटकाई गई । डोरीका दूसरा सिरा महलके बाहर लटकता रहता था जिसको खींचनेसे घण्टियें बज उठती थीं और राजा तुरन्त बाहर निकलकर सर्व साधारणका दुःख दर्द सुनता था । रानी लीलावती भी बड़ी विदुषी थी और पुत्रीशालाओंकी देखभाल रखती थी । राजाभोजको विद्योत्साही गुण-ग्राही जान देश देशान्तरोंसे प्रायः १४०० पण्डित राजदर्बारमें आकर एकत्र होगये थे । हुक्म था कि, जो कोई नया श्लोक बनाकर लावे उसे १ लक्ष मुद्रा इनाम दिया जाया करे । लेकिन श्लोकका नया ठहरना कठिन था । क्योंकि, दर्बार-के पण्डित बहुधा जाँच करके यही कहा करते थे कि "इस श्लोकके आशय-यसे तो हम परिचित हैं" । ऐसे कड़े नियम होनेपर भी महाराज भोजको सैकड़ों कवीश्वरोंने नये श्लोक सुना २ कर करोड़ों रुपये, रत्न तथा घोड़े हाथी इत्यादि दान पाये थे, इन सबका व्योरा भोज-प्रबन्धमें है जिसमेंसे छांटकर एक लकड़-हारेका उदाहरण आगे लिखेंगे । कविकालिदास दरबारके कवीश्वरोंमें सबसे अधिक बुद्धिमान तथा कविता करनेमें सर्वोत्तम थे, महलोंके भीतरतक उनकी रसाई थी और भोजको भी उनके बिना कल नहीं पड़ती थी । निर्धन होजानेपर महाकवि पं० माघने भी धारानगरीमें जाकर अपनी स्त्रीके हाथ स्वरचित "शिशुपालवध" महाकाव्यके निम्नस्थ श्लोक राजाभोजके पास भेजे और ३ लक्ष मुद्रा सन्मान सहित पाये थे:—

श्लो०—कुमुदवनमपश्रि श्रीमदंभोजखण्डं ।
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ॥
उदयमहिमरश्मियाति शीतांशुरस्तं।
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

एक दिन कोई ब्राह्मण लकड़ियोंका बोझा शिरपर रक्खे हुये नदीपार उतरता था। भोजने उसे देख कहा कि "नद्यां कियज्जलं विप्र" ब्राह्मणने तुरन्त उत्तर दिया "जानुदघ्नं नराधिप।" फिर राजाने कहा कि "ईदृशी किमवस्था ते" ब्राह्मणने शीघ्रतासे कहा "नहि सर्वे भवादृशाः।" इसपर प्रसन्न होकर भोजने कहा कि "जाओ एकलक्ष मुद्रा लेलो" ब्राह्मणने जाकर जब धनखातेके अधिकारीसे लक्षमुद्रा मांगी तो उसने ब्राह्मणकी दीनदशा देख उसके कथनको असत्य जाना, निदान ब्राह्मण राजाके पास लौटकर गया, राजाने हुक्म दिया कि "जाओ दोलक्ष मुद्रा लेलो" इस दफे भी ब्राह्मणको पहिले हीकी तरह लौटना पड़ा, तब तो राजाने ३ लक्षमुद्रा और १० हाथी देनेका हुक्म लिखकर ब्राह्मणको दे दिया, हुक्मके देखते ही अधिकारीने तामील की और लिख दिया कि—

श्लो०—लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं दत्ताश्च दश दन्तिनः।
दत्ताः श्रीभोजराजेन जानुदघ्नं प्रभाषिणे॥

भारतमें भोजके समान दानशील, विद्योत्साही, गुणग्राही केवल २।४ ही नरेश हुये हैं। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रके मतानुसार भोजका राजकाल स. ई. १०२६ से १०८३ तक सिद्ध है। कवि नरपतनाल्हने भोजकी राजकुँवारी राजमती और अजमेरनरेश वीसलदेवके विवाहका वृत्तान्त "वीसलदेवरासौ" नामक ग्रन्थमें लिखा है जिससे यह भी विदित होता है कि, भोजका राज्य मालवासे लेकर दक्षिणमें लङ्कातक था और गौड़देश (बङ्गाल) उनके आधीन होकर सैंभर टोंक, गढ मण्डल, चित्तौड़ तथा अयोध्याके राजे इनकी रक्षामें थे। राजधानी डुमराउसे १ मीलके फासलेपर भोजके बसाये भोजपुरके खण्डहर अबतक पड़े हैं। और शहर भोपाल भी राजा भोजहीका बसाया हुआ है। तथा वहांका भोपालताल भी, उन्हींका खुदवाया हुआ है। भोपाल अपभ्रंश है भोजपालका। निम्नस्थ ग्रन्थ भोजकृत हैं:—

कामधेनुस्मृतिसंग्रह, भोजचम्पू, सरस्वती कंठाभरण, राजमार्तण्ड, देशव्यवस्था, विक्रमचरित, पातञ्जलयोग सूत्रवृत्ति और करणमृगांक। भोजके अन्तसमय कालिदासने निम्नस्थ श्लोक रचाः—

श्लोक०—अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवङ्गते ॥

भोरूमलकछवाहे—देखो विहारीमल ।

मकरंदज्योतिषी—(मकरन्दसारिणीके रचयिता)—ये काशीवासी ज्योतिषी वि० सं० १४३२ में जन्मे । इन्होंने सूर्य्यसिद्धान्तके आधारपर तारागणोंकी एक सारिणी बनाई थी जिसके आधार पर वर्तमान कालके पण्डित पञ्चाङ्ग बनाते हैं ।

मगेस्थिनिज—(Magesthenes) यह सिरिया (शाम) के राजा सेल्युकसका राजदूत मगधनरेश चन्द्रगुप्तके दर्बारमें ३०६ वर्ष पू० म० ई० से २९५ वर्ष पू० म० ई० तक रहा था । इसने इबरानी भाषामें एक ग्रन्थ रचा है जिसके पढनेसे हिन्दोस्तानकी दशा जो उस समयमें थी स्पष्ट ज्ञात होजाती है । उक्त ग्रन्थका अनुवाद अङ्गरेजीमें भी होगया है ।

मंखककवि—ये संस्कृतकवि वि० सं० की. १२ वी शताब्दीमें हुये । कश्मीरके रहनेवाले थे, श्रीकण्ठचरित्र नामक इनका रचा काव्य अच्छा है । एक संस्कृत शब्दकोष भी इन्होंने बनाया था ।

मङ्गलसिंह (महाराजा, सवाई सर मङ्गलसिंह बहादुर, जी० सी० एस० आई०)—स० ई० १८७४ में महाराज शिवदानसिंहजीके बाद अल्वरकी गद्दीपर बैठे । रियासतमें आपके समयमें अनेकसड़कें और इमारतें बनाईगईं, शिक्षाविभागकी उन्नति हुई । आपके वक्तमें १०० स्कूल लडकोंके लिये और १७ लड़कियोंके लिये राज्यभरमें थे । राज्यकोषसे खर्चदेकर आप अनेकोंको आगरा मेडिकेल कालिजमें डाक्टरी शिक्षा पानेके लिये भेजते थे, लेडी डफरिनफण्डमेंभी आपने ५०हजार-रुपया चन्दा दियाथा, आप बड़े प्रजाहितैषी थे और बृटिशगवर्नमेंटभी आपसे अत्यन्त प्रसन्न थी । राजधानी अलवरमें आपने एक उत्तम न्यायालय बनवाया था और बृटिशसेनाके आप अवैतनिक लफ्टिनेन्ट कर्नैल थे । आपके राज्यका विस्तार ३०२४ वर्गमील था जिसमें प्रायः ६ लाख ८३ हजार मनुष्य बसते थे । आपके समयके रुपयेपर आपका नाम फार्सीमें अंकित है । स० ई० १८९२ में आपका देवलोक हुआ और महाराजा सवाई सर जयसिंह बहादुर गद्दीपर बैठे ।

मंडनकवि—बुंदेलखण्ड प्रदेशान्तर्गत जैतपुरके वासी थे, भाषा कविता अच्छी करते थे। रसरत्नावली, रसविलास और नयनपचासा इनके बनाये ग्रन्थ भाषामें अच्छे हैं। राजामंगदसिंह बुंदेलाके दर्बारमें इनका सत्कार होता था। वि० सं० १७१६ में विद्यमान थे।

मण्डनमिश्र (कर्ममीमांसके पंडित)—इनके जिला रेवानदीके किनारे माहिष्मती (मैसोर) के रहनेवाले हिमामित्र नामक ब्राह्मण बड़े विद्वान पंडित थे। इनका असली नाम विश्वरूप था लेकिन अनेकस्थानोंपर इन्होंने बौद्धमतका खण्डन तथा वेदका मण्डन किया था इसलिये इनका नाम मण्डनमिश्र पड़गया था। प्रयागनिवासी प्रसिद्ध पंडित कुमारिलभट्टसे इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। इनका विवाह विष्णुमित्रनामक एक धार्मिक तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मणकी कन्या लीलासे हुआ था। लीला बड़ीभारी पंडिता थी और इसीलिये उसको सरस्वती कहते थे। मण्डनमिश्रने हिंदोस्थानके सब बड़े २ पंडितोंको शास्त्रार्थमें परास्त करदिया था। स्वा० शङ्कराचार्यसे पं० कुमारिल भट्टने स्वयं कहा था कि, यदि तुम मण्डन मिश्रको परास्त करसकोगे तो और सब पंडित परास्तके तुल्य होजावेंगे। मण्डनमिश्रके घरकी दासियोंतक विदुषी थीं। शंकरस्वामीने उनके स्थानपर पहुंचकर दासियोंसे पूछा कि, क्या मंडनमिश्रकी हवेली यही है? उत्तरमें दासियोंने निम्नस्थ श्लोक पढ़ाः—

श्लो०—स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं शुकांगना यत्र गिरो गृणन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मंडनमिश्रधाम ॥

शास्त्रार्थमें शंकरस्वामीने मंडनमिश्र और उनकी स्त्री लीलाको परास्त कर दिया, लीलाने तुरन्त देहत्याग दी और मंडनमिश्र शंकरस्वामीके शिष्य होकर सुरेश्वराचार्य नामसे प्रसिद्ध हुये। सुरेश्वराचार्य आदि शंकरके शिष्योंने दक्षिणदेशमें शैव, पाशुपत्य, गाणपत्य, तथा शाक्त मतवादियोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था और उनको उपदेश किया था कि सबदेवता परमेश्वरके अंश हैं उनको अभेदबुद्धिसे पूजना चाहिये। दक्षिणदेशमें अबतक स्मार्तलोग अधिकतासे हैं। "त्रिकांडमण्डन" नामक ग्रन्थ मंडनमिश्रहीका बनायाहुआ है।

मतिराम त्रिपाठी (भाषाकवि)—ये टिकमापुर जि० कानपुरके वासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण स० ई० १६५० तथा १६८२ के बीच विद्यमान थे। इनके नि...

तक कुमायुंनरेश उद्योतचन्द्र तथा कोटाबूँदी नरेश रावभाऊसिंह और शंभूनाथ सुलंकी इत्यादिके दरबारमें रहनेके पश्चात् मुगलसम्राट् औरंगजेबके दरबारके कवीश्वरोंमें नौकर होगये थे और अन्तसमयतक वहीं रहे। ललितललाम नामक अलंकार-ग्रन्थ इन्होंने रावभाऊसिंहके नामसे और छन्दसार पिंगलफतेशाहबुँदेला श्रीनगर-वालेके नामसे रचा था। नायका भेदमें इनका बनाया "रसराज" अत्युत्तम है। प्रसिद्ध भाषाकवि भूषणत्रिपाठी इनके छोटे भाई थे।

मदनमोहन सूर—देखो सूरदास मदन मोहन।

मदार--देखो शाहमदार।

मधुकर साहि—(बुँदेल खण्डके राजा)—इनके पिता रुद्रप्रतापके १२ बेटे थे। रुद्रप्रतापको आखेटका बड़ा व्यसन था और इसीमें स० ई० १५३१ की साल उनकी जान गई। शहर उड़छा उन्हींका बसाया हुआ है। रुद्रप्रतापके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र भारती चन्द गद्दीपर बैठे। भारतीचंदके वक्तमें राज्य वृद्धि बहुत कुछ हुई, वार्षिक आय प्रायः दो करोड़ रुपये के थी। और शेरशाह (स० ई० १५४२--१५४५) ने बुँदेलखण्ड जीतना चाहा था पर कृतकार्य न होसका था। भारतीचंदके अपुत्र सिधारने पर स० ई० १५४२ में मधुकरसाहि गद्दीपर बैठे। इनके समयमें अकबरने कई दफा बुँदेलखण्ड ले लेनेका उद्योग किया, कभी मुसल्मान जीते और कभी बुँदेले। अन्तको स० ई० १५८४ का साल अकबरका बेटा मुराद बड़ी सेना लेकर चढ आया लेकिन मधुकरसाहिकी वीरतासे प्रसन्न होकर जीता हुआ मुल्क फिर वापस कर दिया। मधुकरसाहिके पीछे उनके वंश-का राज्य केवल ओड़छेमें रहा क्योंकि राजा रुद्रप्रतापने महोबेका राज्य अपने तृतीय पुत्र उदयाजीतको दे दिया था जिससे महोबेका वंश अलग होगया।

मधुकरसाहिके बाद उनके दो पुत्र इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंह देवने क्रमशः ओड़छेमें राज्य किया। स० ई० १६११ में कवि केशवदासने मधुकर साहिके कहनेसे वीरसिंहदेवके लिये "विज्ञानगीता" नामक ग्रंथ रचकर इनाम पाया था। इन्द्रजीतने राजा होकर शहर इटावा बसाया, धीरजनरेंद्र नामसे कविता की और कवि केशवदासकी कविता पर रीझकर २१ गांव उनको सङ्कल्प कर दिये। प्रसिद्ध कवि प्रवीणराय पातुरी भी इन्द्रजीतहीके दर्बारमें थी। वीरसिंह देवने

झांसीका शहर बसाया और मथुरामें एक बड़ाभारी मंदिर केशव देवजीका बनवाया जिसको औरंगजेबने खुदवा डाला। उक्त मंदिर शहर मथुरा मुहल्ला धांकमें उस स्थान पर था जहां अब जामा मसजिद खड़ी है। मधुकर साहिके वंशजों और मुसल्मानोंमें निरन्तर बहुत दिनोंतक लड़ाई रही, कभी कोई जीता और कभी कोई। महोबेवाले भी इन लड़ाइयोंमें अपने कुटुम्बियोंका साथ देते रहे।

मनुजी–(मानवधर्म शास्त्रके रचयिता) देखो वैवस्वत मनु॥

मम्मट–(साहित्याचार्य)–कश्मीरवासी जैय्यट उपाध्यायके पुत्र थे। कश्मीराधिपति यशस्कर देवके दर्बारमें वि. सं. १०२४ के लगभग विद्यमान होकर इन्होंने "काव्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ रचा था। काव्यप्रकाश सकल साहित्यग्रन्थोंमें शिरोमणि गिना जाता है। मम्मटके वचनका मान विद्वान् लोग सूत्रोंके तुल्य करते हैं। व्याकरण महाभाष्यकार कैय्यट तथा यजुर्वेद भाष्यकार औवट इनके कनिष्ठ सहोदर थे और इन्हींसे शिक्षा पाकर ऐसे विद्वान् पंडित हुये थे।

मयूरभट्ट–(सूर्यशतकके कर्ता)–सूर्यशतक रचनेके प्रभावसे इनका कुष्ठरोग दूर होगया था। बनारस कालिजके मासिकपत्र पंडितमें लिखा है कि प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट इनके ससुर थे। ये वि० सं० की ५ वीं शताब्दीके शेष भाग तक जीते थे। कन्नौजके राजा श्रीहर्षके दर्बारमें इनका सन्मान होता था। ये सारस्वत ब्राह्मण प्रतीत होते हैं।

मल्लिनाथ–इस नामके कई विद्वान् हुये हैं। उन सबका ब्योरा क्वीन्स कालिज बनारसके मासिक पत्र "पंडित" के अनुसार नीचे लिखते हैं—

मल्लिनाथवैद्य (पथ्यापथ्यनिरूपणके कर्ता) ये शा० सं० १६४४ में विद्यमान थे।

मल्लिनाथ कोलाचल (टीकाकार)–ये दक्षिण देशके रहनेवाले थे, इनके नामके पीछे कोलाचल होनेसे प्रतीत होता है कि ये रासकुमारीके समीप कोलाचलके रहनेवाले थे, समय इनका शाके १४७८ तथा १५८० के बीच निश्चय है। भीमसेन तथा वीरभद्र इनके दो पुत्र थे। वीरभद्रने वि० सं० १६३२ की साल दुर्गासप्तशतीकी टीका सम्पूर्ण की थी। रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत किरात-

काव्य, नैषधकाव्य, भट्टीकाव्य, अमरकोष, एकावली तथा अलंकार इत्यादि ग्रंथों पर मल्लिनाथजीने तिलक रचे थे ।

मल्लिनाथ—ये आदित्य कर्म्माके पुत्र थे । इनके पुत्र त्रिविक्रमदेवने प्राकृत व्याकरण बनाया था ।

मल्लिनाथ—ये काकटीयराज्यके राजा प्रतापरुद्रके समयमें स० ई० १३१० के लगभग हुये । उक्तराजाके हुक्मसे इनके पुत्र कुमारस्वामीने 'सरस्वती विलास' नामक ग्रंथ बनाया । ये तैलंग प्रतीत होते हैं ।

मल्लिनाथ—तैलंगदेशान्तर्गत त्रिभुवनगिरीके रहनेवाले थे । वि० सं० १२९८ में विद्यमान थे । पं० नरहरिजी इनके पुत्र थे ।

मल्लिनाथ पण्डित—महाराज भोजके समयमें हुये, इनका नाम भोज-प्रबंधमें है ।

मल्लिनाथ—ये ग्राम माझियारी (कन्नौज) के रहनेवाले सामवेदीय वि० सं० १५६७ में विद्यमान थे । सामवेदकी एक प्राचीन प्रति संस्कृत कालिज बनारसमें है उसमें ऐसा लिखा है ।

मल्हारराव हुल्कर (इन्दौरराज्यके संस्थापक)—कुंदजी हुलकरके पुत्र स० ई० १६९३ में पूनाके होळ नामक ग्राममें जन्मे । चारवर्षकी उम्रमें पिताके देहान्त होनेपर कुटुम्बियोंसे अनबन होनेके कारण माता इनको लेकर खानदेश प्रान्तके एक ग्राममें अपने भाईके पास जारही । मल्हार जब बड़े हुये तो मामूंने उनको अपने साथ सवारोंमें नौकर करालिया, थोड़ेही दिनोंमें वे सैनिक कार्योंमें खूब दक्ष होगये और स० ई० १७२४में पेशवाकी सेनामें भर्ती होकर निज योग्यता तथा वीरताके कारण क्रमशः बढ़ते २ स० ई० १७३२ में सेनापतिके पदको प्राप्त हुये । स.ई. १७२९में इन्होंने मालवाके सूबेदार गिर्धर बहादुरको परास्त करके वधकिया था और स० ई० १७६१ में पानीपतके युद्धमें बड़ी बहादुरीसे लड़े थे। स० ई० १७३३ में पेशवाने इनके साहसपूर्ण कामोंसे प्रसन्न होकर इनको इन्दौर-का राज्य जागीरमें दिया । स० ई० १७६५ में ७६ लाख रुपये वार्षिक आय-का मुल्क तथा ७६ करोड़ रुपया नकद छोड़कर मल्हाररावका देवलोक होगया ।

इनका बेटा खंडेराव तथा इनका पौत्र मालीराव पहिले ही सिधार चुका था। निदान इनकी पुत्रवधू प्रसिद्ध महारानी अहिल्यावाई गद्दीपर बैठी (सो देखो)।

मल्हारराव हुल्कर द्वितीय—(इन्दौरके राजा)—यह इतिहास प्रसिद्ध महाराजा यशवन्तराव हुल्करके दत्तक पुत्र थे, निज पिताके बाद स० ई० १८११ में गद्दीपर बैठे। मुहीदपुरकी लड़ाईके बाद इनसे और ब्रिटिशगवर्नमेण्टसे सन्धि हुई। स० ई० १८३४ में इनके मरनेके बाद इनके दत्तक पुत्र मार्तण्ड राव हुल्कर गद्दीपर बैठे। थोड़ेही दिनों बाद मार्तण्डरावको गद्दीसे उतार हरिहर राव हुल्कर राजा बने। हरिहर रावके बाद खंडेराव इन्दौरकी गद्दीपर बैठे, खंडेरावके अपुत्र सिधारनेपर राज्यके कई दावेदार बने लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनीने बीच-में पड़कर मुल्करजी राव हुल्करको गद्दी दिलवाई। मुल्करजीके बाद तुकोजिराव हुल्कर राजा हुये जिनके पुत्र महाराज शिवाजी राव हुल्कर स० ई० १९०३ में राजपाट अपने बालक पुत्रको सौंप वनको पधारे।

मलिक मुहम्मद जायसी (भाषाकाव्य पद्मावतके कर्ता)—ये महात्मा साधू अवध प्रदेशान्तर्गत जैस नामक ग्रामके वासी थे। जैसे आजकल "अवध रुहेल खण्ड रेलवे" का एक स्टेशन है और बनारससे प्रायः १२१ मील दूर है। अमेठी (सुलतानपुर) के राजाका प्रथम पुत्र इनकी दुआसे हुआ था। एवं राजा-ने अमेठी गढ़के सामने इनकी कबर बनवादी थी जो अबतक विद्यमान है। स० ई० १५४० में पद्मावत इन्होंने सम्पूर्ण किया। ग्रिअर्सन साहिब इनकी कविताकी बड़ी प्रशंसा अपने ग्रन्थमें करते हैं। इनके उस्ताद असरफ़ जहांगीर तथा शेख़ बुरहाँ थे। शेरशाह सूरभी इनका आदर करता था।

मलूकदास (प्रसिद्ध महात्मा)—ये वर्णके ब्राह्मण प्रयाग प्रदेशान्तर्गत कड़ा मानिकपुरके वासी बड़े सिद्ध पुरुष हुये हैं। वि. सं. १६८५ में इनका जन्म हुआ था। एक दफे इनके मित्र मुरारीदास वैष्णवने जो इनके स्थानसे २० कोस पूर्व गङ्गातट रहते थे भण्डारा किया परन्तु मनुष्य बहुत आजानेसे सामग्री पूरी नहीं हुई। जब मलूकदासको योगबलसे यह बात मालूम हुई तो उन्होंने एक तोड़े पर मुरारीदासका नाम लिखकर गङ्गाजीमें जाकर छोड़ दिया और कहा "हे गंगे! इसे मुरारीदासके पास अभी पहुंचा दीजिये, क्योंकि मनुष्य ठीक समय

पर नहीं पहुंचा सकेगा" मुरारीदास उससमय अपने घाटपर स्नान कर रहे थे, तोड़ा उनके पैरमें लगा, जान गये कि मलूकदासका भेजा हुआ है और सब साधुओंको अच्छी तरहसे भोजन करादिया। मलूकदासजी रामोपासक थे और रामानन्दीयसम्प्रदायके महन्त कील्हजीके प्रधान शिष्य थे। इनका एक स्वतन्त्र मत प्रचलित है जिसके अनुगामी हजारों हैं। वृन्दावनमें केशीघाटपर इनके सम्प्रदायकी मुख्य गद्दी है जिसपर अबतक महन्त लोग हैं। मलूकदासने दूर २ तीर्थोंकी यात्रा की थी, जगन्नाथपुरीमें महाराजके भोगके साथ इनके नामका रोटी-का टुकड़ा प्रत्येक यात्रीको अबतक बँटता है। अनेक फुटकर पद और दशरत्न तथा ज्ञानबोध नामक ग्रन्थ इन्हींके रचे हुये हैं। वि० सं० १७३९ में परलोक-गामी हुये। निम्नस्थ प्रसिद्ध दोहा इन्हींका है:—

दो०—अजगर करैं न चाकरी, पक्षी करैं न काम।
दासमलूका कहि गये, सबके दाता राम॥

महावीरस्वामी—(जैनियोंके २४ वें अर्थात् अन्तिम तीर्थंकर) यह महा-त्मा बुद्धके सम सामयिक थे और उनके पीछे तक जीते रहे थे। इनके बाप मगध नरेशने इनका नाम सिद्धार्थ रक्खा था और महावीरकी उपाधि इनको दी थी। माता पिताके बाद ३० वर्षकी उम्रमें बड़े भाई नन्दीवर्द्धनको राजपाट सौंप इन्होंने कुछ दिनोंतक तीर्थोंमें भ्रमण किया और १२ वर्षतक ऋजु बालक नदीके तीर चित्त एकाग्र करनेका साधन करके जिनत्वको प्राप्त हुये। पश्चात् जैनधर्मका उपदेश करते हुये देशदेशान्तरोंमें विचरना शुरू किया और अपने अनेक शिष्यों-को इधर उधर उपदेश करनेके लिये भेजा। मुख्यशिष्य इनके ११ थे जो गण-धर कहिलाते हैं। इनके धर्म उपदेशोंसे मुग्ध होकर १ लक्ष श्रावक (गृहस्थ जैन) और १४ हजार श्रमण (विरक्त जैन) हो गये। महावीर स्वामी वर्षके ८ महीने उपदेश करते विचरते थे और बर्सातके ४ महीने किसी नगरमें निवास करते थे। ७२ वर्षकी उम्रमें ५२७ वर्ष पू०स०ई० कार्त्तिक शु० ३०स्वाति नक्षत्रमें उषःकालमें इनका देहांत हुआ। इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं बनाया लेकिन इनके चेलोंने इनके उपदेशोंको एकत्र करके अनेक ग्रन्थ रच लिये जिनको जैनलोग आगम कहते हैं। वर्द्धमान गुरु, जैनस्वामी, जैनगुरु तथा निर्ग्रंथ नाथ भी इनके नाम हैं।

महमूदगज़नवी—ग़जनीके बादशाह नासरुद्दीन सुबक्तगीके घर स० ई० ९६७ में पैदा हुआ और स० ई० ९९७ में तख्तपर बैठा। इसने ३३ वर्षके राज्य कालमें अपने छोटेसे राज्यको पश्चिममें ईरानतक और पूर्वमें पंजाबतक फैलाया और १७ हमले हिंदोस्तानपर किये, जिनमेंसे ८ हमले तो केवल पंजाबहीपर हुये। पंजाबका राजा जयपाल तथा उसका पुत्र अनङ्गपाल परास्त होकर मारा गया और अनङ्गपालका पुत्र जयपाल द्वितीय भी स० ई० १०२२ में परास्त होगया। पंजाबपर महमूदका अधिकार होगया। १२ वां हमला महमूदने शहर मथुरापर स० ई० १०१८–१९ में किया, मंदिर मकान ढादिये, २० दिनतक शहरको लूटा, १०० ऊंटोंपर लादकर लूटका माल ग़जनीको भेजा और ५००० से अधिक मनुष्योंको कैदी करके लेगया। स० ई० १०२६–२७ में १६ वाँ हमला सोमनाथ महादेवके मंदिरको खण्डित करनेके लिये गुजरातपर हुआ। राजपूत राजा दलबल सहित देवस्थानकी रक्षाके लिये आ डटे, ३ दिनतक घोर युद्ध हुआ जिसमें राजपूत परास्त हुये और महमूदने करोड़ों रुपयेकी जवाहरात लूटली। पश्चात् महमूदने अपनी राजधानीके बनाउ सुधारमें चित्त लगाया। महमूद लालची था। उसने कवि फिर्दौसीको प्रत्येक शेर (दोहा) के बदले १ अशर्फी देनेका वायदा करके शाहनामा नामक अपने वंशकी तवारीख फार्सीमें रचवाई थी लेकिन जब वह बनकर ६० हजार शेरोंमें तैय्यार हुई तो वायदेके खिलाफ़ महमूद प्रतिशेर अशर्फीके बदले रुपया देने लगा, लेकिन कवीश्वरने लेनेसे इन्कार किया और महमूदकी निन्दापर पद्य रचे (देखो फ़िर्दौसी)। अंत समय महमूदने सब धन, दौलत, जवाहरातका अपने साम्हने ढेर लगवाया और अपनी सेना, घोड़ा, हाथी इत्यादिकोंको अपने साम्हने बुलवाया और उनको देखकर रोया और कहा "हाय इतने थोड़े समयके लिये यह सब बटोरा था"। एक दफे किसी मनुष्यकी माताने महमूदसे जाकर प्रार्थना की कि मेरे बेटेको ईरानकी सड़क पर लुटेरोंने मारडाला है। महमूदने उत्तर दिया कि वह स्थान हमारी राजधानीसे इतनी दूर है कि हम कुछ प्रबन्ध नहीं कर सकते। यह सुन बुढियाने कहा कि यदि प्रबन्ध नहीं हो सकता तो इतना राज्य क्यों बढ़ाया। महमूदने कायल होकर ईरानकी सड़क पर कारवांकी हिफाजतके लिये गारद मुकर्रर किया और लुटेरोंको नष्ट करवा दिया।

महेशचन्द्र न्यायरत्न—सी. आई. ई. पं० महामहोपाध्याय—स. ई. १८८७ में महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीके अवसरपर आपको ब्रिटिश गवर्नमेन्टने महामहोपाध्यायकी उपाधि प्रदान की थी जिसके प्रभावसे लार्ड साहबके दर्बारमें राजा महाराजाओंके पास कुर्सी मिलती है। संस्कृत कालिज कलकत्ताके प्रिन्सिपल बहुत दिनोंतक रहकर आपने पेन्शन पाई है। जो कुछ प्रतिष्ठा आपकी भारतकी विद्वान मंडलीमें है वह आपकी पदवी न्यायरत्नसे प्रकट ही है। तन मन धनसे आपने संस्कृत विद्याके प्रचारका उद्योग किया है, अपनी जन्म भूमिके ग्राममें निज व्ययसे एक हाई स्कूल खोला है जिसमें संस्कृत तथा अंग्रेजी साथ २ पढाई जाती है। अनेक सड़कें भी आपके उद्योगसे आपकी जन्म भूमिके ग्राम तक बन गई हैं इन सब कामोंके उपलक्षमें बृटिश गवर्नमेंटने स. ई. १८८१ की साल सी. आई. ई. की उपाधि आपको दी थी। आपकी जन्मभूमि जिला हबड़ाके नारित नामक ग्राममें है। आपके पिता हरि-नारायण तर्कसिद्धान्त तथा आपके चचा गुरुप्रसाद तर्कपञ्चानन और ठाकुरदास चूडामणि प्रसिद्ध पंडित थे। पंडित महेशचंद्र अनेक प्रतिष्ठित सभाओंके मेम्बर हैं। मम्मटकृत काव्य प्रकाशकी टीका, मीमांसा दर्शन भाष्य, कृष्ण यजुर्वेद भाष्य, मृच्छकटिकनाटककी व्याख्या, दयानन्दकृत वेद भाष्यकी व्याख्या, लुप्तसंवत्सरकी व्याख्या आपने रची हैं। आपके १ पुत्री तथा निम्नस्थ तीन पुत्र हैं जिन्होंने बृटिश गवर्नमेंटकी चाकरीमें बड़े बड़े ऊंचे पद पाये हैं। मन्मथ-नाथ विद्यारत्न, एम० ए०। मुनीन्द्रनाथ भट्टाचार्य, एम० ए०, बी० एल०। महीमनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०।

स. ई. १९०३ में पं० महेशचंद्रन्यायरत्न विद्यमान थे।

महादेव गोविन्द रानडे—देखो रानडे।

माघ पंडित (शिशुपालवध महाकाव्यके कर्ता)—इनके दादा सुप्रभदेवजी गुजरात नरेश धर्मदेवके मंत्री थे और इनके बाप का नाम दत्तकजी था। माघजी बड़े भारी पंडित हुए। ये श्रीमालपुर (गुजरात) में रहकर विद्वानों तथा कंगालोंको खूब धन बांटते थे और बड़े मान्यवर तथा धनाढ्य कवि थे। धारा नगरीके राजा भोज इनके समकालिक थे परन्तु यह विना बुलाये इनके दरबारमें भी

कभी नहीं गये। भोज इनकी दानकीर्ति सुन कर स्वयं इनसे मिलने एक दफे गया था। माघजीकी जन्मपत्रीमें एक ज्योतिषीने लिख दिया था, कि इस कवि-को दिन दिन अधिक धन प्राप्त होगा, अन्तमें इसके पैरों पर सूजन आवेगी और यह दरिद्री हो जायगा। बहुत काल पीछे माघजीकी जन्म पत्रीमें कही हुई दशा होने लगी और यहांतक रङ्क हो गये कि खाने तकको न रहा। परन्तु भिक्षुकों-की भीड़ उस हालतमें भी द्वारपर लगी रहती थी। एक दिन कंगालोंकी भीड़ द्वारपर देख माघने कहा।

श्लो०—दारिद्रानलसन्तापः शान्तिसंतोषवारिणा।
दीनाशाभंगजन्मा तु केनायमुपशाम्यतु॥

पश्चात् बहुत दुःखी होकर माघजी धारा नगरीको पधारे और अपनी स्त्रीके हाथ स्वरचित काव्य ग्रन्थ राजा भोजके पास भेजा। राजाने पुस्तकको देख ३ लक्ष रुपया कविकी स्त्रीको देकर सन्मान सहित विदा किया। जब माघकी स्त्री महलके दरवाजेसे निकली तब राजाके द्वारपाल उसको देख माघ कविकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। माघकी स्त्रीने सब धन उनको दे दिया और रीते हाथ घरको लौट आई। इससे थोड़े ही दिनों पीछे धारा नगरीमें माघ पंडितका शरीर छूट गया और उनकी स्त्री सती हो गई। राजा भोजने दोनोंकी अन्त्येष्टि क्रिया की, इससे प्रतीत होता है कि माघ अपुत्र थे। शिशुपालवध जिसको माघकाव्य भी कहते हैं पञ्च महाकाव्योंमें सर्व्वोत्तम है। "काव्येषु माघः" यह उक्ति यथार्थ है। माघकाव्यमें राजनीति आदि विषय बड़ी उत्तमतासे निरूपण किये गये हैं। सब तरहके शब्दप्रयोग और भाषा शैलीका परिज्ञान उसके पढनेसे हो जाता है। एक अनुभवी पंडितका कथन है कि "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते"। निम्नस्थ श्लोकसे माघजीकी कविताकी सर्व्वोत्तमता प्रकट होती है।

श्लो०—उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

माधवजी सेंधिया—स० ई० १७५० की साल २० वर्षकी उम्रमें शिवल-पुरकी जागीर इनको निज पिता रानोजी सेंधियासे मिली थी। यह बड़े पराक्रमी थे। निदान इन्होंने थोड़े ही कालमें बहुतसा मुल्क जीतकर उज्जैनको अपनी राज-

धानी बनाया । फिर तो दिन २ इनका प्रताप बढता गया, यहांतक कि सर्वत्र भारत पर इनका आतङ्क बैठ गया । और यदि चाहते तो सहजहीमें हिंदोस्तानके सम्राट वन बैठते परन्तु ऐसा इन्होंने कभी नहीं विचारा । दिल्लीके मुगल सम्राट शाह आलमने शक्तिहीन होनेके कारण इनको अपना बेटा बना लिया था और ये भी धर्म पगसे न डिगनेवाले मरहट्टावीर उस बल विहीनको सदैव अपना शह-न्शाह मानते रहे । पूनाका पेशवा भी इनके प्रतापके आगे कुछ कर न सकता था । परन्तु यह उसको भी प्राचीन प्रथाके अनुसार अपना मुखिया मानते रहे । इनके सिवाय हिंदोस्तानमें उन दिनों अनेक और छोटे २ राजाओं, नबाबोंका राज्य था । परन्तु उनमेंसे कोई भी इनका सामना करने लायक न था । स० ई० १७६१ की साल माधोजी बड़ी वीरतासे पानीपतके युद्धमें लड़े थे । पेशवा पूनाके दरबारके बड़े २ कर्मचारीगण कहा करते थे कि "माधवजी बड़ा साहसी, चतुर तथा वीर शासक है"।स्वदेशभाषाके सिवाय उर्दू, फार्सी भी खूब पढे थे और बड़े हिसाबी थे । मिलनसार तो थे ही, आधे कर्मचारियोंका अपराध बहुधा क्षमाकर दिया करते थे परन्तु रणसे मुहमोडे हुए कायरोंको कड़ा दण्ड अवश्य देते थे । स. ई.१७९४ में ज्वरसे पीड़ित होकर पूनाके समीप एक गांवमें देवलोकगामी हुए। भाईके पौत्र दौलतरावसेंधिया इनके उत्तराधिकारी हुए । दौलतरावसेंधियाने ग्वालियरको अपनी राजधानी बनाया ।

माधवाचार्य–कुर्ग देशके पश्चिम भागमें उड़पीपुर नामक ग्राम है, जहां स० ई० की १४ वीं शताब्दीमें मायणजी दुबेके घर श्रीमतीजीके उदरसे माधवा-चार्यका जन्म हुआ । ये भारद्वाज गोत्री थे । उन्होंने तथा इनके भाई सायणा-चार्य (विद्यारण्यस्वामी) ने मिलकर ऋग्वेदभाष्य, ऐतरेयब्राह्मणभाष्य और तैत्तरीयसंहितापर भाष्य रचे थे क्योंकि इन भाष्योंके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें "इति सायणाचार्य विरचित माधववेदार्थप्रकाशे... ... ...इत्यादि" लेख मिलता है । बड़े होकर माधवजी करनाटकके राजवीरबुक्क राजाके दरबारमें जिसकी राजधानी विजयनगरमें थी, प्रधानमंत्री तथा कुलगुरुके पदको प्राप्त हुये थे । वीरबुक्कके बाद उसके पुत्र हरीहरने माधवको जयन्तीपुरका गवर्नर नियत किया था । इस पदको प्राप्त होकर माधवने गोआका घेरा किया और स० ई० १३७० में वहांसे उपद्रवी तुर्कोंको मार भगाया और सप्तकोटीश्वर नामक शिवलिं-

गकी (जिसको तुर्कोंने नष्टकर दिया था) स्थापना की। स० ई०१३८१ का अङ्कित एक दानपत्र मिला है जिसमें लिखा है कि सूर्यग्रहणके अवसरपर वैशाखके महीनेमें महामंत्रीश्वर मार्गप्रवर्तकाचार्य श्रीमन्माधवाचार्यने माधवपुर नामक ग्राम बसाकर २४ ब्राह्मणोंको दान करके दिया था। अन्तमें माधवने गायत्रीका अनुष्ठान किया और प्रत्यक्ष दर्शन न पानेपर संन्यासी होगये। संन्यासी होते ही गायत्रीने दर्शन देकर कहा कि "वर मांग"। उत्तरमें माधवने कहा "मातु, मैं संन्यासी हो गया हूं, अब कुछ इच्छा नहीं रखता, परन्तु एक प्रार्थना है कि इस देशमें एक पहर सुवर्णकी वर्षा करदो"। इतना कहते ही सुवर्णकी वर्षा होने लगी। उस वक्तके वर्षे सुवर्णखण्ड पुतली तथा हुण्ड अबतक मालवा इत्यादि दक्षिणीय देशोंमें मिलते हैं। पश्चात् माधवने ब्रह्म सम्प्रदायका प्रचार किया और माधुर्य निष्ठासे राधामाधव युगल रूपके ध्यान पूजनके लिये कई पद्धतें बनाई–

इनके मतानुगामी दक्षिणमें बहुत हैं और द्वैतवादी होकर ईश्वर तथा जीवको अलग २ मानते हैं। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके रचे हुये हैं:।

मीमांसाशास्त्रपर न्यायमाला विस्तार और जैमिनयिन्यायरत्नाधिकरणमाला, धर्मशास्त्रमें कालमाधव, पराशरमाधव, आचारमाधव और व्यवहारमाधव, व्याकरणमें धातुवृत्ति, आयुर्वेदमें माधवनिदान, काव्यमें संक्षेप शंकरविजय, सर्व शास्त्रोंपर सर्वदर्शनसंग्रह। माधवनिदानकी गणना लघुत्रयीमें है और विद्वान् वैद्य उसके विषयमें कहते हैं कि–

श्लो०–निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सके॥

खोजकरनेसे विदित हुआ है कि, संन्यासी होकर माधव तथा उनके भाई सायण दोनोंहीने अपना नाम विद्यारण्यस्वामी रक्खा। इन दोनों भाइयोंमें मेल मिलाप प्रशंसनीय था।

माधवानल (प्रसिद्ध संगीतज्ञ)–पुष्पवतीनगरी (मध्य प्रदेश बिलारी) के राजा गोविंद रावके दर्बारमें वि०सं०९१९ के लगभग माधवानल ब्राह्मण रहता था जो संगीतादि अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होकर बड़ा स्वरूपवान् था। पुष्पवतीकी सब सुंदरियें उसपर मोहित थीं, यह देख अनेक मनुष्योंने राजासे जाकर शिका-

यत की, निदान राजाने माधवानलको अपने राज्यसे निकाल दिया। तब तो माधवानल कामवतीके राजा कामसेनके दर्बारमें चला गया और सन्मान प्राप्त करनेमें समर्थ हुआ क्योंकि राजा गाने बजानेका रसिक था। कामसेनके दर्बारमें कामकन्दला नामक वेश्या अत्यंत सुन्दरी तथा अपने काममें परम चतुर थी। माधवानल उसीपर मोहित होगया। एवं कामसेनने भी माधवानलको अपने राज्यसे निकाल दिया। उन दिनों उज्जैनकी गद्दीपर विक्रम नामधारी कोई नरेश राज्य करते थे और शरणागतकी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिये प्रसिद्ध थे। माधवानलने इन्हींके दर्बारमें जाकर शरण ली। विक्रमने माधवनलकी दशापर दया करके राजाकामसेनपर चढाई की और उसको परास्त करके माधवानलको कामकन्दला दिलवा दी। पश्चात् विक्रमकी आज्ञासे माधवानल और कामकन्दला पुष्पवतीमें जा रहे, माधवानलने वहां अपनी प्राणवल्लभाके लिये एक महल बनवाया जिसके खण्डैर डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र यल. यल. डी. के लेखानुसार अबतक मध्य प्रदेश जि० बिलारीमें विद्यमान है। अनेक संस्कृत तथा भाषाकवियोंने इन दोनोंके प्रेमकी कहानीके विषयमें नाटक रचे हैं।

माधौराव (राजा, सर, टी, माधौराव, के. सी. यस्. आई.)—कुम्भकोणम् (तंजोर) में स० ई० १८२८ की साल जन्मे। इनके बाप रङ्गाराव महाराष्ट्र ब्राह्मण तंजोर राज्यमें दीवान थे। माधौरावने स. ई. १८४१ से १८४६ तक मदरास विश्वविद्यालयमें पढकर अव्वलदर्जेकी सनद पाई। पश्चात् कुछ दिनोंके लिये मदरास विश्वविद्यालयमें गणितशास्त्रके अध्यापक रहे और स. ई. १८४७ से ४९ तक एकौन्टेन्ट जेनरल मदरासके दफ्तरमें क्लार्क रहे। पश्चात् गवर्नमेंटने इनको ट्रावन्कोरके राजकुमारोंका शिक्षक नियत किया, यह काम इन्होंने ऐसी योग्यतासे किया कि, जिसके पुरस्कारमें राज्यके दीवान पेशकारका पद इनको दिया गया। इस पदपर रहकर इन्होंने अपने कार्यसे राजा प्रजा तथा गवर्नमेंट सबहीको प्रसन्न रक्खा जिसके उपलक्षमें स. ई. १८६६ की साल गवर्नमेंटने इनको के. सी. यस. आइ. का किताब दिया। स. ई. १८७२ में इन्होंने ५००रु. मासिककी पेन्शन ली, इससे कुछ दिन बादही गवर्नमेंटने इनको इन्दौर राज्यमें दीवान नियत करके भेज दिया, इस पदपर दो वर्ष भी नहीं रहने पाये थे कि, गवर्नमेंट-आफ-इण्डियाने इनको राज्य बड़ौदामें दीवान नियत करके भेजा। बृटिश गवर्नमेंटका इनपर विश्वास

था और जिन २ राज्योंमें ये रहे वहांके नरेशोंने इनकी प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा की। स० ई० १८७७ में गवर्नमेंटने इनको राजाकी पदवी दी थी। बम्बई तथा मदरास विश्वविद्यालयने इनको मेम्बर बनाया था। अंग्रेजी भाषा लिखनेकी तथा बोलनेकी शक्ति इनमें अद्भुत थी। ये सच्चे पक्षपात रहित, परिश्रमी तथा मुस्तैद पुरुष थे। वर्तमानकालमें इनकी समान राजनीतज्ञ तथा सुप्रबन्धकार हिंदोस्तानमें कोई दूसरा नहीं हुआ। स. ई. १८९० में परलोकगामी हुये।

माधौराव सेंधिया (महाराजा आलीजाह, सर माधौराव सेंधिया, जी० सी० यस्० आई० यल० यल० डी० ग्वालियर नरेश)—महाराजा जीवाजीराव सेंधियाके पुत्र स. ई. १८७७ में जन्मे और स. ई. १८८६ में ग्वालियरकी गद्दीपर बैठे। श्रीमान्‌के बालकालमें कौंसिल आफ-रिजेन्सीका इन्तजाम रहा। श्रीमान् संस्कृत तथा अंग्रेजीके पूर्ण ज्ञाता हैं, सैर शिकारके रसिक हैं और चतुर, उत्साही तथा अनुभवी नरेशोंमें गिने जाते हैं। रेलका एञ्जिन चलाना जानते हैं और फोटोकी तस्वीरें उतारनेमें सिद्धहस्त हैं। सम्राट् एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकके अवसर पर आप इङ्गलैंड पधारे थे और वहां पर ५० हजार रुपये उस सभाको चन्देमें दिये थे जिसका मुख्य उद्देश हिंदु-स्तानियों तथा अंग्रेजोंमें मेलझोल बढानेका है। उसी अवसर पर कैंब्रज विश्व-विद्यालयने आपको यल. यल. डी. की उपाधि दी थी। राज्यमें अनेक नये स्कूल आपके समयमें खोले गये हैं, और स्त्री शिक्षाका भी उद्योग किया गया है। फार्सी की जगह नागरी अक्षरोंका स्वराज्यके दफ्तरोंमें व्यवहार करनेका हुक्म दे आपने मातृभाषाका बड़ा उपकार किया है। आपके राज्यका विस्तार २९०४६ वर्ग-मील, बस्ती ३० लाख ३० हजार मनुष्य, सेनामें ५५०४ सवार ११०४० पैदल और ४८ तोपे हैं। श्रीमानकी सलामी अंग्रेजी अमलदारीमें आपके १९ फैर और स्वराज्यमें २१ फैरोंकी है। ब्रिटिश गवर्नमेंट आपके सुप्रबन्धसे प्रसन्न है और आप स्वयं प्रसन्नचित्त नरेश हैं। परमेश्वर आपको चिरायु करे।

माधोसिंह सवाई (महाराजा सवाई, सर माधौसिंह जी. सी. यस्. आई जयपुरनरेश)—महाराजा रामसिंहके दत्तक पुत्र हैं। स. ई. १८६१ में जन्मे, स. ई. १८८० में गद्दीपर बैठे और दो वर्षके बाद राजपाटका पूरा

अधिकार पाया। राजकाजमें श्रीमान् "यतो धर्म्मः ततो जयः" इस किंवदन्ती-का प्रयोग करते हैं और निजपूर्वजोंके धर्मपर दृढतासे आरूढ हैं। आपको गोपाल-जीका इष्ट है। जयपुरमें माधवसागर नामक तालाब और वृन्दावनमें गोपालजीका बड़ा भारी मन्दिर आपने बनवाया है। महाराज रामसिंहने जितने सुधार राज्यमें किये थे उन सबको आपने पुष्ट किया है और अनेक नये सुप्रबन्ध भी किये हैं। आप बड़े अनुभवी तथा परिश्रमी नरेश हैं, कितने दिनोंतक राज्यका सब काम आपने बिना दीवानके किया था। प्रजापालनका सदैव चिन्तवन रखते हैं। राज्य-के कर्मचारी तथा प्रजा और ब्रिटिश गवर्नमेंट आपसे सबही प्रसन्न हैं। पुराने नौकरोंकी आप प्रतिष्ठा करते हैं। और देशियोंको स्वराज्यमें चाकरी देनेकी सुविधा करते हैं। संस्कृत तथा अंग्रेजी अध्ययनकी प्रजाके लिये जितनी अनुकूलता आपके राज्यमें है उतनी कदाचित् किसी दूसरे सरकारी अथवा रजवाड़ेके कालिजमें नहीं है। राज्यकी ओरसे छात्र वृत्तियां देकर महाराजा कालिजमें बी. ये., यम. ए. तककी शिक्षा विना फीस लिये ही दीजाती है और कारीगरोंके कालि-जमें नानाप्रकारकी दस्तकारी सिखलाई जाती है। देशी शिक्षित पुरुषोंके मिलते हुये किसी परदेशीको राज्यमें चाकर न रखनेकी आज्ञा देकर भी आपने निजप्रजा-का उपकार किया है। सम्राट् एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकके अवसरपर इङ्गलैण्ड-जाकर आपने अत्यन्त प्रतिष्ठा पाई थी और भेंटमें दिये हुये आपके रत्नजटित खड्गसे सम्राट् बहुत खुश हुये थे। इस सफ़रमें आपका खर्च भी बहुत पड़ा था क्योंकि आप अकेला जहाज़ किराया करके इङ्गलैण्डको पधारे थे और "स्वधर्मे निधनं श्रेयः"के सम्बन्धमें "परधर्मो भयावहः"इस वाक्यका स्मरण करके व्ययका कुछ ख्याल नहीं किया था। जयपुरके महाराजा कछवाहे राजपूत हैं जिनकी उत्पत्ति महाराज रामचन्द्रके पुत्र कुशसे है। राज्यका विस्तार १४४६५ वर्ग मील है जिसमें २५ लाख ३४ हज़ार मनुष्योंकी वस्ती है। वार्षिक आय १२ लाख पौंड है और सवार पैदल सब मिलाकर २१५०० फौज है। जयपुर राजधानीकी समान आज दिन हिन्दोस्तानमें कोई दूसरा शहर नहीं है, शहरकी गलियें तथा बाजार बहुत चौड़ा है, पानीके नल जारी हैं, गैसकी रोशनी होती है, जलवायु अच्छा है, और अजायबखाना इत्यादि अनेक स्थान देखने योग्य हैं। अंग्रेजी

अमलदारीमें महाराजकी सलामी तोपके १९ फैरोंकी और स्वराज्यमें २१ फैरोंकी है। परमेश्वर ऐसे धर्मात्मा नरेशको चिरायु करै ॥

मान्धाता (सूर्य्यवंशीनरेश)—यह चक्रवर्ती राजा अत्यन्त प्राचीन समयमें हुये। राजा युवनाश्व इनके पिता थे। इनका वंशवृक्ष महाराजा सूर्य्यके वृत्तान्तमें देखो। ओखीमठ (गढ़वाल) में महाराजा मान्धाताने तपकरके परम सिद्धि प्राप्त की थी (देखो स्कन्दपुराण,केदारखण्ड, उत्तरभाग, २४ वां अध्याय)। ओखी मठका प्राचीन नाम मान्धाता क्षेत्र है और वहांपर महाराज मान्धाताकी एक बड़ी मूर्ति है। अन्तमें मधुवनके राक्षस राजा लवणपर महाराज मान्धाताने चढाई की, लेकिन मारे गये। बहुत समय पश्चात् मधुवनको दशरथ पुत्र शत्रुघ्नने विजय किया और वहां मधुरा (मथुरा) नामक नगर बसाया (देखो वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ६७)।

मानसिंह कछवाहे—(हफ्तहजारी महाराजा मानसिंह, मिर्जाराजा, फर्जन्द दौलते मुगलिया). आपके समान प्रतापी, वीरनरेश मुगल बादशाहों तथा बृटिश गवर्नमेण्टके वक्तमें कोई दूसरा नहीं हुआ । आप हिन्दूधर्मके स्तम्भ थे और गौ तथा ब्राह्मण आपके समयमें सुखसे जीवन व्यतीत करते थे । दर्बार अकबरीके नवरत्नोंमें आपकी गणना है। आमेर अम्बेर आपके समयमें जयपुर राज्यकी राजधानी थी। आप राजा भगवानदासके दत्तक पुत्र थे। स० ई० १५३५ में आपका जन्म हुआ था। राजा भगवानदासके जीतेजी ही बादशाह अकबरने आपको परम पराक्रमी जान खीची बाड़ेका हाकिम नियत किया था और पश्चात् दल-बल सहित चित्तौड नरेश महाराना प्रतापसिंहके दमन करनेके लिये भेजा था। घोर संग्राम करके आपने महारानाको परास्त किया जिसके उपलक्षमें बादशाहने आपको स्यालकोट (पंजाब) का हाकिम नियत किया । पश्चात् जब बादशाह, अकबरके भाई मिर्जा हकीमने काबुलसे सिन्धमें आकर उपद्रव किया तो महाराजा मान उसको दमनकरणार्थ भेजे गये। सिन्धु पहुँच आपने मिर्जाहकीमको मार भगाया। इसके उपलक्षमें आपके पिता राजा भगवानदास (भगवन्तदास) को पंजाबकी सूबेदारी तथा सिपहसालारी दी गई। स० ई० १५७३ में तूरानके बादशाहका काबुलपर चढ़ाई करनेका विचार सुनकर अकबरने आपको काबुल भेजा वहां पहुंच आपने बादशाही आतङ्क सबपर बिठलादिया और पांच वर्ष-

पर्य्यंत काबुल तथा जाबुलकी सूबेदारीपर रहकर अफगानिस्तानकी लड़ाकूपठान प्रजाको अत्यंत कठोर दण्ड देदेकर खूब ढीला किया। कहते हैं कि, पठान लोग आपका नाम सुनते ही कांपते थे। इनमें टोपीकी जगह पगड़ी और पायजामेकी जगह धोती (तम्मान) पहिरनेकी चाल जो अब तक प्रचालित है आपहीके हुक्मसे जारी हुई थी। बादको आपकी बदली बिहारकी सूबेदारी पर हो गई। वहां भी आपने पांचवर्ष रहकर पठानोंको दमनकरके बंगाल तथा उड़ीसामें बादशाहकी धाक बैठा दी। स० ई० १८८८ में राजा भगवानदासके स्वर्गवासी होने पर बड़े समारोहसे आप गद्दीपर बैठे और बादशाहने आपको महाराज तथा फर्जंद दौलतेमुगलियका खिताब और पञ्चहजारीका मनसब दिया। पश्चात् हफ्तहजारीका उच्चमनसब आपको मिला। बादशाह अकबरके दरबारमें किसी अन्य सर्दारकी इज्जत आपके समान नहीं थी। विजय आपसे वचन हार गई थी। जिधर भेजे गये जीतहीके लौटे। ब्रह्माके राजाको जिसने बंगालपर चढाई की थी आपने दरियाई लड़ाईमें परास्त किया। बादशाह अकबरने अपने पौत्र सुलतान खुसरो (शाहजहां) का अतालीक आपको नियत किया और शाही दरबारमें आपका बहुत कुछ अधिकार बढ़ाया। अकबरके बाद जहांगीरने तख्तपर बैठकर आपको बंगालकी सूबेदारीपर भेजा और एक ही वर्ष पीछे दक्षिणकी सूबेदारीपर बदली कर दी। इसी पदपर रहते हुए स० ई० १६२२ के लगभग एलिचपुरके समीप आपने परलोक गमन किया। आपके कई सौ रानियें थीं जिनमेंसे प्रत्येकके दो दो तीन तीन या इससे भी ज्यादह बच्चे थे। कई रानियोंने आपके साथ सत किया। आपके ज्येष्टपुत्र जगतसिंहका देहान्त आपके साम्हने हो गया था। उनके नामसे आपने अम्बरमें बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया था और उसमें मीराजीके ठाकुर गिरधरगोपालको, जिनको चित्तौड़ विजय करनेके समय आप वहांसे ले आये थे, जगत प्रभुनामसे पधराया था। आपके पुत्र भाऊसिंहजी आपके उत्तराधिकारी हुए। गोवर्धनमें मानसी गंगाका तालाब, वृन्दावनमें गोविन्ददेवका नौ मंजिला मन्दिर, बनारसमें मानमन्दिर, आकाश लोचन तथा पञ्चगंगा घाटकी पाषाणकी सीढियां और अम्बरमें मनसादेवी इत्यादिके मन्दिर आपके बनवाये हुए अबतक विद्यमान हैं। महाराज मानज्योतिष इत्यादि शास्त्रोंके ज्ञाता होकर बड़े दातार थे। और गुणी जनोंका खूब सत्कार करते थे। हरिनाथ कविको आपने निम्नस्थ दोहे पर १ लक्ष रुपया इनाम दिया था:—

दो०—बलिबोई कीरति लता । कर्णकरी द्वै पात ॥
सींची मान महीपने । जब देखी कुम्हलात ॥

गंगइत्यादि अनेक और कवीश्वरोंको भी आपने निहाल किया था आप बड़े हृष्ट पुष्ट तथा बलवान योधा थे। आपका धनुषबाण तथा खड्ग जो अबतक जयपुर अजायबघरमें रक्खा है इतना बड़ा और भारी है कि आजकलके बड़े २ पहलवान उनको बड़ी कठिनाईसे दोनों हाथ लगाकर उठा सकते हैं।

मानसिंह (ग्वालियरनरेश)—ग्वालियरके वर्तमान राज्यवंशसे आपका कुछ सम्बन्ध नहीं था क्यों कि इस वंशके मूलरोपणकर्ता राणोजी सेंधिया बहुत पीछे हुए हैं। मानसिंहजी जिनका चरित यहां लिखा जाता है तोमरवंशी राजपूत थे। स० ई० १५१८ में इनकी मृत्यु और बेटा विक्रमजीत इनका उत्तराधिकारी हुआ। ध्रुपदराग इन्हींका निकाला हुआ है। प्रसिद्ध रानी मृगनयनी इनकी धर्म-पत्नी थी (सो देखो)।

मानसिंह (अवधनरेश)—आप बड़े नामवर तथा योग्य नरेश हुए हैं, बड़े भाईके होते हुए गद्दीके योग्य समझे गये थे। आपके पिता महाराज दर्शन-सिंहने अयोध्यामें स्वर्गद्वार घाट तथा उसके पूर्व पश्चिमके घाटोंकी सीढियें पत्थरसे बनवाई थीं और अयोध्याके उत्तम मन्दिरोंमेंसे एक सुन्दर शिखरदार पच्चरत्न मन्दिर बनवाकर दर्शनेश्वर शिवलिंग तथा गणेश पार्वती आदि अन्य देवताओंकी स्थापना की थी। आपने पूर्वज बादशाही फौजमें सेनापति थे। राजा मानसिंह संस्कृत, हिन्दी, फार्सी, अंग्रेजीके अच्छे पंडित थे, भाषा कविता भी आपकी कही हुई खूब ही है जिसमें "द्विजदेव" नामसे पदपूर्ती की है। आपका रचा श्रृंगार-लतिका नामक उत्तम ग्रन्थ स.ई.१८५०में संपूर्ण हुआ था। अवधके रईसोंमें बृटिश-गवर्नमेंट आपको सबसे अधिक योग्य समझती थी। अयोध्यामें हनूमानगढीके सामने आपकी रानीका बनवाया हुआ राजद्वार नामसे प्रसिद्ध, अठ. महला, शिखरदार एक बड़ा मन्दिर है, जिसमें सीतारामकी स्थापना है। अन्तमें राजा मानसिंहने अंग्रेजी आईन भी पढा था। स० ई० १८७३ में आपका देवलोक हुआ पुत्र आपके नहीं था इसी लिये आपके दौहित्र वर्तमान अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायणसिंह आपके उत्तराधिकारी हुये (सो देखो)।

मानसिंह राठौर (जोधपुरनरेश)–महाराजा भीमसिंहके बाद स० ई० १८०४ में गद्दीपर बैठे । राना उदयपुरकी कन्या भीमसिंहजीको मँगी थी परन्तु वे विवाह होनेसे पहिले ही सिधार गये । तब तो रानाने अपनी कन्या कृष्ण कुमारीका विवाह जयपुर नरेशके साथ ठहरा दिया लेकिन महाराजा मान-सिंहने जोधपुरकी गद्दीपर बैठकर रानासे कहला भेजा कि कृष्णकुमारी पहिले हमारे भाई भीमसिंहकी मँगी थी अब हम उनकी जगह हैं एवं उसकी शादी हमसे होना चाहिये । इस बातपर जयपुर तथा जोधपुरके राजाओंमें बिगड़ गई (देखो कृष्णकुमारी) अमीरखाँ पिंढारियोंके सर्दारने बीचमें पड़कर दोनों राज्योंको क्रमशः ढीला किया सच है, आपसका झगड़ा बुरा, गैरोंकी बन पड़ती है । अन्तमें बृटिश गवर्नमेण्टने झगड़ा चुकाया और स० ई० १८१८ में जोध-पुर राज्यने झगड़ोंसे तंग आकर बृटिश गवर्नमेण्टका आधिपत्य स्वीकार किया । स० ई० १८४३ में महाराजमानसिंहका निस्सन्तान देवलोक होगया और उन-की रानियें सती होगईं । सर्दारोंने मिलकर तख्त सिंहको जो जोधपुरके पूर्व नरेश अजीतसिंहके पुत्र थे गद्दीपर बिठला दिया । इन्हीं तख्तसिंहके पौत्र वर्त-मान जोधपुर (मारवाड़) नरेश सर्दारसिंहजी हैं । महाराजमानसिंह बड़े साहसी थे । एक दफे उन्होंने लङ्कापर चढ़ाई करनेका विचार किया था, तब दर्बारके कवीश्वरने निम्नस्थ दोहा पढ़कर आपको रोका था:–

दो०–रघुपति दीनी दान, विप्र विभीषण जानिके ।
मानमहीपत मान, दियो दान किम लीजिये ॥

मालदेव–(राव मालदेव जोधपुर नरेश)–ये परम पराक्रमी राठौर महोदय स० ई० १५३२ में गद्दीनशीन हुये । उस समय इनका राज्य केवल ४ । ५ परगनोंमें था, परन्तु इनके सौभाग्यसे राणा सांगाजीके मरनेसे मेवाड़का राज्य निर्बल हो रहा था और हुमायूं तथा शेरशाहके बीच युद्ध होनेके कारण दिल्ली-की बादशाही भी ढीली हो रही थी । ऐसा सुअवसर पाकर राव मालदेवने आगरा तथा दिल्लीकी तलहटी तक ५२ परगनों पर अधिकार कर लिया और बीकानेर, मैड़ता इत्यादि कई राज्यभी छीन लिये जिससे वहांके लोग शेरशाहके पास पुकारू हुये । यह देख इन्होंने सिन्धसे हुमायूंको शेरशाहके साथ लड़नेको लाया हुमायूंके साथियोंने मारवाड़में आकर गोवध किया और उधर शेरशाहने भी

रावसाहबको लिखा कि, यदि आप हुमायूंको पकड़कर मेरे हवाले कर दोगे तो मैं गुजरात फतेह करके आपको दे दूंगा। निदान रावसाहबने हुमायूंको उलटे पैरों लौट जानेको कहदिया, लेकिन उसको पकड़ा भी नहीं। इस बातसे नाराज होकर शेरशाहने रावसाहबपर चढ़ाई की। ८० हजार सेना लेकर रावसाहबने उसका साम्हना किया लेकिन कई नमकहराम सर्दारोंका शेरशाहसे मिल जाना इनकी पराजयका कारण हुआ। साम्भर झीलकी आमदनीसे रावसाहबने जोधपुरका राजभवन तथा अनेक किले बनवाये थे। ये अपने समयके राजपूत नरेशोंमें महाबली थे। बादशाह अकबरके समयमें भी अन्य राजपूतोंकी समान इन्होंने उससे मेल जोल निज देहमें प्राण रहते नहीं किया। जोधबाईके मरने पर अकबरने राजपूतोंकी प्रथाके अनुसार सब राज्योंमें राजपूत नरेशोंकी दाढ़ी मूँछ मूड़नेके लिये नाई भेजे। जब नाई जोधपुर दर्बारमें पहुँचा तो राव माल्देवने उसको निकलवा दिया और कहा कि "शेरोंकी मूंछ कौन मूंड़ सकता है।" अकबरने यह सुन उपद्रव बढ़ जानेके भयसे रावसाहबको मना लिया। स० ई० १५८४ में राव माल्देवका देहान्त हुआ और राव उदयसिंह उनके उत्तराधिकारीने अन्य रजवाड़ोंकी चालके अनुसार दिल्लीके तख्तको डोला देनेकी रसम जारी की।

मातृगुप्त पण्डित—ये कश्मीर प्रान्तसे उज्जैन नरेश विक्रमादित्य हर्षके दर्बारमें गये थे। विक्रमने इनकी बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये प्रथम कुछ सत्कार नहीं किया परन्तु ये राजाको स्वच्छन्दगामी, गुणग्राही जान राजसेवा निज देहकी समान करते रहे। राजाके प्रसन्नालाप करने पर फूल नहीं जाते थे और क्रुद्ध होनेपर श्रद्धाहीन नहीं होते थे। राजद्वेषियोंसे बात नहीं करते थे। राजदासियोंकी ओर आंख उठा कर नहीं देखते थे और न नीचोंकी बातें राजाके सामने कहते थे। राजनिन्दक बहुतेरा बहकाते थे और आदर पूर्वक राजसेवाकी विफलता दिखाते थे परन्तु ये किसीकी नहीं सुनते थे। इसी प्रकार सेवा करते २ जब १२ महीने होगये तो एक दिन शरद ऋतुमें आधीरातके समय राजाने जागकर पवनके झकोरोंसे दीपककी बत्तियें हिलती देख आवाज दी कि "कोई है"। बाहरसे भीतरतक सब नौकर पड़े सोते थे केवल मातृगुप्त जागते थे। राजाकी आज्ञा पाय तुरन्त भीतर गये और बत्तियें सम्हाल जाड़ेसे कांपते

हुये ज्योंही बाहर जाने लगे कि, राजाने पूँछा " इस वक्त क्या बजा है " । मात्रगुप्तने उत्तर दिया कि, दो बजे हैं । फिर राजाने पूंछा कि "इस वक्त सब नौकर सो रहे हैं तुमको क्यों नहीं निद्रा आई ।" मात्रगुप्तने तुरन्त दो श्लोक उत्तरमें पढे जिनका आशय यह था कि "मुझ प्रदेशी अन्न वस्त्र विहीन ब्राह्मणको महाराजके दर्बारमें पड़े हुये शरद् ऋतुलौटकर आगई, घरबारकी कुछ सुधि नहीं पाई और मेरी भी कुछ सूरत न निकली, इसी चिंताके कारण मुझको निद्रा नहीं आई । श्लोकोंको सुनकर राजाने मात्रगुप्तसे जानेको कहदिया लेकिन विचारने लगा कि, इस ब्राह्मणका सत्कार अवश्य करना चाहिये । काश्मीर मण्डलका राज्य उनदिनों खाली था निदान प्रभात होतेही राजाने मात्रगुप्तको अनुशासनपत्र देकर काश्मीर भेजदिया और वहांके दीवानमंत्रीने पत्रके देखतेही उनको राजतिलक करदिया । गद्दीपर बैठ कर राजा मात्रगुप्तने काश्मीरके अमूल्य फल फूल तथा शाल दुशाले महाराजविक्रमकी भेंटके लिये भेजे और लेजानेवाले दूतको १ श्लोक भी लिखकर दे दिया जिसका आशय यह था कि " महाराज ! आपके चित्तका कृपाभाव मन, वाणी, चक्षु-द्वारा किसीतरह प्रकट नहीं होता है । परंतु आप कृपा करते हैं एवं आपकी कृपा भी विलक्षण है" । ८ वर्ष ९ महिने पर्य्यंत राज्य भोगनेके पछि राजा मात्र-गुप्तने महाराजविक्रमके देवलोक होनेकी खबर सुनकर राज्य त्यागदिया और संन्या-सी हो काशीको चलतेहुये । रास्तेमें राजाप्रवरसेन जिसके चचाके मरनेसे कश्मीर का राज्य खालीहोकर मात्रगुप्तको दियागया था मिला । प्रवरसेनने मात्रगुप्तको वहुत समझाया और कहा कि अब आप मेरी तरफसे कश्मीरका राज्य करें लेकिन उन्होंने यही उत्तरदिया कि जिस सुकृतिके प्रभावसे हम राजपदको पहुँचे थे वह अब इस संसारमें नहीं है । प्रवरसेनने कश्मीरकी गद्दीपर बैठकर बहुतसे मुल्क जीते लेकिन कश्मीर मण्डलकी आमदनी सदैव मात्रगुप्तके पास काशी भेज देते रहे । (देखो प्रवरसेन) मात्रगुप्त इस गलेपडी लक्ष्मीको साधु ब्राह्मणोंको बांट देते थे और आप भिक्षाकरके भोजन करते थे । इस प्रकार १० वर्ष और जीकर काशीमें स्वर्गवासी हुये । राजा मात्रगुप्त ओछे चित्तके आदमी न थे, गद्दीपर बैठ-कर उन्होंने आज्ञा प्रचार करा दी थी कि कोई किसी तरहकी हिंसा न करै । उनकी आज्ञासे सोने चांदीके टुकड़े दीन गरीबोंको लड्डूओंमें मिलाकर गुप्त-

रीतिसे दिये जाते थे। मात्रगुप्तके बनाये श्लोकोंको देखकर येही कहे बनता है कि वे बड़े भारी पण्डित थे। मेंट कविने "हयग्रीववध" नाटक रचकर उनकी भेंट किया था और इनाममें थाल भर सुवर्ण पाया था।

मिल्टन (जान मिल्टन–John Milton) इनके बाप वकिन्घमशायर (इङ्गलैंड) के रहनेवाले बड़े अमीर थे। जान मिल्टनने केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें शिक्षा सम्पूर्ण करनेके पश्चात् "कोमस" आदि पांचकाव्य अंग्रेजी पद्यमें रचकर प्रसिद्धि पाई। स० ई० १६३७ में इन्होंने फ्रान्स तथा इटेलीकी विलायतोंमें यात्रा की, स० ई० १६४३ में इङ्गलैंड आकर अपना विवाह किया, स० ई० १६५२ में इनकी मेम तीन कन्यायें छोड़कर मरगई एवं इनको दूसरी शादी करनी पड़ी। दो वर्ष पीछे इनकी दूसरी मेम भी चलबसी। एवं इनको कुछही दिनोंबाद तीसरी शादी करनी पड़ी। बादको यह अंधे होगये, उसी हालतमें इन्होंने "पैरेडायज् लास्ट" नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी काव्य रचकर स. ई. १६६७ में छपवाया।

उक्त काव्यको मिल्टन बोलते गये थे और उनकी बेटियें लिखती गईं थीं। और उसके छपनेपर मिल्टनकी आंखें दैव कृपासे खुलगयी थीं। नेत्रपाकर मिल्टनने "पैरेडायज़रीगेन्ड" नामक काव्य रचा। मिल्टनकी कविता अत्यंत कठिन है और उसमें ग्रीक तथा रोमन कथान्तरोंका समावेश बहुतायतसे हुआ है। अंग्रेजी कवीश्वरोंमें ये सर्वोत्तम गिने जाते हैं। ये बड़े स्वरूपवान होकर सङ्गीत विद्याके पूर्ण ज्ञाता थे। स० ई० १६०२ में जन्म, स. ई. १६७४ में मृत्यु।

मीरजाफिर जटल्ली–येनारनौल (पटियाला) के रहनेवाले सैयद थे। मुगल सम्राट औरंगजेबके शहिजादे आजमशाहके पास बहुत दिनोंतक नौकर रहे थे। फार्सी उथा उर्दूमें प्रहसन युक्त कविता करते थे। रेखताओंमें उर्दू शाहिनामा इन्हींका बनाया हुआ है। अन्तमें जब फर्रुख सियर दिल्लीके तख्तपर बैठा तो उस अवसर पर इन्होंने एक निन्दायुक्त कविता की थी निदान बादशाह फर्रुखसिअरने इनका सिर, धड़से जुदा करवा दिया। ज़टलका फ़िये मिलाना ऐसी तुकें मिलानेको कहते हैं कि जिनके सुननेसे हसा आवे।

मीराँबाई–जोधपुर राज्यान्तर्गत भैड़तेके राव रतनसेनकी बेटी थी और राणा साङ्गाके कुँवर भोज राजको वि० सं० १५७३ में विवाही गईं थी। भोज-

राज कुँवरपनेहीमें सिधारकर मीराँको विधवा करगये थे। मीराँके नैहरका कुल वैष्णव था और मीरां भी बालकालहीसे गिरधर नागर (श्रीकृष्ण) की भक्तिमें लवलीन थी,इसी लिये उसको पतिवियोगका भी कुछ दुःख नहीं हुआ था। विधवा होनेके बाद मीरां अपना समय भगवद्भजन तथा साधु सेवामें सहर्ष बिताती थी लेकिन इन बातोंसे लोकनिंदा होते देख मीराँके देवर रतनसिंह, विक्रमाजीत तथा उदयसिंहने जो राणा साङ्गाजीके बाद क्रमशः चित्तौड़ (मेवाड़) की गद्दीपर विराजे, मीराँको अनेक प्रकारसे रोका लेकिन उसने एक न माना। अन्तमें सुसरालियोंके उत्पीड़नसे दुःखी होकर मीराँ अपने नैहरको मैड़ते चलीगई और वहांसे कुछ दिनों पीछे वृन्दावनको सिधारी और कईवर्षतक ब्रजमें नितनये पद बना २ कर गाती हुई विचरती रही। वृन्दावनमें अकबर बादशाह तानसेनको साथलेकर मीराँके दर्शनको गये थे। पश्चात् मीराँ वृन्दावनसे द्वारिकापुरीको पधारी और वहां रणछोड़जीकी सेवामें रहने लगी। इधर मेवाड़में मीराजीके चलेजानेके बाद कई अकाल पड़े और दिल्लीके मुगल बादशाहने कईदफे चढ़ाई की जिससे प्रजा तथा राणा तंग आगये। यह देख सब लोगोंने राणासे कहा कि यह दैवकोप यहांसे मीरांके दुःखी होकर चले जानेसे है। निदान राणाने मीरांको लानेके लिये ब्राह्मणोंको द्वारिका भेजा ब्राह्मणोंने द्वारिका पहुंच मीरांसे राणाका सन्देशा कहा लेकिन उसने जानेसे इन्कार किया तब तो ब्राह्मणलोग मीरांके द्वारपर अन्नजलत्याग धरना देकर बैठे। इससे अत्यंत दुःखी होकर मीराने ब्राह्मणोंको चलनेकी आज्ञा दी और रणछोड़जीके मंदिरमें जाकर निम्नस्थपद गाया।

पद—ज्यों जानों त्यौं लीजे स्वजनसुधि ज्यौं जानों त्यौं लीजे।
तुम बिनु मेरे और न कोऊ कृपा रावरी कीजै।
बासा भूषण नैन न निद्रा तन तौ पल पल छीजै।
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर मिल बिछड़न नहिं कीजै।

जब मीरांको बहुत देर हुई तब ब्राह्मणोंने मन्दिरमें जाकर देखा लेकिन मीरांको कहीं नहीं पाया, मीरांकी साडी रणछोडजीमें लिपटी पाई, मीरां तौ लीन हो गई। गिरधरलालजीने अपने भक्तकी करुणामय विनती सुनकर उसको अपना लिया। रागगोविन्द तथा जयदेवकृत गीतगोविन्दका भाषा पद्यमें तिलक मीरांने रचा था

जो अब नहीं मिलते। सैकडों फुटकर पद मीरांके रचे देश भरमें प्रसिद्ध हैं और भक्तिभावसे भरपूर हैं। चित्तौड़में मीरांका बनवाया गिरधर लालजीका बहुत बड़ा मन्दिर अबतक विद्यमान है, लेकिन मूर्तिशून्य है। खोज करनेसे मालूम हुआ कि मानसिंह कछवाहेने जब चित्तौड़ विजय किया था तो वह गिरधरलालजीको आमेरमें ले आये थे और वहां जगतप्रभूनामसे बड़े भारी मंदिरमें उनको पधराया था। कर्नैल टाड साहबने राजपुतानाके स्वरचित अंग्रेजी इतिहासमें रानाकुम्भूके मन्दिरके पास चित्तौड़में मीरांबाईका मन्दिर देखकर भ्रमसे यह लिख दिया है कि मीरांबाई कुम्भूकी रानी थी।

मुनीश्वरजी (गणक)—इनके पिता रङ्गनाथजी सूर्य्यसिद्धांतके टिप्पणीकार एलिचपुरान्तर्गत दधिनामक ग्रामके वासी थे। दूसरा नाम इनका विश्वरूपकर था, वि० सं० की १७ वीं शताब्दीके भीतर इनका समय है। निष्टार्थदूती नामक लीलावतीकी व्याख्या, मरीचि नामक सिद्धांत शिरोमणिकी व्याख्या, पाठीसार और सार्वभौम इनके रचे ग्रन्थ हैं।

मुबारिक कवि—ये भाषा कवि बिलग्राम जि० हरदोईके रहने वाले थे। जातिके मुसल्मान थे और वि० सं० १६५० में विद्यमान थे। अर्बी, फारसी, संस्कृत तथा हिंदीके अच्छे विद्वान् थे। अलक (ज़ुल्फ) शतक तथा तिलक शतक इनके रचे ग्रन्थोंके दोहे देखने लायक हैं।

मुर्शिद कुलीखां (बङ्गालका नवाब)—यह प्रथम ब्राह्मण था पीछे मुसल्मान होगया था। फारिसमें गुलाम करके पाला गया था। औरंगजेबकी मृत्युकी साल स० ई० १७०७ में बंगालका नवाब था। इसने ढाकेसे राजधानी बदलकर अपने बसाये मुर्शिदाबादमें कायम की थी। २१ वर्ष राज्य करके अपने जँवाईको बङ्गालका राज्य दे मरा।

मुरारी मिश्र—अनर्घराघवकाव्यकी प्रस्तावनाके अनुसार यह मौद्गल्य गोत्रोत्पन्न भट्ट वर्धमानके पुत्र थे। कई मीमांसा ग्रन्थ तथा अगत्व निरुक्त प्रायश्चित्त मनोहर और अनर्घराघव काव्य इन्होंने रचे थे। प्रसिद्ध पंडित कुमारिल भट्ट इनके गुरु थे।

मुहम्मदसाहब (मुसलमानोंके पैगम्बर)—शहिरमक्का (अरब) के एक सभ्य वंशमें अबदुल्लाके घर सं० ई० ५७० में जन्मे । माता पिताकी मृत्यु बचपनहीमें होजानेके कारण चचा अबूतालिबने आपको पाला था । १५ वर्ष की उम्रतक आप भेड़ें चराते रहे थे तथा शुतुर्बानी करते रहे थे । २५ वर्षकी उम्रमें आपने ४० वर्षकी खदीजा नामकी एक अमीर विधवासे शादी की । जो ६५ वर्षकी उम्रमें कई बच्चे छोड़कर मरगई और इतना धन दौलत छोड़ गई कि आप मक्कामें सबसे बड़े अमीर होगये । आपको स्वदेशकी दीन हालत देखकर बड़ा शोक होता था एवं आपने शोच विचार कर कुरान रचा और उपदेश करना शुरू किया । थोड़ेही दिनोंमें मक्का तथा मदीनामें बहुतसे लोग आपके मतानुगामी हुये । मक्कामें हरसाल एक मेला हुआ करता था ।

एक साल इस मेलेमें आपके अनुयायी बहुतसे आदमी मदीनासे आये और आपको अपने साथ ले गये । इसी सालसे मुसल्मानोंका सन हिजरी शुरू हुआ है । मदीना पहुंच आपने एक मसजिद तथा कितनेही मकान बनवाये और कई औरतोंसे शादी की जिनमेंसे एक ७ वर्षकी थी । पश्चात् आपने यूहूदियोंके शहरोंपर कई दफे हमले किये और तलवारके जोरसे उनको मुसल्मान किया और उनका अटूट धन लूटा । फिर आपने दूर २ बादशाहोंके पास मुसल्मान होनेके लिये पत्र भेजे । किसी औरने तो कुछ ध्यान नहीं दिया लेकिन मिश्रदेशके हाकिमने दो लौंडियें तथा एक खच्चर नजरके लिये भेजा । स० ई० ६३० में आपने शहिर मक्काको फतेह किया और वहांके ३६० मूर्तियोंके एक मंदिरको तोड़कर मसजिद बनाया तथा मक्काके रहनेवाले सब लोगोंको तलवारके जोरसे मुसल्मान करलिया। अपना महत्व प्रकट करनेके लिये आपने उंगलियोंसे पानी बहाया, चन्द्रमाके दो टुकड़े करके अपनी आस्तीनोंसे निकाले और जानवरों तथा दरख्तोंसे अपनेको पैगम्बर पुकरवाया । स० ई० ६४१ दिनकी बीमारीके बाद केवल फातिमा नामकी बेटीको छोड़कर कूंचकर गये । फातिमाकी शादी अलीके साथ हुई थी जिससे हसन और हुसेन दो बेटे थे । शाम तथा अरबका सर्वत्र देश और मिश्र देशका अधिकांश आपके सामने मुसल्मान होगया था ।

मुहम्मदगोरी—देखो शहाबुद्दीन ।

मुहम्मदबहादुरशाह (दिल्लीके सबसे पिछले मुगलबादशाह)—निज पिता अकबरशाह द्वितीयके बाद स० ई० १८३७ में दिल्लीके तख्त पर बैठकर नाममात्रके बादशाह हुये। सन ५७ के गदरमें इन्होंने भी बागियोंका साथ दिया और अपने नामका सिक्का चलाया। उपद्रव शान्त होने पर बृटिश गवर्नमेण्टने इनका मुल्क खालसा कर लिया और १२ लाख रुपयेकी वार्षिक पेन्शन देकर रंगून मुल्क ब्रह्मामें कैद करके भेज दिया। इनकी दो बेगमें एक शहजादा तथा एक पोता इनके साथ गया और इनके दो शहजादों तथा एक पोतेको लार्ड कैनिङ्ग वायसराय हिन्दने गोलीसे मार दिया। मुहम्मद बहादुरशाह फार्सी तथा उर्दूमें कविता भी करते थे और उसमें अपना नाम जफर रखते थे। इनका बनाया दीवान दिल्लीमें छपा था।

मूककवि सार्वभौम—ये द्रविडके वासी जन्मांध दरिद्री थे, जब इनके निर्वाहका ठिकाना कहीं नहीं लगा तो काञ्चीपुरीमें कामाक्षी देवीके मंदिरमें जा पड़े। इस मंदिरमें विद्याकी इच्छासे एक ब्राह्मण बहुत दिनोंसे तप करता था, एक दिन अर्द्धरात्रिके समय भगवतीने वेश्याके रूपमें प्रकट होकर कहा "वरमाँग"। विद्यार्थीने भगवतीको वेश्या समझ अपने तप बिगड़नेके भयसे कहा कि यदि तुम मेरी इष्ट देवी भगवती हो तो मुझे उसी स्वरूपसे दर्शन दो। देवी यह सुन तुरन्त लौट पड़ी और रास्तेमें उस मूक अन्धेको पड़ा देख ठोकरसे जगाया। मूक जब जागकर चिल्लाने लगा तो देवीने उसके मुंहमें पीक डाल दी जिसके प्रभावसे वह बड़ा कवीश्वर होगया। स्वा० शंकराचार्यने सौन्दर्य लहरीके निम्नस्थ श्लोकोंमें इस कथाका उल्लेख किया है:—

श्लो०—कदा काले माता कथय कलितालक्तकरसं
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्॥
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया।
यदा दत्ते वाणीं मुखकमलताम्बूलरसताम्॥

इनका जीवनकाल वि० सं० की ७ वीं शताब्दीके लगभग प्रतीत होता है। "पंचशती" इनका रचा ग्रन्थ है।

मूसा-(युहूदियोंके पैगम्बर)—हजरत ईसासे पहिले भूमण्डलके सर्वत्र पश्चिमी भागमें आपका मत प्रचलित था।स० ई० से प्रायः दो हजार वर्ष पहले इबराहीम-के वंशमें आपका जन्म हुआ । बादको हजरत ईसा भी इसी वंशमें पैदा हुये । इबराहीम इसराईल जातिके थे जो किसी आपत्तिके कारण अरबसे मिश्रमें जा बसे थे । पश्चात् जब इसराईलोंकी सन्तति गिनतीमें बहुत बढगई तो मिश्रके बादशाहने हुक्म दिया कि उनके शिशु नष्ट कर दिये जाया करें । इसी आज्ञा प्रचारके समय-में उमराके घर मूसा जन्मे माताने बादशाहके भयसे इनको सन्दूकमें बन्द करके नदीमें बहादिया । दैवयोगसे सन्दूक बादशाहकी बेटीकी नज़र पडा, उसके कोई बच्चा नहीं था । एवं उसने इनको पाल लिया और मूसा नाम रक्खा । शब्द मूसा-के अर्थ इबरनी भाषामें पानीसे निकाले हुयेके हैं । बड़े होकर मूसाने मिश्रके किसी मनुष्यको मार डाला और बादशाहके भयसे जङ्गलको भाग गये जहां किसी किसानके ढोर चराते रहे । कुछ दिनों बाद उसी किसानकी लड़कीसे आपकी शादी होगई । पहिले बादशाहके मरनेपर जब फ़िरौन मिश्रके तख्तपर बैठा तो मूसा भी वापिस आये, फ़िरौनसे इनका इतना मेल मिलाप बढा कि उसने उनको अपना वजीर बना लिया । ऐसे उच्चपद पर भी पहुँचकर इनको सदैव शोक रहता था क्योंकि बादशाहकी तरफसे इसराईल जातिपर बड़ा अत्याचार करनेका हुक्म था । जब इनका कुछ वश न चला तो इन्होंने बादशाहसे यह हुक्म दिलवा दिया कि इसराईल लोग मिश्रसे निकल जावें । यह आज्ञा पाय मूसा कई लाख इसराईलोंको साथ लेकर अरबकी तरफ चलते हुये । रास्तेमें जब लालसागर तक पहुंचे थे कि फ़िराने कुछ सोच विचार इन सबके पकड़नेको सेना लेकर पीछे आ धमका मगर ईश्वरकी कृपासे सेना सहित नीलनदीमें डूब गया और मूसा इसराईलों सहित पार उतर गये। अपने जीवनका शेषभाग मूसाने इसराईल जातिके सुधारने और धर्मोपदेश द्वारा अपना मत फैलाने तथा युहूदियोंकी धर्म पुस्तक जबूरके रचनेमें बिताया ।

मेटकाफ़-(सर चार्लस मेटकाफ़-Sir Charles Metcalfe) इनके बाप ईस्ट-इन्डिया-कम्पनीके डैरेक्टर थे । ये १५वर्षकी उम्रमें क्लार्क होकर हिंदोस्तानको आये और ८ वर्षबाद तरकी पाकर लाहौर दर्बारमें रेजीडेन्ट नियत होकर गये । स० ई० १८१९ में ईस्ट-इन्डिया-कम्पनीके मुलकी तथा गुप्त विभागके मन्त्री नियत

होकर कलकत्ते आये और एक वर्ष बाद निजाम हैदराबादके दर्बारमें रेजीडेन्ट नियत होकर चले गये। इसीसाल पिताका देहांत होनेपर बैरनकी उपाधि इनको मिली। स० ई० १८३४ में पश्चिमोत्तर देशके प्रेसीडेन्ट (लफ्टिनेन्ट गवर्नर) नियत होकर आप आगरे आये। पश्चात् कुछ कालतक गवर्नर जनरल हिंदकी जगहपर आपने काम किया। स० ई० १८३९ में आप जमाइका द्वीपकी गवर्नरीपर गये और स० ई० १८४२ में कनाडाके गवर्नर जेनरलका ओहदा आपको दिया गया। स० ई० १९५३ में पेनशन पाकर इङ्गलैंडमें आये और उचित रीतिसे राजसेवा करनेके इनाममें प्रिवी-कौंसलके मेम्बर बनाये गये। स० ई० १७८५ में जन्मे, स० ई० १८६४ में मरे।

मेस्मरसाहब (F.A Mesmer.) ये जर्मनीके रहनेवाले थे। वायना विश्व-विद्यालयमें इन्होंने शिक्षापाकर एम्. डी. का इम्तहान पास किया था। ग्रहोंके फलकीभी एक पुस्तक इन्होंने रची थी पश्चात् आत्मविद्याका इनको अनुभव हुआ जिसको मृतक हालतसे जिलाकर इन्होंने प्रगट किया और जो इनके नामने मेसमेरिज्म कहलाई। मेसमेरिज्म पर भी इन्होंने एक पुस्तक रची थी। स्पर्शसे बीमारोंको चंगाकरनेकी विद्याभी जिसको मैगनेटिज्म कहते हैं इन्होंने प्रकट की थी और इसपरभी एक ग्रंथ रचा था। पश्चात् इन्होंने जर्मनी, स्वीटज़रलैंड तथा फ्रांस इत्यादि देशोंमें भ्रमणकरके मैगनेटिज्मके द्वारा अनेक रोगियोंको चंगा किया। स० ई० १७३४ में जन्म, स० ई० १८१५ में मृत्यु।

मैकडोनेल–(सर एन्टोनी मैकडोनेल, जी० सी० एस० आई–Sir Antony Macdonnel, G. C. S. I.) सिविल सर्विसकी परीक्षा इङ्गलैंडमें उत्तीर्ण करके मैकडोनेल साहब स० ई० १८६५ में हिंदोस्तानको ज्वायन्ट मैजिस्ट्रेट नियत होकर आये। क्रमशः उन्नति करके मध्यप्रान्त तथा ब्रह्म देशके चीफ कमिश्नर हुये। पश्चात् बंगालके लफ्टिनेंट गवर्नरका पद पाया और स० ई० १८९४ में पश्चिमोत्तर व अवध देश) युक्तप्रान्त) की लेफटिनेंट गवर्नरीपर आये आप जिन २ सूबोंमें रहे वहां सर्व प्रियता प्राप्त करनेमें आपने अनेक अंशोंमें सफलता पाई। अपने गवर्नमेन्टकी प्रचलित राजनीतिका अनुसरण इस प्रकारसे किया कि ऐङ्गलो इन्डियन समाज, भारतकी प्रजा तथा गवर्नमेंट सबही आपसे प्रसन्न रहे। आपके शासनकी ५ वर्षकी अवधि पूरी होनेपर पश्चिमोत्तर देशकी प्रजाने आपको १ वर्ष और

ठहरानेके लिये गवर्नमेंटसे प्रार्थनाकी थी जो स्वीकार हुई । बम्बई इत्यादि सूबोंकी प्रजाने भी इसबातका आन्दोलन कियाथा कि सर ऐन्टौनी उनके सूबेके गवर्नर नियत किये जावें लेकिन सर ऐन्टोंनी एक थे और भारतके सूबे अनेक । भारतके अन्य सूबोंकी हालत देखते यह कहाजा सकता है कि आपने पश्चिमोत्तर देशकी प्रजाको प्लेगसे बचानेमें कोई, त्रुटि नहीं की । जहां कहीं प्लेगके अप्रबन्धसे उपद्रवकी अनी आई आपने स्वयं जाकर शान्ति स्थापनकी अन्य सूबोंकी अपेक्षा आपका अकाल प्रबन्ध अधिक प्रशंसनीय रहा। अनेक अत्याचारी देशी व फिरङ्गी कर्मचारियोंका भेद खोलकर आपने उचित दण्ड दिया । ऐसा करनेसे समस्त ऐङ्गलो इण्डियन समाज आपके विरुद्ध होगया था और भांति २ के कटाक्ष करने लगा था लेकिन आपने निर्भय होकर उचित् कार्य सदैवही किया । यद्यपि पश्चिमोत्तर देशकी गवर्नमेंट अनेक वर्षोंसे जानती थी कि यहांकी भाषा हिंदीहै लेकिन मुसलमानों तथा ऐङ्गलो इण्डियन समाजके भयसे किसीको न्यायकरनेका साहस नहीं होता था । सर ऐन्टोंनीने दृढ चित्त होकर उर्दूके साथ २ प्रजाकी मातृभाषानागरीका सर्कारी कागजोंमें व्यवहार करनेका हुक्म देकर प्रजाको कृत कृत्य करादिया । पश्चिमोत्तर देशके पुलिस तथा शिक्षा विभागका संशोधनभी आपके वक्तमें खूब होगया । आपके बनाये भूमिकर सम्बन्धी आईनभी बम्बई आदि अन्य सूबोंके आईनसे प्रजाके लिये दशगुणें कम हानि कारक हैं । प्रजाके भ्रम और संदेहको मिटाना आप अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे । ३६वर्षतक इस देशमें कठिन परिश्रम करके स० ई० १९०१ की साल सर ऐन्टोंनी पेन्शन लेकर इङ्गलेंड को पधारे और प्रिवीकौंसलके मेम्बर हुये लेकिन् कुछही दिनोंबाद आयर्लेण्डके सहकारी मंत्रीका पद आपको दियागया । पश्चिमोत्तर देशके रईसों तथा प्रजागणने चन्देसे लखनऊ आदि शहरोंमें आपके स्मारकचिह्न स्थापन किये और हिंदोस्तानके सब समाचार पत्रोंने एकस्वरसे आपको प्रजाहितैषी गवर्नर कहकर पुकारा ।

मैकाले (टामस वैबिङ्गटन लार्ड मैकाले–Thomas Babington Lord Macaulay) ये स्काटलैंडके एक प्राचीन प्रतिष्ठित वंशमें स० ई० १८०० की साल जन्मे । बचपनहीसे इनकी स्मरण शक्ति विलक्षण थी । पाठ एक दफे पढ़नेहीसे याद होजाता था और कविता ७ वर्षकी उम्रसे करने लगे थे । एम. ए. को परीक्षाके क्म्रिजकालिजसे इन्होंनें स० ई० १८२६ में उत्तीर्ण की थी, पद्यरचनामें कई

दफे इनाम पाया था, । पश्चात् वकालतका इम्तिहान पास किया था और पार्लिया- मेंटके मेम्बर होकर लार्डकी उपाधि पाई थी। स० ई० १८३४ में सुप्रीमकौंसल कलकलत्ताके मेम्बर होकर हिंदोस्तानको आये और बहुत धन उपार्जन करके दो वर्ष पीछे इङ्गलैंडको वापिस गये और फिर पार्लियामेंटके मेम्बर हुये। थोडे दिन बीमार रहकर स० ई० १८५९ में मरे। अंग्रेजीमें इनके रचे बहुतसे ग्रंथ हैं जिनमेंसे एक इङ्गलैंडका इतिहास भी है। ये बडे विद्वान तथा विचारशील पुरुष थे, उन्न- तिके पक्षपाती थे और निर्भय होकर: उन बुराइयोंकी जो बड़े २ घरानोंमें पाई जाती हैं निन्दा करते थे।

मैक्समुलर–(फ्रेडरिकमैक्समुलर Fredrich Mazmuller) इनकी जन्म भूमि जर्मनीमें थी और वहां इनके बाप किसी कुतबखानेके दारोगा थे। इन्होंने बार्लिन तथा पेरिसमें रहकर संस्कृत पढ़ी थी और स० ई० १८४६ में इङ्गलैंडमें जा बसे थे। पश्चात ईस्ट–इन्डिया कम्पनीने ऋग्वेदको शृङ्खलाबद्ध करके छपवानेका काम इनको सौंपा और आक्सफोर्ड यूनीवार्सिटीने इनको नवीन भाषाओंका प्रोफेसर नियत किया। ये अनेक भाषाओंके विद्वान् होकर संस्कृतके बड़े भारी पंडित थे। हिंदुओं तथा बौद्धोंके अनेक धर्मग्रंथोंका अंग्रेज़ी अनुवाद इन्होंने कियाथा। ऋग्वे- दका भी अंग्रेजी अनुवाद किया था कैम्ब्रिज तथा एडिन्वरो की यूनीवर्सिटीज़ने एल. एल. डी. की उपाधि इनको दी थी। स्वा० दयानन्द सरस्वती इनको मोक्षमूल कहा करते थे। स० ई० १८२३ में जन्म, स० इ० १८९८ में मृत्यु।

मैल्कम–(सर जान मैल्कम–Sir John Malcolm)–ये युवावस्थामें इंग- लैंडसे हिंदोस्तानमें आकर बृटिश सेनामें नौकर हुये। स० ई० १८०२ से १८०९ तक शाह ईरानके दर्बारमें बृटिश गवर्नमेंटकी तरफसे रामदूतके पदपर नियुक्त रहे। पश्चत् इंगलैंडको वापिस गये और पार्शिया (ईरान) का विश्वासनीय इतिहास लिखा जो स. ई. १८१२ में छपा। स. ई. १८१७ में सेनापति नियत होकर फिर आप हिंदोस्तानको आये और मरहटों तथा पिन्डारियोंको अनेक युद्धोंमें परास्त किया। स. ई. १८२१ में इंगलैंडको वापिस गये और स. ई. १८२७ में बम्बईके गवर्नर नियत होकर तीसरी दफे हिन्दोस्तानमें आये। स. ई.. १८३– में अन्तिम दफा इंग्लैंडको गये. और पार्लियामेंटके मेम्बर बनाये गये। लार्ड क्लायवका

जीवनचरित तथा हिंदोस्तानका इतिहास भी इन्होंने अंग्रेजीमें लिखा था। स. ई. १७६९ में स्काटलैंडमें जन्मे, स. ई. १८३३ में मरे।

मोहनदास (भाषाकवि)–यह नैमिषारण्यके समीप कुसरथ ग्राममें आहिवान कायस्थ श्रीयादवके घर जन्मे थे। "स्वरोदयपवन विचार" नामक ग्रन्थ इन्होंने स. ई. १६३० की साल गंगातट कन्नौजमें सम्पूर्ण किया था। उक्त ग्रन्थमें योग साधनेकी क्रिया है और स्वरज्ञान, आसन तथा कुम्भक आदि प्राणायामोंका वर्णन है।

मृगनयनी–ये गुजरातके राजाकी कन्या ग्वालियरके तोमरवंशी राजा मानसिंहकी रानी थी। स. ई. १६ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुई। खङ्गराय इतिहासकार जो मुगल सम्राट् शाहजहांके वक्तमें हुआ लिखता है कि "रानी मृगनयनी राजा मानसिंहकी २०० रानियोंमें सबसे अधिक रूपवती तथा सुन्दरी थी, सङ्गीत शास्त्रमें बड़ी निपुण थी और संकीर्णरागतो उसकी समान कोई गाता बजाता था ही नहीं"। रानी मृगनयनीके निकाले ४ प्रकारके राग जो गुजारी, वहीलगुजारी, मालगुजारी और मंगल गुजारी कहलाते हैं दाक्षिण देशमें खूब प्रसिद्ध हैं।

म्हात्रे(मिष्टर गणपतिराव काशीनाथ म्हात्रे प्रसिद्ध मूर्तिकार) ये बम्बईके रहनेवाले सोमवंशी क्षत्री हैं। इन्होंने बम्बईके सर जमशेदजी जीजी भाईके कारीगरी स्कूलमें चित्रकारीकी शिक्षा पाई है और घर पर बैठकर उस चित्रकारीके आधारपर मिट्टी तथा पत्थरकी मूर्तियें बनाना सीखा है। इनकी कारीगरीमें कमाल यह है कि इनकी बनाये बस्ट तथा मूर्तियें केवल असलके चित्रसे ही नहीं मिलते हैं वरन उनके आकृतिसे भी। जैसे फोटोमें मनुष्यका हाव भाव सबही मालूम होता है वैसे ही इनकी बनाई मूर्तियोंमें भी। मंदिराभिमुख, सरस्वती तथा भिल्लनी आदिकी इनकी बनाई पूरे कदकी मूर्तियोंके देखनेसे सच्ची स्त्रीका भ्रम होता है। बम्बईमें अनेक पार्सियोंके पाषाण बस्ट जो इन्होंने बनाये हैं बिलकुल असलके मुताबिक हैं। अहमदाबादमें महारानी विक्टोरियाके स्मारक फंडमेंसे श्रीमतीकी मूर्ति बनानेके लिये इन्हें १४हज़ार रुपयेमें ठेका दिया गया था।

इनकी बनाई मंदिराभिमुखकी मूर्तिको बम्बईके कारीगरी स्कूलके प्रिंसिपेलने १२००) रु. में खरीदा था । दूसरी मूर्ति सरस्वतीकी तैयार करके इन्होंने पैरिस की प्रदर्शिनीमें भेजी थी जिसके बदलेमें मूल्यके सिवाय वहांके कारीगरोंके सार्टि-फ्किटोंका इनके पास ढेर लग गया । तीसरी मूर्ति भिक्षनी स० ई० १९०२ के दिल्ली दर्बारकी प्रदर्शिनीके लिये इन्होंने तैयारकी थी जिसको देख विलायती कारीगरोंके सिवाय लार्ड कर्जन तक प्रसन्न हुये थे । सर जार्जबर्ड वुड (Wood) जो देशी कारीगरीके नामी अनुभवी हैं, लिखते हैं कि " मिस्टर म्हात्रेका मूर्ति बनानेका काम अपूर्व है" । आपका जन्म स० ई० १८७६ में हुआ है और आप नाम मात्रको अंग्रेजी तथा देशभाषा भी पढ़े हैं ।

यदु (यादवोंके मूलपुरुष)-राजा ययाति इनके पिता थे । ये ऐसे पराक्रमी हुये कि इनके वंशज इनके नामसे यादव (यदुवंशी) कहलाये । श्रीकृष्ण जी इसी यदुवंशमें हुये । कौरवोंके मूल पुरुष राजा पुरु इनके सहोदर थे । यदुने कभी राज्य नहीं किया और इनके वंशजोंमें भी कभी कोई राजा नहीं हुआ । प्रसिद्ध नीतिज्ञ पंडित शुक्राचार्य इनके नाना थे ।

ययाति–महाभारत आदि पर्व १५ अध्यायमें लिखा है कि " राजा ययाति चंद्रवंशके छठे राजा थे । राजा नहुष इनके पिता थे । राजा पुरूरवा इनके पर-दादा थे । यादवोंके मूल पुरुष राजा यदु और कौरवोंके मूल पुरुष राजा पुरु इन्हीं-के दो परम पराक्रमी पुत्र थे ।" हरिवंश पुराणमें लिखा है कि "राजा ययातिने इन्द्रसे स्वर्गका रथ प्राप्त करके ६ दिनमें सर्वत्र पृथ्वी तथा देवताओंको जीत लिया था " । राजा ययातिका बनाया एक तालाब अबतक महोबा (बुंदेलखण्ड) में मौजूद है । कानपुरसे ४ मील पूर्व जाजमऊमें गंगातटपर एक टीला है जिसको राजा ययातिका क़िला कहते हैं । राजा ययाति की २० वीं पीढ़ीमें राजा दुष्यंत हुये जिनके पुत्र भरतके नामसे इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा । राजा भरतके प्रपौत्र राजा हस्तीने हस्तिनापुर बसाया था । राजा हस्तीकी १४ वीं पीढ़ीमें कौरव पांडव हुये । वाल्मीकीय रामायणके लेखानुसार महाराज रामचन्द्रके वृद्धप्रपितामह का नाम भी ययाति था । इनकी गणना भी सूर्य वंशके प्रतापी नरेशोंमें है ।

यवनाचार्य–देखो पिथागोरस ।

याकूब—ये बाबा आदमके पुत्र सामकी ११ वीं पीढ़ीमें हुये। इसहाक इनके बाप थे और इबराहीम इनके दादा। हज़रत मूसा तथा हज़रत ईसा पश्चात् इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुये। याकूबका दूसरा नाम इसराईल था। इनके १२ बेटे थे जिनमेंसे सबसे छोटा यूसुफ था। पश्चात् इन्हीं बारहों बेटोंकी औलाद बहुत बढ़ जानेपर १२ जातियोंमें विभागित होगई और "बनी इसराईल" नामको प्राप्त होकर अरब देशमें रहने लगी। अरबमें एकदफे घोर अकाल पडा, उन दिनों याकूबका सबसे छोटा बेटा यूसुफ़ मिश्रमें वजीर था। निदान यूसुफ़ने सब बनी इसराईलोंको मिश्रमें बुलालिया। ४३०. वर्ष तक मिश्रमें रहनेके बाद जब बनी इसराईल तादादमें अत्यंत बढ़गये तो मिश्रके हाकिमने उनको अपने मुल्कसे निकाल दिया।

४० वर्षतक इसराईल लोग अरबके जंगलोंमें घूमते रहनेके बाद शहर, किनआनमें बसरहे। पश्चात् हजरत मूसाने इसराईलोंको यहूदीधर्म ग्रहण कराया(देखो मूसा)। स० ३० से० १०९ वर्ष पूर्व इसराईलोंने इबरानी (हेबरू) राज्य स्थापन किया जिसके दूसरे बादशाह हजरत दाऊद हुये।

यास्कमुनि—(वेदाङ्ग निरुक्तके कर्ता) निरुक्तमें वेदोंके कठिन शब्दों तथा मंत्रोंकी व्याख्या है। यास्कमुनि पारस्कर देशके रहनेवाले यस्कगोत्रोत्पन्न यजुर्वेदी थे। वैशम्पायन ऋषि इनके गुरु थे और तैत्तरीय इनके शिष्य थे। यास्कमुनि अपने ग्रन्थोंमें लिखते हैं कि "यास्कनामधारी चार और ग्रन्थकार मुझसे पाहिले हो चुके हैं"। निम्नस्थ ग्रन्थ यास्कमुनिके रचे मिलते हैं:—"प्रदप्रकृतिसंहिता" जो शौनकीय ऋक्प्रातिशाख्यके सूत्रोंका आशय लेकर बनाई गई है। और सामवेदीय श्रौतसूत्र। यूरूपीय विद्वानोंके मतानुसार इनका समय स० ई० से प्रायः ९०० वर्ष पूर्व है।

याज्ञवल्क्यऋषि—मैत्रेयी तथा कात्यायनी इनकी दो स्त्रियें थीं। "शुक्ल यजुर्वेदकी संहिता" तथा "याज्ञवल्क्यस्मृति" नामक धर्मशास्त्रका ग्रन्थ इनके रचे हुये हैं। युरूपीयविद्वानोंके मतानुसार इनका समय स० ई० से दो हजार वर्ष पहिले है। महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें इनके उपस्थित होनेका वर्णन महाभारतमें है।

युधिष्ठर अन्ध—(कश्मीर नरेश)—यह राजा नरेन्द्रादित्यके पुत्र वि. सं. से १९३ वर्ष पहिले कश्मीरकी गद्दीपर बैठे। प्रथम तो कुछ दिनोंतक इन्होंने बड़ी सावधानीसे काम किया परन्तु बादको कुसंगतिमें पड़जानेके कारण विषयवासनामें फँसगये और लक्ष्मी मदसे मतवाले हो नीचोंके समान योग्य पुरुषोंका भी तिरस्कार करने लगे। इसी कारण श्रेष्ठपुरुषोंने इनको त्याग दिया और मंत्री लोग भी बिगड़ बैठे। आगे प्रशंसा और पीछे अनेक प्रकारकी निन्दा होनेके कारण इनका तेज नष्ट होगया। जब इनकी ऐसी दशा दूसरे राजाओंको मालूम हुई तो उन्होंने कश्मीरको आ घेरा। मंत्री लोग तो द्वेषी थे ही, एवं युधिष्ठर, शत्रुओंसे युद्ध करनेमें असमर्थ हुये और अवसर पाकर रानियों तथा दासियों समेत वनको भाग गये। इनकी आंखोंसे कुछ कम दीखता था इसी लिये द्वेषियोंने ठट्ठेमें उनका नाम अन्धयुधिष्ठर रख लिया था। इन्होंने ३० वर्ष राज्य किया। इनके चरितसे यह उपदेश मिलता है कि "समानदृष्टि होना योगीका महान् गुण है परन्तु राजाका समदृष्टि होना अपकीर्तिका हेतु होता है।"

युधिष्ठिर महाराजा (पांडव)—यह हस्तिनापुराधीश राजा पांडुके ज्येष्ठ पुत्र रानी कुन्तीके उदरसे थे। भीम तथा अर्जुन इनके सगे भाई थे और नकुल तथा सहदेव इनके सौतेले भाई रानी माद्रीके उदरसे थे। यह पांचों भाई पांडव कहलाते थे। द्रोणाचार्यने इनको अनेक शास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। कुछ दिनों बाद राजा पांडुके हाथसे ब्रह्महत्या होगई एवं राज्य अपने अन्धे भाई धृतराष्ट्रको सौंप वनको सिधारे। धृतराष्ट्रके कौरव नामक १०० पुत्र थे जो शुरूहीसे पांडवोंके साथ ईर्षा द्वेष रखते थे। जब युधिष्ठर बड़े हुये तो धर्म शास्त्रके आज्ञानुसार राजा धृतराष्ट्रने उनको युवराज नियत किया। इस बातपर दुर्योधन आदि कौरवोंने विरोध किया। निदान लाचार होकर धृतराष्ट्रने पांडवोंको १४ वर्षका वनवास और कौरवोंमें ज्येष्ठ दुर्योधनको युवराजका पद दिया। बनवासके दिनोंमें युधिष्ठिरके छोटे भाई अर्जुनने स्वयम्बर विधिसे द्रौपदीके साथ विवाह किया जिसको निजमाताकी आज्ञानुसार पांचों पांडवोंने अपनी पत्नी बनाया। १४ वर्ष व्यतीत होनेपर पांडवोंने अपने ससुर पंजाब नरेश राजा द्रुपदकी सहायता पाकर चचा धृतराष्ट्रसे राज्य बांट देनेकी प्रार्थना की। निदान कौरवों तथा पांडवोंके बीच राज्य बांट दिया गया जिसमें पक्षपात वश कौरवोंको बड़े

नगर तथा धनाढ्य बस्तियें मिलीं और पांडवोंको जंगल, ऊसर तथा उजाड़ खण्ड दिये गये । राज्य बँटजानेपर महाराज युधिष्ठिरने राज्य सिंहासनपर बैठकर यमुनातट इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया। इन्द्रप्रस्थके खंडहर अबतक दिल्लीसे १२ कोसपर दक्षिणकी ओर पड़े हैं। १६ वर्ष राज्य करनेके बाद महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया जिससे देश देशान्तरोंमें उनका यश विस्तृत हुआ । यह बात कौरवोंको बाण समान लगी। निदान उन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें एक द्यूतसभा स्थापन की और उसमें युधिष्ठिरको भी बुलाया । उक्त सभामें युधिष्ठिर अपना सर्वस्व हार गये और यदि धृतराष्ट्र तुरन्त आकर शान्ति स्थापन न करते तो घोर उपद्रव होजाता । पांडवोंको १२ वर्षके लिये फिर वनवासकी आज्ञा दीगई। वन-वासके दिनोंमें कौरवोंने पांडवोंको बधकरनेके अनेक उपाय किये लेकिन वह बचगये। १२ वर्ष बाद वनसे लौटकर पांडवोंने अपना राज्य मांगा लेकिन कौरवोंने इनकार किया । यही जड़ महाभारतके युद्धकी हुई जो कवि चन्दकृत पृथ्वीराज रासाके लेखानुसार १८४ गतकलीमें १८ दिन पर्य्यन्त कुरुक्षेत्रके मैदानमें हुआ । इस युद्धमें भारतके सब राजे महाराजे पांडवों तथा कौरवोंके तरफदार थे । अन्तमें सब शूरवीरोंका होम होकर भारतका प्राचीन गौरव नष्ट हुआ, कौरवोंकी हार हुई, और दोनों तरफके दलमेंसे केवल निम्नस्थ १० मनुष्य बचे।

पांचों भाई पांडव, छठे श्रीकृष्ण, सातवें सात्यकी, आठवें कृपाचार्य, नवें अश्व-त्थामा और दशवें कृतवर्म्मा । राजाओं महाराजाओंके वृहद्दलको तथा कुटुम्बि-योंको रणशायी हुए देख महाराज युधिष्ठिरके चित्तमें बैराग्यका उदय हुआ। परन्तु श्रीकृष्णजीके बहुत समझानेपर राज्य सिंहासनपर विराजे । पश्चात् महाराजने अश्व मेध यज्ञ किया और ३६ वर्ष पर्य्यंत भारतभूमिका एकछत्र धर्मराज्य किया। अन्तमें श्रीकृष्णजीके परलोकगमन करनेकी खबर पाकर महाराज अधीर हुए और निज पौत्र परीक्षितको राजपाट सौंप भाइयों तथा रानी द्रौपदी सहित दक्षिण, गुजरात, पंजाब तथा द्वारिका इत्यादिमें रोते हुए घूमते फिरे और हिमालय पर्वतपर जाकर बर्फमें सीज गये । लेख है कि वसूधाराके बर्फमे महाराज युधिष्ठिर चलते २ ही गुप्त हुए और गिरे नहीं । विक्रमी सम्वत्से पहले महाराज युधिष्ठिरके सम्वत्का

प्रचार था। "धृतिक्षमा" आदि धर्मके १० लक्षण महाराज युधिष्ठिरमें पूर्णरीतिसे विद्यमान थे, उन्होंने कभी झूंठ नहीं बोला और न कभी कोई धर्म विरुद्ध काम किया और इसीलिये धर्मावतार कहलाये। चंद्रवंशका राज्य महाराज युधिष्ठिरके पीछे केवल ३० पीढीतक चला। महाराज युधिष्ठिर युगान्तरके समयमें हुए थे। समयने उनके वक्तमें बहुत कुछ पलटा खाया था और रफ्ते २ मनुष्योंकी नियतमें जमीन आस्मानका अन्तर पड़ गया था।

उदाहरणके लिये उस समयका एक अभियोग महाभारतसे उद्धृत करते हैं।

"महाराज युधिष्ठिरके राज्यमें किसी मनुष्यने अपना पुराना मकान बेंचा मोल लेनेवाला जब मकान बनवाने लगा तो उसमे बहुतसा गडा हुआ धन मिला। तुरन्त उसने मकानके पूर्व स्वामीको खबर दी और कहा कि यह धन आपका है इसे लीजिये। पूर्व स्वामीने उत्तर दिया कि मैं मकान बेंच चुका इस कारण इस धनमें मेरा कुछ सत्व नहीं। इस प्रकार झगड़ते हुए वह दोनों न्यायालयमें आये, दोनों कहते थे कि पराये धनको हम नहीं छूसकते। समयके परिवर्तनकी परीक्षाके लिये महाराज युधिष्ठिरने उस धनको राजकोषमें रखनेकी आज्ञा दी और उन दोनोंसे कह दिया कि यदि तुममेंसे किसीको इस धनपर दावा हो तो फिर विचार करके आना। थोड़े ही वर्ष बाद वे दोनों हाजिर होकर प्रार्थी हुए। बेंचनेवाला कहता था कि मैंने मकान बेंचा है नकि उसमें गडा हुआ धन। मोल लेनेवाला कहता था कि जब मैं मकान मोल ले चुका तो बेंचनेवालेका उसकी किसी चीजपर कुछ अधिकार नहीं रहा।

रघुमहाराजा—(रघुवंशियोंके मूल पुरुष)—यह अयोध्याके सूर्यवंशी नरेश बड़े प्रतापी, यशस्वी तथा परोपकारी हुए हैं। सूर्यवंश इन्हींके नामसे रघुवंश कहलाया। इनके पिताका नाम दिलीप था। वाल्मीकीय रामायणके लेखानुसार यह सूर्य्यवंशके २६ वें राजा थे और महाराज रामचन्द्र इनसे १४ पीढी पीछे हुए। शि० पु० तथा भागवतके लेखानुसार यह महाराज रामचन्द्रके प्रपितामह थे।

रघुनाथदास बाबा (रामसनेही)—इनके बाप दुर्गाप्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण पचवारके पांडे पैंतपुर जिला सीतापुरके रहनेवाले थे। प्रथमहीसे महाराज

रामचन्द्रके चरणोंमें इनका अनुराग था । बड़े होकर इन्होंने अंग्रेजीसेनाके गोलन्दा-जोंमें नौकरी की और अयोध्यावासी बाबा मौनीदासको गुरू किया । नौकरीकी हालतमें भी यह सदैव हरि भजनमें लवलीन रहते थे आखिर बन्धन मुक्त हो अयोध्यामें चले आये और भजनके प्रभावसे प्रसिद्ध साधुओंमें गिने गये । अवध यात्राको आनेवाले राजे महाराजे, सेठ साहूकार अवश्य ही इनसे मिलते तथा भेंट पूजा देते थे । सदाव्रत इनके यहां जारी रहता था और कभी २ भण्डारा भी हुआ करता था । यह देशकालके अनुसार चलनेवाले चतुर पुरुष थे और अच्छे विद्वान् होकर भाषा कविता करनेमें निपुण थे । हरिनामसुमिरनी तथा विश्रामसागर इनके रचे ग्रंथ देखने योग्य हैं । वि. सं. १९३९ में ६६ वर्षकी उम्रमें इनका देहांत हुआ । इनके ५ भाई और थे जिनका वंश पैंतेपुरमें है । इनके कोई औलाद नहीं थी । स्त्री इनकी अयोध्याजीको इनके साथ आई थी और वहीं इनसे पहले सिधार चुकी थी । इनके विषयमें प्रसिद्ध है कि सरकारी नौकरीकी हालतमें राम भजनमें तत्पर रहनेके कारण कई दफे इनको पहरे पर जानेकी सुधि न रही तो स्वयं रामचन्द्र महाराजने इनके रूपमें उपस्थित होकर पहरा दिया था । भिङ्गा जिला बहरायचके राजाकी गढी को जब सरकारने फतेह किया था । तो उस अवसर पर भी यह अंग्रेजी फौजमें मौजूद थे । इसका उल्लेख निम्नस्थ कवित्तमें है:—

कवित्त ।

तोपैं अष्टपनी छपनी नौलक्खी लायके धाय चढ़ाइ ।
लै फुट फय्यट श्रृष्टिरणी जिन जायके बहुतक फैर कराई ॥
सूझत एक न एक कहैं रघुनाथ धुआंनभ मध्यमें छाई ।
गोलन मार गिराय गढ़ी भिङ्गा भुंगा सम देत उड़ाई ॥

इस सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि धावेका हुक्म पाते ही सब गोलन्दाज मोर्चेपर आ डटे केवल रघुनाथदास हरिभजनमें लवलीन होनेके कारण नहीं पहुँच सके । थोड़ी देर पीछे जब सब गोलन्दाज मारे गये तो फौजी अफसर राबर्ट साहबके देखते २ अकेले रघुनाथदासने गोलोंकी बौछारसे वैरीदलको परास्त किया । पश्चात् जब रघुनाथदास गैरहाजिर होनेके कारण डरते कांपते साहबके सन्मुख पहुंचे तो साहबने प्रसन्न होकर कहा कि "तुमने बड़ा बहादुरीका काम किया, हम

तुम्हारा दर्जा बढानेकी रिपोर्ट करेंगे"। यह सुन रघुनाथदासके चित्तमें बैराग्यका उदय हुआ और यह सब रामचंद्र महाराजकी कृपा समझ इस्तेफा देदिया। ऐसी बातोंके प्रसिद्ध होजानेसे बाबा रघुनाथ दासकी असाधारण प्रसिद्धि तथा मानता हुई।

रघुनाथ पुरुषोत्तम पराञ्जपे (प्रथम हिन्दोस्थानी सीनीयर रैंगलर)—यह पूनावासी एक कृषिकार महाराष्ट्र ब्राह्मणके पुत्र हैं। १८ वर्ष की उम्रमें बी० ए० पास करके इङ्गलैंडको गयेथे और वहां कई वर्ष पढ़कर इन्होंने गणितशास्त्रकी "सीनीयर रैंगलर" नामक अत्यंत उत्कृष्ट परीक्षा स. ई. १८९९ की साल प्रथम नम्बरसे पास की। इनसे पहिले किसी दूसरे हिन्दोस्थानीने यह परीक्षा नहीं पास की थी अतएव ये प्रथम हिन्दोस्थानी सीनियर रैंगलर हैं। इस परीक्षा पास करनेकी मुबारिकेबादीमें वायसराय हिन्दने इनके पिताके पास तार भेजाथा। सेन्ट जान कालिजकैम्ब्रिज तथा हिंदोस्थानकी अनेक यूनीवर्सिटीजने इनको अपना मेम्बर बनाया है। इनको ५००) रुपये से भी अधिक मासिकपर दूसरी नौकरी मिल सकती है लेकिन सजातीय पूना कालिजमें इन्होंने १०० रु० मासिक वेतनकी नौकरी स्वीकार करके देशहितका परिचय दिया है।

रघुनाथ शिरोमणि (नैयायिक पंडित)—यह एक दुर्दशाग्रस्त विधवा ब्राह्मणीके पुत्रथे। पिता इनका मुखभी नहीं देख सकेथे, भिक्षा करके माताने जैसे तैसे इनका लालन पालन कियाथा। बुद्धि इनकी बचपनहीसे विलक्षण थी। जयदेव मिश्रने इनको अपनी पाठशालाकी सबसे नीचीकी कक्षामें भरती किया था परंतु इन्होंने थोडेही दिनोंमें सब छात्रोंसे आगे निकलकर "शिरोमणि" उपाधि पाई थी। यह बङ्गालके रहनेवाले थे और वि.सं.की १२ वीं शताब्दीमें हुये। विद्या पढ़ जब यह स्वदेशको चलनेलगे तो मैथिलोंने इनकी सब पुस्तकें इस विचारसे चुरालीं कि उनके देशकी अपूर्व विद्या अन्य देशमें न पहुंचने पावे। लेकिन इनकी स्मरण शक्ति अद्भुतथी। निदान "न्याय चिन्तामणि" आदि ग्रंथ इन्होंने बङ्गवासियोंको कंठसे लिखाकर पढ़ाये। "न्याय चिन्तामणि" पर इनकी बनाई "दीधिति" नामक व्याख्या सर्वोत्तम है। उदयनाचार्यकृत "कुसुमाञ्जलि" पर तथा श्रीहर्षकृत "खण्डनखाद्य" परभी इन्होंने व्याख्यायें रचीथीं। "पदार्थतत्व निरूपण" नामक

ग्रंथभी इन्हींका विरचित है। बङ्गदेशमें इन्हींके उद्योगसे तर्कविद्या तथा न्याय शास्त्रने स्थिति पाई।

रघुनाथरावपेशवा—द्वितीय पेशवा बाजीराव १ इनके बाप थे और अन्तिम पेशवा बाजीराव २ इनके पुत्र थे। जब तृतीय पेशवा बालाजी बाजीराव दो बालक पुत्र माधवराव तथा नारायणरावको छोडकर मरगये तो उनके छोटे भाई रघुनाथरावने अपने भतीजोंके बड़े होनेतक राजकाज संभाला। बड़े होकर माधवराव पेशवा हुये लेकिन स० ई० १७७२ में अपुत्र मरगये और उनके छोटे भाई नारायणराव गद्दीपर बैठे। कुछही दिनों पीछे रघुनाथरावकी रानीने नारायणरावको विष खिलाकर खतम करादिया। नारायणरावके अपुत्र सिधारनेपर रघुनाथराव पेशवा हुये लेकिन ११ महीने बाद नारायणरावकी विधवाके गर्भसे माधवराव नारायण नामक पुत्रका जन्म हुआ। पेशवा रघुनाथरावने तो उसको हरामका ठहराया लेकिन पेशवाके मंत्री नाना फर्नवीसने फरासीसोंकी मददसे माधवराव नारायणको पेशवाकी गद्दी दिलवाई। जब माधवराव नारायण पेशवा हुये तो रघुनाथरावको बड़ी भारी पेन्शन दी गई और उन्होंने अपनी बाकी उम्र सूरतमें रहकर काटी। पेशवा रघुनाथराव बड़े उदार होकर गुणी जनोंके सन्मानी थे। कवि पद्माकरने निम्नस्थ कवित्त सुनाकर पेशवा रघुनाथरावसे १ लाख २५ हजार रुपये दान पाये थे:—

कवित्त

सम्पति सुमेरुकी कुबेरकी जो पावै कहूं तुरत लुटावै विलम्ब उर धारैना
कह पद्माकर सुहेम हय हाथिनके हलके हजारनका वितर विचारैना।
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव याही गजधोके कहूं तोहि देडारैना।
याते गौरी गिरिजा गजाननको गोयरही गिरिते गरेते निज गोदते उतारैना।

रघुराज सिंहदेव, जी. सी. एस. आई. (महाराजा रीवाँ)—आपके पूर्वज व्याघ्रदेव सुलंकी राजपूतने गुजरातसे आकर प्रायः स. ई. १०५७ में रीवाँ राज्य स्थापन किया था। व्याघ्रदेव बड़े प्रतापी थे। निदान उनके वंशज बघेल और उनका देश बघेलखण्ड कहलाया। व्याघ्रदेवके पुत्र करण देवने और बहुतसा मुल्क विजय किया और मंडलाकी राजकुंवारीसे विवाह करके बांधोग-

ढका किला पाया। करणदेवसे कई पीढ़ी पीछे विक्रमादित्य हुये जिन्होंने स. ई. १६१८ में रीवांबसाकर वहां किला बनवाया और उसको अपनी राजधानी बनाया। अनेक पीढ़ी पीछे स. ई. १८१२ में राजा जयसिंहके समयमें रीवां राज्यने बृटिश गवर्नमेन्टका आधिपत्य स्वीकार किया।

इन्हीं महाराज जयसिंहके पौत्र तथा महाराज विश्वनाथ सिंहके पुत्र महाराज रघुराज सिंहदेव स. ई. १८२३ में जन्मे और स. ई. १८३४ में रीवाँकी गद्दीपर बैठे। महाराज रघुराजसिंह बड़े महात्मा थे, निज पूर्वजोंके धर्मपर आरूढ रहकर रामकृष्णके अनन्य उपासक थे और श्रीमद्भागवत तथा रामायणके अनुरागी थे। लिखा है कि—

दोहा—श्लोकहु श्लोकारथ नाहीं, जबलों पाठ कराहीं।
तबलों अम्बु पानहू त्यागत, पुनि का भोजन पाहीं॥

महाराज रघुराज इस समयके भाषा कवियोंमें सर्वोत्तम थे। विद्वानोंका सत्कार करते थे। साधु सन्तोंके सन्मानी थे। सब तीर्थोंकी यात्रा कर आये थे। दान पुण्य भी खूब किया था। कई दफे सोने चांदीका तुला चढाया था। राजकाजकी ओर खूब ध्यान देते थे। प्रजापालनमें दत्तचित्त थे। राज्यके कर्मचारीगण उनसे प्रसन्न थे। बृटिश गवर्नमेन्ट उनको पसन्द करती थी। निम्नस्थ ग्रंथ भाषा पद्यमें उनके रचे हुये हैं:—

भक्तमाला (रामरसिकावली) रामस्वयम्वर, रुक्मिणीपरिणय, जगन्नाथशतक, रघुराजविलास, यदुराजविलास, विनयपत्रिका, सुन्दर शतक और भागवत पर "आनन्दाम्बुनिधि" नामक तिलक। महाराज रघुराजके समयमें रीवां राज्यका विस्तार १३ हजार वर्ग मील था। बस्ती १३ लाख मनुष्योंकी थी। सेना में ६९१ सवार, ३१३५ पैदल तथा ५५ तोपें थीं। स. ई. १८८० की साल महाराज रघुराज सिंहदेवने परलोक गमन किया और राजकुंवर वेङ्कटेशरमण सिंहदेव जू (वर्तमान नरेश) गद्दीपर बैठे।

रङ्गाचार्य (वृन्दावनके)—इनका जन्म वि. सं. १८६४में द्राविड़ ब्राह्मण श्रीनिवासाचार्यजीके घर हुआ था। दक्षिणदेशमें कांचीपुरीसे ५ कोस पूर्व इनके पिताका निवास था। पांच वर्षकी उम्रसे इन्होंने पढना आरम्भ किया और व्या-

करण तथा काव्य पढनेके पीछे वि. सं. १८८५ में विशेष विद्या पठनार्थ काशीको चले आये और वहां रहकर अभयाचरण भट्टाचार्यसे न्यायादि शास्त्र पढे । मांडा राज्यसे इनको कुछ वार्षिक मिलता था जिससे इनके भोजन छाजनका प्रबन्ध होता था । वि. सं. १८९० में स्वामी रङ्गाचार्य व्रजको पधारे और एक छोटेसे मंदिरमें ठहरे तथा कुछ दिनों पीछे गोवर्द्धनकी गद्दीको प्राप्त हुये । मथुराके सेठ राधाकृष्णजीने वि० सं० १८९२ में इनके उपदेशोंको सुनकर जैनमत छोड़ वैष्णव मत ग्रहण किया तथा इनको गुरु कर लिया। पश्चात् सेठजीने इनकी आज्ञासे श्रीरंगजीका बृहत् मन्दिर वृन्दावनमें बनवाया । जिसकी तय्यारीमें प्रायः ४५ लाख रुपये खर्च हुए और ६५ हजार रुपये वार्षिक बचत की भूसम्पत्ति भोगरागके खर्चके निमित्त लगाई गई । और यह सब दान पात्र द्वारा इनके अर्पण करके सेठजीने अपना स्वत्व उसमें कुछ भी नहीं रक्खा । मृत्युसे कुछ दिन पहले स्वामी रंगाचार्यको चिन्ता हुई कि यह सब वैभव भगवानका है, कहीं ऐसा न हो कि हमारे वंशज इसे कुमार्गमें नष्ट कर देवें निदान उन्होंने मन्दिरकी रक्षाका भार एक वैष्णव कमेटीको सौंप दिया और अपनेको तथा अपनी सन्तानको वैष्णवोंके भरोसे छोड दिया ।

वि० सं० १९३० में स्वामीरङ्गाचार्य परमधामको सिधारे । यह बड़े पंडित थे । चित्त उदार भावोंसे परिपूर्ण था न्याय वेदान्तके बड़े विद्वान थे, स्वभावमें कुछ उग्रता अवश्य थी, पर वह तेजस्वितासे रिक्त न थी ।

रणछोडलाल (आनरेबिल रणछोडलाल सी० आई० ई०)—स० ई० १८५३ में अहमदाबाद (सिन्धु) में जन्मे थे । नागर ब्राह्मण छोटेलाल इनके बाप थे । इनके पूर्वज राजा महाराजाओंके दरबारमें उच्चपदाधिकारी रहे थे । एवं इनका वंश प्रतिष्ठित था ।

इन्होंने अंगरेजी तथा गुजराती भाषाकी शिक्षा पाई थी और संस्कृत तथा फार॰ सी भले प्रकार जानते थे । स० ई० १८४४ में पंच महिलके असिस्टन्ट सुपरिन्टे॰ न्डेन्टका ओहदा इनको मिला ।१०वर्ष तक इस ओहदेपर रहकर इन्होंने इस्तेफा दे दिया और व्यापारकी ओर मन लगाकर अहमदाबादमें रूईका पंच जारी किया । यह गुजरातप्रान्तमें रूईका पहला ही पंच था, पश्चात् इनकी देखा देखी अनेक

लोगोंने अहमदाबाद तथा गुजरातमें रूईके पेंच जारी किये इसी कारण उस देश-वाले रणछोडलालजीको " मिल इन्डस्टीका पिता " कहते हैं । यह सूबा बम्बई कीलेजिसलेटिव कौंसिलके मेम्बर भी रहे थे और इसी लिये आनरेबिल कहलाते थे सदैव मधुर भाषण करते और देशोपकारमें तत्पर रहते थे । इनके उपदेशसे किसी का चित्त नहीं दुखता था । अहमदाबादकी टेम्परेंस सोसाइटीके भी आप प्रधान थे । अहमदाबादमें पुत्री पाठशाला, अतिथालय तथा चिकित्सालय आपने अपने खर्चसे खोले थे, जो अब तक जारी हैं । अहमदाबाद म्युनिसिपेलिटीने आप हीकी प्रधानताके समयमें पानीके नल शहरमें जारी किये थे । स० ई० १८८६ में बृटिश गवर्नमेंटने प्रसन्न होकर आपको सी. आइ. की पदवी प्रदान की थी । ऐसे धनाढ्य होनेपरभी वृथा खर्च करना पसंद नहीं करते थे । आपने हिंदोस्तानके अनेक सूबोंमें देशाटन किया था और कुटुम्बसहित सब तीर्थोंकी यात्रा की थी । २४ घंटे बीमार रहकर स.ई. १८९८ में परलोक गमन किया सब सर्कारी दफ्तरों, देशी कार्यालयों तथा बाजारने एक दिन बंद रहकर शोक माना था । आपके सुयोग्य पुत्र माधव-लालजीने अपने देश मान्य पिताका उचित स्मारक चिह्न स्थापन करणार्थ एक लाख रुपया बृटिश गवर्नमेंटको सौंपा ।

रणजीतसिंह महाराजा (पंजाबकेशरी) इनके बाप महासिंह सिक्खोंकी सूकरचकिया मिसलके सर्दार थे और इनको८ वर्षका छोडकर मरगये थे इसी कारण इनको विशेष शिक्षा नहीं मिल सकी थी, केवल हिन्दी तथा पंजाबी भाषा कुछ २ जानते थे । लेकिन इनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी,आदमीको देखतेही उसकी नस २ का हाल जानलेते थे और बड़े २ विद्वान भी इनकी समता करनेमें असमर्थ रहते थे । बचपनमें सीतला निकलनेसे इनकी एक आंख भी जाती रही थी इनके बापके छोड़े हुये छोटेसे इलाकेका प्रबन्ध कुछ दिनोंतक इनकी माता दीवान सुक्खाकी मददसे करती रही ।

इन्होंने बड़े होकर दीवानको अलाहिदाकर दिया और माताको बदचलन देख मार डाला । पश्चात् क्रमशः लाहौर, अटक, कश्मीर, मुलतान, पेशावर, कांगड़ा झंग इत्यादि मुल्कोंको विजय किया और छोटेसे सर्दारसे सर्वत्र पंजाबके महा-राजा बनकर पंजाब केसरी कहलाये । अफगानिस्तानके पठानतक इनका लोहा मान गये थे, और अंग्रेज लोग भी इनके दर्बार तथा फौजका दुरुस्त करीना तथा

सामान देखकर दंग रह जाते थे । स. ई० १८०८ में लार्ड मिन्टो गवरनर जनरल हिंद और महाराज रणजीतसिंहके बीच सरहदके सम्बन्धमें सन्धि हुई थी जिसका पालन महाराजने अन्त समयतक दृढता सहित किया । स. ई. १८१७ में महाराजने अवसर पाकर शाहशुजा अमीर काबुलसे कोहनूर हीरा छीन् लिया और स. ई. १८३६ में अपने राज्य भरमें लौंडी गुलाम बनानेकी चाल बंद कर दी । स० ई० १८३९ में कुछ दिन बीमार रहकर महाराजने परलोक गमन किया । अन्त समय दान पुण्य भी खूबही किया एक करोड़ रुपया तो मरने हीके दिन पुण्य हुआ । ४ रानियें और कई लौंडियें सती हुई और आपके पुत्र खड्गसिंह शेरसिंह तथा दलीप सिंहने आपके पीछे राज्य किया । लेकिन आपसके झगड़ेके कारण स० ई० १८४९ की साल पंजाबका राज्य बृटिश गवर्नमेंटके मालमें घुस-गया और दलीपसिंहको पेन्शन देकर इङ्गलैंड भेज दिया गया । महाराज रणजी-तसिंहका राज्य सर्वत्र पंजाब पर होनेके सिवाय पश्चिमोत्तरमें हिंदूकुश और सुले-मान पर्वतोंतक फैला हुआ था । इसमेंसे प्रायः दो करोड़ रुपये वार्षिक आयका मुल्क जागीर तथा मुआफीमें दे रक्खा था और सब प्रकारकी सेना मिलाकर दोलाख दस हजार थी । महाराज डील डौलमें छोटे थे, लेकिन वीरता और तेज उनके चेहरे पर दमकता था । रणमें उनका सामना कोई नहीं कर सकता था । और घोर आपत्ति पड़ने पर भी वह कभी नहीं घबराते थे । घोड़पर चढने, शिकार खेलने और हवाखानेको जानेकी उनकी बान थी, प्रति दिन ग्रंथ साहिब सुनते थे और सदैव राजकाजमें दत्तचित रहकर दीन दुःखियोंको सन्तोप दिलाना अपना कर्तव्य समझते थे ।

काशीमें विश्वेश्वरनाथके मन्दिरपर अमृतसरमें दर्बार साहिब पर सोनेका पत्र उन्हींने मढवाया था । विवादार्णवसेतु नामक राजनीति विषयक संस्कृत ग्रन्थ भी उन्हींके हुक्मसे बना था । उनकी समाधि लाहौरमें किलेके समीप अब् तक बनी है ।

रणजीतसिंहजीकुँवर—(प्रसिद्ध क्रिकेटिअर अर्थात् गेंद बल्लाके खिलाडी) मुल्ककाठियावाड़में स० ई० १८७२ की साल जन्मे । काठियावाड़के जाम साहि-बने इन्हें गोदलिया । जाम साहिबके बाद अनेक कारणोंसे इनको गद्दी नहीं मिली परंतु यह वायदा किया गया कि अवसर आनेपर आपके पुत्रको गद्दी दी जायगी ।

१० हजार रुपया वार्षिक आपको जामसाहबकी गद्दीसे मिलता है और आप लंडनमें रहते हैं। राजकुमारकालिज राजकोट और ट्रिनिटी कालिज कैम्ब्रजमें आपने शिक्षा पाई थी । इङ्गलैंड तथा आस्ट्रेलियाकी समस्त क्रिकेट कमेटियोंको आपने हरादिया है और कई दफे हिन्दोस्तान आकर शिमला तथा कलकत्तेमें महाराज पटियालाकी टीममें शरीक होकर नाम पाया है। स० ई० १८९१-९२ की साल कैम्ब्रजकालिजकी समस्त क्रिकेट कमेटियोंमें सबसे अधिक रन आपहीने किये थे । अंग्रेजीमें आपने एक पुस्तक क्रिकेटके खेलके विषयमें रची है।

रणवीरसिंहजी-(महाराजा सर रणवीरसिंहइंद्र महेंद्रबहादुर, जी. सी. यस. आई. जम्बू व कश्मीरनरेश)-आपके पिता महाराजा गुलाबसिंहजीको स० ई० १८४९ में कश्मीर मंडलका राज्य वृटिशगवर्नमेंटने सौंपा था । गुलाबसिंहजीके पूर्वज पूर्वकालमें कश्मीरके राजा थे लेकिन समयके हेर फेरसे कुछ दिनके लिये राज्य छिन गया था । स० ई० १८५७ में महाराज गुलाबसिंहके परम धामको सिधारनेपर उनके पुत्र महाराज रणवीर सिंहजी गद्दीपर बैठे। आप विद्वानोंका खूब सत्कार करते थे । अनेक अवसरोंपर वृटिशगवर्नमेंटको भी आपने मदद दी थी जिस्के पुरस्कारमें गवर्नमेंटने आपको जी. सी. आई. तथा मुशीर शहन्शाह जादी विक्टोरियाकी पदवीसे विभूषित किया था। अंग्रेजी सेनाके आप अवैतनिक जनरल थे । आपकी सलामी तोपके २१ फेरोंकी थी । स० ई० १८८५ में आपने परलोक गमन किया और आपके ज्येष्ठपुत्र महाराज प्रतापसिंह इंद्रमहेंद्र बहादुर (वर्त्तमाननरेश) गद्दीपर बैठे । महाराज रणवीरने नित्यप्रति नीचेहीको गिरते हुये हिन्दुधर्म तथा हिन्दुजातिके सुधारके लिये बहुत कुछ उद्योग किया था।

रत्नाकर (संस्कृतकवि)-देखो राजानक रत्नाकर ।

रमेशचंद्रदत्त-(सर रमेशचन्द्रदत्त, सी. यस., सी. आई. ई.) आप बंगाली-कायस्थ हैं आपने इंग्लैंड जाकर सिविल सर्विसकी परीक्षा उत्तीर्ण की और बङ्गाल सिविल सर्विसमें ज्वायन्ट मैजिस्ट्रेट नियत होकर हिन्दोस्तानको वापिस आये । धीरे २ कमिश्नरके पदको प्राप्त हुये और स. ई. १८९८ में पेन्शन पाई । स. ई. १८९२ में वृटिश गवर्नमेण्टने प्रसन्न होकर आपको सी. आई. ई. का खिताब

दिया था। प्राचीन भारतका इतिहास आपने अंग्रेज़ी भाषामें लिखा है। पेन्शन लेनेके बाद आपने इंग्लैंड जाकर कैम्ब्रजकालिजमें पूर्वी भाषाओंके प्रोफ़ेसरका ओहदा पाया। ऐसे ऊंचे ओहदे आजतक किसी दूसरे हिन्दोस्तानीको नहीं मिले हैं। स. ई. १९०४ से महाराजा बरोडाने आपको अपने राज्यका मुख्य मन्त्री बनाया है।

रविवर्मा (जगतप्रसिद्ध चित्रकार)—यह पूनाके रहनेवाले क्षत्रीवंशोद्भव, देशमान्य, पृथ्वी प्रसिद्ध चित्रकार हैं। फिरङ्गी शिल्पकार भी इनकी कारीगरीको देखकर चकराते हैं। महारानी विक्टोरियाके भवनमें इन्होंने इङ्गलैण्ड जाकर भारतीय ढंगके चित्र लिखकर राजाकी उपाधि पाई थी। अनेक चित्र इनके बनाये हुये अत्युत्तम हैं और उनकी छबि मनहरण है। बम्बई तथा पूनामें इन्होंने चित्रशालायें स्थापन की हैं जहांसे इनकी बनाई रंगीन तस्वीरें खरीदी जा सकती हैं। स. ई. १९०३ में विद्यमान हैं।

रमेश्वरसिंहजी—(महाराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर, के. सी. यस. आई दर्भंगा नरेश) महाराज महेश्वरसिंहजीके घर स. ई. १८६१ की साल जन्मे। पूरे एकवर्षके भी न होने पाये थे कि पिताका देहान्त होगया और आपके बड़े भाई महाराज लक्ष्मीश्वरसिंहजी ६ वर्षकी उम्रमें दर्भंगाकी गद्दीपर बैठे। राजकुमारोंकी नाबालिग़ीमें गवर्नमेण्टकी तरफ़से कोर्टआफ़वार्डसका इन्तजाम हुआ और क्रमशः कई अङ्गरेज़ शिक्षक राजकुमारोंको शिक्षा देनेके लिये नियत हुये। पश्चात् क्वीन्सकालिज बनारसमें राजकुमारोंको भेजागया। महाराज रमेश्वर सिंहजीका संस्कृत पढनेकी ओर ध्यान विशेष रहा। स. ई. १८७७ में दोनों राजकुमारोंको ज़िमीन्दारीका कार्य्य सिखाया जानेलगा। इसीसाल महाराज रमेश्वरसिंहका विवाह हुआ। स. ई. १८७९ में आपके बड़े भाई लक्ष्मीश्वरसिंहजीको राज्यका पूरा अधिकार सौंपा गया। थोड़ेही दिनों पीछे किसी कारणसे दोनों भाइयोंमें वैमनस्य होगया जिससे महाराज रमेश्वर सिंहजीने कई वर्षतक भागलपुर आदि जिलोंमें ज्वाएण्ट मजिस्ट्रेटके ओहदेपर काम किया। स. ई. १८८१ में बंगालके लफ़्टिनेण्ट गवर्नरने भाइयोंमें मेल करा दिया जो अन्ततक चिरस्थाई रहा। स. ई. १८८५ में आपने नौकरी छोड़दी और भाईसे मिली हुई अपनी बृहत् जागीरकी देख भाल करते रहे तथा समय पानेपर योग्यकर्मचारियों सहित

भिन्न २ तीर्थोंकी यात्रा करते रहे। स. ई. १८५७ में कामाख्या में एक पक्का घाट आपने बनवाया और महामाया भुवनेश्वरीके मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। स० ई० १८९८ में महाराजलक्ष्मीश्वरसिंहके निःसन्तान सिधारनेपर आप दर्भंगाराज्यके मालिक हुये। दर्भंगाकी प्रजा आपके शासनमें सुखचैनसे है और हिन्दोस्तान भरके हिन्दुओंकी आपपर पूज्य बुद्धि है क्योंकि आप भारत धर्म महामण्डलके प्रेसीडेण्ट हैं। आप स्वधर्मप्रिय, विचारशील, नीतिज्ञ तथा सुवाग्मी पुरुष हैं और श्रोत्रियवंशी मैथिल ब्राह्मण हैं। आपके पूर्वज महामहोपाध्याय महेश ठक्कुरने अपारविद्याके पुरस्कारमें बादशाह अकबरसे दर्भंगाका राज्य पाया था।

रसखान (भाषाकवि)—सय्यदइब्राहीम पिहानी जि० हरदोईवालेने रसखान नामसे पदपूर्ति की है। यह अपने घरके बड़े भारी रईस थे। पहले यह किसी स्त्रीपर आसक्त थे लेकिन वह अभिमानिनी थी। भागवतके पार्सी अनुवादमें गोपियोंके विरहकी कथा पढ़ इनका चित्त मानुषीय प्रीतिसे हटकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगगया। फिर तो यह किसी स्थानपर भागवतकी कथा सुननेको जाने लगे और वहां पर एक दिन श्रीकृष्णजीका सुन्दर चित्र देख इन्होंने व्यासजीसे पूछा कि "यह सांवली सूरत वाला कहां रहता है और इसका नाम क्या है ?" व्यासजीने उत्तर दिया कि "यह वृन्दावनमें रहता है और इसका नाम रसखान है"। पश्चात् यह ब्रजको चले गये और श्रीनाथजीके मन्दिरमें पहुँचे लेकिन भीतर न घुसने पाये। अस्तु निराश हो गोविन्दकुण्डपर कई दिनतक बिना अन्न जलके पड़े रहे। सुधि पाकर गोस्वामी विठ्ठलनाथजी (वि. स. १५७२–१६४२) इनको श्रीनाथजीके सन्मुख ले आये। दर्शन पाते ही इन्होंने निम्नस्थ दोहा पढ़ाः—

दोहा—कहा करो रसखानको, दूत न चोर लबार।
जो प्रभु दीनदयालु हैं, तो माखनचाखनहार ॥

दर्शन करके जब यह चलने लगे तो गोसाईंजीने इनको कृष्णभक्तिमें डूबा हुआ जान अपना लिया और कहा कि "अरे अब कहां जातु है"। रसखानकी कविता निपट ललित, माधुर्यतासे भरपूर है। सुजान रसखान तथा प्रेमवाटिका (वि. स. १६७१) इनके रचे ग्रन्थ हैं। कई सौ फुटकर दोहे भी इनके बनाये

मिलते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्तिसे इनका चित्त शान्त होगया। अन्त समय तक फिर कहीं नहीं गये और ब्रजकी रजमें मिल गये।

रसिक बिहारी (भाषाकवि) यह झांसीकी रहनेवाली किसी विधवा ब्राह्मणीके पुत्र थे। माता इनको बचपनहीमें लेकर अयोध्याजीको चली आई थी और कनक भवनमें रहती थी। बडे होकर यह कनक भवनके महन्तके शिष्य हो गये लेकिन महन्तजीके पीछे मुकद्दमा लड़ाने परभी गद्दी इनको नहीं मिली। इनका असली नाम जानकीदास था लेकिन कविता रसिक विहारी नामसे करते थे। इन्होंने अनेक तीर्थोंमें पर्य्यटन किया था, अन्तको मेवाड़में परलोक गामी हुये। समय इनका स. ई. १८४० से १८९० तक निश्चय है। कविता उत्तम करते थे। निम्नस्थ ग्रंथ इनके रचे हुये हैं:-

रामायण सप्तकाण्ड, सुयश कदम्ब, सुमति पचीसी, रसकौमुदी नामक विहारी सतसईके चुने दोहोंका कवित्तोंमें टीका।

रहिमन, रहीम–देखो अब्दुलरहीम खानखाना।

राउबुद्धहाडा (बूंदीनरेश)–जयपुनरेश जयसिंह सवाईकी बहिन इनको विवाही थी मुहम्मदशाह मुगल सम्राट दिल्लीके दर्बारमें इनके समान किसी दूसरे राजाकी प्रतिष्ठा न थी। एक दफे जब सैयद बारहने मुहम्मदशाहको राज्य रहित करादिया था तो इन्होंने सैयदका मुँह तलवारोंसे फेर दिया था। यह उम्रभर बादशाही दरबारहीमें रहे। भाषा कविता अच्छी करते थे और कविकोविदोंके सन्मानी थे। स. ई. १७४० में इनके साले जयसिंह सवाईने इनका राज्य छीन लिया।

राघोजी भोंसला (बरारके भोंसला राजवंशके मूल पुरुष) इनको पेशवाबाजीराव प्रथमने "सेना साहबसभा" अर्थात् मरहटासर्दारोंकी सभाका सेनापति स. ई. १७३४ में नियत किया था और स. ई. १७४० में बरारका राज्य दिया था। राज्य पाकर नागपुरमें इन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की थी। उसी साल मरहटोंमें राज्य सम्बन्धी घोर विप्लव उपस्थित हुआ क्यों कि सताराके रामराजाको गद्दीसे उतारकर पेशवाबाजीराव तथा राघोजी भोंसलाने सतारा गढ़मे

कैद कर दिया और उसका राज्य आपसमें बांट लिया। राघोजी भोंसला तथा रामराजा सपिंडी थे क्यों कि दोनोंही मरहटा राज्यके मूल पुरुष महाराजा शिवाजीके वंशज थे। इतिहास साक्षी है क्योंकि महाराजा राघोजी बड़े साहसी वीर पुरुष थे। स. ई १७५३ में उनके मरनेके बाद भोंसलाकी गद्दीपर निम्नस्थ क्रमसे राजे बैठे:—

राघोजी भोंसला प्रथम स. ई. १७५३ में मरे
रानोजी भों० (राघोजी भों० १ के पुत्र) ” १७७२ ”
माधोजी भों० (” के भाई) ” १७८८ ”
राघोजी भों० द्वितीय (माधोजी भों० २ के पुत्र) ” १८१६ ”
परसोजी भों० (राघोजी भों० २ के पुत्र) ” १८१६ ”
परसोजीको आपा साहिबने गला घोटकर मारडाला.
आपा साहिब (अंगरेजोंकी सहायतासे गद्दीपर बैठे), परन्तु” १८१८ में तख्तसे उतार दिये गये।
प्रतापसिंह नारायण (राघोजी भोंसला १ के पौत्र) ” १८१८ में मरे
राघोजी भों० तृतीय ” १८५३ में ”

स. ई. १७५२ में राघोजी भों० तृतीय अपुत्र मरगये, उनके दत्तक पुत्रको बृटिशगवर्नमेंटने राज्य देना स्वीकार न कर पेन्शन कर दी चुपकेसे भोंसलाका बृहत राज्य खालसाकर लिया। महाराजा भोंसलाके वंशज आजकल भी नागपुरमें रहते हैं और बड़े भारी जमीदार हैं।

राजशेखर (संस्कृतकवि)—प्रबन्धकोष, बालरामायण तथा बालभारत इनके बनाये संस्कृत ग्रंथ देखने योग्य हैं। माधवकृत शंकर दिग्विजयके एक लेखसे ज्ञात होता है कि राजशेखरजी केरल देशके जैनी राजा थे। जीवन काल इनका विक्रमकी १२ वीं शताब्दी निश्चय है। इनकी शार्दूल विक्रीड़ित रचना अत्यन्त रमणीय है। और इसी कारण क्षेमेंद्र कविने इनके विषयमें लिखा है कि—

श्लो०—शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः॥

राजानकरत्नाकर (संस्कृतकवि)—इनके नामके साथ राजानक शब्द उपनाम है जैसे दुवे, तिवारी आदि शब्द नामके आदि या अन्तमें होते हैं। इनके पिताका नाम अमृतभानु था यह वि. सं. की दशवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें काश्मीरमें हुये। काश्मीर नरेश अवन्तिवर्म्माके दर्बारसे इनका सम्बन्ध था। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:—

हरविजय महाकाव्य, वक्रोक्ति पंचाशिका और ध्वनिगाथापञ्जिका। हरविजय महाकाव्य जिसमें ५० सर्ग हैं अत्युत्तम है। इस काव्यकी उत्तमता देख राजशेखरजीने कहा है कि:—

श्लो०—मास्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे।
इतीवसत्कृतो धात्रा कविरत्नाकरोऽपरः ॥

राजारामशास्त्री—यह काशीवासी प्रसिद्ध पंडित सब शास्त्रोंमें पारंगत होनेके सिवाय व्याकरणमें अपने समान भारतमें कोई दूसरा नहीं रखते थे। प्रायः सब ही रजवाड़ोंमें इनकी निर्णीत व्यवस्था मानीजाती थी। सभामें इनका शास्त्रार्थ सुनकर बड़े २ पंडित सन्तुष्ट होते थे। महाराज सेंधिया इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। पं० काशीनाथ शास्त्री इनके विद्यागुरु थे। संस्कृत कालिज बनारसमें धर्मशास्त्रके प्रोफेसरका पद इनको प्राप्त था। पं० बालशास्त्री सरीखे अद्वितीय विद्वान इनके शिष्य थे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि विद्वानोंके विधवा विवाह सम्बन्धी आन्दोलनका प्रवाह रोकनेके लिये इन्होंने "विधवोद्वाह शंका समाधि" नामक संस्कृत ग्रन्थ रचा था। जिसकी टीका बादको बालशास्त्रीने की थी। दक्षिण देश वासियोंकी प्रार्थना पर इन्होंने बालशास्त्री इत्यादि शिष्य प्रशिष्योंके साथ दक्षिण देशमें जाकर विधवाविवाह चर्चाके प्रबल प्रवाहको रोका था। वि० सं० १९३१ में सिधारे।

राजेंद्रलालमित्र (राजा, डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र, रायबहादुर, यल० यल० डी०, सी० आई० ई०). आपके पूर्वज कालीदास मित्र कायस्थको बंगालाधिपति महाराज अदीसुरने कन्नौजसे बुलाया था, कालीदाससे २० पीढी पीछे पीतांबर मित्र हुए जो नवाब वज़ीर अवधकी तरफसे दरबार दिल्लीमें वकील थे और जिनको दरबार दिल्लीने राजा बहादुरकी पदवी तथा तीन

ज़ारीका मनसब और जिला इलाहाबादमें एक बड़ी जागीर दी थी । इन्हीं राजा-
ीतांबर मित्रके पौत्र राजा जन्मेजय मित्रके घर स० ई० १८२४ की साल सूरह
(बंगाल) राजवाड़ीमें राजेंद्रलाल मित्र नामक पुत्रका जन्म हुआ । आप १४ वर्ष
की उम्रतक बंगाली फारसी और अंग्रेजी पढ़ते रहे । १५ वर्षकी उम्रमें डाक्टरी
पढनेके लिये मेडीकल कालिज कलकत्तामें भरती हुये । परन्तु कुछ समय पीछे
जब इन्होंने डाक्टरीकी विशेष शिक्षा पठनार्थ इग्लेंड जाना चाहा तब पिताने
इनको स्कूलसे उठा लिया पश्चात् इन्होंने कानून पढना शुरू किया लेकिन जिस
साल कानूनका इम्तिहान दिया उस सालके पर्चे चोरी हो जानेके कारण इम्तिहान
ही मनसूख हो गया । इस प्रकार बार २ निराश होकर इन्होंने संस्कृत, हिंदी,
फार्सी तथा उर्दूकाव्यको विचारसहित पढना आरम्भ किया २३ वर्षकी उम्रमें
एशियाटिक सोसाइटी बंगालने उपमंत्री तथा पुस्तकाध्यक्षका ओहदा आपको दिया
जिस पर १० वर्ष रहकर सैकड़ों दुष्प्राप्य प्राचीन ग्रन्थोंके देखनेका अवसर आपको
मिला । पश्चात् कलकत्तेके गवर्नमेन्ट वार्डसका उच्चपद आपको प्राप्त हुआ जिसपर
बहुत दिनोंतक रहे । संस्कृत, हिंदी, फार्सी, उर्दू, बङ्गला और अंग्रेजीमें सैंकड़ों
पुस्तकें आपने रची थीं और अनेक प्राचीन वार्ताओंका पता लगाया था ।

आप कलकत्तायूनीवार्सिटीके फेलो थे और उक्त यूनीवर्सिटीने सबसे पहिले यल०
यल० डी० का खिताब आपहीको दिया था । पुरातत्वादि अनेक विद्याओंमें पार-
ङ्गत होने, देश हितकरने, सैकडों ग्रंथ रचने और कार्यदक्षता, राज्य भक्ति तथा
उदारताका पूर्ण परिचय देनेके उपलक्षमें वृटिश गवर्नमेन्टने आपको स० ई०
१८७७ में रायबहादुरका ख़िताब, स० ई० १८७८में सी० आई० ई० की उपाधि
तथा स० ई० १८८८ में राजाका खिताब दिया था । स० ई० १८९८ में परलोक
गामी हुये । कुंवर रामेंद्रलाल मित्र बी० ए०, बी० यल०, सी० आई० ई० तथा
कुंवर महेन्द्रलाल मित्र आपके दो पुत्र हैं ।

राधाकृष्णसेठ (वृन्दावनमें रङ्गजीके मन्दिरके निर्माणकर्ता)

यह सेठ लक्ष्मीचन्द्जीके छोटे भाई थे (देखो लक्ष्मीचन्द) । इन्होंने पं० रङ्गा-
चार्यके उपदेशसे जैनमत छोड़ वैष्णव धर्म ग्रहण किया और उनको गुरु कर लिया
पश्चात् उनकी कथनानुसार वृन्दावनमें श्रीरङ्गजीका मन्दिर स. ई. १८४५ में
बनवाना आरम्भ किया । सेठजीके पासका कई लाख रुपया उठ गया परन्तु

मन्दिरकी छततक नपट पाई। जब यह बात सेठ लक्ष्मीचन्दको मालूम हुई तो उन्होंने प्यारे भाईका चित्त दुखाना अनुचित समझकर ४५ लाख रुपयेके खर्चसे स. ई. १८५१ में उक्त मन्दिरको तय्यार करा दिया और भोगराग, उत्सव, मेला आदि मन्दिर सम्बन्धी खर्चके लिये ५३ हजार रुपये वार्षिक बचतका प्रबन्ध जो ३३ गांवोंसे आता है कर दिया। पश्चात् सेठ राधाकृष्णने मन्दिरकी सम्पत्ति अपने गुरु रङ्गाचार्यको दानपत्र द्वारा दे दी। सेठ राधाकृष्णकी प्रीति गुरु-चरणोंमें अलौकिक थी। एक दफे वर्षाऋतुमें सेठजी बृन्दावनमें बहुमूल्यवस्त्र पहने चले जाते थे। अकस्मात् दूसरी तरफसे आते हुये पं० रङ्गाचार्य सामने पड़ गये। देखते ही सेठजीने अपने नियमानुसार गुरुको साष्टाङ्ग दण्डवत की जिससे सब वस्त्र खराब होगये क्योंकि रास्तेमें कीचड़ थी। गुरुके प्रेमाश्रु निकल आये और शिष्यको हाथ पकड़ छातीसे लगा लिया। राजा लक्ष्मणदास सी. आई. ई. इनके पुत्र थे। पंडित रङ्गाचार्य और सेठ राधा-कृष्णसरीखे गुरु शिष्य होना दुर्लभ है (देखो रंगाचार्य)। वि.सं. १९०५ मे से. राधाकृष्णका वैकुंठवास हुआ। वृन्दावनमें "रामलक्ष्मणका मन्दिर" भी इन्हींका बनवाया हुआ है।

राधा (श्रीकृष्णजीकी पटरानी)—गोकुलवासी वृषभानुग्वालकी कन्या, त्रैलोक्यसुन्दरी होकर श्रीकृष्णजीकी ८ पटरानीयोंमें सबसे अधिक प्रिय थी। वैष्णवोंके मन्दिरोंमें श्रीकृष्ण तथा राधिकाकी पूजा सेवा साथ २ होती है।

राधास्वामी शिवदयाल सिंह (राधास्वामी मतके आचार्य)
शहर आगराके पन्नीगलीमें स० ई० १८१८ की साल एक खत्रीके घर लाला शिव दयाल सिंहका जन्म हुआ। वृन्दावन तथा प्रतापसिंह इनके दो भाई और थे। लाला शिवदयाल सिंह बाल्यावस्थासेही मुख्य २ लोगोंको उपदेश करने लगे थे। प्राय: १५ वर्ष तक उन्होंने अपने मकानके एकान्त कोठेमें बैठकर श्रुत शब्द योगका अभ्यास किया था। और पश्चात् १७ वर्षतक अपने गृहमें सत संगियों तथा परमार्थी लोगोंको राधास्वामी मतका उप-देश किया था।

प्राय: ३००० मनुष्य उनके शिष्य हुये थे जिनमें से प्रधान शिष्यरायसालिगराम बहादुर पोष्ट मास्टर जेनरल थे। ईश्वर जो सबसे परे है उसीका नाम इस मतमें राधास्वामी है। लाला शिवदयाल सिंह उसीका अवतार माने जाकर राधास्वामी कहे जाते हैं। इस मतके लोग श्रुत शब्द योगका अभ्यास करते हैं। अर्थात् जीवात्माको नेत्रोंके स्थानसे ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर अन्तरका शब्द सुनते हैं। सद्गुरु सत्यनाम तथा सतसङ्गकी इस मतमें जरूरत है।

मांस शराबादि मादक वस्तुओंके खाने पीनेका निषेध है और तीर्थ, व्रत मूर्तिपूजा तथा पुस्तकोंके खाली पढ़नेसे अन्त:करणकी शुद्धिका होना नहीं माना जाता। स० ई० १८७८ में राधास्वामीने परलोकगमन किया। "सारवचनराधास्वामी" नामक पुस्तक इनकी रची हुई है।

राधाकान्तदेव, राजाबहादुर, के० सी० एस० आई० (संस्कृतकोष शब्दकल्पद्रुमकेकर्ता)—सोभा बाजार कलकत्ताके नवकृष्णादेव नामक रईस इनके दादे थे और इनके बापका नाम गोपीमोहनदेव था। यह जातिके कायस्थ थे। इन्होंने संस्कृत, फार्सी, उर्दू, हिन्दी, बंगला घर पर रक्खे हुये नौकरोंसे पढी थीं। हिंदोस्थानमें उन दिनों अंग्रेजी राज्यका आरम्भ ही था। बहुतसे अंग्रेजी स्कूल उस वक्त तक नहीं खुले थे। बंगाल भरमें केवल एक ही अंग्रेजी स्कूल बहूबाजार कलकत्तेमें था। इसी स्कूलमें ३ वर्ष पर्य्यंत इन्होंने शिक्षा पाई थी और उस समय हिंदोस्थान भरमें कोई दूसरा देशी पुरुष इनके समान अंग्रेजीका विद्वान नहीं था। यह एशियाटिक सोसाइटी बंगालके मेम्बर थे और इन्हींकी रिपोर्टपर काशीका क्वीन्स कालिज जिसमें संस्कृत कालिज भी शामिल है वर्तमान दशाको पहुंचाया। एक संस्कृत बृहत अभिधानका अभाव देख इन्होंने ५० वर्षके निरन्तर परिश्रमसे "शब्दकल्पद्रुम नामक बृहत शब्दकोष" रचा था। इस कोषके रचनेमें बहुतसे पंडितोंकी सहायता लेनी पड़ी थी और बहुत कुछ व्यय करना पड़ा था। यह कोष मलिका विक्टोरियाकी भेंट करके राधाकान्त देवने राजा बहादुर तथा नायटकी पदवियें। और सोनेका पदक पाया था। उनदिनों अंग्रेजी स्कूलोंमें जो पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं वह बालकोंका चित्त ईसाई मतकी ओर झुकाने वाली थीं। वह देख राजा राधाकान्तदेव बहादुरने पाठशा-

लाओंके हितार्थ अनेक पुस्तकें रचकर स्वीकार कराई । पश्चात् हिन्दुकालिज कलकत्ताके खोलनेमें बड़ा प्रयत्न किया । स्त्रीशिक्षाके भी पक्षपाती थे परन्तु कन्या पाठशालाओंका जारी करना पसंद नहीं करते थे । आप दृढतासे अपने पूर्वजोंके धर्मपर आरूढ़ थे । सर्व साधारण आपकी प्रतिष्ठा करते थे । धन दौलत सब प्रकारके सुख आपको प्राप्त थे । आपका चरित उनलोगोंको शिक्षादायक होसकता है जो कहते हैं कि " अमीरोंको क्या नौकरी करना है जो बहुत पढ़कर मग़ज खाली करें " । अन्तमें कुछ दिनों बृन्दावन वास करके स० ई० १८६९ की परलोक गामी हुये ।

रानडे (आनरेबिलजस्टिस महादेव गोविन्द रानडे) नासिकके जिलेमें सं० ई० १८४२ की साल जन्में और एलिफन्स्टन कालिज बम्बईमें पढ़कर सं० ई० १८६४ की साल एम. ए. की परीक्षा और दोही वर्ष पीछे एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद एल्फिन्स्टन कालिजमें ६ वर्षतक अंग्रेजी भाषाके असिस्टेन्ट प्रोफेसर रहे और फिर कुछ दिनोंतक आकलकोट तथा कोल्हापुरकी रियासतोंमें नौकरी की स० ई० १८७१ में बम्बई के न्याय विभागमें नौकर होगये और बढ़ते २ बम्बई हाईकोर्टके जजके पदको प्राप्त हुये ।

जस्टिस रानडे धर्म शास्त्रहीमें निपुण न थे बरन् अत्यंत शुभ आचरण विद्वान, देश हितैषी, चतुर, पक्षपातरहित और बुरे भलेके जाननेवाले थे । इस देशके राजनीति विशारद पुरुषोंमें उनकी गणना है । जबतक तनमें प्राण रहे स्वदेशकी भलाईका प्रयत्न करते रहे । बृटिशगवर्नमेण्टने जस्टिस रानडेको राय बहादुर तथा सी. आई. ई. के ख़िताब दिये थे । बम्बई प्रान्तमें अनेक सामाजिक, धर्मकारिक और शिल्पकारिक सभाओंके स्थापन करनेमें उन्होंने सहायता दी थी । वह स्वभावसे ही उद्योगी, परिश्रमी तथा पक्के राजभक्त थे देश सुधारकी अनेक बातों पर सदैव व्याख्यान दिया करते थे और थोड़ेसे शब्दोंमें दीर्घ आशय कह सक्ते थे । देश हितका कोई ऐसा विषय न था जिसको इन्होंने पूर्णरीतिसे न विचारा हो । निष्कपट होनेके कारण सब लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे और उनके फैसलोंसे प्रसन्न रहते थे ।

अनेक पुस्तकें भी उन्होंने रची थीं। अकस्मात् स. ई. १९०१ की साल जवानीकी हालतमें बम्बईमें परलोक गामी हुये। बम्बईमें उनका स्मारक चिह्न स्थापन किया गया है।

रानोजीसेंधिया (ग्वालियर राजवंशके मूल पुरुष)–ग्वालियरके सेंधिया महाराजे इन्हींके वंशमें हैं। यह वर्णके शूद्र थे और देशवाकी चाकरीमें बढते २ सेनापतिके उच्चपदको प्राप्त हुये थे तथा जागीर पाई थी। स. ई. १७५० में रानोजी ४ पुत्र छोड़कर परमधामको सिधारे इन चारोंमेंसे माधोजी सेंधिया बड़े प्रतापी हुये जिन्होंने वहुतसा मुल्क फतेह किया और ग्वालियरको अपनी राजधानी बनाया। प्रसिद्ध है कि रानोजी सेंधियाके मुंहपर एक दफे सोते समय धूप आगई थी तब एक सर्पने आकर फनसे छाया किया था, इसी कारण ग्वालियर राजवंशका चिह्न सर्पोंका फना है।

रामकृष्ण परमहंस–जिला हुगली (बंगाल) के कमर. पूरकर ग्राममें स० ई० १८३३ की साल इनका जन्म खुदीराम चट्टोपाध्यायके घर हुआ। रामकुमार तथा रामेश्वर इनके दो बड़े भाई थे जो अच्छे विद्वान होकर कलकत्तेसे ३ कोस दूर गंगातट दक्षिणेश्वरमें रासमणिदासके बनवाये काली देवीके मन्दिरके पुजारी थे। बड़े होनेपर रामकृष्णको जब पढनेके लिये पाठशालामें भेजा तब इन्होंने कहा कि "मैं पढ लिखकर क्या करूंगा क्योंकि इस विद्याका फल रुपया कमाना है" निदान थोडीसी बंगाली भाषाके सिवाय यह कुछ न पढ सके। पश्चात् पिताने बड़े भाइयोंके पास इनको दक्षिणेश्वरमें भेज दिया। वहांपर रहकर यह धर्म संबन्धी अनेक विषयोंपर अपने भाइयोंके बीच शास्त्रार्थ सुनते रहते थे। कुछ दिनों बाद जब इनके भाई रामकुमारजीका देहांत होगया तो यह उनकी जगह कालीजीके मन्दिरके पुजारी हुये। इनका विवाह भी रामचंद्र मुकर्जीकी सारदामणि नामक कन्यासे होगया था। कालीजीकी पूजा करते २ इनके मनमें ऐसी दृढ भावना हुई कि दर्शन पानेकी अभिलाषासे यह पहरोंतक स्तोत्र पाठ करने तथा मां! मां! कहकर पुकारने लगे। ऐसा करते २ जब बहुत दिन बीते तो भगवतीमें अकपट विश्वास होकर रातदिन इनको माईके दर्शनोंकी चिंता रहने लगी और रातमें पहरोंतक अकेले देवीके सन्मुख बैठे हुये, कभी रोते हुवे और कभी खिल खिलाकर हँसते हुये पाये गये। अन्तमें जब इनके प्राण रोने

लगे और मनने जगत्की वस्तुओंका विसर्जन कर दिया तो एक दिन देवीके सन्मुख बैठे रोते हुये इनकी उन्मत्तकीसी दशा होगई जो छः मासतक रही। पश्चात् इन्होंने अहंकारको जीतनेका प्रयत्न किया, जगत् और उसके पदार्थोंको ईश्वर जानने लगे। और कामिनी काञ्चनरससे बिलकुल मन हटालिया। इसके पीछे तीतापुरी एक संन्यासीसे इन्होंने संन्यास धर्ममें दीक्षा ली और हठयोग तथा राजयोगकी क्रिया उससे सीखकर अभ्यासद्वारा योग सिद्धिको प्राप्त हुये। योग सिद्धिको प्राप्त होकर इनका शरीर स्थूल होगया और लोग इनको परमहंस कहने लगे। इसप्रकार क्रमशः मनोवृत्तियोंके शान्ति होने तथा समदर्शिताके चढ़नेसे यह साधन दशासे आरूढ दशाको प्राप्त हुये। स० ई० १८६६ की साल ब्रह्मोधर्म प्रचारक बाबू केशवचंद्रसेनसे इनकी मुलाकात हुई और वह इनका ईश्वरानुराग, अत्युच्चज्ञान तथा दृढ धारणा देख चमत्कृत होकर साकार ब्रह्मके अनुरागी हुये। स० ई० १८८६ में रामकृष्ण परम हंस ब्रह्मपदको प्राप्त हुये। इनके कहे कई सौ उपदेश हैं जिनकी विचारनेसे ब्रह्म ज्ञानके अनेक गूढ रहस्य विदित होसकते हैं।

रामकृष्णवर्मा (भारतजीवन प्रेस बनारसके मालिक)– अमृतसर (पंजाब) से बाबू हीरालाल नामक खत्री रोजगारकी तलाशमें आकर बसे थे। वि० सं० १९१५ की साल उनके घर रामकृष्ण नामक बालकका जन्म हुआ। पिताके निर्धनी होनेके कारण रामकृष्णने ज्यों त्यों यफ० ये० पास० करके बी० ये० तक अंग्रेजी पढी। ग्रन्थ रचनाकी ओर प्रथमहीसे आपकी रुचि है, बलवीर नामसे भाषा कविता करते हैं और आपके हिंदी गद्य लेख पढ़ने लायक होते हैं। अन्य महानुभावोंके रचे सैकड़ों ग्रन्थ निज व्ययसे छापकर हिंदी गद्यपद्य रचनाके प्रोत्साहनका आपने भली भांति परिचय दिया है। स० ई० १८८४ में आपने बनारसमें "भारत जीवन प्रेस" स्थापन किया और उसी सालसे "भारतजीवन" नामक हिंदीका साप्ताहिक समाचार पत्र जारी किया जो स० ई० १९०४ तक जारी रहा और गवर्नमेंटके प्रबन्ध विभागकी रिपोर्टके अनुसार युक्त प्रान्तके सब हिंदी उर्दू समाचार पत्रोंसे अधिक पढा जाता है। आपने अबतक हिन्दी गद्य पद्यकी प्रायः २५ पुस्तकें रची हैं जिनमेंसे निम्नस्थ मुख्य हैंः–

ठगवृत्तांतमाला, संसारदर्पण, पुलिसवृत्तांतमाला तथा कान्सटेबिल वृत्तांत माला नामक ऐतिहासिक उपन्यास और कृष्णाकुमारी, वीरनारी तथा पद्मावती नामक नाटक।

आप सरलचित्त पुरुष हैं। भूल विदित होनेपर वृथा हठ किये विना स्वीकार करते हैं। उद्योगी पुरुषोंमें आपकी गणना है। पिता आपको दीन दशामें छोड़ गये थे। लेकिन अब धन, मकान, प्रतिष्ठा, नौकर चाकर सबही आपको प्राप्त हैं। यह सब होते हुये गर्व तथा ईर्षा द्वेषका आपमें बिलकुल अभाव पाया जाता है और परिश्रम सहित अपने कामकाज की देख भालमें स्वयं लवलीन रहते हैं।

सहन शीलता तथा नम्रताका आपके स्वभावमें समावेश है और इन्हीं सब कारणोंसे सर्व साधारण आपकी प्रतिष्ठा करते हैं। भारतके अनेक राज्य दर्बारोंमें भी आपका सन्मान होता है।

रावणाचार्य लंकेश–यह ऋषि पुलस्त्यका पौत्र तथा विश्वश्रवा मुनिका पुत्र, वर्णका ब्राह्मण, बड़ा बलवान, अद्वितीय विद्वान और कलाकौशलादिमें निपुण था। मिस्टर थामस बेननने निश्चय किया है कि, रावणका सीलोनके सिवाय स्याम कम्बोडिया, फिलपाइन, सुमात्रा, जावा, सेलिविज तथा बोर्नियो आदि द्वीपों और दक्षिणी चीन, कोचीन तथा वर्मा आदि देशोंमें भी राज्य था और दक्षिणी भारतके राजाओंपर उसका आतङ्क था।

हिन्दोस्तानके दक्षिणमें सीलोन (सिंहलद्वीप) रावणकी लंका नहीं है। सुमात्राटापूका वाल्मीकीय रामायणके लेखानुसार रावणकी प्राचीन लंकासे ठीक मिलान होता है। रामचन्द्र महाराजने लक्ष्मणजीके नामपर लंकाका नाम बदलकर सौमात्रा (सुमात्रा) रक्खा था। रानी सुमित्राके पुत्र होनेके कारण लक्ष्मणजीको सौमित्र कहते थे। रामायणादि ग्रन्थोंमें लेख है कि रावणके राज्यमें इंद्र छिड़काव देते थे, वायु झाड़ू देते थे, सूर्य रसोई बनाते थे, और कि वह समुद्रको पैदल पार कर सक्ता था और सूर्यकी तपिशसे मछलियें भून लेता था। यह सब बातें सत्य हैं किन्तु इस प्रकारकी हैं जैसे कोई कहे कि राजराजेश्वरी विक्टोरियाके राज्यमें दीपक जलाने और खबर पहुंचानेपर बिजली नौकर थी और अग्नि तथा वरुण चक्की पीसते थे तथा गाडियोंमें जोते जाते थे। रावणने वेदका भाष्य किया इसी कारण रावणाचार्य उसको कहा। एकतन्त्रका ग्रन्थ तथा रावणस्मृति नाम

धर्मशास्त्रभी उसने रचा था यह सब होते हुये भी वह बड़ा अभिमानी अन्याई तथा लम्पट था उसने हजारों ऋषियोंको निरपराध नाश किया था, हजारों कुलकामनियोंका सतीत्व भङ्ग किया था और पाप पुण्यको कुछ नहीं डरता था। अंतमें रघुकुलतिलक महाराज रामचद्रने उसको नष्ट किया।

रावणेश्वर प्रसादसिंह, राजाबहादुर, के० सी० यस० आई० गिद्धौरनरेश—बंगालमें गिद्धौरका राजवंश बड़ा प्रतिष्ठित है। इस घरानेके मूलपुरुष राजा वीरविक्रम सिंहने रीवाँ राज्यके वरडी स्थानसे आकर गिद्धौरमें अपना राज्य स्थापन किया था। वीरविक्रम सिंहसे ९ पीढी बाद कोई महाराज हुये जिन्होंने वैद्यनाथ (बैजनाथ) जीका शिवमन्दिर बनवाया था। वीरविक्रम सिंहकी १४ वी पीढीमें राजा दलनसिंह हुये जिनको स. ई. १६५१ में मुगलसम्राट शाहजहांने राजाका खिताब दिया। अंग्रेजी ग्रन्थकार कहते हैं: कि शाहजहांसे लेकर आजतक लगभग ३०० वर्षके बीचमें गिद्धौरके राजा बंगालके राजाओंमें बड़े प्रभावशाली धनाढ्य और राजभक्त होते आये हैं। ई.स.१८५७ के भयंकर गदरमें गिद्धौर नरेश सर जयमंगलसिंह बहादुर, के० सी० यस० आई० ने अंग्रेजीसरकारको मदद दी थी और सन्थालोंका उपद्रव बड़ी वीरतासे रोका था, इसके बदलेमें के० सी० यस० आई० का खिताव तथा राजाबहादुरकी पीढी जात उपाधि पाई थी। सर जयमंगलसिंहके पौत्र वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजा राणेश्वर प्रसादसिंह बहादुर के. सी. यस. आई. हैं। श्रीमान् अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी और फार्सीके अच्छे विद्वान् हैं और विहारके उन राजाओंमेंसे एक हैं जो हिन्दी साहित्यकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। कविलछीरामने "रावणेश्वर कल्पतरु" नामक भाषा ग्रन्थ रचकर आपसे उचित सत्कार पाया है। आपकी राजभक्ति, सुप्रबन्ध और उदारतासे केवल बृटिश गवर्नमेन्टही प्रसन्न नहीं है वरन् सूबे विहारकी प्रजाका भी आपपर बड़ा प्रेम है। आप सर्वप्रिय कहलानेकी चेष्टा सदैव ही करते रहते हैं, विहारलैण्ड होल्डर्स ऐसोसियेशनके आप प्रेसीडेण्ट हैं और बंगालके लफ्टिनन्ट गवर्नरकी व्यवस्थापक सभाके मेम्बरभी कई दफे रहचुके हैं। आपकी देशहित वृत्तिका केवल बंगाल विहारहीमें आदर नहीं है बरन स. ई. १९०२ में आगरेकी क्षत्रिय महासभाका जो अधिवेशन हुआ था उसके भी आप सभापति थे। आप साम-

वंशी क्षत्री हैं। स० ई० १८५९ में आपका जन्म हुआ है। दीर्घायु होओ! देश प्रियनरेश!!

राविन्सन क्रूसो—डेनियलडेक्टो साहिबके लेखानुसार स. ई. १६३२ में यार्क (इंग्लैंडमें) इनका जन्म हुआ, बचपन मातापिताके अतीव लाड़ करनेके कारण निरुद्यम ही बीता। पश्चात् पिताने सामान्य लड़कोंकी भांति थोड़ा सा लिखना पढना इनको घरहीमें सिखा दिया, पिताकी इच्छा इनको वकालत का पेशा सिखानेकी थी पर इनकी अभिलाषा किसी जहाजका मुखिया बनकर देश विदेश भ्रमण करनेकी थी। इनके माता, पिता, मित्रादिकोंने बहुत समझाया परन्तु इनकी विदेश गमनकी इच्छा ऐसी प्रबल हुई कि इन्होंने किसीकी न सुनी और इसी कारण इनको कठिन आपत्तियें झेलनी पडीं। स० ई० १६५१ में यह किसी कामके लिये हलनगरमें गये थे और वहांसे अकस्मात किसी मित्रके फुसलाने पर विना किसीसे पूँछे जहाजपर सवार होकर लन्डनको चलते हुए। यही इनकी आपत्तिका आरम्भ हुआ और भाग्यवश इनको घर लौटनेका मौका न मिला लन्डनसे जहाजपर सवार हो एफरीकाकी तरफ गये, जहाज रास्तेमें तबाह हो गया सब मनुष्य डूब गये केवल राविन सन् क्रूसो बचा जिसको कई वर्ष तक एक निर्जन टापूमें रहकर समय व्यतीत करना पड़ा। अन्तमें एक जहाज उक्त टापूके किनारे जालगा जिसपर सवार होकर यह स्वदेशको आये परन्तु अपनी बोली तक भूल गये थे। इनका सविस्तर वृत्तान्त डैनियलडिफो साहिबने "राविनसन क्रूसो" नामक अंग्रेजी ग्रन्थमें लिखा है जिसके पढनेसे लड़कोंको यह शिक्षा हो जाती है कि माता पिताकी आज्ञा भंगकर घरसे निकल जानेके कारण मनुष्यको अनेक आपत्तियें भोगनी पड़ती हैं और यह कि आपदाके समय निःसहाय मनुष्य किस प्रकार दृढता और धैर्यसे कार्य करके आपत्तिका निवारण करता है। अनेक विद्वानोंकी सम्मति है कि डैनियलडिफो साहिबने अलेग्जंडर सेल्कर्क नामक स्काटलैंडवासी मल्लाहके चरित्रोंके आशयपर राबिन्सनक्रूसोका अनुमानित इतिहास लड़कोंके उपकारार्थ लिखा है।

रामचन्द्र महाराज (मर्य्यादा पुरुषोत्तम)—अयोध्यामें राजा दशरथकी बड़ी रानी कौशल्याजीके गर्भसे चै० शु० ९ के दिन त्रेतायुगके अन्तमें

(फिरंगी विद्वानोंके मतानुसार स० ई० से ३००० वर्ष पूर्व) अवतीर्ण हुए। महर्षि वशिष्ठ तथा विश्वामित्रसे अनेक शास्त्रों तथा धनुर्वेदकी शिक्षा पाई। १५ वर्षकी उम्रमें शंकरधनुषको तोड़ जनकसुता सीताके साथ स्वयंवर विधिसे विवाह किया। २७ वर्षकी उम्रमें पिताका वचन मान १४ वर्षके लिये वनवासको गये। वनवासके १३ वें वर्ष पंचवटी बन (नासिक) में से आश्रमको सूना पाकर लंकेश रावण सीताजीको हर ले गया। तत्पश्चात् किष्किन्धाके राजा सुग्रीवसे महाराजने मेल करके रीछ बन्दरोंकी बड़ी भारी सेना एकत्र की और समुद्रपर सेतु बंधवाय लंकापर चढाई की। ३ महीनेसे कुछ अधिक कालतक युद्ध रहा जिसमें रावण सेना तथा परिवार सहित मारा गया, महाराजकी जीत हुई, सीताजीको पुनः पाया, सुमित्रासुत लक्ष्मणके नामपर लंकाका नाम सौमित्रा (Sumatra) रक्खा गया तथा वहांका शासन बिभीषणको सोंपा गया। वनबासकी अवधि पूरी होनेको थी एवं शीघ्रही पुष्पक विमानपर सवार होकर महाराज अयोध्या पहुंचे तथा राजसिंहानपर विराजे। उसी साल सीता महारानीको गर्भ रहा लेकिन रावणके यहां रही हुईको फिर बिठाल लेनेपर तीव्रलोकापवाद होते देख महाराजने उनको त्यागकर वाल्मीकि ऋषिके आश्रमपर भेज दिया जहां उनके लव तथा कुश दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए। पश्चात महाराजने नैमिषारण्यमें बड़ा भारी अश्वमेध यज्ञ किया जो एक वर्षसे कुछ अधिकमें पूरा हुआ। ऋषि वाल्मीकि भी निमन्त्रण पाकर सीता तथा लवकुश सहित इस यज्ञमें पधारे थे। यज्ञके अंतमें लवकुशने सभाके बीच महाराजको ३०॥ दिनमें २० सर्ग प्रति दिनके हिसाबसे रामायण सुनाई जिससे महाराज अतिशय प्रसन्न हुए। इसी अवसरपर सीताजीने देह त्याग दी और लवकुश दोनों पुत्रोंको महाराजने ग्रहणकर लिया। फिर अन्त समय तक महाराजने दूसरा विवाह नहीं किया और प्रतिवर्ष १ अश्वमेध यज्ञ तथा बीच बीचमें अग्निष्टोम, वाजपेय तथा गोमेधादि यज्ञ करते रहे। यज्ञके दिनोंमें हर वक्त रत्न, धन,वस्त्र, शर्करा तथा अन्नादिके बड़े बड़े ढेर बँटते रहते थे। समय पाकर कौशल्यादि माताओंने देह त्यागी और महाराजने उनके श्राद्ध कर्म विधि पूर्वक किये। अन्तको महाराजकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न भाइयोंको देह त्यागनी पड़ी। सबसे पीछे लवकुश दोनों पुत्रोंको राज्य सौंप महाराज

भी सरयू तट गुप्त हो गये, वह स्थान अबतक अयोध्यासे १० कोस दक्षिण गुप्तार घाट नामसे प्रसिद्ध है।

देशविजय तथा राज्यविभाग—महाराज रामचंद्रने एकछत्र राज्य किया। नाना देशोंके राजे आश्रित होकर उनको भेंट देते थे।

लक्ष्मणके पुत्र अंगदको कारूपथ देशका राज्य सौंपा और उनके नामसे अंगदीय पुरी बसाई। द्वितीय पुत्र चंद्रकेतुके नामसे चंद्रकांता नामक उत्तम पुर बसाकर मल्लभूमिका शासन सौंपा।

मधुवन (व्रज मंडल) के राजा लवणके अत्याचारोंकी शिकायत च्यवनादि ऋषियोंसे सुनकर महाराजने शत्रुघ्नको भेजकर वह देश विजय कराया और वहांका शासन शत्रुघ्नको सौंपा। अन्तमें शत्रुघ्नके पुत्र सुबाहुको मधुरा (मथुरा) और दूसरे शत्रुघातीको वैदिश नगरका शासन सौंपा गया।

केकय देशके राजा युधाजितके प्रार्थना करनेपर महाराजने भरतजीको भेजकर गंधर्वोंका देश जो सिंधसे गांधार (कन्धार) तक था विजय कराया और उसका शासन भरतके पुत्र तक्ष तथा पुष्कलको सौंपा।

निज पुत्र कुशके लिये विन्ध्या दक्षिण किनारे पर कुशावती पुरी बसाकर कौशल देशका राज्य दिया। लवके लिये अयोध्याका सिंहासन सौंपा तथा उत्तराखण्डसे लेकर उज्जैनतक सर्वत्र देशका राज्य दिया।

रामादलके रीछ बन्दर डार्विन साहबकी थ्योरीके अनुसार इनकी गणना मनुष्य तथा पशुके बीचकी उन अर्द्ध सभ्य जातियोंमें करना असंगत नहीं है। जो अब समय पाकर नष्ट होगई हैं। अनेक फिरङ्गी विद्वान् अनुमान करते हैं कि मध्य एशियासे आये हुये आर्य्य लोग हिन्दोस्थानके असली बासियोंको हिकारत के तौरपर बन्दर तथा रीछ कहते थे।

महाराजका डीलडौल—मुखादि सब शरीर सुन्दर, सब देह जैसी चाहिये वैसी, क़द न बहुत लम्बा न ठिंगना और श्यामवर्ण था। नेत्र, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, हाथ, पांव और मुखका भीतरी तथा बाहरी भाग कमलाकार थे।

मन्त्री व सभासद—सुमन्त आदि कई व्यवहार ज्ञाता मन्त्री थे (देखो सुमन्त). वशिष्ठ आदि कई ऋषि यज्ञ कराया करते थे और समय २ पर मन्त्रीका भी काम देते थे। सभासद धर्मज्ञ व नीतिपरायण थे।

अयोध्यानगरी—सरयूके दक्षिण तटपर १२ योजन लम्बी तथा ३ योजन चौड़ी थी।अयोध्यानगरीकी शोभा अलौकिक थी। शहर बड़े २ महलोंसे भराहुआ था जिनपर सुनहिला पानी फिरा था। बस्ती अत्यन्त घनी थी । बाजार सब प्रकारकी चीजोंसे भरपूर था। दूर २ से व्यापारी आते थे। कुओंका जल मीठा था। सड़कें नित्य प्रति छिड़की जाती थीं, विशेष स्थानोंपर फूल बखेरे जाते थे। शहर कोटसे घिरा हुआ था, बाहर खाई थी जिसपर रक्षाके लिये सैकड़ों तोपें रक्खी रहतीथीं। घोड़ों, हाथियों तथा फौजके लिये कोटके बाहर स्थान बने हुये थे। बगीचे भी अनेक थे । सरयूतटमें सैकड़ों स्थान स्त्रियोंको जलक्रीड़ाके लिये बने थे।

प्रजागण—सच्चे, सदाचारी, प्रसन्न चित्त, विद्वान, पापरहित, देखनेमें सुन्दर, उत्तम वेषधारी, खातेपीते, तन्दुरुस्त, एक दूसरेकी सहायता करनेवाले तथा मेल मिलापसे मर्य्यादानुसार चलनेवाले होकर व्यभिचारी नहीं थे।

देशकी हालत—रामराज्यमें कभी अकाल नहीं पड़ा। कोई विशेष रोग उत्पन्न नहीं हुआ। कभी कोई अनर्थ नहीं हुआ। प्रजा सुखसे रही और आधि व्याधि-से कभी न सताई गई। एक दफे किसी ब्राह्मणने विना अपराध किसी कुत्तेको मारकर बुरीतरह घायल किया था, महाराजने उस ब्राह्मणको भी दण्डित किया था।

बाल्मीकीय रामायण—इसको ऋषि बाल्मीकिने उत्तरकांड सहित २४००० श्लोकों तथा १०० उपाख्यानोंमें रामराज्यहीमें बनाया था। जो कुछ महाराजको अन्त समयतक करना था वही उत्तरकांडमें लिखा गया था।

सिक्का—स. ई. १९०४ की प्रदर्शिनीमें रामचन्द्र महाराजका सोनेका सिक्का दिखाया गया था। उसका वजन ९ तोले, व्यास २$\frac{1}{4}$ इञ्च, सोना बहुत चोखा और एक तरफ रामराज्याभिषेकका चित्र तथा दूसरी तरफ प्राचीन लिखावटका लेख है जो अत्यन्त प्राचीन होनेके कारण घिस गया है और पढ़ा नहीं जाता।

रामदासबाबा (प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ)—यह सूरदासजीके पिता थे और गाने बजानेमें परम निपुण थे। स० ई० १५५० में अकबर बादशाहके दर्बारके गवैयोंमें नौकर थे। ज़ब बैरमखां खानखानाने बग़ावत की तो रामदासजी उसके

तरफ़दार हुये। वैरमखाँने प्रसन्न होकर १ लक्ष मुद्रा इनको इनाम दियें थे। यह फ़ारसी तथा संस्कृतके अच्छे विद्वान थे और सङ्गीत विद्यामें तानसेनके सिवाय कोई दूसरा इनकी समानता नहीं कर सकता था। अबुल फ़ज्ल लिखता है कि रामदास ग्वालियरसे आया था और इतिहासकार बदायूनी लिखता है कि रामदास लखनऊसे आकर आगरेमें बसा था।

रामदैवज्ञ (ज्योतिषकार)—इनके पूर्वज बरारसे काशीमें आरहे थे। अनन्त दैवज्ञ गर्गगोत्री इनके पिता थे और "नीलकण्ठी" ज्योतिष ग्रन्थके रचयिता नीलकण्ठ दैवज्ञ इनके भाई थे। यह बादशाह अकबरके दर्बारमें नौकर थे। निम्नस्थ ग्रन्थ इनके बनाये हुये हैं:—

मुहूर्त चिन्तामणि, रामविनोद, यन्त्रप्रकाश और टोडरानन्द। टोडरानन्द राजा टोडर मलके नामसे बनाया था।

राम मिश्र शास्त्री, पं० महामहोपाध्याय—आपके पूर्वज अलवरसे २८ कासपर किसी ग्रामके रहनेवाले थे। आपका जन्म काशीमें वि०. सं. १९०४ की साल पं० शालिग्रामाचारीजीके घर हुआ था। आपके पिता योग्य पण्डित थे, प्रथम कई वर्षतक आप उन्हींसे पढ़ा किये। पश्चात् पं० राधा मोहन भट्टाचार्य तर्कभूषण तथा पं० म० म० कैलासचन्द्र शिरोमणि भट्टाचार्यसे आपने अनेक शास्त्रोंकी शिक्षा सम्पूर्ण की। फिर संस्कृत कालिज बनारसमें आपने सरकारी नौकरी की और अवकाश मिलने पर सदैव विषयोंपर सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थ विचार सहित देखते रहे। जुबिलीकी साल गवर्नमेन्टने महाविद्वानोंमें गणना करके आपको पं० महामहोपाध्यायकी उपाधिसे विभूषित किया जिससे वास्तवमें अपार विद्याकी प्रतिष्ठा हुई। आप अंग्रेजी भाषाके भी ज्ञाता हैं और सरलता पूर्वक उक्त भाषामें बात चीत कर सकतेहैं। स० ई० १९०२ में आपने कालिजकी नौकरीसे पेन्शन ली। अब आप स्वतन्त्र होकर बहुधा भ्रमण करते रहते हैं और सर्वथा त्यागी होकर किसीसे कुछ इच्छा नहीं रखते। आप सदाचार सम्पन्न, आचार शुद्ध तथा विलक्षण बुद्धिके महापुरुष हैं। सदैवसे निजपर साधारण विद्यार्थियोंको पढ़नेकी अपेक्षा ग्रन्थ रचनामें आपकी अधिक रुचि है, किन्तु सुपात्र, विशेष बुद्धिमान् विद्यार्थी मिल जानेपर आप अवश्य उसका संग्रह करलेते

हैं। पं० मोहनलाल वेदान्ताचारी, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० देवीसहाय (धर्म-दिवाकर सम्पादक) तथा पं० भागवताचार्य सरीखे प्रसिद्ध पंडित आपहीसे पढ़-कर ऐसे विद्वान हुए। आप पढाते समय निज शिष्योंको धर्मशास्त्र तथा नीतिके अनेक उपदेश भी इस रीतिसे करते रहते थे कि जो उनके चित्त पटलपर अंकित होकर चिरस्थाई रहते हैं। वैसे तो आप संस्कृत विद्याके सागर हैं परन्तु विशेषत: दर्शन विषयमें आपको अपूर्व योग्यता प्राप्त है। दर्शन विषयके बड़े २ गूढरहस्य आपके करतल पदार्थकी भांति हैं। आपके मिलनेसे चित्तमें एक प्रकारका उत्साह उत्पन्न होकर हिम्मत बंधती हैं और आपकी बात २ में कोई न कोई नीतिमय उपदेश झलकता है। काशीमें गंगापार रामनगरमें आपका निवास-स्थान है। दशाश्वमेध घाटकी तरफ बंगाली टोलामें भी आपका एक मकान है जहां कभी २ आकर आप बैठते हैं। स. ई. १९०४ में आपका स्वास्थ्य अच्छा है केशव स्वामी आपके सुयोग्य पुत्र हैं और निम्नस्थ ग्रंथ आपके रचे हुये हैं:—

मंत्रमीमांसा, व्रात्यसंस्कार मीमांसा, उद्वाह समय मीमांसा, तुरीय मीमांसा, स्नेह पूर्ति, दत्तक विजय वैजयन्ती, सर्व वेदसार निर्णय, सुबुद्ध बोध व्याकरण, बलाबल परीक्षा, दर्शन रहस्य, रत्नपरीक्षा तथा अनेक और। आप श्रीसम्प्रदा-यके वैष्णव हैं, स्वामी आपकी परम्पराकी उपाधि है। सनातन धर्मका समर्थन करनेको बुलाये जानेपर आप अनेक अवसरोंपर दूर २ शहरोंमें पधारते रहे हैं तथा अबभी पधारते रहते हैं।

राम मोहनराय, राजा (ब्रह्मो समाजोंके संस्थापक)—स० ई० १७७४ में आपका जन्म राधानगर ज़िला बर्दवानमें हुआ था, रामकेतनराय आपके पिता थे। बंगाली भाषा मकानपर पढकर राम मोहन बाबू पटनाको पधारे और वहां रहकर उन्होंने अर्बी, फ़ारसी, तथा रेखागणित सीखी। तत्पश्चात् बनारसमें जाकर संस्कृत पढी। १६ वर्षकी उम्रमें मूर्ति पूजाके खण्डनमें एक पुस्तक रची। पश्चात् तिब्बतमें जाकर बौद्ध मतके ग्रंथ पढे। २२ वर्षकी उम्रमें स्वदेशको लौटकर आये और अंग्रेजी पढ़ने लगे। स० ई० १८०३ में पिताका देहांत होनेपर उन्होंने रङ्गपुरके कलेक्टरके दफ्तरमें नौकरी करली और थोड़ेही दिनोंमें तरक्की पाकर उक्त दफ्तरमें दीवानके पदको प्राप्त हुये। नौकरी करके उन्होंने इतना धन कमाया कि १ हज़ार रुपया वार्षिक

आयकी जमीन्दारी ख़रीद ली । राम मोहन बाबू विद्याके बड़े रसिक थे, नौकरी करते २ उन्होंने उच्च श्रेणीका गणित तथा लैटिन, ग्रीक, हेब्रु आदि भाषायें पढ ली थीं और अनेकानेक मतोंके धर्म सम्बन्धी ग्रंथोंको विचार सहित पढकर ईसाई मतको सर्व्वोत्तम ठहरा दिया था जिससे उनके हज़ारों शत्रु हो गये थे । वेदान्त• दर्शनका अनुवाद उन्होंने हिंदी, बङ्गला, और अंग्रेज़ीमें किया था। एक अंगरेजी स्कूल तथा स्वरचित ग्रन्थोंके छापनेके लिये एक यन्त्रालय भी जारी किया था । और दो पुस्तकें सतीका चाल मिटानेके लिये भी छपवाई थीं । स० ई० १८२८ में उन्होंने कलकत्तेमें ब्रह्मो समाज स्थापन की और अपने मन्तव्योंके प्रकाश करणार्थ कई पुस्तकें गीतों तथा भजनोंकी बनाई । स० ई० १८२७ में एशियाटिक सोसाइटी बंगालने उनको अपना मेम्बर नियत किया । स० ई० १८३० में वह तख्त दिल्लीकी तरफसे राजदूत नियत करके इङ्गलैण्ड भेजे गये । और असाधारण प्रतिष्ठाके भागी हुये । स० ई० १८३२ में इंगलैंड़से फ्रांसको पधारे और वहांके सम्राटके साथ दोदफ़ा भोजन करके सर्व्वोच्च प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए. फ्रांसमें कुछ दिन ठहरकर उन्होंने फ़रासीसी भाषा सीखी और पश्चात् इंगलैंडमें वापिस आये और वहांके बादशाहकी तरफ़से राजाका खिताब पाया । स० ई० १८३३ में बृस्टूलनगरमें मरे जहां उनकी कबर अब तक मौजूद है । ब्रह्मो समाजी लोग जाति पांति तथा खानपानका कुछ विचार नहीं रखते हैं । राजा राममोहन रायके रामप्रसाद राय नामक पुत्र था जिसके बंशज अब तक कलकत्तेमें हैं । चौबीस पर्गना आदि बंगालके कई ज़िलोंमें उनकी ज़मींदारी हैं ।

रामसिंहजी (महाराजा सवाई सर रामसिंह, जी० सी० यस० आई० जयपुर नरेश)—यह निज पिता महाराजा जयसिंह ३ के पीछे दो वर्षकी उम्रमें स० ई० १८३८ की साल गद्दीपर बैठे । बाल्यावस्थामें राजकाज बृटिश पोलीटिकेल एजेन्ट करता रहा और बालिग़ होनेपर स० ई० १८५७ की साल राज्यका पूरा अधिकार आपको सौंप दिया गया । सन् ५७ के उपद्रवमें आपने सरकार अंगरेज बहादुरकी तन मन धनसे सहायता की जिसके बदलेमें कोटी कासिमका परगना तथा पुत्र गोद लेनेका अधिकार आपको दिया गया । आप बड़े चतुर, प्रजा पालक तथा विद्योन्नति करनेवाले थे । जयपुरमें शिल्पमहाविद्यालय, रामनिवास बगीचा, अजायबखाना, संस्कृत कालिज

और जलकी न्यूनता मिटानेके लिये पानीके नल आपहीके समयमें बनाये गये थे । आपने अंगरेज़ी व संस्कृत कालिजों तथा पुत्री पाठशाला और शिल्प महाविद्यालयके वार्षिक व्ययके लिये ८० हजार रु० राजकोपसे नियत किये थे। स० ई० १८६८ के अकालमें आपने प्रजाकी बड़ी सहायता की थी । इसपर प्रसन्न होकर बृटिशगवर्नमेंटने आपकी सलामी तोपके १९ फैरसे २१ फैर बढाई थी । स. ई. १८७५ में आप उस कमीशनके मेम्बर नियत किये गये थे जो गैकवाड़ बरोडापर बृटिश रेज़ीडेन्टको विष देनेके मुक़द्दमेका फ़ैसला करनेके लिये गवर्नमेंट आफ़-इण्डियाकी तरफसे नियत हुआ था । उक्त कमीशनमें ३ हिन्दोस्थानी राजे और दो अंगरेज अफ़सर शामिल थे । तीनों राजाओंने गैकवाड़को निर्दोष और अंगरेज़ी अफ़सरोंने राजाको दोषी ठहराया था, परन्तु गवर्नमेंट गैकवाड़को राज्यहीन कर दिया । उसी साल शाहजादे वेल्ज़ने जयपुर पधारकर ऐल्बर्टहालकी नींवका पत्थर रक्खा था । आप दो दफ़ै गवर्नरजेनरल हिंदकी व्यवस्थापक सभाके मेंबर भी रहे थे। जयपुरकी प्रजाको सुप्रख्यात महाराज जयसिंह सवाई की मृत्यु (स० ई० १७४३) के पीछे आपके समयका अमनचैन कभी नहीं मिला था । अङ्गरेजों और मेमोंसे आपका खूब मेल रहता था। स० ई० १८८० में वैकुण्ठवासी हुये और श्रीमान्‌के दत्तक पुत्र सर सवाई माधौ सिंहजी (वर्तमान नरेश) गद्दीपर बैठे । महाराज रामसिंहने अवनतिको प्राप्त हिंदूधर्म तथा हिंदूजातिके उद्धारके लिये अनेक उपाय किये थे ।

रामानन्दगुरु-(रामानन्दीयसम्प्रदायके आचार्य) भक्तमालके लेखोंसे विदित होता है कि यह दक्षिण देशके रहनेवाले थे और किसी संन्यासीके शिष्य थे । एक दिन यह दर्शन करणार्थ रामानुज स्वामीकी गद्दीके महन्त राघवानन्दके पास जा निकले, महन्तजीने इनसे कहा कि " तुम्हारी आयु अब बहुत कम रहि गई है जो कुछ करना होकरलो " । यह इन्होंने उक्त महन्तको गुरु करलिया । जब मृत्युका समय निकट आया तब गुरुने प्राण ब्रह्मांडमें चढ़वाकर इनको समाधिस्थ कर दिया और मृत्युकाल टल जानेपर प्राण वायू उतार कर बहुकाल जीनेका वरदान दिया । कुछ दिनोंतक गुरु सेवामें रहनेके बाद रामानन्दजी बद्रिकाश्रमको पधारे और वहांसे लौटकर काशीजीमें पञ्च गंगाघाट पर कुछ दिनोंतक

रहे। पश्चात् लौटकर जब यह निज गुरुके पास फिर पहुंचे तो वहां लोगोंने इन्हें पंक्तिमें नहीं लिया क्योंकि यह रामानुजीय कड़े आचारका पालन नहीं कर सके थे। यह देख गुरुकी आज्ञानुसार इन्होंने अपना नवीन पन्थ चलाया, जो रामावत या रामानन्दीय नामसे विदित है। समय इनका वि० सं० १४०० से १५०० के भीतर है। इनके अनेक शिष्योंसे कबीर, रैदास, धना, सेन तथा पीपा इत्यादि १२ शिष्य मुख्य थे जिन्होंने इस देशमें भाषा कविता तथा वैष्णव धर्मका बहुत कुछ प्रचार किया। और यह सिद्ध कर दिखाया। कि " जातिपांति पूंछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरिको होई "। रामानन्दियोंकी प्रधान गद्दी जयपुर राज्यान्तर्गत गलता स्थानमें हैं, वह स्थान अत्यंत रम्य है और वहां कई बड़े २ मन्दिर वर्तमान हैं जिनमें श्री सीतारामकी मूर्तियें विराजमान हैं। गुरु रामानन्द भाषाके सुकवि थे। उनकी स्फुट कविता लोकप्रसिद्ध है और " रामानन्दीय वेदान्त" उन्हींका बनाया हुआ है।

रामानुजस्वामी–(श्री सम्प्रदायके आचार्य) काञ्चीपुरीके निकट भूतपुरीमें केशव यज्वा नामक ब्राह्मणके घर कान्तिमतीके उदरसे जन्मे। भूतपुरी दक्षिणमें तिरुवल्लूरके रेल्वे इस्टेशनसे १२ कोस दक्षिण है। १६ वर्षकी अवस्थामें चारों वेद कण्ठ करलेने पर इनका विवाह कर दिया गया। विवाहसे कुछ दिनों पीछे इनके पिताका देहान्त होगया। पश्चात् इन्होंने काञ्चीपुरीके पं० यादव प्रकाश (यादव-गिरि) तथा कावेरी नदीके तटस्थ रंगपुरमें यामुनाचार्यके शिष्य पूर्णाचार्यसे व्याक-रण, न्याय, वेदांत आदि अनेक शास्त्र पढ़े और वेदोंको शास्त्रीय तर्कों सहित विचारा। इनकी स्त्री रक्षकाम्बा झगड़ालू थी। अतएव उसके स्वभावसे दुःखित होकर एक दिन इन्होंने उसको नैहर पहुँचा दिया और आप संन्यास ग्रहण कर लिया। फिर देशाटन करते हुये बद्रिकाश्रम गये और वहांसे लौटते हुये अनेक तीर्थोंके दर्शन किये। संन्यास ग्रहण करनेसे पहिले इन्होंने काञ्चीपुरीके राजाकी कन्यापरसे पिशाच बाधा दूरकरके बहुत द्रव्य तथा सत्कार पाया था। बद्रीनाथसे लौटकर कपिल तीर्थ गये थे और वहांके राजा विट्ठल देवको शिष्य बनाकर तोंडीर मंडल आदि अनेक ग्राम पाये। कपिल तीर्थसे श्रीरंगपट्टनमें आकर वेदान्त सूत्रोंपर श्रीभाष्य, वेदान्तप्रदीप, वेदान्तसार, वेदान्त संग्रह और गीता भाष्यादि अनेक ग्रन्थ रचे। पश्चात् बहुतसे शिष्योंके साथ चोलमंडल, पाण्ड्यसं-

टल, कुर्ग इत्यादि देशोंमें विशिष्टाद्वैत मतका प्रचार किया और कुर्ग नरेशको दीक्षित करके करलदेश (मालाबार) के पंडितोंको जीता। अंतमें फिर द्वारिका, मथुरा, काशी अयोध्या, बद्रिकाश्रम, नैमिषारण्य, पुरुषोत्तमपुरी (जगन्नाथ) और वेंकट गिरिकी यात्रा की। पुरुषोत्तमपुरीमें बौद्धोंको परास्त किया। परम-धाम सिधारनेसे पहिले भूतपुरीमें अपनी मूर्ति स्थापन की जो अबतक वहां एक मंदिरमें विद्यमान है। स० ई० १०१७ में जन्म। स० ई० ११३७ में श्रीरंगपट्टनमें मृत्यु।

शैव लोग इनको दुःख देनेके अनेक उपाय करते रहे, परंतु कुछ न कर सके। इनके जीवनकालहीमें वैष्णवमतका खूब प्रचार होगया था और इनके अन्तसमय वैष्णवोंके ७०० मंदिर मौजूद थे। रामानुजीयसंप्रदायके विशिष्टाद्वैतमतवादी वैष्णव कहते हैं कि मायाविशिष्ट ब्रह्म है अर्थात् जीव ईश्वरसे अलग होकर जन्म लेता है और मरनेपर ईश्वरमें मिलजाता है।

रायप्रवीण—देखो प्रवीणराय पातुरी.

रायपिथौरा—देखो पृथ्वीराज.

ऋतुपर्ण—यह सूर्यवंशीनरेश महाराज रामचन्द्रसे अनेक पीढी पूर्व हुये। नैषध (विहार) का राजा नल अपना राज्य जुयेमें हारकर इन्हींके दरबारमें घोड़े हांकनेपर नौकर हुआ था। राजा ऋतुपर्ण चौसर खेलनेमें अद्वितीय थे। इनकी राजधानी रिजोर जिला एटामें थी। रिजोरका प्राचीन संस्कृत नाम राजित क्रांति है। भागवतके लेखानुसार रामचन्द्र इनसे १३ पीढी पीछे हुये और शिव पु० के लेखानुसार ११ पीढी पीछे हुये।

रिषभदेव—(जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर)—यह राजा नाभाके पुत्र थे इनके १०० पुत्र हुये जिनमेंसे सबसे बड़ा भरत था। रिषभदेवजीने १०० यज्ञ करके पुत्रोंको ज्ञान उपदेश किया और ज्येष्ठपुत्र भरतको राजपाट सौंप आप तप करने वनको सिधारे। भागवतमें लिखा है कि जप तप करते २ इनके शरीरमें केवल हाड़ चाम ही रहगये तो दक्षिणमें जाकर इन्होंने जैन मतका उपदेश किया।

इनको आदि नाथभी कहते हैं।

जैनियोंके निम्नस्थ २४ तीर्थंकर हैं:—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वना० चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्तना० शीतलना० श्रेयांशना० वासुपूज्यना० विमल ना० अनंतना० धर्मना० शांतिना० कुंथुना० अरना० मल्लीना० सुव्रतना० नेमिना० नेमीना० पार्श्वना० और महावीर। जैन मतमें जगत्की उत्पत्ति नहीं है न कोई ईश्वर है। उनके मतमें संसारी और मुक्त दो प्रकारके जीव हैं ये लोग अपने तीर्थंकरों और सिद्ध देवताओंको मानते हैं किसी प्राणीका वध नहीं करना यही जैन धर्मकी सार नीति है। जानवरोंपर जैनियोंकी बड़ी दया है, उन्हींके उद्योगसे स्थान स्थानपर पशुशालायें खुली हैं। जैनियोंके मंदिरोंमें इन्हीं जैन तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें चांदी; स्वर्ण तथा रत्नोंसे जटित होती हैं। जैनियोंमें श्वेतांबर और दिगंबर दो प्रकार होते हैं। दिगबरोंकी मूर्तियां नंगी होती हैं। उदारता, सुशीलता, पुण्य और तप जैनियोंके ४ मुख्य धर्म हैं। स० ई० १८९१ की मनुष्य गणनाके समय हिन्दोस्तानमें १४१६६३८ जैन थे। जूनागढ राज्यान्तर्गत गिरिनारमें ऋषभदेवजीका मन्दिर है जिसमें अन्य सब तीर्थंकरोंकी भी मूर्तियां हैं। आबू पर्वत पर भी पट्टन (गुजरात) वासी विमल शाह जैनीका बनवाया हुआ रिषभदेवजीका मन्दिर है जिसके तयार करानेमें १८॥ करोड़ रुपये खर्च हुए थे।

रुक्मिणी–(श्रीकृष्णकी पटरानी)–यह विदर्भ (बरारमें) के राजा भीष्मककी कन्या थी। भीष्मकका विचार इसका विवाह श्रीकृष्णजीके साथ करनेका था, लेकिन इसके भाई रुक्मने हठ पूर्वक इसका विवाह चंदेरीके राजा शिशुपालसे ठहरा दिया था रुक्मिणीका श्रीकृष्णके चरणोंमें पहिले हीसे अनुराग था एवं विवाहके ऐनवक्त उसने अपनी करुणामय विनती पत्रमें लिखकर एक वृद्धब्राह्मणके हाथ श्रीकृष्णजीके पास भेजी। तुरन्त महाराजद्वारिकासे धाये और बल पूर्वक रुक्मिणीजीको लेगये। द्वारिका पहुंच कर महाराजने बड़ी धूमधामसे विवाह किया और रुक्मिणीको अपनी पटरानी बना लिया।

रूचक पंडित (अलङ्कार सर्वस्वके रचयिता)–यह काश्मीरके राजानक वंशके सभालंकार थे। रूप्यक भी इन्हींका नाम था। वि० सं० की ११ वीं शताब्दीमें हुए।

रुद्रट (काव्यालंकारके निर्माता)—काश्मीरमें वि० सं० की ११ वीं शताब्दीमें हुए । इनके रचे काव्यालंकार पर अभिनवगुप्त आचार्यने वृत्ति रची थी और नेमिनामक साधूने वि० सं० की १२ वीं शताब्दीके प्रथम पादमें उसपर टीका रची थी ।

रुस्तम (पृथ्वी प्रसिद्ध ईरानी पहलवान)—यह जालका पुत्र तथा शामका पौत्र बड़ा बली पहलवान होकर ईरान (फारिस) के बादशाह कैकाऊसका सेनापति था । मल्लयुद्ध तथा शस्त्रविद्यामें निपुण था और रणभूमिमें परम भयानक शत्रु होनेके कारण मध्यएशियाके सबराजे इससे थर २ कांपते थे । अनेक मल्लयुद्धोंमें इसने विजय प्राप्त की थी और अफरासियाब इत्यादि बड़े बड़े पहलवानोंको पछाड़ा था । रुस्तमहीकी सहायतासे अफ़रासियाबका राज्य जमशैदके पुत्र कैकुबादको मिला था । अन्तमें शत्रुओंने धोखा देकर इसके बेटेको इससे लड़ाकर मरवाडाला । पश्चात इसको भी एक अन्धे कुँए में जो नाजुक लकड़ियोंसे पटा हुआ था; और जिसके भीतर भाले गढे हुए थे गिराकर मारडाला । रुस्तमने मरते वक्त अपने धोखा देनेवाले शत्रूको तीर मारकर वध किया । स० ई० से प्रायः १८०० वर्ष पूर्व हुआ । रुस्तमशब्द आजकल वीरता वाची हो रहा है ।

रूपमती रानी—मैल्कम साहब कृत इतिहासमें लिखा है कि रूपमती सारंगपुरकी किसी वेश्याकी कन्या, देखने भालनेमें सुन्दर और गाने बजानेमें निपुण थी. कविता भी करती थी, सैकड़ों राग उसके बनाये माल्वा देशमें अब तक प्रसिद्ध हैं, जिनको रासधारी और कलावंत लोग कंठ सीखते हैं । माल्वाके राजा बाजबहादुरने रीझकर उसको अपनी पटरानी बनाया था । रंगमहलके खंडेर जो बाजबहादुरने रूपमतीके लिये बनवाया था अब तक पड़े हुए हैं । इस प्रकार राग विलासमें ७ वर्ष बीतने पाये थे कि स० ई० १५७० में मुगल सम्राट अकबरके सेनापति आदमखांने माल्वापर चढाईकी और बाजबहादुरको परास्त किया'' । खफी खां इतिहासकार लिखता है कि "जब बाजबहादुर हारकर भागा तो रूपमती आदमखां (अहमदखां) के हाथ पड़ी, आदमखांके हृदयमें रूपमतीके दुःख विरह और विनतीसे किंचितलाज दया नहीं उत्पन्न

होती थी और सच्चे प्रेमकी खबर न रखकर वह नाना विधिसे उस पराधीन स्त्रीको सताता था, ऐसी आपत्तिकी दशामें रूपमतीने मिलनेका एक समय नियत किया और खूब सजकर मुँहपर रूमाल डालकर लेट रही, नियत समय पर जब आदमखाँ आया तो दासियोंने रूपमतीको जगाया पर मुर्दा पाया क्योंकि उसने विष खा लिया था। रूपमतीका प्रेम अपने प्रियतमके साथ अत्यन्त बढ़ा हुआ था। जबसे बाज बहादुर आंखों ओट हुआ था वह विकल हो यह पद पढती थी और फूट २ रोती थी—

दोहा—तुम बिन जियरा रहतहत, मांगत है सुखराज ।
रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज ॥

उज्जैनमें एक तालाबके बीच रूपमती और बाज बहादुर दोनोंकी कबरें हैं। भूमण्डलके इतिहासमें बहुत कम ऐसे दो स्त्री पुरुषका वृत्तान्त मिलता है जिनमें ऐसा सच्चा और निष्कपट प्रेमहो, जिनके चित्त परस्परकी प्रीतसे ऐसे आकर्षित हों और जिनकी चित्तकी वृत्तियोंमें इतनी समानता पाई जाती हो।

रूपसनातनगोस्वामी—(वैष्णव धर्म प्रवर्त्तक). भक्तमालकी टीकाके अनुसार रूप और सनातन दोनों भाई बंगदेशमें बादशाही पदाधिकारी थे, चित्तमें वैराग्य उदय होनेके कारण सर्वस्व छोड़ श्रीनित्यानन्द महाप्रभुके शिष्य हो गये और गुरुकी आज्ञानुसार वृन्दावनमें आकर वैष्णव धर्मका प्रचार किया। नित्यानन्द म० श्रीकृष्ण चैतन्य म० की सम्प्रदायके थे। मिस्टर ग्राउसके लेखानुसार उस समय थोड़ेसे झोंपड़ोंके सिवाय वृन्दावनमें बिलकुल वन था, रूप तथा सनातन दोनों भाइयोंने निज शिष्य नारायण भट्टकी सहायतासे तीर्थों और देवस्थानोंका पता लगा २ कर मूर्तियें स्थापन कीं। रूपगोस्वामीके सेव्य ठाकुर श्रीगोविन्ददेवजी थे जिनका बहुत ऊंचा मन्दिर जयपुरके राजा मानसिंहने वि० सं० १६४५ में १३ लाख रुपयेके खर्चसे बनवाया था। सनातन गोस्वामीके सेव्य ठाकुर मदनमोहनजी थे जिनका मन्दिर किसी महाशय गुणानन्द नामकका बनवाया हुआ अबतक वृन्दावनमें मौजूद है। Catalogus Catalogrum के अनुसार निम्नस्थ ग्रंथ रूप गोस्वामी कृत हैं:—उज्ज्वल नीलमणि, उद्धवदूत, कार्पण्यपुञ्जिका, गोविंद विरदावली; चैतन्याष्टक, दानकेलिकौमुदी, पद्यावली, प्रीतस-

न्दर्भ, विदग्ध माधव नाटक (स० ई० १५४९), ब्रजविलासस्तव, संक्षेपामृत, उत्कलिकावल्लरी (स० ई० १५५०), उपदेशामृत, गंगाष्टक, गौरांगसुर कल्पतरु, छन्दोष्टादशक, नाटक चन्द्रिका, परमार्थसन्दर्भ, प्रेमेन्दुसागर, मथुरा महिमा, यमुनाष्टक, ललित माधव नाटक, बिलाप कुसुमाञ्जलि, शिक्षादर्शक, साधन पद्धति, हंस दूतकाव्य, हरेकृष्णमहामन्त्रार्थनिरूपण, भक्तिरसामृतसिन्धु, मुकुन्दमुक्तारत्नावली टीका, रसामृत और हरिनामामृत व्याकरण । Catalogus Catalogorum के अनुसार यह ग्रन्थ सनातन गोस्वामी कृत हैं—उज्ज्वलरसकरण, भक्ति बिन्दु, भक्ति रसामृत सिन्धु, भागवतामृत, विष्णुतोषिणी, हरिभक्ति विलास, उज्ज्वलनील-मणिटीका, भक्तिसन्दर्भ, योगशतक व्याख्यान और स्तवमाला । रूप और सनातन दोनों भाइयोंकी अस्थि वृन्दावनमें श्रीराधा दामोदरके मन्दिरमें सञ्चित है ।

रेवती—गुजरातके सूर्य्यवंशी राजा रैवतकी कन्या श्रीकृष्णजीके भाई बलराम-जीको विवाही गई थी और इनके दो पुत्र उत्पन्न हुये थे । स्वरूप इनका बड़ा सुन्दर था और क़द लम्बा था । इनके पिता रैवतने कुशस्थली नामक नगरी बसाई थी । इन्होंने अंतमें सत किया ।

लल्लभट्ट—(प्रसिद्ध ज्योतिषी)—इनके बापका नाम त्रिविक्रमभट्ट और दादे का नाम शाम्बु था । आर्य्यभट्टीयतन्त्रके टीकाकार परमेश्वरजी लिखते हैं कि प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्य्यभट इनके गुरु थे । इन्होंने पठन पाठनके अर्थ आर्य्यभटादि विद्वानोंके ज्योतिष सिद्धान्तोंको श्रेणीबद्ध करके सुगम किया और उसमें अपनी तरफसे अनेक विशेष बातें सम्मिलित करके "लल्लसिद्धांत" रचा । "शिष्यधी वृद्धिद" तथा "पाटीगणित" नामक ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुये हैं । पश्चात् भास्कराचार्यने इनके अनेक ज्योतिषग्रन्थोंको विचार सहित पढ़कर "सिद्धांतशिरोमणि" नामक ग्रंथ बनाया था । लल्लजी पटनाप्रान्तके रहनेवाले थे और वि. सं. की छठी शताब्दी-के उत्तरार्द्धमें हुये ।

लल्लूलालजी (भाषाकवि)—यह आगरेके रहनेवाले सहस्रावदीच ब्राह्मण थे । भाषागद्य लिखनेकी प्रणाली प्रथम इन्हींने चलाई । सीधे दोहे, चौपाई, सोरठे, छंदभी अच्छे लिखते थे और लालकविनामसे पद पूर्ति करते थे । निम्न-स्थ ग्रंथ जिनमेंसे बहुधा खड़ी बोलीमें हैं इन्हींके बनाये हुये हैं—

१. प्रेमसागर (भागवत दशमस्कंधका भाषानुवाद).

२. वार्तिकराजनीति (नारायणपण्डितके हितोपदेशका भाषानुवाद ब्रजभाषामें)

३. सभा विलास.

४. माधवविलास

५. लालचंद्रिकानामक विहारी सतसईका तिलक.

६. सुन्दरदासके प्राचीन भाषानुवादसे सिंहासनबत्तीसीका खड़ी हिंदी बोलीमें अनुवाद।

७. शिवदासकृत संस्कृत वेतालपंचविंशतिकाका भाषानुवाद सूरतमिश्रने जयसिंह सवाई जयपुर नरेशके हुक्मसे किया था। लल्लूने सूरतमिश्रके अनुवादका उल्था हिंदोस्तानी खड़ी बोलीमें किया।

८. मोतीलालने कामकन्दला माधवानलनाटकका भाषानुवाद एक संस्कृतके प्राचीन ग्रंथसे स. ई. १७०० के लगभग किया था। लल्लूने इसी भाषानुवादका उल्था हिंदोस्तानी बोलीमें किया।

९. कवि कालिदासकृत शकुन्तलाका उल्था हिंदोस्तानी बोलीमें किया।

लल्लू स. ई. १८०३ में विद्यमान थे।

ललितादित्य–(काश्मीरका प्राचीन राजा)–इसने स. ई. ६९७ से ७३३ तक कश्मीरका राज्य भोगा और कन्नौज, गौड़देश, कलिंग, तथा कर्नाटकके राजाओंको परास्त किया और अनेक द्वीपोंपर अपना अधिकार जमाया। यह भवभूति कवीश्वरको कन्नौजसे अपने साथ काश्मीर लिवा ले गया था। काश्मीरमें अनेक मंदिर भी इसने बनवाये थे। अन्तमें हिमालय पारकरके चीनपर चढ़ाई करने जाता था लेकिन रास्ते हीमें मर गया।

लहिनासिंहसरदार–इनके बाप सरदार देसासिंहको महाराजा रणजीतसिंहजीने सतलज और रावीके बीचके पहाड़ी मुल्कका गवर्नर नियत किया था। स० ई० १८३२ में सरदार देसासिंहके सिधारने पर सरदार लहिनासिंहको गवर्नरीका ओहदा मिला और उन्होंने बड़ी योग्य रीतिसे मुल्कका इन्तजाम किया। अंतमें जब खालसा फौज बिगड़ी तो सरदार लहिनासिंह समय टालकर तीर्थाट-

नको चले गये। जब फिसाद कुछ कुछ ठंडा पडा तो लाहौरके ब्रिटिश रेजी-डेन्टके बुलानेसे वापिस आये परंतु उपद्रव फैलनेके चिह्न देखकर पुनः सन् ई० १८४६ में बनारसको पधारे और वहीं परलोकगामी हुए। यह बड़े शिल्प-कार तथा आविष्कार थे, खालसा फ़ौजके तोपखानेमें इन्होंने बड़े बड़े सुधार किये थे। कौमके जाट थे और खालसा पन्थको मानते थे। आपके सुयोग्य पुत्र सरदार दयालसिंह मजीठिया जिला अमृतसरके नामी रईस बृटिश गवर्नमेंटके कृपा भाजन हैं।

लक्ष्मणजी—यह महाराज रामचन्द्रजीके छोटे भाई, कोसलेश राजा दशरथके पुत्र सुमित्राजीके गर्भसे त्रेतायुगके अन्तमें उत्पन्न हुए थे। महाराज रामचन्द्रके साथ इनका भ्रातृस्नेह अगाध था एवं वनवासको उनके साथ ही गये थे। वनमें जब महाराज आराम करते तो यह धनुषबाण लेकर चौकसी किया करते थे। महारा-जका इशारा पाकर इन्होंने शूर्पनखाके नाक कान काट डाले थे और अन्य सब लड़ा-इयोंमें जो राक्षसोंसे हुई महाराजके साथ २ बड़ी वीरतासे लड़े थे। यह वीरत्वकी मूर्ति होकर बड़े खरे स्वभावके थे। धनुषयज्ञके समय राजा जनक पर, महाराजको लौटानेको जानेके समय भरतजी पर और सीतामाताकी सुधि भूलनेके कारण सुग्रीवपर इनका क्रोध करना विदित है। सियास्वयंवरके अवसर पर जो विवाद इनके और परशुरामजीके बीच हुआ था उससे इनका स्वभाव बहुत कुछ जाना जा सकता है। रावणको ससैन तथा सपरिवार नष्ट करके महाराजने लक्ष्मणजीके नामपर लङ्काका नाम सौमित्र (Sumatra) रक्खा और उसका शासन विभीष-णको सौंपा। लक्ष्मणजी अपनी माता सुमित्राके सम्बन्धसे सौमित्र कहलाते थे। राज्यसिंहासन आरूढ होने पर महाराजने लक्ष्मणजीको किसी दूर देशके शासन पर नहीं भेजा किन्तु राजकाजकी देख भालके लिये अपने पास ही उनको रक्खा तथा अयोध्याके समीपमें उनको बहुतसा मुल्क दिया जिसमें उन्होंने लखनपुर नामक नगर बसाया जो अब लखनऊ नामसे प्रसिद्ध है। औरंगजेबने पवित्र स्थान जानकर लखनपुरके खण्डैरोंपर एक मसजिद बनवादी थी। यह मसजिद अब लखनऊमें किला मच्छी भवनके भीतर है। सीताजीकी चचेरी बहिन उर्मिलासे लक्ष्मणजीका विवाह हुआ था जिससे अंगद और चंद्रकेतु दो पुत्र थे। महा-राजने लक्ष्मणजीके पुत्र अंगदको कारूपथ देशका राज्य दिया था और वहां

अंगदीय पुरी नामक नगरी वसाई थी। दूसरे पुत्र चन्द्रकेतुको मल्लभूमिका राज्य दिया तथा चन्द्रकांता नामक एक उत्तम पुर वहां बसाया था। महाराजके वैकुंठ पधारनेसे पहिले सरयूतट अयोध्यामें लक्ष्मणजीको देह त्यागना पड़ी। यह स्थान "लक्ष्मण घाट" के नामसे प्रसिद्ध है। लक्ष्मणजीका रंग गोरा था, और डील सुडौल था।

लक्ष्मणदाससेठ मथुराके (राजा लक्ष्मणदास, सी. आई ई.)—सेठ राधाकृष्णके घर आ. कृ. ८, वि. सं. १९१० को मथुरामें आपका जन्म हुआ पिता आपको ५ वर्षका छोड़ मरे थे। सेठ गोविन्ददासके पीछे आप सेठ घरानेके मालिक हुए। निज पूर्वजोंका समान राजभक्त होकर आप सदैव गवर्नमेण्टके दातव्यकोषोंमें चन्दा देते रहते थे और स्वदेशी धर्मकार्योंमें भी सहायता करनेसे मुंह नहीं मोड़ते थे। बड़े धर्मानुरागी थे तथा भारतधर्म महामंडलको शोभा थे। गिरिराजकी यात्रा सालमें कई दफे स्त्री बच्चोंसहित धूमधामसे किया करते थे। अन्तमें कर्मचारियोंके अप्रबन्धसे आपकी कलकत्तेकी कोठीका काम ढीला पड़ गया था जिससे आपको हुंडी पत्री सब बन्द होगई थी लेकिन आपने सर एन्टोनी मैकडोनल लफ्टिनेन्ट गवर्नरकी सहायतासे शीघ्रही बात बनालीथी तथा सब प्रबन्ध ठीक करदिया था। इस घटनासे सेठजी का चित्त सम्मोहित होगया था, चिन्ताने भीतरही भीतर शरीर चरलिया था निदान ४७ वर्ष २ महीनेकी उम्रमें ज्वरादिरोगोंसे पीड़ित होकर परमधामको सिधारे। सेठ द्वारिकादास तथा दामोदरदास आपके दो पुत्र हैं। बृटिशगवर्नमेन्टने सेठ लक्ष्मणदासजीको सी. आई. ई. की पदवी स. ई. १८८६ में और राजाका खिताब स. ई. १८९३ में दिया था तथा आवश्यकता पड़नेपर अदालतमें हाज़िर होनेसे माफ कियाथा।

लक्ष्मणसेन (बंगालके अन्तिम सेन वंशी नरेश) नदियामें इनकी राजधानी थी। स. ई. १२०२–३ में जब शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके सेनापति बख्तियार खिलजीने बङ्गालपर चढाई की तो उन दिनों यह बहुत बूढ़े थे निदानको मुसल्मानोंकी फौजका साम्हना न कर सके और कुटुम्बसहित पुरी (उड़ीसा) का भाग गये और शेष अवस्था जगन्नाथजीके मन्दिरमें रहकर काटी। गीत गोविन्दके कर्ता जयदेव मिश्र महाराज लक्ष्मणसेनके दर्बारके कविराज थे। लक्ष्मणसेनका दूसरा नाम अशोक सेन था और यह स. ई. ११४२ में निज पिता

केशवसेनके बाद बङ्गालकी गद्दीपर बैठे थे। इनके पूर्वज वीरसेनने स. ई. ९८६ में बंगालका राज्य पालवंशी राजाओंसे छीनकर सेन वंशी नरेशोंकी मूल रोपण की थी। वीरसेन और लक्ष्मण सेनके बीच ७ और राजाओंने राज्य किया। राजा लक्ष्मण सेनजी बड़े विद्योत्साही गुणग्राही थे, अनेक विद्वान् पण्डित उनके दर्बारमें रहते थे। नदियामें महाराज लक्ष्मण सेनके सभास्थानके द्वारपर लगे हुये पत्थर पर निम्नस्थ श्लोक अङ्कित है:—

श्लो०—गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च॥

लक्ष्मीश्वर सिंह (महाराजा सरलक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर, क. सी. यस. आई. दरभङ्गा नरेश)—महाराज महेश्वर सिंहके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीश्वरसिंहजी स. ई. १८६२ में दरभङ्गाकी गद्दीपर बैठे। बाल्यावस्थामें रियासतका प्रबन्ध कोर्ट आफ् वार्डसके द्वारा होता रहा और आपको अङ्गरेजी तथा देशी शिक्षा दी गई। स. ई. १८७९ में राज्यका पूरा अधिकरण आपको सौंपा गया और तबसे आप तन मन धनसे प्रजाका हित तथा राज्यका प्रबन्ध करते रहे। कई वर्षतक आप वायसरायकी लेजिसलेटिव कौन्सिलके मेम्बर रहे और स्वदेश भक्तिका परिचय सदैव आपसे मिलता रहा। भारत धर्म महामण्डलके आप प्रधान थे और निज पूर्वजोंके धर्मपर दृढ रहकर सदैव धर्मकार्य्यमें तत्पर रहते थे। स. ई. १८७३—७४ के अकालमें ३० लाखसे अधिक रुपया आपने प्रजाकी रक्षामें खर्च किया था। खड्गपुर तथा दरभंगामें आपने रोगियोंके हितार्थ शफ़ाखाने बनवाये थे और सैकड़ों स्कूल, सैकड़ों मील पक्की सड़क तथा लाखों दरख्त पथिकोंके आरामके लिये निजराज्यमें लगवाये थे। राज्यकी नदियोंके सब घाटोंपर पुल बनवा दिये थे और अकालके समय खेत सींचनेके लिये नहरें खुदवा दी थीं। कृषी तथा गाय बैल और घोड़ोंकी उत्पत्तिके सुधारका भी आपने प्रशंसनीय प्रबन्ध किया था। आप मातृभाषा हिंदीके हितैषी थे और विद्वानों तथा गुणीजनोंका सत्कार करते थे। ४१ वर्षकी उम्रमें ता. १७ दिसम्बर स. ई. १८९८ को आप निःसन्तान परमधामको सिधारे और आपके छोटे भाई महाराज रमेश्वर सिंहजी (वर्त्तमान नरेश) राज्यके मालिक हुये। काशीके स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती आपके गुरू थे। उन्हींके उपदेशसे आपने काशीमें दर्भंगा पाठशाला

स्थापन की थी और दर्भंगा घाट बनवाया था । काशीजानेपर आप सदैव विद्वानों तथा विद्यार्थियोंको दान पुण्यसे प्रसन्न किया करते थे । स्वामी विशुद्धानन्दसरस्वतीने आपकी मृत्युका तार पाकर गद्गदकण्ठसे कहा—

श्लोक—लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरसेव्यति ।
गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती ॥

दर्भंगानरेश श्रोत्रियकुलोत्पन्न ब्राह्मण हैं ।

लक्ष्मीबाई (झांसीकी मर्दानीरानी)—राजागंगाधरराव बुन्देलेकी रानी थी । गंगाधरराव स. ई. १८५२ में एक दत्तक पुत्रको छोड़कर सिधार गये थे । रानीने अपने लेपालक पुत्रको गद्दी दिलानेके लिये ब्रिटिश गवर्नमेन्टसे प्रार्थना की, परन्तु गवर्नरजेनरल लार्ड डेलहौजीने यह बात स्वीकार न की और झाँसी की रियासत ब्रिटिशराज्यमें मिलाकर रानी की पेन्शन करदी । इससे ३ वर्षबाद सन् ५७ का ग़दर हुआ जिसमें रानीने झांसीकी पलटनको उकसाया और ४ जून सन् ५७ को झांसीका किला घेरा, जितने अंग्रेज़ क़िलेमें थे काटडाले गये और किलेपर अधिकार जमाकर रानीने नये सिरेसे झांसीका राज्य स्थापन किया । पर उसे यह विश्वास था कि अवश्य एक दिन अंग्रेजोंसे घोरयुद्ध करना होगा निदान उसने राजा रामचन्द्ररावके समयकी २० तोपें धरतीसे खुदवाकर निकलवाईं और १४ हजारसेना एकत्र की । एक वर्षभी बीतने न पाया था कि २५ अप्रैल स० ई० १८५८ को अङ्गरेजी फ़ौजने झांसीका क़िला आ घेरा । रानीके सिपाही बड़ी वीरतासे लड़कर कटमरे, दूसरे ही दिन झांसीका शहर और तीसरे दिन झांसीका किला रानीसे छूटगया परन्तु दो हजार सेना सहित रानी बचकर निकल गई और काल्पीकी सड़क पर होती हुई ग्वालियर पहुँचकर वहां का बाग़ी फौजसे मिलगई । जब ग्वालियरको भी अंग्रेजोंने विजय कर लिया तो रानी छिपरानदीके किनारेकी तरफ भागीं, परन्तु रास्तेमें मुरारके निकट एक अंग्रेजी फौजसे सामना हुआ, जिसमें १७ जून स० ई० १८५८ को वीरता सहित लड़कर कटमरीं ।

लक्ष्मीचन्द सेठ (सेठ वंश मथुराके संस्थापक)—इनके पिता मनीराम खण्डेलवालवैश्य जयपुर राज्यके रहनेवाले, धर्मके दिगम्बरी जैन ग्वालियरके

पारखजीके साथ मथुराको अपने तीनों पुत्रों लक्ष्मीचन्द्र, राधाकृष्ण तथा गोविन्द-दास सहित आये थे। पारखजीके कोई औलाद नहीं थी। निदान अन्त समय उन्होंने लक्ष्मीचन्दको गोद बिठालकर अपनी अटूट सम्पत्तिका मालिक बनालिया (देखो पारखजी)। पारखजीके उत्तराधिकारी होनेपर भी इन्होंने निज पूर्वजोंका जैनमत नहीं त्यागा और मथुरामें एक जैनमन्दिर बनवाया। लेकिन वैष्णवसम्प्रदायसे भी किसी प्रकार इनको द्वेष नहीं था। इनके पुत्र रघुनाथदासजी तथा इनके सबसे छोटे भाई गोविन्ददासजी निःसन्तान सिधार गये, केवल इनके भाई सेठ राधाकृष्णजीका वंश चला। सेठ राधाकृष्णसे इनको बड़ी प्रीति थी। इनसे बिनाकहे सुने उन्होंने पं. रङ्गाचार्यके उपदेशसे जैनधर्म त्याग वृन्दावनमें रङ्गजीका मन्दिर बनवाना आरम्भ किया था लेकिन निजका कई लाखरुपया खर्च करदेनेपर उससे नहीं पटपाई थी। जब यह बात इनको मालूम हुई तो भाईका चित्त दुखाना उचित न समझ इन्होंने उनसे कुछ नहीं कहा और ४५ लाख रुपयेके खर्चसे स० ई० १८५१ की साल उक्त मन्दिर तैय्यार करा दिया तथा उसके खर्चके निमित्त ५२ हज़ार रुपये वार्षिक बचतकी जायदाद लगादी। इनके शारीरिक बल, उदारता तथा मिलनसारीकी कहानियें अबतक मथुरामें प्रसिद्ध हैं। इनके तथा इनके भाई बेटोंके सुख चैनकी सीमा नहीं थी, समय आनन्दसे विना किसी तरहकी चिन्ताके बीतता था। ब्रजमें यदि किसी चौबेका छोकरा प्रातःकाल देरतक सोता रहता है तो उसकी माता बहुधा कहते सुनी जाती है कि "अरे छोरा! ऐसोहू कहा सेठ लक्ष्मीचन्दको बेटा है, एतो दिन चढि आयो, उठे नाहि हैरे"।

लाङ्गफेलोकवीश्वर–(H. WLongfellow) यह अमेरिकानिवासी कवीश्वर स. ई. १८०७ में जन्मे और १८८२ में मरे। यूनीवर्सिटीकी सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पीछे इन्होंने यूरोपके अनेक देशोंकी यात्रा की। यात्रासे लौटकर हार्वर्ड यूनीवर्सिटी कालिजमें प्रोफेसर (अध्यापक) का पद पाया। और पद्यरचना की ओर ध्यान दिया। इनके रचे अनेक ग्रन्थ अंग्रेजी पद्यमें विद्यमान हैं जिनके कारण इनका नाम चिरंजीव है। अवसर तथा प्रसङ्गके अनुकूल शब्द प्रयोग करनेकी इनकी शक्ति अलौकिक थी। और इनके रचे पद ऐसे मनोहर हैं कि हृदय पलटपर अंकित हो जाते हैं तथा श्रोताओंके कानोंको लुभालेते हैं।

इनके विचार और अलंकार भी प्रभावशाली तथा कवीश्वरोंकेसे हैं । यह फ्रांस, जर्मनी, इटाली, स्पेन, हालैंड, डेन्मार्क, स्वीडिन, और स्वीटजरलैन्ड इत्यादि देशों कीभी भाषायें जानते थे । और अनेक महापुरुषोंके जीवन चरित्र भी लिखकर इन्होंने समाचार पत्रोंमें छपवाये थे । स. ई. १८६९ में जब यह दूसरी दफे यूरोपकी यात्राको आये थे तो आक्स फोर्ड विश्वविद्यालयने इनको डी. सी. एल. की. पदवी प्रदानकी थी ।

लारेन्स (**सरहेनरी मांटगोमरी लारेन्स** Sir Henery Montgomery Lawrence) यह लफ़टिनेन्ट कर्नैल अलेग्जेंडर विलियम लारेन्सके पुत्र थे और लडन्डेरीके स्कूलमें विद्योपार्जन करके ईस्ट इन्डिया कम्पनीके तोपखानेमें भर्ती होकर स. ई. १८२२ की साल बंगालको आये थे । स. ई. १८४३ में काबुलकी चढाईपर भेजे गये और वहांपर जो वीरता इन्होंने की उसके बदलेमें मेजरका पद पाया । कुछही दिनों पीछे नैपाल दर्बारमें बृटिश रेजीडेन्ट नियत करके इनको भेजा गया और बादको सतलज नदीके किनारे लड़ाइयोंमें अनेक साहस पूर्ण काम करनेके बदलेमें लफटिनेन्ट कर्नैलका पद इनको दिया गया । स. ई. १८४६ में लारेन्स साहबको लाहौर दर्बारमें रेजीडेण्ट नियत किया गया, वहां भी इन्होंने अच्छा काम करके के. सी. बी. की उपाधि पाई, सन् ५७ के गदरमें बागियोंसे बडी वीरतासे लड़े परंतु लखनऊमें एक तोपका गोला फटकर इनके लगा और इनकी मृत्युका कारण हुआ । इन्होंने फिरङ्गी सिपाहियोंके अनाथ बच्चोंके लिये लारेन्स शाला स्थापन की थी । इङ्गलैन्डमें सेन्टपालके गिर्जेमें इनका स्मारक चिह्न है । लंकामें स. ई. १८०६ की सालमें जन्मे और स. ई. १८५७ में मरे ।

लाल कवि—देखो लल्लू लाल ।

लालगुरू—यह मालवाके रहनेवाले साधू मुगल सम्राट जहांगीरके समयमें हुये । जातिके खत्री थे, भाषा कविता अच्छी करते थे, भंगी लोग इनकी पूजा करते हैं । तथा इनका नाम लेते हैं ।

लालबुझक्कड—यह अकबर बादशाहके मन्त्री राजा बीरबलका पुत्र था । असली नाम लाल था और अपने पितासेभी अधिक ठठोली पसंद था । शुरूहीसे इसके मनमें विरक्तता समाई हुई थी, संसारको मिथ्या जानता था और मानुषीय

बुद्धिको अल्पज्ञ समझता था। स० ई० १५८३ में काबुलकी लड़ाईमें निज पिता बीरवलके मारे जानेपर यह अपना सर्वस्व लुटाकर संन्यासी होगया। आगरेके पास फतेपुर सीकरी नामक ग्राममें इसके बापके बनवाये महिलोंके खण्डैर अबतक पड़े हैं। लोग इसको बड़ा चतुर समझते थे पर यह लुकमान हकीमकी तरह अपनी बुद्धिको तुच्छ जानता था। इसकी बनाई सैकडों पहेलियें देश भरमें प्रसिद्ध है जिनमेंसे प्रत्येक इस बातकी प्रकाशक है कि गम्भीर गूढ बातोंमें बड़े बड़े चतुर विद्वानोंकी बुद्धि वैसीही अल्पज्ञ होती है जैसी कि साधारण बातोंमें गैरे गंवारोंकी। नमूनेके लिये लाल बुझक्कडकी एक पहेली नीचे लिखते हैं:—

"लालबुझक्कड़ बूझियो, और न बूझो कोय ।
पैरों चक्की बांधकर, कोई हिरना कूदो होय ॥"

लोग इसको चतुर समझ बहुधा बातोंमें सम्मति लिया करते थे पर यह इस प्रतिष्ठाको भी तुच्छ जाना करता था और इसीलिये इसने अपना नाम बुझक्कड़ रख लिया था।

लालाबाबू—इस बंगाली कायस्थने स० ई० १८१०की साल २५ लाख रुपये के खर्चसे वृन्दावनमें एक मन्दिर बनवाया आर बहुत सी जायदाद उसके राग भोगके निमित्त कृष्णार्पण की। आजकल इस मंदिरका वार्षिक व्यय प्रायः २२ हजार रुपया है। वडी तय्यारी रहती है। बहुत लोग भोजन पाते हैं।

लालाबाबूका असली नाम कृष्णचंद्रसिंह था। यह दीवान प्राणकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने प्रथम कई वर्षतक वर्द्धवान, कटक और उडीसामें नौकरी की थी और ३० वर्षकी उम्रमें ब्रजमें आकर बसे थे। गोवर्धनमें राधाकुण्डके चारों तरफ पक्के घाट इन्हींके बनवाये हुये हैं। ४० वर्षकी उम्रमें वैरागी होकर ब्रज मंडलमें विचरने लगे थे, अंतमें गोवर्धनमें एक घोड़ेकी लातसे मरे। ब्रजमें निम्नस्थ लोकोक्ति इनके विषयमें प्रसिद्ध है:—"लालाबाबू मर गये घोड़ा दोष लगाय। पारखके क्रीड़ा परे विधि सौं कहा बिसाय"। यह अपने वरके बड़े अमीर थे, अबतक इनका वंश बंगालमें पायकपाड़ा नरेशके नामसे प्रसिद्ध है। वारेन हेस्टिंगज गवर्नर जनरल हिन्दके दीवान गंगागोविन्दसिंह इस वंशके अधिष्ठाता थे और बड़ी भारी सम्पत्ति छोड़ मरे थे।

लिकर्गस–(Licargus) इस प्रसिद्ध त्यागी पुरुषने स्पार्टा देशवासियोंके हितार्थ धर्मशास्त्र (कानून) रचा था। इसके पिता राजा यूनोमसके मरनेपर पॉलीडेक्टीज इसका बड़ा भाई स्पार्टाके राज्य सिंहासनपर बैठा, पर थोड़े ही दिन पीछे अपनी रानीको गर्भवती छोड़कर सिधार गया। गर्भवती विधवाने अपने देवर लिकर्गससे कहा कि "यदि तुम मुझसे शादी करलो तो निश्चित होकर राज्य करो क्योंकि जो बच्चा मेरे पैदा होगा उसको मैं मार डालूंगी"। परन्तु लिकर्गसने यह बात पसन्द नहीं की और केरीलास नामक भतीजा पैदा होनेपर उसको पाला और बड़े होनेपर उसको राजपाट सौंप दिया। पश्चात् लिकर्गस देशाटनको निकला और अनेक देशोंके धर्मशास्त्रोंसे जानकारी प्राप्त की। देशाटनसे लौटकर लिकर्गसने स्पार्टाकी हालत अच्छी नहीं पाई क्योंकि राजाका स्वेच्छाचारी होना प्रजागणको नापसंद था। यह देख लिकर्गसने राज्यको सुधारना चाहा। निदान उसने राजा और प्रजाके हितार्थ धर्मशास्त्र बनाया जिसपर चलनेसे सब बखेड़े दूर होगये और थोड़े ही समयमें स्पार्टाके रहनेवाले वीर सिपाही बन गये। इसके पीछे लिकर्गस फिर बाहर चले गये और स० ई० से ८७० वर्ष पूर्व वृद्ध होकर शहर क्रेटमें मरे।

लीलावती–यह पटनाके राजाकी बेटी उज्जैनके राजा भोजको विवाही थी। खूब लिखी पढी थी और राज्यकी पुत्री पाठशालाओंकी देख भाल रखती थी।

लीलावती २–भास्कराचार्य ज्योतिषीकी पुत्रीका नाम लीलावती था। जिसके नामको लीलावती नामक अङ्कगणितकी पुस्तक रचकर "आचंद्र दिवाकर" उक्त ज्योतिषीने चिरंजीव किया।

लीलावती ३ (पंडित मण्डन मिश्रकी स्त्री)–काशीसे चलकर गयाजाके रास्तेमें शोणभद्रनदके किनारे ब्राह्मणवास नामक ग्राम है। वहां विष्णुमित्र नामक ब्राह्मणके घर इसका जन्म हुआ था। इस पुत्रीके अतिरिक्त उसके और कोई सन्तान नहीं थी। निदान उसने इसको शनैः २ काव्य, व्याकरण, भूगोल, खगोल, अलंकार, गीत, वाद्य, नृत्य, कलाशास्त्र, पाकशास्त्र तथा गणितमें प्रवीण करके वेद उपवेद और शास्त्र पुराणोंकी शिक्षा देकर सर्व विद्याओंमें निपुण कर दिया था। पश्चात् इसका विवाह सुप्रसिद्ध मीमांसक पंडित मण्डनमिश्रसे होगया। दम्पतिमें खूब प्रेम रहा। पश्चात् जब शंकर स्वामी और मण्डन मिश्रमें शास्त्रार्थ हुआ तो

लीला मध्यस्थ ठहराई गई। मण्डन मिश्रके परास्त होनेपर लीलाने शंकर स्वामीसे शास्त्रार्थ किया लेकिन जीत न सकी। इसके पीछे मण्डन मिश्र और लीला, शंकर स्वामीके शिष्य होकर संन्यासी होगये। शंकर स्वामीने शृङ्गपुर (शृङ्गागिरि) में मठ बनवाकर लीलाको सरस्वती नामसे उसमें रहनेकी आज्ञा दी। जबतक जीती रही उसने शिक्षा,दीक्षा तथा ज्ञान उपदेशके द्वारा स्मार्तधर्मका प्रचार किया। वहांके लोग उसको "भारती" की उपाधिसे युक्त करके साक्षात् देवीके समान मानते थे।

लीहङ्गचङ्ग (चीनी राजनीति विशारद)—यह पृथ्वीपर अपने समयमें सबसे अधिक धनाढ्य थे। पासमें डेढ अरब रुपया नकद था, आय: ३० लाख रुपयेकी मासिक आमदनी थी और अर्दलीमें ९ हजार सिपाही निजके रहते थे। धनोपार्जन तथा राज्यके उच्चाधिकारसे इनको बड़ा प्रेम था। और ऐसी विचित्र नीतिके थे कि बहुधा बड़े २ अङ्गरेज राजनीतिज्ञोंको इनकी चालसे उलझावमें पडना होता था। यद्यपि अफीमके व्यापारकी वृद्धिको अच्छा नहीं समझते थे परंतु अफीमकी खेती इनके समयमें अधिक होती थी। वारम्वारके अकालसे बड़े दु:खी होते थे परंतु इन्हींके अधीन कर्मचारी अन्नका संग्रह करके भाव महँगा करनेमें अगुआ थे। यह बड़े विद्वान तथा सुलेखक भी थे। चीनके उच्चाधिकारियोंमें इनको सबसे अधिक पदवियां मिली थीं। और इनका आतंक नित्यप्रति बढता देख अनेक चीनी राजनीतज्ञ कहा करते थे कि लीहङ्गचङ्ग चीनका राज्य किया चाहते हैं। यूरोपियन राज्योंमें भी इनका बड़ा सत्कार था क्योंकि चीन दर्बारमें जो कोई यूरोपियन राजदूत आता था उसका काम इनसे बिना मिले नहीं चलता था। इन्हींके द्वारा चीनसे भिन्न २ राज्योंके साथ सन्धि हुआ करती थी। कोयलेकी खान खोदने तथा चीनके समुद्री किनारोंपर इंगलैंडके जहाज जानेका अधिकार पहिले पहिल इन्हींने दिया था। और चीन तथा जापान राज्योंमें युद्ध मिटाकर सन्धि कराना इन्हींका काम था। इन सब कामोंके बदलेमें चीनके प्रधान अमात्यका पद इनको दिया गया था जिसपर अंत समय तक रहे। चीनी साम्राट्की आज्ञासे स. ई. १८९६ में यूरोप और अमेरिकाके अनेक देशोंमें यात्रा करके बडा सन्मान पाया था तथा बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था। चीनके सम्म्राटोंके समयमें ५० वर्षतक आपने राजसेवा की। यूरोपको सन्तुष्ट करनेके लिये कई दफे चीनने अपने बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंके सर धड़से जुदा

करवा दिये थे परन्तु लीहंगचंग मरनेकी घड़ी तक निजनीति निपुणताके कारण बचे रहे। इतने धनाढ्य होनेपर भी बडी सादी चाल रखते थे और ठाठ पसंद न थे। चीनके कोमल और रेशमकेसे रोमवाले चमड़ोंका व्यापार करते थे और उपार्जित द्रव्यमेंसे दीन दुखियों सम्बंधियोंकी मदद करते थे। इनके सुप्रबन्धके कारण चीन राज्य कई दफा घोर दुर्घटनाओंमें पड़ते पर भी यूरोपीय बादशाहोंके पंजेमें पड़नेसे बच गया। स. ई. १९०१ में ७९ वर्षकी उम्र पाकर तथा कई बच्चे छोड़कर परम धामको सिधारे।

लुकमान–(Lokman)–प्राचीन इतिहासकार लिखते हैं कि लुकमान प्रथम किसी इसराईलके गुलाम थे और कुछ दिनोंतक बढई तथा दर्जीका पेशा करते रहे थे। फिरङ्गी विद्वान कहते हैं कि यह यूनानके रहनेवाले थे और ईसप इन्हींका नाम है। अरब देशवासियोंने लिखा है कि लुकमान जावके वंशमें थे। मुसलमानोंके पैगम्बर मुहमदने कुरानमें लुकमानकी बुद्धि, विद्या और चातुर्यताकी तारीफ़ की है। हिंदोस्तानी पंडितोंकी राय है किं लुकमान भारतवर्षके रहनेवाले लोकमन नामक ब्राह्मण थे और स्वदेशसे निकाले जानेपर यूनानमें जा बसे थे। संक्षिप्त यह ऐसे चतुर पुरुष थे कि प्रत्येक जाति तथा देशके मनुष्य इनको अपनाया चाहते हैं। इनकी कहानियों तथा कहावतें जो चातुरीसे भरपूर हैं पृथ्वीके सब भागोंमें प्रसिद्ध हैं। स. ई. से प्रायः १ हजार वर्ष पहिले यह इसराईल जातिके बादशाह दाऊदके समयमें विद्यमान थे। अपने समयमें सबसे अधिक बुद्धिमान गिने जाते थे परन्तु यह अपनी बुद्धिको तुच्छ जाना करते थ। मोरचङ्ग बाजे तथा उडानेकी पतंगका आविष्कार इन्होंने किया।

लेबनिज (G. W. Leibnitz) यह जरमनीके रहनेवाले प्रसिद्ध तत्त्वविज्ञानी होगये हैं। इनके बाप जो लीपज़िगके विश्वविद्यालयमें कानूनके प्रोफेसर थे इनको ६ वर्षका छोड़कर मर गये थे। लेबनिजने स० ई० १६६४ में एम० ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और यूनानी हकीमोंके बनाये ग्रंथोंका पढना आरम्भ किया और बादको कानूनका इम्तिहान पास किया। स. ई. १६७२ में लेबनिज साहब पैरिस नगरको गये और वहां अनेक गणितज्ञ पंडितोंसे मुलाकात की पश्चात् लेबनिज लन्दन नगरमें आये और न्युटन आदि अनेक विद्वानोंसे मिले। कुछ दिन पीछे न्युटन और लेबनिजमें एक नियमके अन्वेषण करनेपर झगडा पैदा हुआ।

दोनों कहते थे कि उक्त नियम हमारा निकाला हुआ है, परन्तु लोगोंने निर्णय करके न्युटनको उक्त नियमका आविष्कार ठहिराया। इस बातसे लेबनिजको दुःख हुआ। निदान शहन्शाह जर्मनीने पुनः बिचार करवाया और अन्तमें यह निर्णय किया गया कि लेबनिज तथा न्युटन दोनोंहीको उक्त नियमका एकही समयमें अनुभव हुआ था। वह नियम अब लेबनिजकी थ्योरम (Leibnitz's theorein) के नामसे विदित है परंतु शोककी बात है कि यह निर्णय लेबानिजके मर जानेके पीछे हुआ।

लेबनिज बडे चतुर तथा गणितशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता थे पर घमण्डी और लालची भी थे। स॰ ई॰ १७११ में पीटर दीग्रेट महाराजा रूसने लेबनिजको प्रिवीकौन्सेलरके पदपर नियत किया। यह स॰ ई॰ १७१६ में ७० वर्षके होकर मरे।

लोमहर्षण (व्यासमहर्षिके शिष्य)—व्यासजीसे पुराणोंकी शिक्षा पाकर इन्होंने पुराणोंकी हरषणिका संहिता रची और उसको अपने पुत्र उग्रश्रवासूतको पढाया। बादको उग्रश्रवासूतने हरषणिकी संहितामें अपने प्रश्नोत्तर मिलाकर १८ पुराण पृथक् २ बना दिये। बल्देवजीके हाथसे नैमिषारण्यमें मारे गये।

लोलिम्बराज (वैद्य) वैद्यजीवन नामक ग्रंथ इनका बनाया हुआ है। वैद्यजीवनके पहिले दो श्लोकोंसे ज्ञात होता है कि लोलिम्बराजने अपनी प्रियपत्नीके अनुरोधसे इस ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रंथमें कपोलकल्पित वार्ता कुछ भी नहीं केवल चरक आदि मुनियोंके बनाये ग्रंथोंके गूढ रहस्योंका वर्णन है। लोलिम्बराज वैद्यकशास्त्रमें धन्वन्तरिके समान थे, सङ्गीतशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता थे, बड़े बड़े बुद्धिमान कवियोंके शिरोभूषण थे और राजा महाराजाओंकी सभामें इनका बड़ा सत्कार होता था। इनके पिता दिवाकरजी भी अद्वितीय वैद्य थे। वि. सं. की १५ वीं शताब्दीमें हुये।

ल्युदर (मार्टिनल्युदर—Martin Luthor) यह जर्मनीके सूबे सैक्सनीमें स॰ १४८३ की साल जन्मे। पिता इनके दरिद्री थे निदान शिक्षा प्राप्त करनेमें प्रथम इनको बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ी, पश्चात् जब इनके बापकी हालत कुछ सम्हल गई तब उसने इनको १८ वर्षकी उम्रमें कानून पढनेके लिये कालिजमें बिठला दिया। वहां स. ई. १५०५ में इन्होंने एम. ए. की परीक्षा

उत्तीर्ण की और कालिजके पुस्तकालयकी पुस्तकें देखते २ बड़े ब्रह्मज्ञानी बन गये तब तो इनके नातेदार आशा करने लगे थे कि थोड़ेही दिनोंमें कोई अच्छा पद इनको मिलजायगा, परंतु ईश्वरको कुछ औरही करना मंजूर था। क्योंकि उन्हींदिनों एकरोज़ जंगलमें हवाखाते वक्त इनके एक मित्रपर बिजली गिरपड़ी जिससे वह मरगया और यह बाल २ बचगये। यह देख इनको वैराग्य उत्पन्न होगया और संसारको असार समझ इन्होंने घरबार त्याग दिया और सेन्ट अगस्टाइनके स्थलके साधुओंकी मण्डलीमें रहने लगे। जहां भिक्षाकरके भोजन करना पड़ता था। पश्चात् अगस्टाइनके गिर्जेके पुजारीका पद इनको प्राप्त हुआ और थोडेही दिन पीछे सैक्सनीके कालिजमें ब्रह्मज्ञानके प्रोफ़ेसरके पदपर यह नियत किये गये। इनकी विलक्षण शिक्षाप्रणाली तथा अपूर्व योग्यताकी तारीफ़ सुनकर दूरसे विद्यार्थी आनेलगे जिससे उक्त कालिजकी बड़ी उन्नति हुई। उन्हींदिनों इनको बाइबिलकी एक प्राचीन प्रति लैटिन भाषामें विचार सहित पढ़नपर यह बात भले प्रकार प्रतीत हुई थी कि पोपके अनुगामी ईसाई लोग अनेक स्थलोंपर बाइबिलके अर्थ असली आशयके विरुद्ध लगाते हैं। परंतु धर्म संबन्धी विषयोंमें किसी राजा-प्रजाको रोमके पोपकी सम्मति उल्लंघन करनेकी शक्ति न थी क्योंकि रोमके महाराजाका प्रभाव यूरोपके अन्य सब राजाओंपर छाया हुआ था और वह पोपका सत्य चित्तसे सहायक होकर पुराने ढर्रेके अनुसार सबको चलनेकी शिक्षा करता था। यदि कोई राजा पोपकी शिक्षाके विरुद्ध आचरण करता तो गद्दीसे उतारा जाता था और प्रजागण यदि ऐसा करनेका साहस करते तो आईनके अनुसार आगमें जलाये जाते थे। पोप मनुष्योंसे रुपया लेकर इस बातकी सनद देता था कि उनके उम्रभरके पाप क्षमाकर दियेगये और धनाढ्य मनुष्योंके मरनेपर पोप उनके उत्तराधिकारियोंसे मनमाना रुपया इस लिये लेते थे कि मृतकको नरकसे निकालकर स्वर्गमें भेजनेकी सिफ़ारिश करदी जायगी। इस प्रकार धोकेसे रुपया इकठ्ठा करनेकी पोपकी अनेक चालें थीं पर किसीको डरके मारे उनको अप्रमाणित कहने तकका साहस नहीं होता था। ल्युदरने दृढचित्त होकर इस प्रकारकी ९९ बातोंका गिर्जेमें खड़े होकर खण्डन करना आरंभ किया। पोपके कानमें जब यह बात पहुंची तो उसने ल्युदरके वध करानेकी फ़िक्र की। शहन्शाहरोमने भी ल्युदरको बहुत धमकाया। सहस्रों मनुष्य भी शत्रु

बनगये परंतु इन्होंने दृढता सहित अपने मन्तव्य सबको सुना दिये। केवल ड्रिटेन्बर्गका एलेक्टर पाहिले पहिल ल्युदरका चेला हुआ और उसीकी कोशिससे ल्युदरके प्राण बचे। फिरतो. शनैः २ हजारों मनुष्य अनुगामी होगये। विद्वान और शिक्षितलोगोंने इनकी शिक्षा ग्रहण की और इस प्रकार ईसाईयोंमें प्रोटेस्टेन्टमत खड़ा होगया। तथा पोपकी शिक्षापर चलनेवाले रोमन कैथलिक लोग थोड़ेही रहगये। ल्युदरने बाइबिलका जर्मन भाषामें अनुवाद करके छपवाया था और ४२ वर्षकी उम्रमें कैथेरायन नामक एक बाईसे विवाह किया था जिससे कई बच्चे पैदा हुये थे। स० ई० १५४६ में ल्युदर किसी गांवमें एक धर्मसम्बंधी विवादका निबटारा करने गये थे। और वहीं बातें करते हुये सिधार गये। बड़े साहसी, दृढचित्त तथा हृष्ट पुष्ट थे और अपने बच्चोंसे बड़ा प्रेम रखते थे।

वर्जिल—(Virgil)—यह लैटिनकवि स० ई० से प्रायः ७० वर्ष पहिले मुल्क इटेलीमें मान्टुआ नामक नगरके समीप ऐन्डीजमें जन्मे थे। प्रथम शिक्षा इन्होंने मिलन नामक नगरमें रहकर पाई और बादको नैपिल्समें जाकर ग्रीकभाषा, ब्रह्मविद्या, विज्ञानविटप और गणितशास्त्र पढ़ा। फिलिप्पीकी लड़ाईके बाद जिसमें इनकी जायदाद सिपाहियोंने लूट लीथी, यह रोममें जा बसे और वहांके बादशाह अगस्टसकी मददसे पुनः अपनी जायदाद पाई। पश्चात् इन्होंने कई ग्रन्थ रचे और अन्तमें बादशाह अगस्टसकी आज्ञानुसार पृथ्वीप्रसिद्ध ग्रन्थ "इनियड" लैटिनपद्यमें रचा। यह ग्रन्थ इन्होंने ११ वर्षमें संपूर्ण किया था। होमरके सिवाय कोई दूसरा कवि लैटिन भाषामें इनकी समानता नहीं कर सकता है। अफलातून की फिलासोफीको यह मानते थे। स० ई० से १९ वर्ष पहिले ब्रन्डूजिअममें मरे।

ह्वीटस्टोन (चार्लसह्वीटस्टोन—Charles Wheatstone)यह विद्युतशास्त्रका मुख्य आचार्य राजराजेश्वरी विक्टोरियाके शासनके प्रथम वर्षमें अर्थात् स० ई० १८३८ की साल लन्डन नगरके यूस्टन स्क्वैर मुहल्लेसे कैमडन नामक मुहल्लेतक बिजलीका तार लगानेमें समर्थ हुआ था। इससे पहिले भूमण्डलपर और कहीं बिजलीके तारसे खबर नहीं भेजी जाती थी पर अब तो ह्वीटस्टोनके आविष्कृत नियमके अनुसार हज़ारों मीलतक लग गया है। यदि बिजलीके बलसे तार लगानेकी क्रिया संसारमें नहीं होती तो आज कल्ह सभ्य देशोंकी जैसी उन्नति

देखनेमें आती है उसका दशांश भी न होता। इसी महाशयने स० ई० १८३७ की साल चुंबककी सुईका आविष्कार किया था जिससे जहाज चलाया जाता है यह लंडन नगरका रहनेवाला था।

बाजिदअलीशाह–(लखनऊके रंगीले नवाब) स० ई० १७३१ में मुग़ल सम्राट दिल्लीने झगड़ालू क्षत्रियोंसे घबराकर अवधका सूबा अदतखांको दिया और उनकी संतति कई पीढीतक वहां राज्य करती रही और नवाब वजीर अवध कहलाती रही। नवाब वजीरकी राजधानी फ़ैज़ाबादमें थी परंतु नवाब आस्फुद्दौलाके वक्तमें लखनऊमें राजधानी नियत कीगई। पश्चात् नवाब वज़ीर गाज़िउद्दीन हैदरको ईस्ट–इंडिया–कम्पनीने स० ई० १८३० में बादशाह अवधका खिताबदिया। ग़ाजिउद्दीन हैदरसे चार पीढीबाद अमजद अलीशाह हुये जिनके पुत्र बाजिद अलीशाह स० ई० १८४७ में अवधके तख्तपर बैठे। यह ज़नाने होकर सङ्गीत विद्याके बड़े रसिक थे और राजकाजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे जिसके कारण प्रजापर बड़ा अन्याय होता था। यह देख लार्ड डलहौजी गवर्नरजनरल हिंदने कोर्ट आफ डैरक्र्सकी रायसे १३ फर्वरी स.ई.१८५६को अवधका मुल्क अंग्रेजी अमल्दारीमें मिला लिया और बाजिद अलीशाहको १ लाख रुपया मासिक पेन्शन देकर मटियाबुज कलकत्तेमें रहनेका हुक्म दिया जहां स.ई. १८८७ में उनका देहांत हुआ। बाजिद अलीशाह बड़े खरचीले थे,उन्होंने एक दिन प्रसन्न होकर फर्जद अलीखांदारोगा सिकन्दर बाग लखनऊको जहांगीराबादकी जागीर तथा राजाका खिताब दिया था जिसको उसके वंशज अबतक भोग रहे हैं बाजिद अलीशाहकी माता अपने बेटे जव्वाद अली तथा अपने पोते मिर्जाहामिद अलीको लेकर स.ई. १८५६ में निज हुकूकका दावा करने इङ्गलैण्ड गई थी पर स.ई. १८५८में वहां मरगई और फ्रांसमें दफन की गई। थोड़े दिनों बाद जव्वाद अली भी मरगये और अपनी माताके समीपही दफन हुए। बाजिद अलीशाह उर्दू तथा भाषा कविता भी खूब करते थे। उर्दूमें तीन दीवान और तीन मसनवीं उनकी बनाई मौजूद हैं जिनमें अख्तरनामसे पदपूर्ति की है।

भाषामें भी सैकड़ों फुटकर पद उनके बनाये मिलते हैं जो ललित और रोचक हैं और जिनमें रसिया नामसे पदपूर्ति की गई है नमूनेके लिये यहां उनके एक पदका थोड़ासा भाग लिखते हैं।

पद–मोहनरसिया आयेबगियामें फूलरही सब कली कलीरे ।
कोई कली हरनामजपत है कोई पुकारै अली अलीरे ॥

वार्ड्स्वर्थ–(विलियमवार्ड्स्वर्थ–William Wardsworth.)इनकी गणना अंग्रेजी भाषाके श्रेष्ठ कवीश्वरोंमें है और इनकी कवितामें प्रकृतिका वर्णन बहुतायतसे पाया जाता है। विकट बन, विशाल पर्वतोंकी चोटियें, पानीके झरने, झीलें और फूल फलोंसे लदे हुए रुख इत्यादिकी अलौकिक छटाके दृश्य तथा उनकी चित्तलुभानेवाली शक्तिपर आपने पद रचना की है जैसा आश्चर्यजनक दिव्य विवर्ण छोटी २ चीजोंका इन्होंने किया है वैसा किसी अन्य कविको करना कठिन है । यह बड़े दृढचित्त, परिश्रमी और अनुभवशील पुरुष थे और कम्बर लेन्डके रहनेवाले किसी वकीलके घर स० ई० १७७० में जन्मे थे । कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे बी. ए. की परिक्षा उत्तीर्ण करनक पीछे फ्रांस इत्यादि देशोंकी यात्रा भी इन्होंने की थी और साउदी,कोलरिज तथा विल्सन आदि प्रसिद्ध विद्वानोंसे इनकी मित्रता थी । स०ई० १८४२में बृटिश गवर्नमेंटने इनको ३०० पौंड वार्षिक वेतन देनेका ठहराव किया और एकही वर्ष पीछे राजकविके पदपर इनको नियुक्त किया । स. ई. १८५० मैं परलोकगामी हुए ।

वाल्टररैले–(सरवाल्टररैले Sir Water Baleigh). इन्होंन अनेक वार बड़े २ समुद्री सफ़र किये और अमेरिकाके समुद्री किनारोंपर कई वस्तियें बसाई डेयनशायरके एक सभ्य पुरुषके घर स० ई० १५५१ में जन्मे थे और कुछ दिनों तक स. ई. १५६८ क पीछे आक्सफोर्डके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाकर प्रोटिस्टेन्ट लोगोंकी सहायताके लिये फ्रांसको चले गये थे । वह ५।६ वर्ष रहनेके पीछे अपने सालेके साथ अमेरिकाको गये और वहां कई वर्ष ठहरकर अनेक वस्तियें बसाई । स. ई. १५७९ में आलू तथा तम्बाकूका बीज लेकर इंग्लैंडको वापिस आये और उनकी खेतीका प्रचार किया । पश्चात् इंगलैन्डसे इन दोनों चीजोंकी खेतीका प्रचार पृथ्वीके सर्वत्र भागोंमें हो गया । स. ई. १५८८ में इन्होंने इंग्लैंड की तरफसे युद्ध करके स्पेनवालेके जङ्गी जहाजोंके बेडेको परास्त किया जिससे ग्रेट ब्रिटेनकी मालिका एलिजावेद इनपर बहुत प्रसन्न हो गई । मलिका एलिजावेदके मरनेपर रैले साहिबके समयने पलटा खाया क्यों कि जेम्स प्रथमने गद्दीपर बैठकर इनको किसी अपराधमें कैद कर दिया । कैदमें रहकर इन्होंने अनेक ग्रन्थ

अंग्रेजी भाषामें रच जिनमेंसे इनका बनाया संसारका इतिहास जो स. ई. १६१४ में छपा उत्तम है । स. ई. १६१५ में कैदसे छूटकर रैलेसाहिब गायनाको चले गये और वहां स्पेनवालोंकी एक वस्ता फूंक देनेके अपराधमें इंगलैंडके बादशाह जेम्सप्रथमने स. ई. १६१८ में इनका शिर कटवा डाला। इनका मस्तक बहुत ऊंचा था और मुख लम्बा था।

वाल्टर स्काट–देखो स्काट ।

वास्कोडी गामा (Vascode Gama)–यह पुर्तगाली मल्लाह सबसे पहिला फिरंगी था जो हिंदोस्तानमें आया । स. ई. १४९८ में पुर्तगालके बादशाह ने कई जहाज देकर इसको पूरबकी तरफ भेजा था, इस यात्राम इसने पूर्वी हिंदके द्वीपोंको जानेका रास्ता खोज किया और हिंदोस्तानके किनारे पर पहुंच कर कैलीकटके मुकाम लंगर डाला । तथा ६ मास वहां रहकर पुर्तगालको लौट गया । स. ई. १५०२में दूसरी दफे२० जहाजोंका बेडा लेकर हिंदोस्तानको आया, कैलीकटके जमोरनको परास्त करक पुर्तगाली राज्यकी हिंदोस्तानमें मूलरोपण की और कोचीन तथा कनानोरके राजाओंस सन्धि की । स. ई. १५२४ में पुर्तगालके बादशाहने इसको पुर्तगाली हिंदका पहला वायसराय नियत किया । स० ई० १५२५ में कोचीनमें मरा ।

वाशिङ्गटन आर्विङ्ग–(Washington Irving). यह अमेरिका वासी ग्रन्थकार स० ई० १७८३ की सालमें न्युयार्क नगरमें जन्मे। इनके बाप व्यापार करनेके लिये स्काटलैन्डसे अमेरिकामें जा बसे थे और वहीं इनको बालक छोडकर परमधामको सिधारे थे । बड़े भाईने इनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया था। हावर्ड यूनीवार्सिटीमें शिक्षा सम्पूर्ण करके इन्होंने यूरोपके फ्रांस, इटेली, स्वीटजरलैंड, हालैंड तथा इंगलैंड इत्यादि देशोंकी यात्रा की थी जिसका मुख्य उद्देश अपने बिगड़े हुए स्वास्थ्यको सम्हालनेका था । यात्रास लौटकर इन्होंने वकालत पढी और बैरिस्ट्रीका इम्तिहान पास किया परन्तु वकालत कभी नहीं की और ग्रंथ रचनाकी ओर मन लगाया । स. ई. १८०९ में इन्होंने प्रहसन युक्त न्यूयार्कका इतिहास लिखकर अपनेको अमेरिकावासी ग्रंथकारोंमें सर्वोत्तम सिद्ध कर दिया। दूसरी दफ़े इन्होंने इंग्लैंडकी यात्रा फिर की और "स्केचबुक" नामक ग्रंथ लिखना

आरंभ किया । जिसने थोड़ेही दिनोंमें ऐटलान्टिक महासागरके दोनों तरफ आदर पाया । इनके विचार मनहरण और सौंदर्यतासे परिपूर्ण हैं, लेख प्रहसनयुक्त हैं । और विषय छाटनेकी शक्ति विलक्षण है । अंतमें अमेरिकान्तर्गत "सनी सायड" नामक अपनी रियासतमें आकर बसे थे और वहीं स० ई० १८०९ में परम-धामको सिधारे ।

विलियमबेण्टिंक-(Lord William Benfimck)इनके बाप पोलैण्डके तृतीय ड्यूक थे, इन्होंने प्रथम फ़ौजमें नौकरी करके फिलैण्डसे, रूस और मिश्र इत्यादि देशोंकी लड़ाइयोंमें बड़े २ बहादुरीके काम किये और ब्रिटिश सेनामें उच्च पदपर तरक्की पाई । यह स० ई० १८०३ में हिन्दोस्तानको मदरासके गवर्नर नियत होकर आये थे। वहांपर इन्होंने सिपाहियोंकी मूछ, दाढ़ी तथा पगड़ी इत्यादिके सम्बन्धमें कुछ नियम जारी किये थे जिनसे स० ई० १८०६ की साल बेलौरमें ग़दर होगया था । उसी समय कोर्ट आफ डैरेक्टर्सने इनको इंग्लैंड बुला लिया और इटेली, स्पेन इत्यादि देशोंमें सेनापति नियत करके भेज दिया ।

स० ई० १८२८ में गवर्नर जनरलके पदपर नियुक्त करके फिर इनको हिंदो-स्तान भेजा गया । इसके शासनकालमें हिंदोस्तानसे सती होनेकी रसम बन्द की गई, और ठगोंको नष्ट किया गया, अंग्रेजोंको हिन्दोस्तानमें बसनेकी आज्ञा मिली और कुर्ग अंग्रेजी राज्यमें मिलाया गया । स० ई० १८३५ में बीमार होनेके कारण इस्तेफा देकर इंग्लैंडको चले गये और ग्लास्गोकी प्रजाकी तरफ़से स. ई. १८३६ में पार्लियामेण्टके मेम्बर बनाये गये । स० ई० १७७४ में जन्मे और स० ई० १८३९ में मरे ।

वैशम्पायन-यह व्यासजीके शिष्य थे, राजा जन्मेजयको महाभारत इन्होंने सुनाया था। ग्राउस साहब अनुमान करते हैं कि हरिवंश पुराण इन्होंने रचा था।

शकेंद्र-देखो अलेग्जेंडर दीग्रेट.

शकुन्तला-पद्मपुराणमें लिखा है कि, गाधितनय राजा विश्वामित्रने महर्षि वशिष्ठसे युद्धमें परास्त होकर ब्रह्मबलको श्रेष्ठ और क्षत्रियबलको तुच्छ जान ब्राह्मण बननेके लिये तप करना आरम्भ किया । देवताओंने यह देख मेनका

अप्सराको तप डिगानेके लिये भेजा विश्वामित्रने मोहित हो उसके साथ भोगविलास किया जिससे शकुन्तला नामक कन्या उत्पन्न हुई। विश्वामित्रका जब मदन-मद दूर हुआ तो अतिशय लज्जित हो चलते हुये और मेनका भी कन्याको वनमें डाल वहांसे चलदी। दैवयोगसे ऋषिकण्व उधर होकर निकले और कन्याको अकेला पड़ा देख निज आश्रममें उठा लाये और पुत्रीवत् उसको पाला। जब शकुन्तला १३। १४ वर्षकी हुई तो एक दिन चंद्रवंशी राजा दुष्यंत शिकार खेलते हुये उधर निकले और त्रैलोक्य सुंदरी शकुन्तलाको देख मोहित हुये तथा गांधर्व रीति से उसके साथ विवाह कर भोगविलास किया। चलते समय राजाने अपनी अंगूठी निशानीके तौरपर शकुन्तलाको दी और शीघ्रही बुला भेजनेका विश्वास दिलाया पर दैवगतिसे राजधानीमें पहुंच राजाको शकुन्तलाकी कुछ भी याद न रही। जब शकुन्तलाको कई महीनेका गर्भ होगया तो ऋषिकण्वने एक धाय तथा अपने दो शिष्योंको हिफाजतके लिये साथ करके शकुन्तलाको उसके पतिके घर भेज देना मुनासिब समझा। रास्तेमें नहाते वक्त राजा दुष्यंतकी दी हुई अंगूठी शकुन्तला की उंगलीमेंसे तालावमें निकल पड़ी। जब शकुन्तला दर्बारमें पहुँची तो राजाने उसे नहीं पहिचाना और बहुतोंसे समझाये जानेपर भी उसे कपटधारी वेश्या समझ अङ्गीकार नहीं किया और कहा कि,हम पुरुवंशी लोग महात्माओंके मार्गमें आसन्न रखनेवाली गणिकाओंके रूपमात्रसे नहीं डिग सकते। राजाके ऐसे वचन सुन ऋषि शिष्य क्रुद्ध हो शकुन्तलाको वहीं छोड चल दिये। और कह गये कि राजा! तुम इसके पश्चात्तापसे अतिशय अनुतप्त होओगे। गौतम राजपुरोहितने भी राजाको बहुत कुछ समझाया पर राजाने शकुन्तलाको घरमें नहीं घुसने दिया और कहा कि पुंश्चलीके संसर्गसे कुलकामिनी भी दूषित होती हैं। लाचार हो गौतम पुरोहित ने शकुन्तलाको अपने घर ठहराया और वहांसे उसकी माता मेनका शीघ्रही उसको ले गई परन्तु अपने पास रखना उचित न समझ कश्यप मुनिको उसे सौंप दिया। कश्यपजीके आश्रम (कश्मीर) में शकुन्तलाके गर्भसे भरत नामक पुत्र हुआ। उधर कुछ दिन पीछे एक मछुआके द्वारा शकुन्तलाके हाथसे तालाब में गिरी हुई अंगूठी राजा दुष्यंतके पास पहुँची जिसे देख वह विरहसे विकल हो गये। जब भरत कुछ बड़ा होगया था तो एक दिन दुष्यंत कश्मीरकी तरफ जा निकले और वहां कश्यपजीने शकुन्तलाको पुत्र सहित उनसे मिलकर दोनों तरफ

का विरहदाह शान्त किया। शकुन्तलाका पुत्र भरत बड़ा पराक्रमी, छत्रधारी राजा हुआ जिसके नामपर इस देशका नाम भारत वर्ष पड़ा।

शतानन्द—यह गौतम ऋषिके पुत्र जनकपुरी (तिरहुत) में रहते थे और राजा जनकके दर्बारमें इनका सत्कार होता था। सियास्वयंवरके अवसरपर रामचन्द्र महाराजसे इनकी बातचीत हुइ थी। वाल्मीकीय रामायणमें इनके लिये निम्नस्थ विशेषणोंका प्रयोग किया गया है:—प्रहृष्टरोम, महातेजस्वी, महातपस्वी, परमचतुर, मुनिश्रेष्ठ। रामचन्द्र महाराज तथा ऋषि विश्वामित्रके कहन सुननेसे गौतम ऋषिने इनकी माता अहल्याको अंगीकार किया था।

शम्भूनाथपण्डित—(हाईकोर्टके प्रथम हिन्दोस्थानी जज) आपके पिता शिवप्रसाद काश्मीरी पण्डित स्वदेशसे ग्वालियर जाकर महाराज सेंधियाके दर्बारमें किसी उच्चपदपर नियत हुए थे और वहीं उन्होंने मकान भी बना लिया था। ग्वालियरसे बादको काशी चले गये जहां वि. सं. १८७६ की साल शम्भूनाथ जन्मे। शम्भूनाथने बाल्यावस्थामें उर्दू, फार्सी, संस्कृत तथा हिन्दी पढी थी। पश्चात् पं० शिवप्रसादजी कलकत्ते चले गये, जहां शम्भूनाथने अंग्रेजी पढी और सदरदीवानी अदालतमें १६ रु० मासिकपर लेखककी नौकरी कर ली। पीछे तरक्की पाकर २५ रु० वेतनपर मुहर्रिर इजराय डिगरी हुये। सरकारी काम बड़ी मेहनत, होशियारी आर ईमान्दारीसे करते थे जिससे अफसर लोग अत्यन्त प्रसन्न थे। फुर्सतके वक्त मकानपर नाना शास्त्रोंका अवलोकन करते रहते थ जिससे नित्यप्रति विद्योन्नति भी होती जाती थी। इसी पदपर रहते हुए पण्डितजीने कोर्टकी कार्यवाहीपर एक किताब लिखी जिससे सर्व साधारणको उनकी विद्याका परिचय मिला और जज साहब उक्त पुस्तकको देखकर बड़े प्रसन्न हुये। नौकरीहीकी हालतमें आईन पढकर वकालतकी उच्च परीक्षा पण्डितजीने उत्तीर्ण की। पण्डितजी धर्मपरायण थे, झूंठे मुकद्दमे कभी नहीं लेते थे। दीन दुःखियोंकी वकालत बेदाम करते थ जिससे अन्य वकीलोंकी अपेक्षा पहिले पहिल उनको आमदनी कम होती थी परन्तु उनकी प्रतिष्ठा दिन प्रतिदिन बढती जाती थी पश्चात् सीनियर गवर्नमेण्टप्लीडरका पद तथा गवर्नमेण्ट कालिज कलकत्तामें आईनके प्रोफेसरका पद सर्कारने आपको दिया। उन्हीं

दिनों गवर्नमेण्ट हिंदने सुप्रीमकोर्टकी जगह कलकत्तेमें हाईकोर्ट नियत किया था जिसमें एक हिन्दोस्थानी जज रखनेका प्रस्ताव भी मंजूर हो चुका था। इसी उच्च पदपर पण्डित शम्भूनाथ नियत किये गये। ६ वर्षतक बड़ी लियाकतसे काम किया, सर्व लोग अत्यन्त प्रसन्न रहे, हाईकोर्टमें कोई दूसरा जज आपसे अधिक योग्य नहीं समझा जाता था। स्वदेशियोंकी अनेक प्रकारसे मदद करते थे, विधवाओं तथा अनाथोंको गुप्त रीतिसे सहायता देते थे और दीन दुखियों को वस्त्र, भोजन बँटवाते रहते थे। आप वास्तवमें न्यायी तथा देश प्रिय हाकिम थे, गर्वका लेशमात्रभी आपमें नहीं था और इसीलिये सब लोग आपकी प्रतिष्ठा करते थे। वि० सं० १९२३ में ४७ वर्षकी उम्रमें परलोकगामी हुये। चाल ढाल रहन सहन अंग्रेजी नहीं था।

शमशुद्दीन अल्तमश (दिल्लीका बादशाह) सुलतान कुतुबुद्दीन ऐवकने इसको बच्चपनमें एक सौदागरसे खरीद लिया था और बड़े होनेपर अपनी बेटीकी शादी इसके साथ करदी थी। ई. स. १२१० में इसने कुतबुद्दीनके बेटे आरामशाहको गद्दीसे उतार दिया और आप दिल्लीका बादशाह बन बैठा। स० ई० १२१५ में गज़नीके बादशाहने लाहौरपर चढाई की पर शमशुद्दीनसे हारकर उसे लौटना पड़ा। स. ई. १२३३ में शमशुद्दीनने ग्वालियरका किला सर किया और २६ वर्ष राज्य करके स. ई. १२३६ में मरगया। कुतबुद्दीन-फीरोज इसका बेटा गद्दीपर बैठा। दिल्लीमें कुतबकी लाटका एक भाग अलतमशका बनवाया हुआ है।

शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी–मुल्क गज़नी तथा गोरके सुलतान गियासुद्दीन मुहम्मदने स. ई. ११७४ में अपने छोटे भाई शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीको ग़जनीका गवर्नर नियत किया था। पश्चात् शहाबुद्दीन शहिजादे खुसरो मलिकसे लाहौर छीन लिया और थोड़ेही दिनोंबाद खुरासान विजय किया। स. ई. १२०३ में बड़े भाईके मरनेपर मुल्क गज़नी तथा गोरकाभी राज्य पाया। स. ई. ११९१ में पृथ्वीराज महाराजा दिल्ली व अजमेरपर चढाई की परन्तु तिलावड़ीके मैदानमें परास्त होकर लाहोरकी तरफ लौटगया। स. ई. ११९२–९३ में फिर चढाई की जिसमें पृथ्वीराज परास्त होकर कैद होगया। स. ई.

११९४ में जयचन्द महाराजने कन्नौजपर चढाई की और उसको भी परास्त करके वध किया । पश्चात् ग्वालियर तथा बनारसके राजाओंको परास्त किया और इसके सेनापति बख्तियार खिलजीने स. ई. ११९९ में विहार तथा स. ई. १२०३ में बंगाल, राजा लक्ष्मणसेनसे छीन लिया । बनारसमें शहाबुद्दीनने प्रायः १०० मन्दिर नष्ट किये थे । स. ई. १२१६ में सिन्धु नदीके किनारे डेरेमें घुसकर घक्करोंने इसको मारडाला । इसके कोई बेटा नहीं था निदान इसका भतीजा गजनी तथा गोरके राज्यका मालिक हुआ और इसका सुयोग्य गुलाम कुतबुद्दीन ऐवक दिल्लीके तख्तपर बैठकर हिन्दोस्तानका बादशाह हुआ ।

शत्रुघ्न—यह अवध नरेश राजा दशरथके पुत्र रानी सुमित्राके उदरसे जन्मे थे । लक्ष्मणजी इनके सगे भाई थे । सीतामहारानीकी भतीजी श्रुतकीर्तिसे इनका विवाह हुआ था । जबतक महाराज रामचन्द्र बनवास करते रहे शत्रुघ्न और भरतजी अयोध्यामें रहे । महाराज रामचन्द्रके राजसिंहासन आरूढ होनेपर व्रजमण्डलसे च्यवनादि ऋषियोंने वहांके राक्षसराजा मधुपुत्र लवणके अत्याचारोंकी आकर शिकायत की । महाराज की आज्ञा पाकर शत्रुघ्नने ससैन्य व्रजमंडलपर चढाई की और लवणको मारकर उसकी राजधानी मधुपुरीको विध्वंस कर दिया तथा उसके समीप मधुरा (मथुरा) नामक नगरी बसाई और महाराजकी आज्ञानुसार वहां रहकर बहुकालतक उस देशका शासन करते रहे । अन्तमें महाराजके वैकुण्ठ पधारनेके अवसरपर शत्रुघ्नजीने निज पुत्र सुबाहुको मधुपुरीका राज्य और दूसरे पुत्र शत्रुघातीको वैदिशनगरका राज्य देकर इस लोकका सम्बन्ध छोड़ दिया ।

शाकटायन—इन्होंने संस्कृत व्याकरणकी एक पुस्तक रची थी । शब्दानुशासन तथा अणादि सूत्रोंके कर्ता भी यही थे । यास्कमुनि तथा पाणिनि ऋषिसे पीछे इनका समय प्रतीत होता है । डैनियल साहिबके मतानुसार यह ब्राह्मण थे और निर्मानाक्षवर्म्मा जैनी लिखता है कि यह जैनी थे । इनका व्याकरण पाणिनिमतके अनुकूल है ।

शाक्यसिंह—देखो बुद्ध.

शांखायन—ऋग्वेदका ब्राह्मण तथा ऋग्वेदीय श्रौत सूत्र और ऋग्वेदके गृह्यसूत्र इन्होंने बनाये थे श्रौतसूत्र १८ अध्यायमें विभागित हैं और उनमें राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, गोमेध इत्यादि बड़े २ यज्ञोंके करानेके नियम लिखे हैं। गृह्यसूत्र ६ अध्यायोंमें है और उनमें सर्व सांसारी संस्कार तथा ज्योतिष और डाकिनी आदि विद्याओंका वर्णन है।

शन्तनु—यह चन्द्रवंशी महाराज प्रियव्रतके पुत्र थे। महारानी गंगासे इनके भीष्मनामक पुत्र हुआ था। पश्चात् राजा शन्तनू सत्यवती एक सुंदरी बालापर मोहित होगये और उसका विवाह इनके साथ इस शर्तपर होगया कि उसकी औलादको गद्दी मिलेगी। राजपुत्र भीष्मने अपने पिताकी विषय वासना पूरी करनेके लिये राजपाटका दावा छोड़दिया और अपना विवाह तक नहीं किया सत्यवतीकें गर्भसे विचित्रवीर्य तथा चित्राङ्गद दो पुत्र हुये। अंतमें उस स्थानपर आपने तप किया था जहांपर शान्तनकुण्ड और शान्तन गढ़ी है। इनके विशेष वृत्तांतके लिये देखो भीष्म पितामह।

शारङ्गदेव—इसनामके एक सङ्गीतज्ञने प्राचीन कालमें होकर सङ्गीत रत्नाकर नामक संस्कृत ग्रन्थ रचा था जिसमें अनेक प्रकारके नृत्योंका भी वर्णन है। सङ्गीतरत्नाकरके रचनेमें इन्होंने अभिनव गुप्त, कीर्तिधर, कोहल और सोमेश्वर नामक सङ्गीताचार्योंके ग्रन्थ अध्ययन किये थे।

शारङ्गधर (वैद्य)—यह जातिके भाट प्रसिद्ध कवि चन्दवरदाईके वंशमें थे। रणथम्भोर नरेश हमीर सिंहदेवके दरबारमें इनका आदर था। इनके दादे रघुनाथ गुरु थे। हमीरसिंहदेवके यह वैद्यकशास्त्र पारङ्गत होकर संस्कृतके बड़े भारी विद्वान थे। और संस्कृत तथा भाषामें खूब कविता करते थे। भाषामें हमीर गैरा तथा हमीरकाव्य इन्हींके रचे हुये हैं। संस्कृतमें शारङ्गधर पद्धति (स० ई० १३६३) और शारङ्गधरसंहिता (वैद्यक) इनके रचे ग्रन्थ हैं। शारङ्गधर संहिता ऋषिकृत ग्रन्थोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है, एतद्देशी वैद्य लघुत्रयीमें उसकी गणना करते हैं।

शार्लमेन महाराजाफ्रांस (Charlomagno, cmperor of France) इनको चार्लस दी ग्रेट भी कहते हैं। ज्येष्ठ भ्राताके मरनेपर स० ई० ७७१ को

साल फ्रांसके तख्तपर बैठे । स० ई० ७७४ में इन्होंने लोम्बार्डी विजय की और स० ई० ७७८ में स्पेनराज्यके अनेक मुल्क भी जीते तथा सैक्सन लोगोंको परास्त किया । स० ई० ८०० में अनेक पश्चिमी देश जीतकर इन्होंने अपने राज्यमें मिलाये यह बड़े रणदक्ष, कार्यकुशल, अनुभवशील और न्यायी थे । फ़रासीसोंके वास्ते एक धर्मशास्त्र इन्होंने बनाया था । अनेक महिल तथा गिरजे भी बनवाये थे । यह बड़े विद्वान और विज्ञ थे, विद्योन्नति इनके समयमें बहुत कु-- हुई प्रायः सर्वत्र यूरूपपर इनका आतङ्क था । शहिर ऐक्सला शाला पलमें अपने बनवाये हुये गिरजेमें दफ़नाये गये । जैसे विक्रमादित्य इस देशमें प्रसिद्ध हैं वैसेही शार्लमेन फ्रांसमें । स० ई० ७४२ में जन्मे, स० ई० ८१४ में मरे ।

शालिवाहन महाराजा-(शाकाकार) यह विक्रम शकारीके समकालीन बड़े पराक्रमी राजा थे । प्रतिष्ठानपुरमें इनकी राजधानी थी । वाल्मीकीय रामायण उ० का०, ८९ सर्गके लेखानुसार राजा इलने मध्यदेशमें प्रयागसे थोड़ीदूर दक्षिण एक बड़ी उत्तम प्रतिष्ठानपुर नामक राजधानी बसाई थी जो अब गंगाके बांये किनारे झूसी नामसे प्रसिद्ध है । किसी कुम्हारके घर इनका जन्म हुआ था । बड़े होकर इन्होंने एक बृहत राज्य स्थापन किया था और अनेक विजय प्राप्त करनेके स्मारकमें स० ई० से ७८ वर्ष पहिले अपने नामका शाका जारी किया । विक्रमादित्य महाराजा उज्जैन इन्हींसे परास्त होकर रणशायी हुये थे । महाराष्ट्री प्राकृत भाषामें इनका रचा सप्तशती नामक एक पद्यमय कोष मिलता है जिसमें आदिरसात्मक और आर्य्याछन्द विशेष हैं । बाणभट्टने स्वरचित हर्ष चरित उक्त कोषकी इसप्रकार प्रशंसा की है ।

श्लोक—अविनाशिनम ग्राम्यमकरोच्छालि वाहनः ।
विशुद्धजातिभिः कोषं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥

शाहआलम २ (मुगलसम्राट दिल्ली)—आलमगीर द्वितीयके घर स. ई. १७२८ में जन्में और स. ई. १७५९ में वज़ीरके हाथसे अपने बापके मारे जाने की खबर पाकर विहारसे दिल्ली आकर तख्तपर बैठे । स. ई. १७६४ की साल बक्सरकी लड़ाईमें परास्त होकर प्रयागको चले गये । और स. ई. १७६५ में २४ लाख रु० सालियानापर बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाका दीवानीका ठेका ईस्ट

इन्डिया कम्पनीको दे दिया और आप अङ्गरेजोंको हिफाजतमें स. ई. १७७८ तक प्रयागहीमें रहे। तदुपरांत एकान्तमें जीवन व्यतीत करनेसे थककर दिल्ली आये। परंतु रूहेला सर्दार गुलाम कादिरने काबू पाकर १० अगस्त स. ई. १७८८ को सीनेपर चढकर इनकी आंखें निकाल लीं। चक्षुहीन शाहआलमने स. ई. १८०६ तक नाम मात्रको राज्य करके जीवनकी दौड़ पूरी की। यह फार्सी तथा उर्दूके सुकवि थे। आफ़ताब नामसे पद्यपूर्ति करते थे। इनका बनाया १ दीवान मिलता है। दिल्लीमें कुतुबशाहकी दरगाहके समीप, मोतीमसजिदके निकट, सम्राट बहादुर शाहकी कबरके पास इनकी कबर है।

शाहजहाँ (पञ्चम मुगल सम्राट दिल्ली)—पिता जहांगीरके जीते ही इनका प्रभाव प्रबल होने लगा था। स. ई. १६२८ में जहांगीरके मरनेपर ४० वर्षकी उम्रमें दक्षिणसे आकर तख्तपर बैठे और आगरेसे दिल्लीको अपनी राजधानी बदली। इनके समयमें कंधारका सूबा मुग़ल राज्यसे अलग होगया, लेकिन दक्षिणदेशवर्ती अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडाकी रियासतोंसे इन्होंने अपना आधिपत्य स्वीकार कराया तथा राजस्व वसूल किया। और अपने पूर्वजोंका मुल्क बलख तथा बुखारा उज़बक लोगोंसे जीत लिया। इन्होंने नौकरों चाकरोंको बड़ी बड़ी जागीरें दी थीं और राजपूतोंको कई एक नई रियासतें स्थापन की थीं जिनमेंसे कोटा और रतलाम अबतक मौजूद हैं। यह बडे दातार भी थे, करोडो रुपयेका दान पुण्यका पता इनकी तवारीखसे लगता है। नई दिल्लीको "शाहजहानाबाद" नामसे इन्होंने बसाया था और उसमेंसे एक बड़ा भारी किला जुम्मामसजिद, शहिरपनाह और बीचमें पानीकी नहिर बनवाई थी। किलेके भीतर दीवानखास दीवानआम, मोतीमसजिद और अतिसुन्दर भवन बनवाये थे। आगरेमें अपनी प्यारी बेगम ताजबीबीके लिये सङ्गमरमरका रोजा बनवाया था जिसकी गणना पृथ्वीके नवीन सप्त आश्चर्योंमें है। आगरेमें मोतीमसजिद तथा जामा मसजिद भी इन्होंने बनवाई थी। ७ करोड १० लाख रु. के खर्चसे सोने, चांदी और जवाहिरातका तख्त ताऊसभी इन्हींका बनवाया हुआ था, जिसको सम्राट मुहम्मदशाहके वक्तमें नादिरशाह ईरानको लेगया। इनके समयमें आनेवाले फिरङ्गी यात्रियोंने इस देशको सुनहरी हिंदोस्तान लिखा है। उनको यहां सोनेकी नदियां नजर आई थीं और मुग़ल दर्बार तथा दर्बारी लोग जवाहिरातसे लदे हुये तारोंकी समान चम-

कते दीखे थे। सब चीजोंकी तरह सोना भी इनके वक्तमें सस्ता होकर १४ रु० तोला बिकता था। इनके ४ प्यारे बेटे और ४ बेटियां थीं, प्रत्येक बेटेको इन्होंने इतना बढाया था कि वह करोड़ों रुपयेकी आमदनीके सूबोंके मालिक और लाखों फौजके धनी होगये थे और इनके काबूमें न रहकर आपसमें द्वेष रखने लगे थे। ७० वर्षकी उम्रमें जब यह बीमार पडे तो इनके बेटोंने तख्तके लिये झगड़ा ठाना और औरङ्गजेब (आलमगीर) अपने सब भाईयोंको ठिकाने लगाकर तथा इनको आगरेके किलेमें कैद करके तख्तपर बैठ गया कैदके ज़मानेमें यह लड़के पढाते केवल मांस-रोटी खाते और गरम पानी पीनेको पाते थे। ९ वर्ष कैद झेलकर स. ई. १६५८ में यह मरे और ताजगंजके रोजेमें अपनी बेगमके पास ही दफन हुये। इनके दरबारके कवीश्वर सुन्दर महाकविरायने "सुन्दर शृङ्गार" में लिखा है कि-

तीन पहर लौं रवि चलै, जाके देसन मांहि।
जीत लई धरती इती, शाहजहां नरनाहि॥

शाहमदार-यह प्रसिद्ध मुसलमान फकीर, जिसका असली नाम बादिउद्दीन था शैखमुहम्मद तैफूरीबस्तामीका मुरीद था। इसके मतपर चलनेवाले फकीर, जो मदारी कहलाते हैं आजकल भी इस देशमें बहुत हैं। मदारिये फकीर एक झंडी हाथमें रखते हैं जिसको मदारका झंडा कहते हैं और बहुतसे मदारी फ़कीर रीछ बन्दरोंका तमाशा भी करते फिरते हैं। मुसलमान तथा हिन्दुओंकी नीच कौम मदारके झंडेको पूजती हैं शाहमदार २० दिसम्बर स. ई. १४३४ को १२४ वर्षके होकर मरे और कन्नौजके समीप मकनपुरमें दफनाये गये जहां सालमें एकदफे इनकी कबरपर मेला अबतक होता है।

शिवकुमार शास्त्री, पं० महामहोपाध्याय-काशिसे दो कोस उत्तर उन्दीग्राममें घृतकौशिक गोत्री पं० रामसेवक मिश्र सर्जूपारी ब्राह्मणके घर वि. सं. १९०४ की साल फा. कृ. ११ को आपका जन्म हुआ। आपके पूर्वजोंका मूलक ग्राम सर्जूपार धर्मपुरा था। अक्षरारम्भ होनेके पीछे कई वर्षतक अपने घर-पर ज्योतिष पढा। १४ वर्षकी उम्रमें आप अपने चचाके पास गये जो बेतियाराजधानीमें आजीविकावश रहते थे। वहां आपने पं० वाणीदत्त चौबेसे लघुकौमुदी पढ़ना आरम्भ किया।बेतियासे उसीसाल आप काशीमें चले आये और वहांके

प्रधान विद्वान पंडितोंसे परिश्रम सहित व्याकरण, काव्य अलङ्कार तथा न्यायादिषट्-दर्शनकी शिक्षा पाई। और गोविन्दपुरामें मकान बनवाकर वहाँ बस रहे। वेद वेदाङ्ग धर्मशास्त्र तथा पुराण इत्यादि सैकड़ों ग्रंथ आप विचारसहित घरपर देखते रहे। तथा अबभी अवकाश पानेपर देखते रहते हैं। आपके विद्यागुरुओंमेंसे पं० दुर्गादत्त पं० कालीप्रसाद शिरोमाणि पं० बालशास्त्री तथा स्वा० विशुद्धानन्दजी मुख्य थे। गवर्नमेंटने इससमयके महाविद्वानोंमें आपकी गणना की है, जुबिलीकी साल अपारविद्याके पुरस्कारमें आपको पं० महामहोपाध्यायकी उपाधि मिली है जिसके प्रभावसे लार्ड साहबके दरबारमें कुर्सी मिलती है। आप संस्कृत विद्याके समुद्र होकर षट्दर्शनके अद्वतीय पण्डित हैं और वेदान्तके गूढ रहस्योंका ज्ञाता तो इस समय आपके समान भूमंडलभरमें कोई दूसरा नहीं है। काशीके वर्तमान पंडितोंमें आप मुख्य समझे जाते हैं। संस्कृतकालिज बनारसमें प्रोफेसरका पद आपको प्राप्त था परंतु स्वल्प वेतन होनेके कारण आपने इस्तेफा दे दिया। आप शांतिकी मूर्ति होकर सर्वथा गर्वरहित हैं, सनातन धर्मका समर्थन करते हैं और शिष्योंको पढाने तथा पूजापाठ करनेमें बहुधा समय बिताते हैं। आजकल दर्शन विषयमें आप एक ग्रन्थ रच रहे हैं। आपका प्रेम किसी वस्तुपर नहीं है। यद्यपि आप प्रगट नहीं कहते हैं परंतु आपका दर्शन करनेपर सहजहीमें जांच हो जाती है कि संसार आपकी दृष्टीमें तुच्छ है और उससे आपका चित्त उदास है। हिन्दोस्थान भरकी शिक्षित मंडलीमें आपका नाम विदित है, मिलनेवालेके चित्तमें आपकी ओरसे पूज्यबुद्धि उत्पन्न होती है। यदि किसी स्थानके लोग विधर्मियोंके आक्रमणसे निराश होकर आपको बुलाते हैं तो धर्मकार्य समझ शास्त्रार्थ अथवा सनातन धर्मका मंडन करनेको आप तुरंत पधारते हैं। महाराजा दरभंगा तथा राजा साहब हथौड़ा (लखनऊ) काशीके इस सदाचारी महाविद्वानको आर्थिक सहायता पहुंचाकर वास्तवमें अपना धन सुफल कररहे हैं। भीतर बाहर एकसा होकर चित्त आपका ईर्षा द्वेष रहित है और आपकी स्मरणशक्ति अलौकिक होकर विचार आपके अत्युच्च श्रेणीके ब्रह्मज्ञानियोंकेसे हैं जो ओतप्रोत आस्तिक भावसे परिपूर्ण हैं। सन ई० १९०४ में आपके एक पुत्र तथा एक पौत्र है।

शिशुपाल (चन्देरीका राजा)-जब महाराज युधिष्टिर भारतवर्षका राज्य करते थे तो उस समय चेनदेश (बुंदेलखण्ड) में राजा शिशुपालका राज्य

था। इसकी राजधानी चंदेरीमें थी आजकल चंदेरी नगरी ललित पुरसे १८ मील पश्चिमकी ओर स्थित है। शिशुपालकी राजधानी चंदेरी आधुनिक नगरीसे प्रायः ७ मील उत्तर पश्चिमकी ओर स्थित थी। उसे अब बूढी चंदेरी कहते हैं और टूटे फूटे मन्दिर उसकी प्राचीनताकी साक्षी देते हैं। शिशुपाल राजा दमघोषका बेटा था। श्रीकृष्णमहाराज इसके फुफेरे भाई थे लेकिन आपसमें बिगाड़ था, क्योंकि श्रीकृष्णजी इसकी मंगेतर रुक्मिणीको विवाहके दिन बलपूर्वक ले आये थे। महाभारतके युद्धके पीछे जब महाराज युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया तो श्रीकृष्णजी तथा शिशुपाल दोनों उसमें आये थे। श्रीकृष्णजीने शत्रुका नष्ट करना उचित समझ वहीं इसका वध करडाला।

शिवप्रसाद (राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द)-इनके पूर्वजोंने स. ई. की ११ वीं शताब्दीमें जैनमत ग्रहणकर लिया था और जब अलाउद्दीन खिलजीने रणथम्भोरको लूटा था तो रणथम्भोरसे अदमदाबाद (सिंध) में जाबसे थे। पश्चात् चम्पानेरमें जा रहे और वहांसे खम्भातमें जा बसे। खम्भातसे नादिरशाहकी चढ़ाईके वक्त मुर्शिदाबाद चले आये और राजा शिवप्रसादने मुर्शिदाबादको छोड बनारसमें मकान बनालिया। बाबू गोपीचन्द इनके पिता थे, रायडालचन्द इनके पितामह थे और इनके धनाढ्य ननिहालियोंको जो मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) में रहते थे मुगलसम्राट मुहम्मदशाहने जगत सेठका खिताब दिया था (देखो जगतसेठ)। पिता इनको १२ वर्षका छोड मर थे। बनारस कालिजमें पढ़कर यह १७ वर्षकी उम्रमें एजेन्ट गवर्नरजनरल अजमेरके दफ्तरमें महाराज भरतपुरकी तरफसे वकीलके पदपर नियत हुये। पश्चात् सिक्खोंके युद्धके अवसरपर मीरमुन्शी फौजका पद इनको प्राप्त हुआ, पर स० ई० १८५२ में माताके अधिक वृद्ध होनेके कारण इस्तेफा देकर बनारस चले आये और बनारस एजेन्सीके मीर मुन्शीकी जगह पाली। पश्चात् स्कूलोंके असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टरका ओहदा इनको मिला और थोड़ही समय पीछे बनारस डिवीजनके इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्सके पदपर तरक्की पागये। ३० वर्ष गवर्नमेंटकी चाकरी बड़ी प्रशंसाके साथ करके ५ हज़ार रुपये वार्षिककी पेन्शन पाई। बृटिश गवर्नमेंटने कार्य दक्षता तथा राज्य भक्तिपर प्रसन्न होकर सितारे हिंद तथा राजाका खिताब इनको दिया था। देशियोंके संबंधमें यदि किसी बातका विचार करना होता था, तो गवर्नमेंट अवश्यही

इनसे रायतलब करती थी। इन्होंने निजके तौरपर अपनी विद्या बहुत कुछ बढ़ाई थी। और हिंदोस्थानके इतिहाससे बहुत कुछ जानकारी रखते थे। इनका रचा इतिहास तिमिरनाशक पढने योग्य है। अनेक और पुस्तकें भी स्कूलोंके हितार्थ रचीं थीं। स० ई० १८९४ में परमधामको सिधारे। आपके पुत्रपौत्र बनारसमें रईस हैं।

शिवराज–देखो सेवाजी।

शिवाजी मरहटा–देखो सेवाजी।

शिवाजी द्वितीय–देखो साहू।

शालिग्रामजी–का जन्म संवत् १८८८ आश्विन शु० तृतीयाको मुरादाबादमें हुआ आप चन्द्रवंशीय माथुर वैश्य थे। आपके पिताका नाम खुशहाल राय था। ११ वें वर्षकी अवस्थासे आपने पढ़ना आरम्भ किया, थोड़े ही दिनोंमें आपने हिन्दी और उर्दूमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। साहित्यमें अधिक रुचि होनेके कारण आपका चित्त कविताकी तरफ आकर्षित हुआ, उस समय शहरमें कविताकी खूब चर्चा थी। हिन्दीके कई अच्छे २ कवि मौजूद थे, लालाजीने अपना कविता-गुरु स्थानीय कविवर लाला किशनलालजीको बनाया उनकी सहायतासे कविताकी पहली पुस्तक 'प्रेमपचीसी' लिखी। सं. १९०८ में 'हरिश्चन्द्रविलास' और १९११ में 'इश्कचमन' संगीतकी पुस्तक रची। फिर इनको कविताका इतना शौक बढा कि जिस किसी कवि या कविताप्रेमीका नाम सुनते तो अवश्य उससे मिलने जाते। गृहस्थ सम्बन्धी कार्योंसे जब कभी आपको अवकाश मिलता तभी आप पुस्तकोंका अवलोकन पद्योंकी रचना आदि लिखने पढनेका कार्य किया करते थे, हिन्दीके समाचार पढनेका आपको बड़ा शौक था, आपने मोरध्वजनाटक, माधवा-नलकामकन्दला, लावण्यवती-सुदर्शन, अभिमन्युवध, पुरुविक्रम आदि नाटक तथा शुकसागर, सुदामाचरित्र, भक्तमाल आदि भक्ति विषय ग्रन्थ लिखे। आपकी निर्मित अनुवादित आदि सब पुस्तकें "श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेस बम्बई में प्रकाशित हुई हैं। संवत् १९३५ में आपने वैद्यकके ग्रंथोंका अध्ययन करना आरंभ किया, आपने थोड़े ही दिनोंमें वैद्यकमें अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। आपने धर्मार्थ चिकित्सा करनी आरम्भ की। आपके उत्तम अनुभव और परोपकार वृत्तिसे हजारों कष्ट-

साध्य रोगी आराम होकर चारों ओर इनका यशोगान करने लगे। आप गरीब रोगियोंकी हर तरह सहायता किया करते थे। औषधिके सिवाय जिनके पास पथ्य आदिके लिये पैसा नहीं होता उनको पैसा देते और जिनके पास वस्त्र नहीं होता उनकी वस्त्र वगैरहसे भी यथासाध्य सहायता किया करते थे। गरीब रोगियोंका आपको इतना ख्याल था कि चाहे कितना ही जरूरी काम क्यों न हो परन्तु जिस समय किसी गरीब आदमीने आकर प्रार्थना की तो तुरन्त उसके साथ हो लेते थे।

आपने सं. १९५२ में 'शालिग्राम औषधि शब्दसागर' नामक कोष लिखा। पश्चात् शालिग्राम निघण्टु भूषण, भावप्रकाश, राजवल्लभ निघण्टु, रसरत्नाकर धन्वन्तरी, अर्कप्रकाश, राजनिघण्टु, रसराजभूषण, भैषज्य भास्कर, वोपदेवशतक, द्रव्यगुण आदि अनेक ग्रंथोंका अनुवाद और संकलन किया।

आपका स्वभाव बड़ा ही कोमल, सरल और शांत था। मिलनसार और मधुर-भाषी तो आप ऐसे थे कि जो एक बार भी आपसे मिलता वह अवश्य आपके स्नेहपाशमें बँध जाता था।

आप सनातन धर्मावलम्बी थे, परन्तु आपको किसी मतसे द्वेष न था, श्रीकृष्णमें आपकी विशेष भक्ति थी, उठते बैठते आप 'राधाकृष्ण' कहा करते थे। आपके कोई पुत्र नहीं था। एक मात्र पुत्री दुर्गादेवी थी वैद्य, हरिशंकरजी उन्हीं देवीके पुत्र लाला शालिग्रामके दौहित्र हैं। इन्होंने लालाजीके पास बैठकर उत्तम शिक्षा प्राप्त की है। लालाजी इनको पुत्रके समान समझते थे।

वैशाख कृ० ५ संवत् १९५९ को आपकी तबियत एकदम बिगड़ उठी, उस दिन आपने प्रातःकालही कह दिया था कि "आज हमारा अन्तिम दिन है" अपनी प्रियपुत्री दौहित्र और समस्त मित्र बन्धुओंसे यथोचित भाषण कर राधाकृष्ण-राधाकृष्ण कहते हुये अपने नेत्र बन्दकर लिये, और वे सदाके लिये संसारसे बिदा होगये।

श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेसाध्यक्ष धर्मरत्न श्रीमान् सेठ खेमराजजीसे आपका विशेष सौहार्द था, आपकी रुग्णावस्थाका समाचार सुनकर श्रीमान् सेठजीने अपने प्रतिनिधि पं० शिवदुलारेजी वाजपेईको आपके पास भेजा और आपकी आरोग्य

कामनाके लिये ५००) रु. नकद और ५००) रु. की पुस्तकें आपके हाथसे संकल्प कराकर मुरादाबादमें विद्वान् ब्राह्मणोंको वितरण कराई।

पं० शिवदयालुजी मिश्र–मिश्रजी पाटलीपुत्र (पटने) के रहनेवाले कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे, आपके पिता पं० चिम्मनरामजी मिश्र भगवान् श्री शङ्करजीके परम उपासक तथा सच्चे भक्त थे। पं० शिवदयालुजी मिश्र एक अनुभवी–यशस्वी पटनेके सुप्रसिद्ध वैद्य थे, आपने अपनी अनुभूत और प्रचंड औषधियोंसे सेकडों हजारों रोगियोंको आरोग्य किया। आप दीन-दुखियों और गरीबोंके प्रियबन्धु थे। आपका स्वभाव बड़ाही कोमल और मिलनसार था। आपने अपने वैद्यकके प्रभावसे यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त की थी। मिश्रजीका अंग्रेज अफसरोंमें भी पर्य्याप्त मान था। एक बार पटना जिलाधीस विलसन क्यालेक्टर (Wilson Collector) की धर्मपत्नी (Lady Wilson) के पेटमें शूलका दर्द उठा, बड़े बड़े डाक्ट-रोंकी यथोचित चिकित्सा करानेपर भी वह भयानक असह्य दर्द न गया। "मर्ज बढता गया ज्यों ज्यों दवाकी" वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। उसी समय जिलाधीशने वैद्यराज पं० शिवदयालुजी मिश्रको बड़े आदरके साथ बुला अपनी स्त्रीकी चिकित्सा करनेकी प्रार्थना की। मिश्रजीने जिलाधीशकी प्रार्थना स्वीकार कर उनकी स्त्रीका वह महादुःख दारुण दर्द अपनी दो ही गोलीमें शान्त कर दिया, जो सेकड़ों रुपया खर्च करनेपर भी न हुआ था। सुतरां मिश्रजीके इस चमत्कारसे जिलाधीश मि० विलसन अपनी प्रिय पत्नीको आरोग्य देख अत्यन्त प्रसन्न हुये,उधर उस स्त्रीने भी अपनेको प्राण घातक दर्दसे मुक्त हुआ जान औषधियोंकी सराहना और श्रद्धाभक्ति प्रगटकर मिश्रजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की। इतना ही नहीं,मिश्रजी को प्रशंसा पत्र सहित धनादिसे भी सन्मानित किया। साथ ही उन्होंने मिश्रजीसे अपने परिवारके वैद्य (Faimily Doctor) हो जानेकी प्रार्थना की, जिसको मिश्रजीने स्वीकार किया। जबतक मि० विलसन पटनामें रहे मिश्रजीका उनके साथ घनिष्ट संबन्ध रहा।

कुछ समयोपरान्त मि० विलसनका तबादला (Trancefer) मुरादाबादको हुआ। मि० विलसनको मिश्रजीकी अपूर्व औषधियोंका चमत्कार ज्ञात था, उनपर अटल विश्वास और श्रद्धाभक्ति थी। मिश्रजीसे बड़े आग्रह पूर्वक मि० विलसनने मुरा-दाबाद अपने साथ चलनेको कहा, परन्तु मिश्रजी सहसा अपना घरबार छोड़कर

चलनेको सहमत न हुये । अन्तमें विशेष अनुरोध और प्रार्थना करनेपर मिश्रजी भी पटना छोड़ अपने परिवार सहित मुरादाबाद आकर रहने लगे ।

वैद्यराज पं० शिवदयालुजी-मिश्रजीने अपनी रामबाण औषधियों द्वारा मुरादाबादमें भी यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की, यहांके मनुष्योंने भी आपका यथोचित सत्कार किया ।

अन्तमें आप अपने तीन सुयोग्य पुत्रों—ज्येष्ठ-भगवद्भक्ति परायण—पं० हरिदयालुजी मिश्र, मध्यम—राजे महाराजाओंसे सन्मानित पं. सुखानन्दजी मिश्र, और कनिष्ठ संगीत शास्त्रमें निपुण पं० छब्बीलालजी मिश्रको छोड़ रामनामका उच्चारण करते हुये सदैवके लिये इस असार संसारसे बिदा होगये ।

पं० सुखानन्दजी मिश्रके ही सुयोग्य सुपुत्र और वैद्यराज पं० शिवदयालुजी मिश्रके भारत विख्यात पौत्र (पोते) यजुर्वेद भाष्यकार विद्यावारिधि पं० ज्वाला-प्रसादजी मिश्र, मध्यम--सुप्रसिद्ध तन्त्रोंके आदि अनुवादक—पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र और कनिष्ठ सुविख्यात सुलेखक पं. कन्हैयालालजी मिश्र थे ।

शिवाजीराव होलकर—(महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सर शिवाजी राव होलकर बहादुर, जी० सी० यस० आई) आप महाराजा तुकोजीराव पुत्र हैं । स० ई० १८६० में जन्मे । राजकुमार कालिजमें शिक्षा पाई । स० १८८६ में इन्दौरकी गद्दीपर विराजे । आपका डील डौल तथा स्वरूप सब वर्तमान हिंदुस्थानी नरेशोंसे अधिक प्रभावशाली है । आपने गद्दीपर बैठकर प्रजापरसे दुःख-दाई कर उठाये । डकैतोंके नष्ट करनेका उचित प्रबन्ध किया । राजधानी इन्दौरमें एक आईन पाठशाला तथा एक संस्कृत पाठशाला स्थापन की । राज्यके अन्य भागोंमें भी प्रायः १०० स्कूल जारी किये जिससे विद्योन्नति खूब हुई । शिक्षा विभागका सब खर्च मिलाकर ४० हजार रु० वार्षिक आपके समयमें राजकोषसे दिया जाता था । अपराधियोंको आप दण्ड देते थे । घूंस खोरोंको नहीं देख सकते थे । बृटिश गवर्नमेंटने भी आपके सुप्रबन्धोंपर प्रसन्न होकर सर तथा जी० सी० यस० आई० की उपाधियोंसे आपको विभूषित किया था । आप स्वतन्त्र प्रकृतिके न्यायी नरेश हैं । बृटिश रेजीडेन्टको सदैव अपने नौकरके तुल्य जानते थे । राज-पूतानाके एजेन्ट गवर्नर जेनरल तथा वायसराय हिंदसरीखे सर्व्वोच्च पदाधिकारियोंकी भी प्रतिष्ठा अपनेसे नीचेही दर्जेपर करते थे और बड़ी बुद्धिमानीके साथ अपना

राजसी कर्तव्य पालन करते हुये उपरोक्त निरीक्षकोंकी खुशामद करना तो जानतेही नहीं थे। ध्यान देनेका अवसर है, मामला इज्जतका है। श्रीमान्‌का मत सब प्रकार न्याय संगत है क्यों कि हिन्दोस्थानी राजे, महाराजे समयके फेरसे पराधीन होजाने पर भी नरेशोंकी सन्तान होकर नरेश हैं और वायसराय हिन्द प्रभृति पदाधिकारी गण ब्रटिश सम्राट्‌के चाकर होकर सेवकों हीकी श्रेणीमें हैं स० ई० १८८७ की साल श्रीमान फ्रांस तथा इंग्लैंडकी सैरको भी पधारे थे लेकिन इससे भी विचारों तथा चाल ढालमें फर्क नहीं पडा था। वस्तुत: स्वदेशाभिमानी खरे नरेश हैं। दबकना नहीं जानते, न्याय पर दृष्टि सदैव ही रहती है। और परम चतुर हैं। इतिहास साक्षी देता है कि इन्दौरके होलकर महाराजाओंकी प्रकृतिमें सदैवसे स्वतंत्रता तथा वीरताका समावेश अधिकतासे है। इसी पितृजन्य प्रकृतिके अनुसार श्रीमान महाराजा शिवाजीराव होलकर की भी स्वतन्त्रतासे चलनेकी प्रवलवान है जिसका बदलना अथवा इस समयमें पालन होना असम्भव जानकर परम चतुर महाराजाने, पूर्वापरका भली भांति विचार करके वानप्रस्थ अवस्था धारण करना उचित जाना। अत: स. ई. १९०३ की साल राजपाट अपने बालक राजकुंवरको सौंप दिया और भारतके प्राचीन नरेशोंकी भांति वनको पधारे। बस्ती हो या वन श्रीमान्‌को सर्वत्र एकहीसा है। संसार आपकी दृष्टिमें बच्चोंके खेलकी सदृश असार होकर तुच्छ है और सांसारिक पदार्थोंसे मोह न होकर चित्तमें आपके विरक्तता समाई हुई है। अब राजऋषि महाराजा शिवाजीराव होलकर का समय ईश्वर आराधनमें व्यतीत होता है,सहस्रों गुणी जनोंका सत्कार श्रीमानके द्वारा नित्य प्रति होता रहता है और बहुतसे वह राजभक्त लोग जिन्होंने श्रीमान्‌के प्रचंड प्रभावका समय देखा है तनमें प्राण रहते साथ हैं। शेरोंकी सन्तान शेरही होते हैं, लेकिन भारत आपसकी फूटसे अवनतिको प्राप्त है और कठिन समय पराधीनताका आगया है इस लिये होलकर राजवंशके शुभ चिंतक वृद्ध जनोंका कर्तव्य है कि बालक महाराजाको आदिहीसे ऐसी शिक्षा और उपदेश देवें जिससे वह समयके अनुसार महाराजा होलकर बनकर अपने पूर्वजोंका नाम चिरायू करें। होलकर राजका विस्तार ८४०० वर्गमील है। ८ लाख पौंडकी वार्षिक आय है। सेनामें ३२३१ सवार, ६२१८ पैदल और ३५ तोप हैं। महाराजा होलकरकी सलामी तोपके १९ फैरकी है।

शुकदेवजी–देखो सुखदेवजी

शुक्राचार्य–यह भृगुऋषिके पुत्र महा यशस्वी ब्रह्मर्षि होकर दैत्योंके पुरोहित थे और पाताल (अमेरिका) के राजा बलिके दरबारमें पुरोहित तथा मंत्रीके पदको प्राप्त थे। यह बड़े नीतिज्ञ थे, वामनजीको पृथ्वीका दान देते समय इन्होंने राजा बलिको सचेत किया था। जिसके कारण वामनजीने इनकी एक आंख फोड़ दी थी। कांणेको अब तक हंसीके तौरपर शुक्राचार्य कहते हैं। इनकी कन्या देवयानी चंद्रवंशी राजा ययातिको विवाही थी। देवयानीके पुत्र यदुके वंशसें अनेक पीढी पीछे श्रीकृष्णमहाराज हुए। "शुक्रनीति" नामक ग्रन्थमें इन्हीका कहा हुआ उपदेश है भृगुऋषिकी सन्तान होनेके कारण यह तथा इनके वंशज भार्गव कहलाये।

शेरशाहसूर–इसका असली नाम फरीद था और इसका बाप हसनसूर जातिका अफगान पेशावरके निकट "रोह" नामक ग्रामका रहनेवाला था परन्तु बादको हिसारमें आ बसा था। हसनसूरको जमालखां गवर्नर जौनपुरने सहश्राम और टांडा जागीरमें देकर ५०० सवार तय्यार रखनेका हुक्म दिया था। फरीदने बडे होकर मुहम्मद लोहानी बादशाह विहारके यहां नौकरी की तथा एक शेर मार कर शेरखां खिताब पाया। पश्चात् सुलतान विहारने शेरखांको अपना वजीर बना लिया। सूबेदार बंगालको लड़ाईमें परास्तकरके शेरखां बहुतसे माल अस्वाबका भागी हुआ और मौका पाकर बिहारका सुलतान बन बैठा। स. ई. १५४० में शेरशाहने हुमायूंको कन्नौजकी लड़ाईमें परास्त करके सिन्धकी तरफ भगा दिया और शेरशाह नाम धारण करके बादशाह बन बैठा। आगरेमें राजधानी नियत की। मालवा, मारवाड़ इत्यादिक कई देश फतेह करके शेरशाहने स. ई. १५४५ में कालिञ्जरके किलेका घेरा किया। किलेकी दीवार जब टूटगई तो शेरसूरने धावा करनेका हुक्म दिया परन्तु इसी अवसरमें तोपका एक गोला फटकर उसको लगा जिससे वह घायल होकर मरण तुल्य होगया। उस हालतमें भी शेरशाह निरन्तर अपनी सेनाको उत्तेजना देता रहा। संध्या समय सेनापतियोंने आकर खबर सुनाई कि, कालिञ्जरगढ फतेह हो गया। यह सुनतेही शेरशाहने कहा कि "परमेश्वर तू धन्य है!" और प्राण छोड़ दिये। मृतक शरीरको सहश्राममें लेजाकर तालाबके बीच

एक रोजेमें जिसको शेरशाहने पहिलेसे बनवा रक्खा था और जो अबतक विद्यमान है दफनाया गया। कहते हैं कि, शेरशाहके समयमें चोरी तथा डकैती बिलकुल बन्द होगई थी और पथिक लोग सड़कोंके किनारे अपना असबाव रक्खे हुये निर्भय सोते रहते थे। बंगालसे पञ्जाबतक १५०० कोस लम्बी पक्की सड़क उसने बनवाई थी जिसपर दोनों तरफ सायेदार मेवेके दरख्त लगवाये थे और २।२ कोसपर घोडों तथा पुलिसकी चौकियें बिठलाई थीं तथा कुँये खुदवा दिये थे। डाँक पञ्जाबसे बङ्गालमें ३ दिनोंमें पहुंच जाती थी। राज्यभरमें १०। १० कोस पर हिन्दू मुसल्मान महुताजोंको कच्चापक्का खाना देनेके लिये धरमपुर तथा खैरपुर खुलवा दिये थे और सब चौकियों तथा महुताज खानोंमें १। १ नक्कारा रखवा दिया था। शेरशाहके खानेके वक्त सब नक्कारे बजादिये जाते थे जिससे राज्य भरमें मुहु-ताजोंको एकही वक्तमें खाना बटना शुरू होजाता था।

दिल्लीके सूरवंशीबादशाहोंकी सूची।

शेरशाहसूर .... स. ई. १५४५ में मरा

सलीमशाहसूर (शेरशाहका छोटा बेटा)" १५५४ "

फीरोजशाहसूर (सलीमसूरका बेटा) " १५५४ में मुहमद-शाहआदिलने इसको मारडाला

मुहम्मदशाहआदिल (शेरशाहका भतीजा) १५५५ में इबरा-हीम सूरने इसे गद्दीसे उतार दिया.

इबराहीमखाँसूर (मुहम्मदशाहआदिलका बहनोई) " १५५५ में सिक-न्दर शाहसूरने इसे तख्तसे उतार दिया.

सिकन्दरशाहसूर (शेरसूरका भतीजा)" १५५५ में हुआ हुमायूंने इसे सरहिन्दके निकट परास्त करके सूरवंशका अन्त कर दिया.

शेरसिंह (महाराजा पंजाब)—यह पञ्जाब केशरी महाराजा रणजीत-सिंहजीके पुत्र रानी महताब कुँवरके पेटसे स० ई० १८०७ में जन्मे थे। खड्ग-सिंह तथा नौनिहालसिंहके बाद इन्होंने पंजाबकी गद्दीपर बैठना चाहा परन्तु

जम्बूनरेश महाराज गुलाबसिंह तथा अन्य सिक्ख सर्दार चाहते थे कि, राजकाज खड्गसिंहकी रानी चन्द्रकुवरके हाथमें रहे निदान दोनों तरफसे लड़ाई ठनी दिनकी लड़ाईके बाद रानी चन्द्रकुवरने लाहौरका किला खाली करदिया। और शेरसिंह स. ई. १८४१ में गद्दीपर बैठे। लेकिन द्वेषकी आग बुझी नहीं थी, सर्दारलोग प्रगटमें चुप थे और छिपे २ शेरसिंहके नष्ट करनेकी फिक्र कर रहे थे। आखिर उन्होंने अपनी तरकीबें लड़ाकर महाराज शेरसिंह और वजीर ध्यानसिंहके दिलोंमें फर्क डाल दिया। यह सुअवसर पाकर अतरसिंह तथा अजीतसिंह सिंधवालोंने राजा और वजीरके बीच खूब अदावत करा दी, उधर राजासे मिलकर वजीरके मारनेका हुक्म लिखा लिया और वही हुक्म वजीरको दिखलाकर राजाके मारनेकी युक्ति ठहराई। थोड़ेही दिनोंबाद सिंधवाले दोनों सर्दार ५०० सवार लेकर लाहौर आये और महाराज शेरसिंहसे मिले। महाराज शेरसिंहने जाना कि, वजीरके मारनेके लिये आये हैं, इतनेहीमें सर्दार अजीतसिंहने एक भरीहुई दुनाली बन्दूक महाराजके साम्हने करके कहा कि, देखिये महाराज! क्या अच्छी बन्दूक है। महाराजने ज्योंही लेनेको हाथ बढ़ाया त्योंही अजीतसिंहने घोड़ा दबाया। दोनों गोलियें पार होगईं और महाराजके मुंहसे केवल यह निकलने पाया कि, "यह दग़ा की"।

शेक्सपियर (William Shakespeare) यह प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि मलिका एलिजाबेद्के समयमें इङ्गलैण्डके स्ट्रेटफोर्ड आन ऐवन नामक ग्राममें हुये थे। बाप इनके ऊन बेचने तथा दस्ताने बुननेका पेशा करते थे। १८ वर्षकी उम्रमें इनका विवाह हुआ जिससे ३ बच्चे हुये। पश्चात् लन्डनमें आकर यह एक नाटक कम्पनीके मैनेजर होगये। कुछ समय पीछे उक्त कम्पनीके मालिक बन गये। स० ई० १६०४ में इनके पिताका देहान्त होगया और स० ई० १६०५ में यह अपने गांवको लौट आये। फिर अन्त समयतक यह वहीं रहे। और एक बड़ी जायदाद मोल ले सके। कविता करनेकी शक्ति इनमें दैवी थी। सैकडों पुस्तकें इन्होंने निर्माण कीं जिनमेंसे ३५ नाटक हैं। शृङ्गार, वीर, करुणा इत्यादि ९ रस जैसे इन्होंने दर्शाये वैसे कोई दूसरा अंग्रेजी कवीश्वर नहीं दर्शासका। सर्व प्रकारके विचारोंका इनकी कवितामें समावेश हुआ है और चित्तके सूक्ष्मभावोंको तो ऐसी उत्तमतासे इन्होंने चित्रित किया है कि मानों

मूर्ति समान बनाकर दिखला दिया है। नाटकपात्र इनके सब कर्तव्यपरायण हैं। और पदलालित्य इनका ऐसा ही प्रसिद्ध है जैसा संस्कृत कवि दण्डीका। इङ्गलैन्डमें इनके नामके अनेक मेले होते हैं और इनके हाथकी छड़ी तथा वस्त्र अबतक लन्डनके अजायब घरमें रक्खे हैं। और आश्चर्यकी आंखसे देखे जाते हैं। स० ई० १६१६ में ५३ वर्षके होकर मरे और स्वेच्छानुसार निज जन्मभूमिके ग्राममें दफनाये गये।

शैखचिल्ली–चिल्ली अपभ्रंश चुहलीका है। चुहली पार्सी भाषामें ठठोलको कहते हैं। वास्तवमें यह बड़े ठठोल तथा चतुर पुरुष थे। अनेक कहानियें इनकी इस देशमें प्रसिद्ध हैं। थानेश्वर (पंजाब) में इनकी कबर देखने लायक बनी है। प्रतीत होता है कि, यह मुगल सम्राट शाहजहां (स. ई० १६१८–५८) के वक्तमें हुये।

शैखजलाल–इनको मखदूमें जहानियां तथा जहाँगश्त भी कहते हैं। पृथ्वीके अनेक भागोंमें भ्रमण करनेके सिवाय इन्होंने ७ दफे मक्काकी यात्रा की थी। इनके मुरीद (चेले) जो जला लिये अथवा मलङ्ग कहलाते हैं अब भी इस देशमें बहुत हैं। इनके बाप सय्यद अहिमद कबीर मुलतानके रहनेवाले थे। और इनके दादा सय्यद जलाल बुखारी थे। शैखबहाउद्दीन जकारियाके पौत्र शैखरूकनुद्दीन अबुल फतह इनके पीर (गुरू) थे। सुलतान फीरोजशाह तुगलक इनका मुरीद था, इन्होंने मकासे लाकर उसको एक पत्थर दिया था। जिसपर मुहम्मद साहब के चरणका चिह्न था। मुलतानके समीप अच्छामें स० ई० १३८४ की साल ७८ वर्षकी उम्रमें इनका देहान्त हुआ। वर्षमें एक दफे इनकी कबरपर मेला होता है जिसमें लोग दूर २ से आते हैं। लोगोंको विश्वास है कि, इनकी कबरकी मट्टी खानेसे पागलोंको आराम हो जाता है। इनके एक मुरीदने इनके जीवनचरितकी पुस्तक लिखी थी और उसका नाम किताबेकुतबी रक्खा था।

शौनकऋषि–शुनकऋषिके पवित्र प्राचीन वंशमें वेद पढने पढाने तथा यज्ञ करानेका काम सदैव रहा। इनका घर नैमिषारण्य जिला सीतापुरमें था। शौनक नामके निम्नस्थ पांच प्रसिद्ध ग्रंथकार इस वंशमें हुये थे:—

शौनकगृत्समदमहर्षि–इन्होंने ऋग्वेदका द्वितीय मण्डल प्रकट किया।

शौनकाचार्य २–यह शौनकगृत्समदमहार्षिके पौत्र थे । ब्राह्मण, क्षत्री आदि ४ वर्ण इन्होंने कायम किये थे । शौनकशाखा प्रवचन तथा ऋग्वेदके कल्प-सूत्र इनके रचित ग्रंथ हैं ।

शौनकाचार्य ३–इन्होंने वेदांग शिक्षा रची थी और परीक्षितके पुत्र जन्मेजयका यज्ञ कराया था । महाभारतमें सूतजीके सम्वादके प्रवर्तक यही हैं । यह नैमिषारण्यमें रहकर ८८ हजार ऋषियोंके अग्रगण्य गिने जाते थे । प्रसिद्ध पं० अश्वलायन इनका शिष्य था ।

शौनक ४–यह पाणिनि ऋषिके समकालिक थे क्योंकि " पाणिनिशिक्षा " के संग्रहीता पं० व्याडिके रचे " विकृतवल्लि " नामक ग्रंथमें इनका नाम है और शौनकीयक ऋक्प्रातिशाख्यके अनेक स्थलोंमें पाणिनिऋषिके सपाठी पं० व्याडि-का नाम है । निम्नस्थ ग्रंथ ऋग्वेदपर इन्होंने रचे थे ।

शौनकीय ऋक्प्रातिशाख्य, अनुवाक्यानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, आर्ष्यानुक्रमणी, छन्दानुक्रमणी, ऋक्पादयोर्विधान और स्मार्तसूत्र ।

शौनक ५–इन्होंने अथर्व वेद संहिताका सम्पादन किया था जो शौनकीय संहिता कहलाती है । चित्राध्यायका तथा ४ भागोंमें अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य भी इन्हींका बनाया हुआ है ।

शंकराचार्य स्वामी (स्मार्तधर्मप्रवर्तक)–पुरातत्ववेत्ता पंडित के. बी. पाठक स० ई० ७९९ में इनका होना निश्चय करते हैं । यह मलावार प्रदेशान्तर्गत कलाड़ी ग्राममें विश्वजीत उपनाम शिवगुरु एक वृद्ध ब्राह्मणके घर विशिष्टा नाम्नी माताके गर्भसे जन्मे थे । परम्परासे चले आनेवाले वैमनस्यके कारण कुटुम्बियोंने इनके जन्ममें शंका उत्पन्न करके इनके माता पिताको त्याग दिया था । ५ वर्षकी उम्रमें इनके पिताका देहान्त होगया । ८ वर्षकी उम्रमें इन्होंने नर्मदा तटवासी गोविन्द भगवत्पाद एक सिद्ध पुरुषसे संन्यास धर्ममें दीक्षा ली और उनसे सम्पूर्ण विद्या पढ १६ वर्षकी उम्रमें काशीको चले आये । काशीमें जब एक दिन यह गंगास्नान किये आरहे थे तो रास्तेमें चार कुत्तोंको रस्सीमें बांधे हुये साम्हनेसे एक चांडालको आता देख इन्होंने कहा कि, " गच्छ दूरे " । चांडाल

मार्ग न छोड़ कहने लगा कि, "वेद तथा उपनिषद् परब्रह्मको अद्वितीय अनवद्य, असङ्ग तथा सत्य बतलाते हैं परन्तु तुममें यह भेद बुद्धि देख मुझे बड़ा आश्चर्य होता है । स्पर्शके भयसे आपने मुझसे मार्ग छोडनेको कहा किन्तु मेरी और आपकी आत्मामें कुछ फर्क नहीं है । महात्माजीने मोहकूपमें फँसकर इस क्षणभङ्गुर नश्वर देहमें वृथा आत्माभिमान करते रहते हैं" । यह कहकर चांडाल गुप्त होगया और उसकी जगह चारों वेद समेत एक विद्वान दृष्टि पड़ा जो साक्षात् शिवसा मालूम होता था । पलमात्रमें वह भी अन्तर्ध्यान होगया और इनको उपदेश कर गया कि "एक मात्र परब्रह्मही सत्य है और सब मिथ्या है" । इसी उपदेशके आधारपर इन्होंने स्मार्तधर्मका प्रचार करना चाहा । निदान प्रयागमें जाकर प्रसिद्ध पं० कुमारिलभट्टसे भेंट की । कुमारिलजीने इनका अभिप्राय समझ इनको उपदेश किया और कहा कि "यदि माहिष्मतीवासी मीमांसक पंडित मण्डनमिश्रको तुम शास्त्रार्थमें परास्त करसको तो भारतके अन्य सब पंडित परास्त होनेके तुल्य हो जावेंगे ।" यह सुन वह माहिष्मतीको सिधारे और पं० मण्डनमिश्रको शास्त्रार्थमें परास्त करके उसको शिष्य कर लिया (देखो मण्डनमिश्र) पश्चात् इन्होंने अनेक और विद्वान शिष्य किये जिनमेंसे सुरेश्वराचार्य (मण्डनमिश्र), पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, त्रोटकाचार्य, इत्यादि १० प्रधान शिष्य थे । इन १० शिष्योंकी गणना वेदान्त दर्शनके आचार्योंमें है और संन्यासियोंकी १० शाखायें इनके नामसे प्रसिद्ध हैं फिर इन्होंने भारतके प्रत्येक भागमें दिग्विजय करके स्मार्तधर्मका प्रचार किया और पूर्वादि चारों दिशाओंमें निम्नस्थ देव दर्शन मठ बनवाये और उनमें अपने विद्वान् शिष्योंको नियुक्त किया:—

उड़ीसामें गोवर्धन मठ बनवाकर पद्मपादाचार्यको सौंपा ।
द्वारिकामें शारदा मठ बनवाकर विश्वरूपाचार्यको सौंपा ।
गढ़वालमें जोशीमठ बनवाकर त्रोटकाचार्यको सौंपा ।
मैसोरमें शृङ्गगिरि मठ बनवाकर पृथ्वीधराचार्यको सौंपा ।

उपरोक्त चारों गद्दियोंकी परम्परामें होनेवाले महन्त शंकराचार्य नाम धारण करते हैं । शंकरस्वामीने ब्रह्मसूत्रोंपर अद्वैत भाष्य और कठ, केनादि १० उपनिषदोंपर भाष्य तथा भगवद्गीतापर भाष्य रचा था । "विवेकचूडामणि" नामक ग्रंथ भी इन्हींका विरचित है वास्तवमें एक दिन शंकरस्वामीकी ग्रंथरचना, अनुपम

प्रतिभा, अमानुषिक शक्ति, अलौकिक खण्डनीय युक्ति, सारगर्भ उपदेश और अद्भुत कार्य कलापने हिमालयसे रासकुमारीतक बड़ाभारी धर्म विप्लव उपस्थित किया था और बौद्धधर्मसे डूबेहुये भारत की रक्षा की थी। ३२ वर्षके उम्रमें शंकरस्वामी केदारनाथके शिखरपर स्वरूपको प्राप्त हुये। स्वामीके दक्षिणदेशस्थ शिष्योंने काञ्चीपुरी कामाक्षीदेवीके मन्दिरमें उनकी मूर्ति पधराई जो अबतक विद्यमान है। स्मार्तधर्मके अद्वैतवादी शिव, देवी, गणेश आदि सब देवताओंको एक परब्रह्मका अंश मानकर अभेदबुद्धिसे पूजते हैं और जीवको ईश्वरसे अलग नहीं मानते।

श्यामसुन्दरदास बी. ए. (नागरीप्रचारिणीसभाबनारसके मंत्री)

लालादेवीदास खत्रीके घर स० ई० १८७५ की साल बनारसमें आपका जन्म हुआ। पिता आपके खाते पीते थे। काशी मुहल्ला लाहौरीटोलामें उन्हींके बनवाये एक अच्छे मकानमें आप रहते हैं। स. ई. १८९७ में आपने बी. ए. पास किया और सेन्ट्रल हिन्दूकालिज बनारसमें ७० रु० मासिकपर सेकन्ड मास्टर नियत हुये। ना० प्र० सभाके अवैतानिक मन्त्रीका पद पहिलेहीसे आपको प्राप्त है। स० ई० १९०१ में पिताके मरनेपर उनका श्राद्धकर्म उदारता पूर्वक यथाविधि आपने किया था। इसके सिवाय आपके चरितमें अभीतक कोई और विशेष घटना नहीं हुई है किन्तु ना० प्र० सभाकी उन्नत्तिमें आप अधिकांशके भागी हैं। एवं उक्त सभाका संक्षिप्त विवरण आपके सम्बन्धमें लिखते हैं। स० ई० १८९३ में काशीके कई सुपठित लड़कोंने जिनके अग्रगण्य बाबू श्यामसुंदर थे। ना० प्र० सभाका नामकरणसंस्कार किया और सुयोग्य जान सभाका मंत्री इनको बनाया। पश्चात् इन्होंने काशीमें नागरीके जन्मदाता सुप्रसिद्ध भारतेन्दुजीके भाई बा० राधाकृष्णदासको जो उन दिनों हिन्दी हितैषिताके लिये प्रसिद्ध हो चले थे उद्योग करके सभाका प्रधान बनाया। दृढतासहित कार्य करते २ कुछ समय पीछे सभाको स्कूलोंके असिस्टन्ट इन्सपेक्टर रायबहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० से सभाका प्रधान बननेकी प्रार्थना करनेका साहस हुआ। पंडितजीके प्रधानत्वको प्राप्त होते ही छोटे बड़े दर्जेके अनेक मनुष्योंने सभासदोंकी सूचीमें नाम लिखाना आरम्भ किया। जिससे आर्थिक दशा सुधरकर सभाको दृढता हुई। फिर तो नियत समयपर मासिक तथा वार्षिक अधिवेशन होनेलगे। और ना० प्र० पत्रिका तथा ना० प्र० ग्रन्थमालाके छपनेका उचित प्रबन्ध होगया। पश्चात् गवर्नमेन्टसे प्रार्थना करके

सभाने हिन्दकि प्राचीन ग्रन्थोंके खोजके लिये ४०० रु० मंजूर कराया। इस खोजकी रिपोर्ट जो देखने लायक है अंग्रेजीमें तय्यारकरके बाबू श्यामसुंदर ने पेश की और वह गवर्नमेन्टके हुक्मसे छापी गई। जब सभा इतना काम करचुकी थी तो सुननेमें आया कि, प्रयाग हाईकोर्ट सुप्रसिद्ध वकील पं०मदनमोहन मालवीय लेफटिनेगवर्नर सर ऐन्टोनीमैकडोनलसे न्यायालयोंके कागजोंमें नागरीअक्षर व्यवहार करनेका हुक्म पास करानेके लिये उद्योग कर रहे हैं। तुरन्त मालवीयजीको सभाने अपनाया और उनकी आज्ञानुसार काम करनेमें त्रुटि नहीं की जिसका परिणाम यह हुआ कि, नागरी अक्षरोंके व्यवहार करनेका हुक्म मिल गया। फिर तो महाराजा सेंधिया आदिनरेशोंने भी स्वराज्यके दफ्तरोंमें उर्दूकी जगह हिन्दीको आदर दिया। इसके सिवाय सभाकी तरफसे हिन्दीवैज्ञानिककोष आदि कई उपयोगी ग्रन्थोंके तय्यार करानेका भी उत्तम प्रबन्ध हुआ है और अनेक प्राचीन ग्रन्थ शुद्ध करके छपवाये भी गये हैं। अभी इति श्री नहीं है सभा पूर्ववत् अपने काममें दत्तचित्त है और किये हुये कामोंको पुष्ट करते रहनेका भी कर्तव्य नहीं भूली है।

स. ई. १९०२ में बनारसकी कचहरियोंके लिये सभाने एक हिन्दी अर्जीलेखक नियत किया है और अन्य शहरोंमें भी ऐसा करनेका सभा द्वारा उद्योग होरहा है। वास्तवमें ना० प्र० सभा लड़कोंका खिलवाड़ रहकर दीर्घायु न होती और न ऐसे बड़े २ काम कर सकती यदि उसको बाबू श्यामसुन्दरदास सरीखे कर्तव्यपरायण मन्त्री न मिलते। बा० श्या० सुं० अंग्रेजी तथा स्वदेशभाषामें सरलता पूर्वक सभाके विचारोंको प्रकट कर सकते हैं। ना० प्र० ग्रन्थमालामें इनके सम्पादित कई ग्रन्थ छपे हैं। ना० प्र० पत्रिकाका सम्पादन यही करते हैं और मासिकपत्र "सरस्वती" के जन्मदाता यही हैं। ना० प्र० सभाके मन्त्रीको कभी २ अंग्रजीमें बड़ी २ रिपोर्टें तथा अर्जियें लिखनी पड़ती हैं। यह सब काम बा० श्या० सुं० अच्छी तरह कर सकते हैं।

शृङ्गीऋषि—शहर एटासे ८ कोस दूर ईशन नदीके तट सेनाग्राममें इनकी तपस्याका स्थान है। इस स्थानपर राजा परीक्षितकी सेना आकर पड़ी थी, इसी कारण इसका नाम सेना पड़ा। यहींपर राजा परीक्षितने शृङ्गीऋषिके गलेमें सांप डाला था। शृङ्गीऋषिकी पक्की गुफा अबतक एकत्र झाड़ीके भीतर

बनी है और उसके खर्चके लिये आसपासके खेत नानकार हैं । इनके पुत्रका नाम भिण्डीऋषि था ।

श्रीसेन—इन्होंने ज्योतिषके रोसकसिद्धान्तका वर्तमान दशामें सङ्कलन किया ।

श्रीहर्षपण्डित—(महाकाव्यनैषधके कर्ता) डाक्टर बुल्हर साहबने कन्नौज नरेश जयन्ती चन्द्के एक दानपत्रसे सिद्ध किया है कि पं० श्रीहर्ष वि. सं. १२२५ में विद्यमान थे । प्रसिद्ध है कि इन्होंने पञ्चम अवस्थामें वाग्देवीके प्रसादसे सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की थीं । नैषधकाव्यके पढनेसे विदित होता है कि, यह दार्शनिक पण्डित महाकवि विद्वद्वर अप्रतिम प्रतिभाशाली थे । जैन-कवि राजशेखर स्वरचित प्रबन्धकोशमें लिखते हैं कि "श्रीहीरसुत श्रीहर्षने बनारसमें जन्म लेकर राजा जयन्तीचन्द्के आदेशसे नैषधकाव्य रचा था ।" राजा जयन्तीचन्द्का राज्य कन्नौजसे बनारसतक सर्वत्र देशमें था । नैषधकाव्यमें लिखा है कि श्रीहर्षकी माताका नाम मामल्लदेवी था । कन्नौजके राजा जयन्ती-चन्द्की सभामें पं. श्रीहर्षको आसन तथा दो बीड़ा पान मिला करता था । पं. उदयनाचार्यने पं. श्रीहीरको शास्त्रार्थमें हराया था । पं. श्रीहर्षने स्वरचित "खण्डन खण्डखाद्य" ग्रन्थमें उदयनाकृत "न्यायकुसुमाञ्जलि" का खण्डनकरके पिताके वैरका बदला लिया । निम्नस्थग्रन्थ और भी इन्हींके बनाये हुये हैं:—

अर्णववर्णनकाव्य, नवसाहसाङ्कचरित्र, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, शिवभक्तिसिद्धि, ईश्वराभिसन्धि, स्वपाशप्रस्ताव, स्थैर्यविचार और विजयप्रशस्ति । गीतगोविन्दके कर्ता जयदेव मिश्रने "प्रसन्नराघव" नाटकमें पं. श्रीहर्षको सरस्वतीका हर्ष रूप लिखा है ।

श्रीहर्षदेव (कश्मीर नरेश)—राजतरङ्गिणीके लेखानुसार यह अनेक भाषाओंके पण्डित होकर सत्कवि तथा सम्पूर्ण विद्याओंकी खानि थे । देश-देशान्तरोंमें इनकी प्रसिद्धि थी । स० ई० १०९१ तथा ९७ के बीच कश्मीर-की गद्दीको प्राप्त हुये ।

श्रीहर्षवर्द्धन (रत्नावली आदि नाटकोंके कर्ता)—"हर्षचरित्र" में पं० बाणभट्ट लिखते हैं कि श्रीहर्षवर्द्धनके दादे पुष्पभूपति और बाप प्रभाकर वर्द्धन थानेश्वर (पंजाब) के राजा थे । श्रीहर्षकी बहिन राजश्री कन्नौज

नरेश गृहवर्म्माको विवाही थी। राजा प्रभाकर वर्द्धनके मरनेपर मालवराजने अवसर पाकर ग्रहवर्माको परास्त करके वध किया और राजश्रीको कैदकर लिया। यह खबर पाकर श्रीहर्षके बड़े भाई राज्यवर्द्धनने मालवराजपर चढाई की और परास्त करके उसको वध किया, परन्तु मालवराजके एक मित्रने डेरेमें घुसकर राज्यवर्धनको भी मार डाला। बड़े भाईके मारेजाने पर श्रीहर्षवर्द्धनने थानेश्वर, कन्नौज तथा मालवाका एक छत्र राज्य किया और कन्नौजमें अपनी राजधानी नियत की। शीघ्रही अपनी बहिन राजश्रीकी खोज कराई लेकिन विदित हुआ कि, वह बौद्धमत ग्रहण करके विरक्त होगई।

राज्यसिंहासनपर बैठनेसे कुछही दिन पीछे महाराजा श्रीहर्षने भी बौद्धमत ग्रहण करके सिलादित्य श्रीहर्षवर्द्धन अपना नाम रक्खा। पं० बाण लिखते हैं कि, "महाराजा श्रीहर्षवर्द्धन सर्व शास्त्रोंमें पारदर्शी समझे जाते थे, और महावैय्याकरण तथा सत्कवि होनेके सिवाय ग्रन्थ रचनामें भी सिद्धहस्त थे। पाणिनि, व्याडि, शंकर, चन्द्र और वररुचि आदि विद्वानोंके विचारोंकी पर्य्यालोचना करके उन्होंने एक बड़ा लिङ्गानुशासन बनाया था। वह दिग्विजयी धार्मिक तथा जितेन्द्रिय राजा थे और राज्यविस्तारके द्वारा उन्होंने अत्यन्त यशो लाभ किया था"। चीनीपथिक ह्याइथसङ्ग अपनी यात्राके ग्रन्थमें लिखता है कि "महाराजा सिलादित्य प्रति ५ वीं वर्ष त्रिवेणी तट प्रयागमें एक बडी भारी सभा किया करता था जिसमें दूर २ के राजे महाराजे, पंडित विद्वान साधु सन्त बुलाये जाते थे। कितने ही दिनों तक सबकी दावत होती थी। अन्तमें महाराज सिलादित्य अपना सब धन दौलत लुटा देता था। और अपने वस्त्र आभूषण भी किसी दीन पुरुषको देकर उसके चिथड़े आप धारण करलेता था।" स० ई० ६३४ में महाराज सिलादित्यने बौद्धोंकी एक बड़ी सभा की थी जिसमें हजारों श्रीमान् तथा ब्राह्मण विद्वानोंके सिवाय २१ राजा भी शरीक थे। यह सभा तीन दिनतक रही थी। निम्नस्थ ग्रंथ इनके बनाये हुए हैं।

रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका। स०ई० ६५० में ४० वर्ष राज्य करके महाराजा सिलादित्य हर्षवर्द्धन परलोकगामी हुए।

श्रीचंद (सिक्खोंकी उदासी सम्प्रदायके आचार्य)—यह गुरु नान्हकजीके द्वितीय पुत्र थे। इन्होंने सिक्खोंका उदासी सम्प्रदायका प्रचार किया। इनके मतको माननेवाले हजारों उदासी फकीर अब भी हैं।

श्रीधराचार्य (ज्योतिषी)—यह वंगदेशसे दक्षिण देशवर्ती भूरश्रृष्टि नामक ग्राममें जा बसे थे। इनके पिताका नाम बलदेवशर्म्मा था और शाके ९१३ में इनका जन्म हुआ था। "ज्योतिषत्रिशती" तथा वैशेषिक सूत्रोंपर "न्यायकन्दली" नाम तिलक इन्हींके रचे ग्रन्थ हैं।

श्रीपति (भाषाकवि)—यह प्रयागपुर जिला बहरायचके रहनेवाले थे। काव्यसरोज, श्रीपतिसरोज तथा काव्यकल्पद्रुम इनके बनाये ग्रन्थ विख्यात हैं। यह वि० सं० १७०० में विद्यमान थे।

श्रीलालपंडित—यह अवदीच्य ब्राह्मण जयपुर राज्यान्तर्गत भाण्डेरके रहनेवाले थे। संस्कृतके पूर्णज्ञाता होकर गणितशास्त्रमें निपुण थे। प्रथम आगराकालिजमें संस्कृत प्रोफेसरके पदपर नियुक्त हुए थे। स० ई०१८४८ में जब पश्चिमोत्तर देशके मथुरादि ८ जिलोंमें सरकारी स्कूल नियत हुए तो पाठशालाओंके विजीटर जनरलकी आज्ञानुसार निम्नस्थ ग्रन्थ इन्होंने रचे थे।

शालापद्धति, समयप्रबोध, अक्षरदीपिका, गणितप्रकाश (पांचभाग), बीजगणित, भाषाचन्द्रिका, ईश्वरता निदर्शन और ज्ञानचालीसी। स० ई० १८५२ में जब आगरेमें नार्मलस्कूल सरकारने खोला तो पं० श्रीलालको उसका हेडमास्टर नियत किया। ५ वर्षबाद पंडितजी जिला चंदेरीके डेपोटी इन्सपेक्टर हुए। स० ई० १८५८ में ग्वालियर कालिजके हेडमास्टरका पद पंडितजीको मिला। स० ई० १८६७ में ज्वरादि रोगसे पीडित होकर आगरेको आये और यमुना तटमें देह त्यागी।

श्रीधर (भाषाकवि)—ओइल जिला खीरीके राजा सुब्वासिंह चौहानने श्रीधर नामसे पदपूर्ति की है। भाषा साहित्यमें "विद्वन्मोद तरंगिणी" इनकी रची हुई है। यह कवि सुवंशशुक्लके शिष्य होकर वि० सं० १८७४ में विद्यमान थे।

श्रीधरस्वामी (भागवत तथा विष्णुपुराणके टीकाकार)—यह दक्षिण देशस्थ किसी ब्राह्मण कुलमें जन्मे थे। प्रथम कुछ दिनोंतक व्यापार

करते रहे, पश्चात् काशीको चले आये । इनका रचा भागवतभाष्य काशी नरेश की सभामें ५० भागवत भाष्योंमें जो उस वक्ततक बनचुके थे सर्वोत्तम ठहराया गया था । श्रीधर भाष्यमें कर्म, उपासना तथा ज्ञान सब ही अपना २ कार्य करनेमें प्रधान ठहराये गये हैं, परन्तु अन्यटीकाकारोंने अपने २ मन्तव्यके अनुसार कर्म, भक्ति, ज्ञान, योगादि १ । १ विषयको प्रधान ठहरानेका उद्योग किया है । श्रीधर भाष्यसे प्रसन्न होकर काशी नरेशने १००० अशर्फियां सभाके बीच श्रीधर स्वामीको दी थीं । जो उन्होंने उसी समय पण्डितों तथा साधुओंको बांट दीं । वि० सं० के १६ शतकमें इनका समय है । यह रामानुजीय सम्प्रदायके थे और इनके गुरूका नाम परमानन्द था । निम्न ग्रन्थ तथा टीकाएँ इनके बनाये हैं:-

भगवद्गीतापर सुबोधिनीतिलक, भगवद्गीतासार टीका, भागवतपुराण टीका, विष्णुपुराणपर आत्मप्रकाशटीका, वेदस्तुतिटीका, व्रजविहार भावार्थदीपिका और पदार्थप्रकाशिका पुराणटीका ।

सगर महाराज—वाल्मीकि रामायण बा० का० में लिखा है कि सूर्य्यवंशमें राजा असित हुए जिनको हैहय, तालजंघ तथा शशबिन्दु देशोंके राजाओंने परास्त करके निकाल दिया । राज्य रहित राजा असित अपनी दोनों रानियों सहित हिमवान पर्वतपर जा रहे और थोडे ही दिनों बाद परलोक सिधारे । दोनों रानियां उस समय गर्भसे थीं, एकने कालिन्दी नामक दूसरीको गर्भ नाश करनेके लिये गरल दिया । भार्गवच्यवन ऋषि उन दिनों हिमवान पर्वत (हिमालयका भाग विशेष) पर तप करते थे, कालिन्दीने जाकर उनको प्रणाम किया, मुनिके आशीर्वादसे गरलके सहित कालिन्दीने पुत्र जना और इसी लिये उसका नाम सगर पड़ा । बड़े होकर सगरने शक, यून, कम्बोज, तालजंघ, शूर, पारुविन्दु तथा हैहय जातिवालोंको परास्त करके पृथ्वीका एक छत्र राज्य किया । अनेक द्वीपोंमें भी सगरका राज्य था । बालीद्वीपमें अब तक उनकी पूजा होती है । समुद्रका नाम सागर उन्हींके नामसे पड़ा । सगरका बनवाया सागरताल अभी तक तहसील कासगंज जिला एटाके गढी चकेरी नामक ग्राममें मौजूद है । सगर सन्ततिहीन थे । एवं हिमवान पर्वतपर जाकर उन्होंने तप किया जिसके प्रभावसे रानी केशिनीके १ पुत्र और रानी सुमतिके ६० हजार पुत्र हुये । अंतमें सगरने

बद्रिकाश्रममें उस स्थानके समीप जिसको अब व्योम प्रयाग कहते हैं अश्वमेध यज्ञ किया । और कुछ काल पीछे निज पौत्र अंशुमानको राजपाट सौंप वनको सिधारे। सोरों जि० एटामें कपिलदेव मुनिकी गुफाके सामने सगरके ६० हजार पुत्रोंके भस्म होनेकी पुराणोक्त कथानक प्रसिद्ध ही है । इनका वंशवृक्ष महाराज सूर्य्यके चरित्र में लिखा गया है सो देखो ।

श्रद्धारामपंडित (सनातनधर्मके प्रथम पंजाबी उपदेशक)–
वि० सं० १८९४ की साल जयदयालु ब्राह्मणके घर फिलौर जिला जालन्धरमें जन्मे थे । पिता तथा चाचा इनके साधारण रीतिके पुरोहित ह कर यजमानीके द्वारा अपना गुजारा करते थे । पं० श्रद्धारामजी संस्कृत, अर्बी, सीं, तथा अंग्रेजी के बड़े पंडित होनेके सिवायें चमत्कारी ज्योतिष तथा रमलशास्त्रके विद्वान होकर बड़े प्रतापी हुये । भाषाकविता भी करते थे, संगीतशास्त्रमें निपुण थे और ग्रंथ रचनामें सिद्धहस्त होकर सत्यामृतप्रवाह, भाग्यवती, सिक्खांदेराजदीविधिया, असूले मजाहिब तथा रमलकामधेनु आदि अनेक ग्रंथोंके रचयिता थे । पंजाब तथा युक्त प्रान्तके अनेक नगरोंमें अपने खर्चसे जाकर सनातन धर्मका उपदेश करते थे और यदि कोई चाहता तो श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंकी कथा कहा करते थे जिसको निम्नस्थ विशेषताओंके कारण हजारों लोग सुनते तथा हजारों रुपये चढाते थे:—

पहिले तो यथोचित कालके रागमें साजके साथ सस्वर पाठ करना फिर स्पष्ट भाषामें अर्थ कहना, प्रसंगको श्रुति स्मृति पुराण कुरान इंजील आदिके प्रमाणोंसे विभूषित करते जाना और साथ ही वेदविरुद्ध मतोंका खण्डन इस रीतिसे करते जाना कि, समझें सब पर कोई बुरा न माने ।

घरपर हों या बाहर पंडितजीके पास छोटे बडे सरकारी नौकरों तथा सेठ साहूकार आदि हजारों अमीर गरीबोंकी भीड लगी रहती थी । अनेक राजे महा-राजे तथा पंजाबके लफटिनेन्ट गवर्नरतक उनके गुणोंकी प्रतिष्ठा करते थे । ऐसे महत्पुरुषको ईर्षालुओंके द्वारा बहुत कुछ सन्ताप भोगना पडा था जिसका दिग्दर्शन मात्र यहां लिखते हैं–

अत्युच्च विचारोंके पुरुष होकर पंडितजी बिना बुलाये किसीके यहां नहीं जाते थे, पिताके धनी यजमानोंको भी अपनी अपार विद्याके आगे तुच्छ समझ उन्होंने

त्याग दिया था । प्रकृतिके नियमानुसार ऐसी दशामें साधारण माता पिताके पुत्रका विलक्षण प्रताप देख जन्मभूमिके कितने ही लोग ईर्षालु होगये थे परन्तु कुछ कर सक न होकर बात २ में ठट्टा उड़ाया करते तथा दूर २ तक सर्व साधारणके चित्तमें कुसंस्कार दृढाकर निरन्तर अपनी गणना बढानेका उद्योग किया करते थे। चढती जवानीके दिनोंमें किसी अवसर पर पंडितजीने अपनी माताके एक थपेड़ा मारकर अतिशय पश्चात्ताप किया था। इसी कारण बहिकाये जानेपर उनकी माता तथा चची भी स्त्रियोंके सहज स्वभावके अनुसार अपने पुराने यजमानोंसे, जो पंडितजीके मुख्य ईर्षालू थे, मिल गई थीं जिससे घरका भेद सहज हीमें बाहर हो जाया करता था। अनुचित हठ करने पर पंडितजी ब्रह्मतेजपर आ जाते थे, इसी बुनियादपर ईर्षालूओंने छोटे दर्जेके मनुष्योंको सिखलाकर पंडितजीके बनानेके लिये उद्यत किया जिससे बात २ में वह मर्मस्पर्शी शब्द बोलकर तथा विकार-सूचक चेष्टा बनाकर पंडितजीका हृदय तपाने लगे । यह चाल समझ पंडितजीने उन "बन्दरके हाथके चिमटों" को यथाशक्ति अपनेसे दूर रखनेका प्रयत्न किया फिल्लौर तथा लाहौरमें पंडितजीने हरिज्ञान मन्दिर बनवाये थे जिनमें हरसाल २। ४ उत्सव धूमधामसे होते थे और अपने द्वारपर दाल आटेका सदाव्रत जारी किया था। अनेक और भी देशहितके काम करनेको थे जिनके पूरे होनेमें ईर्षालूओंके उद्योगसे देर हुई और शीघ्रही वि० स० १९३८ की साल पंडितजीको मृत्युने आ घेरा। द्वेषी लोग जिस प्रकार पंडितजीको निरन्तर सन्तप्त करनेका उद्योग करते थे उसका एक उदाहरण यहां लिखते हैं—

दाल आटेके सदाव्रतके विषयमें ईर्षालू लोग हाटवाटमें देशी विदेशी सबही से विकार सूचक चेष्टा बनाते हुये पापदर्शी शब्दोंमें कहा करते थे कि "अजी! उनके यहां तो सदाव्रत खुला है जिसको इच्छा हो ले; इनकार तो किसीको है ही-नहीं"। जो करना था सो पंडितजीने सदैव किया और ईर्षालूओंकी बातों पर किंचिन्मात्र ध्यान न करना ही उनकी उचित औषधि समझी। कोई सन्तान नहीं थी एवं अन्त समय पंडितजीको निज अर्द्धांगी पंडिता महताबकुंवरकी नौका मझधार केवल एक विद्वान शिष्य पं० तुलसीदेवके सहारे छोड़ना पड़ी। पंडितजी के द्वेषियोंने अनाथ विधवाको भी कल नहीं लेने दी परन्तु वास्तवमें उसको कुछ विशेष हानि नहीं पहुंच सकी। धिक्कार! ऐसे द्वेषियोंको जो तनमें प्राण रहते

सदैव ही गाल बजाते रहे लेकिन कुछ कर न सके। अनेक समाचार पत्रों तथा बड़े २ लोगोंने पंडितजीके मृत्युपर एक स्वरसे कहा था कि "पं० श्रद्धाराम वास्तव में देशहितैषी महा विद्वान् थे"

सम्भाजी महाराज–शिवाजीकी पत्नी सईबाईके उदरसे स. ई. १६५७ की साल राजगढ़में जन्मे। पिताके जीतेजी इन्होंने किसी ब्राह्मणीसे बलात्कार व्यभिचार किया था जिसके बदलेमें महाराज शिवाजीने इनको कुछ दिनके लिये कैद करके अपनी न्यायपरताका परिचय दिया था। पश्चात् इन्होंने निजपिताके विरुद्ध उपद्रव ठाना जिससे महाराज शिवाजीको इतना शोक हुआ कि वह मरही गये। स० ई० १६८० में पिताके सिधारनेपर यह राज्यसिंहासन पर विराजे और ९ वर्षतक राज्य करते रहे। यह बड़े निर्दई थे, प्रजा इनके शासनसे उकता उठी थी, शराब बहुत पीते थे, बड़े स्त्रैण थे बहुधा अन्तःपुरहीमें रहते थे। इनका राज्यकाल पुर्तगालियों तथा मुगलोंसे लड़नेमें बीता। स० ई० १६८९ में मुगल सम्राट औरंगजेबने बीवी बच्चों सहित इनको पकड़वा लिया और लोहेकी गरम सलाख़से इन्हें अन्धा करवाके जिह्वा इनकी कटवाडाली क्युंकि मुसल्मानोंके पैगंबर मुहम्मदको इन्होंने कुवाक्य कहे थे। बादको औरंगज़ेबने इनका सिर धड़से जुदा करवा दिया और इनके पुत्र शिवाजी द्वितीय (साहू) को बहुत दिनों तक कैदमें रक्खा।

सर्वज्ञमुनि (संक्षेप शारीरक भाष्यके कर्ता)–यह स्वामी शंकराचार्य (स० ई० ७९९–८३१) के शिष्योपशिष्य थे।

सरस्वती–पं० मण्डन मिश्रकी स्त्री लीला अपनी अपार विद्याके कारण सरस्वती कहलाती थी (देखो लीलावती)।

सलीमचिश्ती शेख–(करामाती फ़कीर) शेखबहाउद्दीनके घर दिल्लीमें स० ई० १४७८ की साल जन्मे। बड़े होकर इबराहीम चिश्तीके मुरीद हुये और आगरेके समीप फतेपुरसीकरीमें आ रहे। इन्होंने २४ दफे मक्का मदीनाकी यात्रा की थी। केवल सीकरीके तालाबमें पैदा हुये सिंघाड़ोंकी रोटी खाते थे। और हिंदोस्तानके मुख्य पहुंचे हुये साधुओंमें इनकी गिनती थी। मुगल सम्राट अकबर इनको बहुत मानता था। शहिजादा सलीम (जहांगीर) इन्हींकी आशिषसे पैदा

हुआ था। अकबरने सीकरीमें इनकी मढीके स्थानपर ५ लाख रुपये के खर्चसे एक मसजिद बनवादी थी जो अबतक मौजूद है। उक्त मसजिदके बननेसे कुछही महीने बाद स० ई० १५७२ की साल शैखजी परलोक गामी हुये। इनका एक बेटा बंगालमें मारागया, दूसरा इनकी गद्दी पर सीकरीमें बैठा और इनके पोते इसलामखाँको मुग़ल सम्राट जहांगीर (सलीम) ने बंगालका सूबेदार बनादिया।

सलीमशाहिज़ादा–देखो जहांगीर।

सहजो बाई (भाषाकवि)–यह प्रसिद्ध महात्मा चरणदासजीकी शिष्या कविता करनेमें निपुण थी। जातिकी ढूंसर थीं और इसके पिताका नाम हरिप्रसाद था। दिल्लीके परीक्षत पुरेमें रहती थी। निम्नस्थ ग्रन्थ इसके रचे हुये हैं:–

सहजो बाईके शब्द (योग), सोलह तिथिनिर्णय और सहज प्रकाश बहु-अंग (वि० सं० १८००)।

सहदेव पांडव–चन्द्रबंशीराजा पांडुके कनिष्ठ पुत्र, रानी माद्रीके उदर से थे। ज्योतिष तथा वैद्यक खूब पढे थे। "व्याधिसिंधुविमर्दन" नामक वैद्यक ग्रन्थ इनका रचा हुआ लुप्त होगया है। इनकी स्त्रीका नाम विजया था जिससे सुहोत्र नामक एक पुत्र था। इनका विशेष वृत्तांत युधिष्ठिरके सम्बंधमें हो चुका है।

साउदी (रावर्ट साउदी–Robert Southey इस अंग्रेजी कविके बाप ब्रस्टल नगर (इङ्गलैंड) में बजाज थे और वेस्टमिनिस्टर स्कूल तथा आक्सफोर्ड कालिजमें इसने विद्या पढी थी। १०० से अधिक पुस्तकें पद्य, इतिहास तथा जीवन चरित्रोंकी इसने रची थीं। स० ई० १८१३ में इङ्गलैंडके कविराजका पद इसको प्राप्त हुआ और ३०० पौंड वार्षिक वेतन नियत हुआ। स० ई० १७७४ में जन्म, स० ई० १८४३ में मृत्यु।

सांगाराना (हिन्दूपति महाराना संग्राम सिंह चित्तौड़ नरेश)–वि० सं० १५६६ में निज पिता राना रायमलके बाद मेवाड़ राज्यके अधिकारको प्राप्त हुये। दिल्ली, मालवा तथा गुजरातके मुसल्मान बादशाह इनके राज्यको

चारों तरफ़से घेरे हुये थे परंतु यह निर्भय होकर राज्य करते थे और जिधर जाते उधर विजयही पाते थे । १८ दफे इन्होंने दिल्ली तथा मालवाके बादशाहोंको परास्त किया था । मारवाड़, अम्बर, ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, काल्पी, चंदेरी, बूंदी, रामपुरा और आबूके राजे आधीन होकर इनको राजस्व देते थे । यह एक दफे लड़ाईमें मालवाके बादशाह महमूद खिलजीको पकड़ लाये और ६ महीनेतक चित्तौड़के किलेमें कैद रखकर उसको छोड़ा था । दिल्लीके मुग़ल सम्राट बाबरपर १ लाख सवार लेकर रानाजी चढ गये थे और उसके अमीर सर्दारोंपर अपनी ऐसी धाक बिठादी थी कि बाबर स्वयं अपने जीवन चरित्रकी पुस्तकमें लिखता है कि " मारे डरके कोई सर्दार साङ्गारानासे लड़नेकी बाततक मुंहसे नहीं निकालता था " । स० ई० १५२७ की साल अन्तिम युद्धमें जो राणा और बाबरमें हुआ । राणा के कई नमकहराम सर्दार बाबरसे मिल गये जिससे रानाकी हार हुई । दूसरेही वर्ष रानाने फिर दलबल सहित बाबरसे लड़नेको कुच किया लेकिन रास्तेहीमें परलोक गमन किया । बाबर बादशाह अनुमान करते हैं कि १० करोड़ रुपये वार्षिक आयका मुल्क राणा साङ्गाजीके अधिकारमें था । राणा साङ्गाजी बड़े तेजस्वी वीर नरेश थे उनके समयमें मेवाड़ राज्यको बड़ी रौनक हुई थी । उनके पुत्र राना रतनसेन उत्तराधिकारी हुये ।

सादी (फार्सीकवि)—इनका पूरानाम शैख़ मुसले हुद्दीन सादी था । मुल्क ईरानके शहर शीराजके रहने वाले थ । इनके बाप अब्दुल्ला निर्धनी थे । निदान इनको बहुत दिनोंतक ऊंट हांकनेका पेशा करना पड़ा था । ४० वर्षकी उम्रमें इन्होंने पढ़ना लिखना शुरू किया । शहर अलैपोके किसी सौदागरकी बेटीसे इनका विवाह हुआ था कई दफे मक्के मदीनेको पैदल गये थे, दूर २ देशोंमें भ्रमण किया था, और हिंदुस्थानकी सैरकोभी आये थे । इन्होंने फारसीमें कई पुस्तकें रची थीं जिनमेंसे गुलिस्ताँ, बोस्ताँ, तथा करीमा जगतप्रसिद्ध हैं । इनके बचनमें अद्भुत शक्ति पाई जाती है । स० ई० १२९५ में १२० वर्ष के होकर मरे ।

सान्दीपन गुरु (कृष्ण बलरामके विद्यागुरु)—यह पंडितजी अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता होकर शस्त्रविद्या तथा रणकार्योंमें भी दक्ष थे उज्जैनके रहनेवाले थे और वहीं एक पाठशालामें पढाते थे । कृष्ण बलरामने ब्रजसे उज्जैन

जाकर इनसे विद्या पढ़ी थी। उज्जैनमें अबतक इनकी पाठशाला बनी है और उसमें कृष्ण बलराम तथा सुदामा आदि विद्यार्थियोंकी मूर्तियें रक्खी हैं।

सायणाचार्य (वेदभाष्यकार)–इनक रचे २९ संस्कृत ग्रंथ हैं। इन्होंने तथा इनके भाई माधवाचार्यने मिलाकर ऋग्वेद भाष्य रचा था (देखो माधवाचार्य)। डाक्टर बुल्हर (Doctor Bulher) साहेबके मतानुसार सायणाचार्य स० ई० १३३१ से १३८३ तक संन्यासी होकर विद्यारण्य स्वामीके नामसे रहे थे। यज्ञतंत्र, सुधानिधि तथा पञ्चदशी इन्होंके रचे ग्रंथ हैं।

सालारजंग (नबाब सर सालारजंग बहादुर, जी.सी.यस.आई) यह हैदराबादके निज़ाम नज़ीरुद्दौलाके समयमें स० ई० १८५३ की साल बज़ीरके पदपर नियत हुये और रियासत हैदराबादको बिगड़नेसे रोकलिया क्योंकि निज़ाम नज़ीरुद्दौलाका राज्य प्रबंध ख़राब था। उन दिनों रियासतपर बहुत ऋण होगया था, सालारजङ्गके सुप्रबन्धसे ऋण थोड़ेही दिनोंमें चुका दिया गया, और रियासतकी आमदनी बहुत कुछ बढी। सन् ५७ के ग़दरके समय निजाम अफ्ज़लुद्दौला हैदराबादकी गद्दी पर राज्य करते थे लेकिन यह सालारजंगहीके सुप्रबन्धका कारण था कि दक्षिणमें गदर अधिकतासे नहीं फैलने पाया गदरके बाद सालरजंगने हैदराबाद राज्यमें अनेक कुंये तथा तालाव खुदवाये, सड़कें निकलवाई, न्यायालय स्थापन किये, पुलिसविभागके प्रबन्धमें सुधार किया और जेलखाना, स्कूल इत्यादिके लिये इमारतें बनवाई। निज़ामअफजलुद्दौलाके बाद मीर महिबूब अलीखाँ गद्दीपर बैठे जिनकी बाल्यावस्थामें बृटिश गवर्नमेन्टने कौन्सिल आफ़ रिजेन्सी नियत की और सालारजंगको उसका प्रधान मुकर्रर किया बृटिश गवर्नमेन्टने आपको सर तथा जी. सी. यस. आई. के खिताब दिये थे। आपकी बारादरी हैदराबादमें देखने लायक़ बनी है और आपके मकानका अहाता साढ़े ग्यारह फ़ीट ऊंचा हिंदोस्तान भरमें अद्वितीय है।

सालिगरामरायबहादुर (राधास्वामीसम्प्रदायके प्रचारक)–रायबहादुरसिंह कायस्थके घर आगरा मु. पीपल मंडीमें १४ मार्च स. ई. १८२९ को जन्मे बाल्यावस्थामें **हिन्दी,** फारसी तथा अंग्रेजीकी शिक्षा पाई। पश्चात् गवर्नमेन्टके डाँकविभागमें **नौकरी** की और बढ़ते २ पश्चिमोत्तर व अवध देशके

डाकखानोंके इन्स्पेक्टरजेनरलके पदको प्राप्त हुये । स. ई. १८८७ में पेन्शनली और ६ दिसंबर स. १८९८ को परलोकगामी हुये । आपने राधास्वामी लाला शिवदयाल सिंहकी चलाई हुई राधास्वामी संप्रदायका प्रचार बहुत कुछ किया (देखो राधास्वामी)। स. ई. १८७८ में राधास्वामी मतके माननेवाले केवल ३००० थे परंतु रायसालिगरामके उद्योगके प्रभावसे स. ई. १८९१ की मनुष्य गणनाके समय इस मतके अनुगामी १७६४३ निकले। आप बड़े अनुभवशील पुरुष थे, राधास्वामी मतके बड़े २ ग्रंथ आपने बनाकर छपवाये थे। आगरा तथा प्रयागमें इस मतकी सभायें नियत हुई हैं। काशीके पं० ब्रह्म शंकर मिश्र एम. ए. आपके प्रधान शिष्य आजकल वर्तमान हैं।

साहू (मरहठाराजा)—इनका असलीनाम शिवाजी द्वितीय था लेकिन मुगलसम्राट औरंगजेब साहूनामसे इनको पुकारते थे। जगत प्रसिद्ध मरहठा वीर महाराज शिवाजी इनके दादा थे और सम्भाजी इनके बाप । स० ई० १६८९ में औरंगजेबने सम्भाजीको पकड़वाकर मरवाडाला और साहूको कैदकर लिया। साहूका विवाह एक अमीर मरहठाकी बेटीसे करवा दियागया और कैदमें उनके साथ अच्छा वर्ताव किया जाता था। औरंगजेबके बाद बहादुर शाहने दिल्लीके तख्तपर बैठकर स. ई. १७०८ में साहूको कैदसे छोड दिया और तख्त दिल्लीके आधीन रहकर महाराष्ट्र देशके शासनका हुक्म दिया। मरहठोंने इतने दिनों बाद अपने राजाको पाकर बड़ी खुशी मनाई, लेकिन बहुकालतक ऐशआरामके साथ कैदमें रहनेके कारण साहूकी वीरता तथा परिश्रम करनेकी बान जो मरहठोंके स्वाभाविक गुण हैं जाते रहे थे। साहूने अपने पूर्वजोंकी गद्दीपर सतारामें बैठकर जिला औरंगाबादके परगना सिवारीके पटेलसे अनबन करली। पटेल सेम्याजीराव इस झगड़ेमें मारा गया और उसकी विधवाने अपने बच्चोंको साहूके पैरोंपर डालकर क्षमा मांगी। साहूने उसके बड़े पुत्र रानोजीके पालन पोषणका वचन दिया और थोड़ेही दिनों बाद उसको भोंसलाकी पदवी देकर आकलकोटका राज्य जागीरमें दिया। आकलकोटमें रानोजीके वंशज अबतक राज्य करते हैं। साहू आराम तलब तो होइ गये थे। निदान उनसे राज्य प्रबन्ध ठीक २ न होसका। प्रजा थोड़ेही दिनोंमें उकता उठी और यदि साहू राजकाज अपने ब्राह्मण मंत्री बालाजी विश्वनाथको सौंपकर स० ई० १७१२ में

अलहिदा न हो जाते तो शीघ्रही बड़े २ उपद्रव खड़े होकर मरहठा राज्यको नष्ट भ्रष्टकर देते। राजा साहूसे राज्यकाजका पूरा अधिकार पाकर पेशवाने पूनामें अपनी राजधानी स्थापन की और ऐसी उत्तमतासे काम चलाया कि पेशवाका पद उनके वंशमें पुश्तैनी होकर ७ पीढ़ी तक रहा। साहू तथा उनके उत्तराधिकारी सतारामें रहकर केवल नाममात्रके राजा थे, शासन वास्तवमें पूनामें रहकर पेशवा करता था क्योंकि युद्ध विग्रह इत्यादि सबही राजकाज उसके हुकमसे होते थे। स० ई० १७४८ में राजा साहूका देवलोक ६५ सालकी उम्रमें हुआ।

सिकन्दर आज़म—देखो अलेग्जेंडर दी ग्रेट।

सिकन्दर प्रथम सम्राट् रूस (Alexader I Emperor of Russia) निजपिता महाराज पालके वध होनेपर स० ई० १८०१ में रूसके तख्तपर बैठे। यह बड़े प्रजापालक थे। २ हजारसे अधिक स्कूल और २०४ अखाड़े इनके समयमें मुल्क रूसमें प्रजागणके हितार्थ जारी हुये थे। दासत्वका चर्चा इन्होंने मिटाया था। स० ई० १७७७ में जन्में, स० ई० १८२५ में मरे।

सिराजुद्दौला (अन्तिमनवाबबंगाला)—निजदादा अलीबर्दीखाँके बाद स. ई. १७५६ में गद्दीपर बैठा। बड़ा अन्याई तथा क्रोधी था, दोही महीनेमें अंग्रेजोंसे बिगाड़ कर बैठा और तुच्छ बातोंपर क्रुद्ध होकर कलकत्तेमें अंग्रेजोंकी कोठी जा घेरी और १४६ अंग्रेजोंको पकड़कर कालकोठरीमें ठूंस दिया, जिनमेंसे दूसरे दिन केवल २३ मनुष्य जीते बचे। यह ख़बर जब अंग्रेज़ी अफ़सर क्लायबसाहबके कानमें पहुंची तो उन्होंने कुछ फौज लेकर मद्रासले कूंच किया और पहुंचते ही कलकत्तेपर अधिकार कर लिया। नबाबने सुलह करली और जो कुछ कम्पनीका नुकसान हुआ था वह भी पूरा करदिया। स. इ. १७५७ में जब युरूपमें अंग्रेजों और फरासीसोंमें युद्ध ठना तो क्लायबने मौका पाकर चन्दन नगर फरासीसोंसे छीन लिया। इस कार्रवाईसे सिराजुद्दौलाके राजप्रबन्धमें हलचल हुई, एवं वह फरासीसोंका तरफदार होगया। क्लायबने यह देख सिराजुद्दौलापर चढाई की और स. ई. १७५७ में पलासीके मैदानमें उसको परास्त करके भगादिया और मीरजाफिरको अपनी तरफसे नबाब बनाया। कुछही दिनोंबाद मीरजाफिरके बेटेने सिराजुद्दौलाको पकड़वाकर २० वर्षकी उम्रमें मरवाडाला।

सिलादित्यप्रताप शील—यह विक्रमादित्य हर्ष महाराजा उज्जैनका बेटा निज पिताके बाद प्रायः स० ई० ५५० में गद्दीपर बैठा । स. ई. ५८० के लगभग सिलादित्यके परलोक गमन करनेपर उसका बेटा प्रभाकर वर्धन गद्दीपर बैठा । सिलादित्यप्र० को शत्रुओंने राजरहित कर दिया था लेकिन कश्मीर नरेश प्रवरसेन २ ने मदद देकर फिर उनको राज्य दिलवाया । और महाराज विक्रमादित्यको निज पूर्वजोंका दिया हुआ ३२ पुतलियोंका सिंहासन कश्मीरको लेगया ।

सिलादित्य हर्षवर्द्धन (बौद्ध महाराजा)—देखो श्रीहर्ष वर्द्धन ।

सीतामहारानी (जानकीजी)—मिथिलादेश (तिरहुत) के राजा जनककी कन्या महासुन्दरी तथा गुणवती त्रेतायुगके अन्तमें हुई । महाराज रामचंद्रने स्वयम्वरमें शंकर धनुषको तोड़ सीताजीके साथ विवाह किया । सीताजीकी उम्र विवाहके समय ७ वर्षकी थी और महाराज उस वक्त १५ वर्षके थे । बिहार प्रदेशान्तर्गत जनकपुरमें शंकर धनुषका आधा हिस्सा अबतक देखनेमें आता है, दूसरा आधा हिस्सा सीतामढ़ी स्टेशनसे ३ कोस दूरपर है । सुसरालमें आकर जानकी माईने अपने शुभ आचरणों द्वारा सास, ससुर, इत्यादि कुटुम्बियोंको अत्यन्त प्रसन्न किया । पतिमें उनका प्रेम अगाधि था । २७ वीं वर्ष जब महाराज रामचन्द्रको वनवास दिया गया तो सीता महारानी उनके साथही गईं । जानुकीजीका यह मूलमंत्र परम प्रशंसनीय है—

चौ०—जहँ लगनाथ नेह अरुनाते । पियबिनु तियहि तरणिते ताते ॥ तनुधन धाम धरणि पुरराजू । पतिबिहीन सब शोक समाजू । वनवासके १३ वें वर्ष महाराज रामचन्द्र बम्बई प्रदेशान्तर्गतनासिक शहरसे थोड़ी दूर गोदावरीतट पंचवटी वनमें जो अत्यन्त रम्य है कुटी बनाकर जारहे । यहींसे मा०शु०८ को अवसर पाकर रावण लङ्केश सीताजीको हरलेगया । रामजीने रावणको ससैन्य तथा सपरिवार नष्ट करके सीताजीको १० दिन १४ मास लंकामें रहनेके उपरांत पुनः पाया । तदुपरांत रामजी सीता महारानी सहित अयोध्याके राजसिंहासन पर विराजे, इसी साल सीता माताको गर्भ रहा जिसके लव तथा कुश दो पुत्र हुये । पश्चात् महाराज रामचन्द्रने अश्वमेध यज्ञ किया और इसी अवसरपर सीता माताने देह त्यागदी । साधारण दृष्टिसे देखनेपर सीताजीकी जीवनीसे दो उपदेश मिलते हैं,एक तो यह कि

स्त्रीका अत्यंत प्रेम करनेसे पुरुषको अनेक कष्ट सहन करने पडते हैं, दूसरा यह कि पति तथा अन्य सच्चेहितैषियोंकी आज्ञा उल्लंघन करनेसे स्त्रीको घोर आपत्तिमें पड़ना होता है। यदि महाराज रामचन्द्र प्रेमसे विवश हो सीताजीको अपने साथ वनको न लेजाते और यदि सीता महारानी देवरकी आज्ञा उल्लंघन कर आश्रमसे बाहर रावणको भिक्षा देने न निकलती तो रावण उनको क्यों कर हर ले जाता।

सीताराम बी.ए. (भाषाकवि)—अयोध्या नगरीमें स०ई० १८५८ की साल लाला सुखदेव प्रसाद श्रीवास्तव कायस्थके घर आपका जन्म हुआ। आप अंग्रेजीमें बी.ए. पास हैं, संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता हैं और भाषाकविता अच्छी करते हैं कालिदास, भवभूति आदिके रचे हुए बीसियों काव्यों तथा नाटकोंका अनुवाद आपने भाषा पद्यमें किया है।

कविता आपकी उत्तम है और भाषा शैली पुराने ढंगकी नहीं है। खड़ीबोलीकी कविताका प्रचार करने वाले कवियोंमें आप प्रधान हैं। बहुत दिनों तक युक्त प्रान्तमें शिक्षा विभागके असिस्टन्ट इन्सपेक्टर रहनेके बाद गवर्नमेन्टने आपको डेपुटी कलेक्टरीके ओहदेपर नियत किया है। जिस पर स० ई० १९०३ तक विद्यमान हैं। वर्ताव आपका ऐसा है कि जिससे आधीन कर्मचारियोंकी आप पर पूज्य बुद्धि है।

सुकरात (Socretes)—इस यूनानी हकीमका बाप मूर्ति बनानेका पेशा करता था। सुकरातने २ ब्रह्मज्ञानी विद्वानोंसे विद्या पढी और फिर कुछ दिनोंतक फोजमें नौकरी करके कई लड़ाइयोंमें वीरता दिखाई। एक दफे प्रसिद्ध इतिहासकार जैनोफन घायल पड़ा था। सुकरात उसको उठाकर लडते भिड़ते रणभूमिसे बाहर निकाल लाये। यह युद्धके समय फौजमें लड़ते थे और युद्ध शान्ति होनेपर पढा लिखा करते थे। बड़े कुरूप थे और इनकी पत्नी जैन्टिप बड़ी कर्कशा थी। पर यह उससे कुछ भी नहीं कहते थे। पश्चात् निज जन्म भूमि ऐथेन्समें बसकर सुकरात लड़कोंको पढाते थे। इनके पढ़ानेका तरीका यह था कि प्रश्नोत्तर करते हुए पाठकके मुंहसे प्रत्येक बातको सिद्ध करा लेते थे। इनका वचन था कि विवेक मनुष्यको बुरेकामोंसे रोकता है इस लिये विवेकसे चलना चाहिये। आवागमनको

मानते थे, किसीको दुःख नहीं देते थे। और सबके सहायक रहते थे। साफ कहने वाले थे और इसी कारण इनके बहुत शत्रु हो गये थे। अनेक शत्रुओंने मिलकर सुकरातको यूनानी लड़कोंको बिगाड़ने तथा मूर्तियोंकी निन्दा करने और नयामत चलानेका दोष लगाया। राजाने प्रथम इनको १ महीनेके लिये कैद किया और पश्चात् विष दिलाकर मरवा डाला। इनके ७ बच्चे थे। यूनानी हकीमोंमें यह बड़ा गिना जाता है। अफ़लातून तथा ज़ैनोफन इनके शिष्योंने स्वरचित ग्रन्थोंमें इनके अनेक उपदेश संग्रह किये हैं। सुकरातके मरनेके पीछे यूनानी लोग बड़े पछताये और सुकरातके शत्रु बड़े दुःखसे मरे। जन्म ४६९ वर्ष पूर्व स. ई. हुआ और मृत्यु ३९९ वर्ष पूर्व स. ई. हुई।

सुखदेवमिश्र (भाषाकवि)—यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण कम्पिल ज़िला एटाके रहनेवाले थे और बादशाह औरंगज़ेबके दर्बारमें आते जाते थे एक दिन बादशाहके दर्बारमें बहुतसे कवीश्वर बैठे हुये थे और नगरमें किसीके घर उत्सवमें बाजे बज रहे थे। बादशाहने कवीश्वरोंसे दरियाफ्त किया कि नौबतमेंसे क्या शब्द निकलता है ? और कवियोंने तो अपना अपना मनमाना बताया परंतु सुखदेवजीने यह दोहा पढ उत्तर दिया—

दो॰—द्वार दमामे नाबजत, कहत पुकार पुकार।
हरि बिसराये पशुभये, पड़त चामपर मार॥

यह दोहा सुन बादशाहने सुखदेवजीको इनाम दिया और कविराजकी पदवी दी। पश्चात् सुखदेवजी दिल्लीके बड़े रईसों अमीरोंसे मिलकर प्रतिष्ठाके भागी हुये। दिल्लीसे लौटकर कम्पिलमें आये और वहाँसे अमेठीके राजा हिम्मत बहादुरके दर्बारमें जाकर आदर पाया "फाज़िल अलीप्रकाश" नामक ग्रंथ इन्होंने और गज़ेबके मंत्री फाजिल अलीके नामसे बनाया था। निम्नस्थ ग्रंथ और भी इन्हींके बनाये हुयेहैं:—वृत्तविचार पिङ्गल, छंद विचार पिङ्गल और अध्यात्म प्रकाश। वृद्धावस्थामें सुखदेवजी घरबार छोड़ गंगातट रहतेथे, इसी समयका बनाया यह पद है—

पद—इननाती पोतनको हितकर मैं देश विदेश फिराहौं करोड़ा।
बांध्यो रह्यो ममताकी वरारिन ज्यौं बली बैल रहे और घोड़ा।

छोड़के दीनदयालुकी आश अजान सोहै मैं फिरो रंगोड़ा ।
एकदिना यह छांड़ि है मोहि यही जियजान अभी मैं छोड़ा ।

वि. सं. १७२८ में विद्यमान थे ।

एक दूसरे सुखदेवमिश्र दौलतपुर ज़ि० रायबरेलीके रहनेवाले वि० स० १८०३ में विद्यामान थे, जिनका बनाया "रसार्णव" नामक ग्रंथ भाषा साहित्यमें अच्छा है । असोयर ज़ि० फतेपुरके राजा भगवन्त राय खीचीके दरबारमें इनका आदर होता था ।

सुखदेवजी (व्यासजीके पुत्र)—बाल्यावस्थाहीमें यह वनको चले गये थे । पश्चात नारद मुनिके उपदेशसे घरको लौट आये और व्यासजीसे शिक्षा पाई । राजा परीक्षितको सप्ताह इन्होंने सुनाया था । बादको इनका विवाह हुआ जिससे ४ पुत्र और १ पुत्री हुई । अन्तमें संसारसे बन्धनमुक्त होकर शुकदेवजी कैलास पर्वत पर तप करने चले गये ।

सुषेणवैद्य—यह रावण लङ्केशके राजवैद्य थे । रावण सरीखे विद्वान पण्डित तथा कला कौशलादिमें निपुण राजाके यहां राज्य वैद्यका पद पाना किसी साधारण पुरुषका काम नहीं था । लक्ष्मणजीके जब शक्ति वाण लगा था तो सुषेण वैद्यहीने सञ्जीवनी बूटीके प्रयोगसे उनको आराम किया था । "आयुर्वेद महोदधि" नामक ग्रन्थ सुषेणका कहा हुआ है । उक्त ग्रन्थमें पदार्थोंके गुण-दोषोंका अच्छा वर्णन है ।

सुन्दरकवि—यह ग्राम असनी ज़िला फतेपुरके रहनेवाले भाट वि० सं० १९३० में विद्यमान थे । "रसप्रबोध" नामक ग्रन्थ इनका बनाया अच्छा है । एक सुन्दरकवि मेवाड़ देशके रहनेवाले दादू बेहनाके शिष्य प्रायः वि० सं० १७६१ में विद्यमान थे जिनके रचे सुन्दरगीता, सुन्दर विलास, हरिबोलाचिन्तामणि तथा सुन्दर सांख्य नामक ग्रन्थ हैं ।

सुन्दर महा कविराय—यह ग्वालियरके रहनेवाले नागर ब्राह्मण थे । मुगल सम्राट शाहजहाँने इनको महाकविरायकी पदवी दी थी । "सुन्दर श्रृङ्गार" नामक ग्रन्थ इनका बनाया भाषा साहित्यमें अच्छा है । सिंहासन बत्तीसीका

भाषानुवाद तथा ज्ञान समुद्र नामक ग्रन्थभी इन्हींके रचे हुये हैं। वि० सं० १६८८ में विद्यमान थे।

सुदामा पांडे (श्रीकृष्णजीके सहपाठी)—यह अत्यन्त रंक पर बड़े सुशील, कुलीन, सन्तोषी और महात्यागी ब्राह्मण थे। सान्दीपनि गुरुकी पाठशालामें, जो उज्जैनमें थी, इन्होंने श्रीकृष्णजीके साथ २ शिक्षा पाई थी। पश्चात् चटसार स्थापन करके बहुत दिनोंतक लड़के पढ़ाये थे, इनकी बनाई बाराखड़ी प्रसिद्ध है। इनकी स्त्री पतिव्रता थी। दरिद्रसे महादुःख पाय स्त्रीने एक दिन ठेलठालकर इनको श्रीकृष्णजीके पास द्वारिका भेजा। द्वारिका पहुंच महाराजसे इनकी भेंट हुई, महाराज अपने बालपनके मित्रकी दीनदशा देख रोनेलगे—

क०—कैसे बेहाल बिवायन सों भये कण्टक जाल गढ़े पगधोये।
हाय महादुख पायो सखा तुम आये इतनै कित दिन खोये।
देख सुदामाकी दीनदशा करुणा करके करुणानिधि रोये।
पानी परातको हाथ छुओ नहिं नैननके जलसे पग धोये।

पश्चात् महाराजने बड़े आदर सत्कारसे इनको अपने पास रक्खा और गुप्त रीतिसे विश्वकर्मा आदि निज सेवकोंको आज्ञा दी कि सुदामाके लिये जाकर विशाल भवन तैयार करो और अष्ट सिद्धि नव निधिसे उसको भरदो। महाराजकी आज्ञा तुरन्त पालन की गई। कई दिन पीछे जब सुदामा अपने घरको चलने लगे तो महाराजके नेत्रोंमें आंसू उमँड़ आये और मुंहसे कुछ बात न निकली। रास्ते २ सुदामा अपने मनमें सोचते आते थे कि महाराजने हमको कुछ दिया नहीं। ग्राममें पहुँच अपनी टूटी मंड़ैया तथा दीन ब्राह्मणीको भी न पाया, तब तो बहुत दुःखी हो इधर उधर पूंछने लगे। सुनते ही सुदामाकी ब्राह्मणी दौड़ी आई और निजस्वामीके चरणोंमें लिपट गई तथा आदर पूर्वक उनको भीतर ले गई। सुदामा अति विभव देख महा उदास हुये और कहने लगे कि प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, संसारको इसने ठगा है सो प्रभुन बे मांगे मुझे दी। सुदामाजी गुजरात देशमें सागर तट पोरबंदर (सुदामा पुरी) के रहने वाले थे जहांपर एक छोटेसे मन्दिरमें इनकी और इनकी स्त्रीकी मूर्ति अबतक विराजमान है।

सुद्धोदन (सूर्यवंशी नरेश)—बौद्ध मतके आचार्य गौतम बुद्ध इनके पुत्र थे। कपिल वस्तूमें इनकी राजधानी थी। इनसे पीछे केवल छः पीढ़ी तक और सूर्य्य वंशका राज्य चला। शि. पु. के लेखानुसार यह रामचन्द्र महाराजसे ४८ पीढी पीछे हुये और भागवतके लेखानुसार ५२ पीढ़ी पीछे।

सुधाकर दुबे, पं० महामहोपाध्याय—आपके पूर्वज सर्जूपारी ब्राह्मण ब्रह्मपुर ज़िला गोरखपुरसे बनारसमें आबसे थे। पं. सुधाकरजी संस्कृतके अपूर्व विद्वान होकर बड़े बुद्धिमान तथा गणित शास्त्र पारङ्गत थे। स० ई० १८८३ में संस्कृतकालिज बनारसमें पुस्तकाध्यक्षके पदपर नियत हुये थे। क्वीन्सकालिज बनारसमें गणित तथा ज्योतिष शास्त्रके प्रोफ़ेसर होकर एम. ए. के छात्रोंको उक्त शास्त्रोंकी शिक्षा देते ही स. ई. १८८७ में महामहोपाध्यायकी उपाधि अपार विद्याके पुरस्कारमें बृटिश गवर्नमेंटने आपको प्रदान की थी। आप हिंदी तथा संस्कृतमें अनेक पुस्तकोंके रचयिता थे और अंग्रेज़ी, फार्सी इत्यादि अन्य देशीय भाषाओंके भी अच्छे ज्ञाता थे। पुराने धजके लोग थे और बनारस की घनीवस्तीमें रहना पसन्द न कर बरुना नदीपार एक गाममें रहते थे। काशी नरेशकी सभामें आपका सत्कार होता था। मिलने वालोंके चित्तमें आपकी तरफसे पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती थी।

पं० सुखानन्दजी मिश्र—मिश्रजी मुरादाबादके रहनेवाले कात्यायन गोत्रिय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आपके सहोदर ज्येष्ठ भ्राता भगवद्भक्ति परायण पं० हरदयालुजी मिश्र संसारसे कुछ विरक्तसे रहते थे, इसी कारण आपने अपना विवाह करनेसे साफ इन्कार कर दिया था। आपने आजीवन लाला रामचरणजी अग्रवालके बागमें एकाग्र चित्तसे भगवद् भजन करते करते ३० वर्षकी अवस्थामें मोक्ष प्राप्त की।

पं० सुखानन्दजी मिश्रजीके कनिष्ठ भ्राता संगीत शास्त्रमें निपुण कविवर पं० झब्बीलालजी मिश्र थे। सत्यदृढता और स्वधर्ममें आपका प्रगाढ अनुराग था आपने श्रृंगार और भक्ति विषयक कितने ही संगीत निर्माण किये हैं। संस्कृत—फ़ारसी—उर्दू—अंग्रेजी आदिके आप पूर्ण पंडित थे। आपने संवत् १९०८ से स० १९१२ तक निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं। संगीत परीरू और गुलरू शाहजादा,

संगीत अधरजोगन, संगीत राजा परीक्षित, संगीत सनौवरपरी और गुलरू शाहजादा, संगीत सब्जपरी और माहरू शाहजादा, संगीत हीरापरी और लाल शाहजादा, संगीत कृष्णका अर्थात् प्रेम सरिता आदि। इनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत्के दशम स्कन्धका भी आपने दोहे चौपाइयोंमें बड़ाही ललित और सुन्दर भाषानुवाद किया है। दशम स्कन्धके अतिरिक्त आपके यह सब ही ग्रंथ "श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम्–प्रेस बम्बई में" मिलते हैं। आपके बनाये पदों और अभिनयका कीर्तन बराबर आजतक मुरादाबाद तथा दूसर नगरोंमें होता है। आपका बनाया अवलोकनार्थ एक पद—

हे वड़ दाड़िम ढाक तुन पीपल पाकर वीर।
देहु बताय गये कहां सुन्दर श्याम शरीर॥
पर उपकारी हो तुम जगमें पर हित ठाड़े रहते हो।
घाम शीत वर्षा अनेक दुख अपने तन पर सहते हो॥
हे कदम्ब हे अम्ब तुम्हें सौगन्ध हमारी।
सांची कहो कहीं तुमहूं देखे जात मुरारी॥
हे तुलसी माता सुख दाता तुम हो हरिकी प्यारी।
दीजे हमें बताय गये कित सुन्दर श्याम विहारी॥
बृन्दावनमें श्यामको नहीं बतावत कोय।
सुनो आपदामें सखी सब कोइ टेढ़ो होय॥ आदि आदि

दुख है ऐसे होनहार युवक पं० झब्बीलालजी मिश्रका सत्ताईस वर्षकी अवस्था में ही विषूचिका रोगसे शरीरान्त होगया।

पं सुखानन्द मिश्रके पिताका नाम आयुर्वेदोद्धारक शिवोपासक वैद्यराज पं० शिवदयालुजी मिश्र था। पं० सुखानन्दजी मिश्रकी भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रके चरणों में परम भक्ति थी, श्रीमद्भागवत आपको प्रायः कण्ठस्थ थी। आप हिन्दी साहित्यके बड़े प्रेमी और प्रचारक थे। पं. सुखानन्दजी मिश्रने अपनी विद्या बुद्धिके प्रभावसे महाराजा काश्मीर नरेशसे बहुत सत्कार पाया था, एवं रामपुरके महाराज भी आपका बड़ा सम्मान करते थे। आप सनातनधर्मके कट्टर पक्षपाती और हितेच्छु थे। जगत् सुखदानी श्रीगंगा महारानीमें आपका बड़ा अटल बिश्वास और अगाध श्रद्धा भक्ति थी।

आप स्वास्थ खराब होनेपर भी सदैवके नियमानुसार अपने परिवार सहित गंगा स्नान करने गढमुक्तेश्वर कार्तिकी मेलेमें गये, वहां लगभग एक सप्ताह रह गंगाजलका सेवनकर हरिभजन करते रहे। आप कार्तिक शु० पूर्णिमाकी रात्रिको अपने इष्ट मित्र तथा बन्धुबान्धवोंसे प्रेम पूर्वक मिल तथा अपने भावी यशस्वी-प्रतापी और होनहार सुपुत्रोंको आशीर्वाद दे राधाकृष्ण-राधाकृष्ण उच्चारणकर लगभग ६५ वर्षकी अवस्थामें इस नश्वर शरीरको त्याग सदैवके लिये ब्रह्ममे लीन होगये।

पं. सुखानन्दजी मिश्रकी सब मिलाकर तेरह यशस्वी सन्तानोंने जन्म ग्रहण किया, जिनमें चार पुत्र और दो कन्याओंको छोड़ शेष सबही अपनी अल्पायुमें अपनी अपनी प्रवर बुद्धिका चमत्कार और क्षणिक लीला दिखा इस संसार सागरसे सदैवके लिये बिदा होगये।

पं० सुखानन्दजी मिश्रजीके सबसे बड़े पुत्र पं. जुगलकिशोरजी मिश्र थे। अधिक प्रेमके कारण आपके पिता आपको 'बुलबुल' भी कहा करते थे।

पं. जुगलकिशोरजी मिश्रको गायत्री सिद्धि थी। एक बार आप गायत्री देवीका जप कर रहे थे, अकस्मात् उसी समय आकाश मेघाछन्न होगया। मूसलधार वर्षा होने लगी, पर आप स्थाणुकी समान अचल बैठे जप करते ही रहे। किन्तु गायत्रीदेवीके प्रभावसे जब तक पूर्ण जप समाप्त न हुआ तबतक आपके शरीरपर एक बूंद भी पानीकी न पड़ी। इस विषयमें आपके कितनेही विस्मयकारक चमत्कार और भी अनेकों देखे तथा सुने गये हैं।

पं. जुगलकिशोरजी मिश्र लगभग तीस वर्षकी अवस्थामें संवत् १९४२ कार्तिक कृष्ण अष्टमी (अघोई आठे) को अपनी इष्ट देवी सावित्री (गायत्री) का नाम उच्चारण करते हुये स्वर्गीय हुये।

"श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई" से प्रकाशित होनेवाली हमेशाबहार नामक पुस्तकमें अधिकांश आपके बनाये पदों तथा राग रागनियोंका बड़ाही सुन्दर संग्रह है। आपके हस्तलिखित ग्रन्थ भी यथा समय शीघ्रही प्रकाशित होंगे।

पं. सुखानन्द मिश्रके ज्येष्ठ सुपुत्र-श्रीभारत धर्म महामण्डलके महामहोपदेशक यजुर्वेद भाष्यकार-विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र, तथा मध्यम पुत्र-अनेक

ग्रंथोंके अनुवादक-संशोधक और संपादक एवं हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखक पं. बलदेवप्रसादजी मिश्र और कनिष्ठ पुत्र-अनेक ग्रन्थोंके टीकाकार व रचयिता तथा हिन्दी साहित्यके अपूर्व सुप्रसिद्ध सुलेखक पं. कन्हैयालालजी मिश्र थे । इन तीनोंही सहोदर भ्राता मिश्र बन्धुओंकी साहित्य-समाज और धर्मसेवा विश्व विदित है ।

पं. सुखानन्दजी मिश्रकी सुपुत्री और (विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकी सहोदर भगिनी) श्रीमती सुभद्रादेवी और श्रीमती रामदेवीने भी साहित्य सेवाकर जो स्त्री समाजका उपकार किया है वह वस्तुतः सराहनीय और प्रशंसनीय है दोनों हो देवियोंके स्त्री उपयोगी रचित स्त्रीप्रबोधिनी नारीरत्नमाला, सास बहूका वर्ताव आदि अनेकों ग्रंथ "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बईमें" प्रकाशित हुये हैं आप दोनोंहीको बंगाल आदि भाषाओंका भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त था । महारानी छतरपुर आदि रानियां आपका बड़ा सन्मान और आदर करती थीं ।

सुबन्धु (वासवदत्ताके रचयिता)—यह बौद्ध पंडित उज्जैन नरेश सिलादित्य प्रतापशीलके दर्बारमें स० ई० की छठी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें विद्यमान था ब्राह्मणके घर इसका जन्म हुआ था, काश्मीरमें इसने शिक्षा पाई थी पं० मनोरथ इसका गुरु था और पं० अनङ्ग इसका भाई था । शिलादित्यके दरबारमें वैदिक मतानुगामी पंडितोंने इसको परास्त किया । पश्चात् यह मगध देशको चलागया और नालन्दके देश विद्यालयमें अध्यापक होगया । अन्तमें नेपालमें जाकर परलोकगामी हुआ ।

सुवंशशुक्ल (भाषाकवि)—विगहपुर जि. उन्नावके रहनेवाले ब्राह्मण थे अमेठी नरेश उमरावसिंह बन्धलगोत्रीके दर्बारमें रहकर इन्होंने अमरकोष रसतरङ्गिणी तथा रसमञ्जरीका अनुवाद भाषापद्यमें किया था और बादको ओइलके राजा सुव्वासिंहके दर्बारमें जाय "विद्वन्मोदतरङ्गिणी" के रचनेमें उनकी सहायता की थी । वि० सं० १८३४ में विद्यमान थे ।

सुब्बासिंह—देखो श्रीधर कवि.

सुभद्रा—यह वसुदेवजीकी बेटी होकर श्रीकृष्णजीकी बहिन थी और अर्जुनको विवाही थी । अभिमन्यु इनके उदरसे जन्मे थे जिनके पुत्र परीक्षित हुये ।

सुमन्त्र–यह महाराज दशरथके ८ मंत्रियोंमेंसे मुख्य थे। दशरथजीके बाद रामचंद्र महाराजके समयमें भी मंत्रीका पद इन्होंने बहुत दिनोंतक भोगा था। वाल्मीकीय रामायणके लेखानुसार यह बड़े व्यवहार दक्ष, विद्या विनय सम्पन्न, अनुचित कार्य करनेमें लज्जावान, नीतिमें निपुण, अकरणीय काम करनेसे दूर, लक्ष्मीवान, महाबुद्धि, अति पराक्रमी, कीर्तिकारी, राजकाजमें सावधान, आज्ञाकारी, तेजस्वी, यशस्वी, क्षमाधारी और क्रोध, काम, अर्थके लिये भी झूंठ नहीं बोलनेवाले थे। इनको सब बातें विदित थीं. बुद्धिबलसे प्रदेशमें टिके हुये लोगोंके मनकी बात भी जानते थे, अपना पराया नहीं समझते थे, विश्वसनीय दूतोंके द्वारा खूब निर्णय करके कार्य करते थे सुहृदयतामें परीक्षित, अनुचित कार्यपर पुत्रको भी दण्ड देनेवाले, खजाना इकट्ठा करनेमें निपुण, सेनाको वश करनेमें चतुर, शत्रुको भी निरपराध दण्ड नहीं देनेवाले और सलाहसे रहने वाले थे। वीर शत्रुओंके दमन करनेमें उत्साहयुक्त, पवित्र चित्त, प्रजारक्षक, सदाचारी, मनमाना काम नहीं करनेवाले तथा अपनेसे अधिक बुद्धिमानोंसे सलाह लेनेवाले थे। सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाले, सुंदर वेष बनाये रहनेवाले, मिलाप तथा बिगाड़ करनेमें चतुर, सत्त्व रज तम तीनों गुण समय २ पर धारण करनेवाले, राजकाजकी सम्मति को गुप्त रखनेवाले, सूक्ष्म विचारमें तत्पर और सदा सबसे प्रियवचन मन्द मुसकी सहित बोलनेवाले थे।

सुमन्त्र (सूर्य्यवंशके अन्तिम नरेश)–यह गौतम बुद्धके पिता राजा शुद्धोदनसे छःपीढ़ी पीछे हुये। मंत्री इनको राजरहित करके गद्दीपर बैठा।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (जगद्विख्यात वक्ता)–कलकत्तेके प्रसिद्ध डाक्टर बाबू दुर्गाचरन बन्ध्योपाध्यायके घर स० ई० १८४९ में आपका जन्म हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालयकी बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् सिविल सर्विसकी परीक्षा पास करने आप इङ्गलैंडको पधारे। उक्त परीक्षा पास करके बड़ी कोशिशसे आपको सिलहटकी ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेटी मिली। क्योंकि आपकी उम्र ज्यादह होगई थी। इस पदपर आप बहुत दिनोंतक नहीं रहे क्योंकि अफसरोंसे आप सरीखे स्वतंत्र पुरुषकी नहीं पटसकी। एवं ५० रुपये मासिककी पेन्शन पर आप नौकरीके बन्धनसे मुक्त होगये। पश्चात् आपने "बङ्गाली" नामक समाचार पत्र अंग्रेजीमें जारी किया जो अब दैनिक प्रकाशित होता है।

उन्हीं दिनों भ्रमवश एक मिथ्या आन्दोलन हाईकोर्टके जजोंके खिलाफ़ आपके पत्रमें छपा जिसके अपराधमें हाईकोर्टने आपको कैद कर दिया। जितने दिनों देशहितैषी सुरेन्द्रबाबू जेलमें रहे बंगालियोंने शोकसूचक काले वस्त्र पहिने और चन्दा करके प्रसिद्ध बैरिस्टर बाबू लालमोहन घोषको अपील करने इङ्गलैंड भेजा। स्वदेशभक्त बाबूके कैदसे छूटनेपर चार घोड़ोंकी गाड़ीमें बिठाकर लाखों बंगाली जय ध्वनिके साथ फूल बरसाते हुये उनको मकानपर लाये। तबही से सुरेन्द्र बाबूने कृतकृत्य होकर स्वदेशहितका बीड़ा उठाया। आपमें व्याख्यान देनेकी अद्भुत शक्ति है। आप विना तय्यार हुये ऐन वक्तपर सूचना पाकर बड़े २ गम्भीर व्याख्यान, प्रभावशाली पुरुषोंके समक्ष देनेको सहज स्वभावसे उठ खड़े होते हैं। व्याख्यान सुनकर विवशहो विरोधियोंको भी आपका अनुयायी बनना पड़ता है। आप हिन्दोस्थानी कांग्रेसके महा सहायकों तथा मुखियाओंमेंसे हैं। दो दफे कांग्रेसके प्रेसीडेंट भी होचुके हैं और कई दफे कांग्रेसकी तरफसे इङ्गलैंड जाकर भारतवासियोंकी दीन दशापर व्याख्यान देकर वहांके बड़े २ लोगोंको रुलाचुके हैं। आप गवर्नमेंटकी व्यवस्थापक सभाके आनरेबिल मेंबर हैं। रिपनकालिज कलकत्ताके खोलनेमें भी आपने बहुत कुछ उद्योग किया था, सफल जीवन ऐसे महानुभावोंका !

सुरेंद्रमोहन ठाकुर (राजा, सरसुरेंद्रमोहन ठाकुर)—आप हरिकुमार ठाकुरके पुत्र हैं, महाराजा जतेंद्रमोहन ठाकुर आपके ज्येष्ठ भ्राता हैं। राजा सुरेंद्रमोहनने संगीत विद्याके उद्धारके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया है। कितनेही ग्रन्थ उक्त विषयमें रचे हैं और दो म्युजिक स्कूल (गान) विद्यालय अपने खर्चसे सर्व साधारणके हितार्थ स्थापन किये हैं। कई बाजे भी आपने नये बनाये हैं। संस्कृत, हिंदी, बंगला तथा अंग्रेजीके आप पूर्ण विद्वान हैं और भिन्न २ विषयोंपर प्राय: १०० पुस्तकोंके रचयिता हैं। मृदंग मंजरी, हारमोनियम सूत्र, भारतनाट्यरहस्य, मुक्तावली नाटक (बंगला) और मालविकाग्निमित्र नाटकका बंगानुवाद इत्यादि आपहीके विरचित हैं। निज पूर्वजोंके धर्म पर आरूढ रहकर आप बड़े, उदाराचित्त; दानी तथा देशहितैषी हैं। बृटिश गवर्नमेंटने आपकी कारर्वाइयों पर प्रसन्न होकर नाइट (Knight) सी. आई. ई. तथा राजा बहादुरकी असाधारण उपाधियें आपको प्रदान की हैं।

फिलेडेल्फियाके विश्वविद्यालयने आपको डाक्टर आफ् म्युजिककी उपाधि दी है जिसको बृटिश गवर्नमेन्टने भी स्वीकार किया है । नैपाल दर्बारसे आपने सन्मानसहित सङ्गीत–शिल्प विद्यासागर तथा भारत सङ्गीत नैयायिकके खिताब प्राप्त किये हैं ।

सङ्गीत शास्त्रमें आज दिन आप सरीखा कोई दूसरा नहीं है और शिल्पशास्त्र-में भी पूर्ण विज्ञता आपको प्राप्त है । इसी कारण इटेली, आस्ट्रिया, सैक्सनी, वर्टे-म्वर्ग, वेल्जियम, डेन्मार्क, स्वीडेन, फ्रांस, मांटीनीगरो, हवाईनद्वीप, पुर्तगाल, हालैंड, ईरान, स्यामदीप, चीन तथा बोलीवियाके राजा महाराजाओंने भी आपको उपाधियें तथा पदक सन्मानार्थ प्रदान किये हैं । यूरुप, अमेरिका, अफरीका, आ-स्ट्रेलिया तथा एशियाकी अनेक बड़ी २ सभाओंके आप प्रधान अथवा सभासद भी हैं । बंगालके आठ जिलोंमें आपकी बड़ी भारी जिमींदारी है, पलासीकी रण-भूमि तथा हिन्दुओंका तीर्थ गंगासागर आपहीकी ज़मींदारीमें हैं । आप कलकत्ता आदि देश विद्यालयोंके भी सभासद हैं और कलकत्तेमें आनरेरी मैजिस्ट्रेट, मैजि-स्ट्रेट आफ् पुलिस तथा जस्टिस आफ् पीसके पद पाये हुये हैं । आप स. ई. १८४० में जन्मे, आपके ज्येष्ठ पुत्र कुंवर प्रमोदकुमार ठाकुर हैं ।

सुरेशचंद विस्वास लफ्टिनेन्ट–एक बंगाली कायस्थके घर स. ई. १८६१ की साल जिला नदियामें जन्मे । कुछ बडे होकर घरसे अप्रसन्न होकर निकल गये और ईसाई होकर वर्म्मा तथा मदरासमें आजीविकाकी तलाशमें घूमते फिरे । कुछ दिनों बाद एक जहाजपर नौकरी करके इंगलैंडको चले गये और वहां पहुंचकर कवाड़की दुकान की । इङ्गलैंडसे जर्मनीको गये और वहां सिंहालयमें नौकरी करली तथा एक जर्मन लेडीसे विवाह कर लिया । स. ई. १८८५ में जर्मनीसे मैक्सीको (अमेरिका) को पधारे और वहांसे ब्राजिलमें जाकर बादशाही फौजमें भरती होगये । स. ई. १८९३ में आपने थारीकी लडाईमें बड़ी वीरताके काम किये और लफ्टिनेन्टके पदपर तरक्की पाई । जब आप रंगून (वर्म्मा)में थे तो एक जलते मकानमेंसे एक लड़कीको निकाल आपने निज वीरताका परिचय दिया था ।

आपही एक ऐसे भारतवासी हैं जिन्होंने दूसरी विलायतकी फौजमें ऐसा उच्च पद पाकर यूरूप तथा अमेरिकावासियों पर हुकूमत की है ।
स. ई. १९०३ में विद्यमान हैं ।

सुरेश्वराचार्य–देखो मण्डन मिश्र ।

सुलेमान–(Solomon)–इसराईल जातिके पहिले बादशाह हज़रत दाऊद इनके बाप थे । निज पिताके बाद स. ई० से १०१५ वर्ष पूर्व तख्तपर बैठे । यह बड़े वीर तथा चतुर थे, इसराईल जातिकी उन्नति इनके समयमें बहुत कुछ हुई । इनकी बनाई कहावतें तथा गीत प्रसिद्ध हैं । देव तथा परी इनके वशमें थीं । राजधानी इनकी जुरूसलममें थी । शहर बैतुल मुकद्दस इन्हींके समयमें बसाया गया । (स. ई. से १०३३ वर्ष पाहिले जन्मे, स. ई. से ९७५ वर्ष पहले मरे) ।

सुश्रुत (आयुर्वेदीय सुश्रुत संहिताके रचयिता)–धन्वन्तरि प्रणीत आयुर्वेदके आश्रय पर इन्होंने अपने नामकी संहिता रची जो सर्व क्रियाओंकी यथोचित प्रकाशिका सर्वमान्य और प्रामाणिक है । चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट ऋषियोंकी बनाई संहितायें बृहत्त्रयी कहलाती हैं और वैद्यक ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन हैं । इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि चरक संहिताके पीछे सुश्रुत संहिता बनी । सुश्रुत संहिताके प्रथम टीकाकार जैय्यट उपाध्याय वि० सं० की १२ वीं शताब्दीमें हुये । बाबू रमेशचंद्र दत्त सी. यस. ने स्वरचित प्राचीन भारतके इतिहासमें निर्णय किया है कि सुश्रुत स. ई. की छठा शताब्दीमें हुये ।

सूत–(उग्रश्रवासूत)–व्यासशिष्य लोमहर्षण इनके बाप थे । इन्होंने व्यासकृत पुराण संहितामें अपने प्रश्नोत्तर मिलाकर १८ पुराण पृथक् २ रचे (देखो व्यास महर्षि) । यह नैमिषारण्यमें रहकर पुराणोंकी कथा बांचा करते थे । एक दफे बलरामजी नैमिषारण्यमें गये, सब ऋषि उनको देख उठ खड़े हुये लेकिन सूतजी नहीं उठे । निदान बलरामजीने क्रोधमें आकर उनको वहीं वध किया (स्कंद. पु. सेतुबंधखण्ड १९ अध्याय) । पद्मपु० सृष्टिखण्ड० १ अध्यायमें लिखा है कि जब उग्रश्रवासूत निज पिता लोमहर्षणकी आज्ञानुसार नैमिषारण्यमें ऋषियोंके धर्म विषयक संशय मिटाने गये तो ऋषियोंने उनसे पुराणकी कथा पूछी । सूत यह सुन प्रसन्न हुये और कहने लगे कि " सूतका यही धर्म है कि देवता, ऋषि

और तेजस्वी राजाओंकी उत्पत्ति, यश, वंश आदिका वर्णन करे और उन लोगों-की प्रशंसा करता रहे तथा इतिहास पुराण बांचे क्योंकि वेद पढ़ने पढ़ानेका सूतको अधिकार नहीं है"। मनुस्मृति १० वें अध्यायमें लिखा है कि क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो वह सूत जातिका होता है। नैमिषा-रण्यमें एक मन्दिरमें बड़े सिंहासनपर सूतजीकी गद्दी अबतक है।

सूद्रक (मृच्छकटिकनाटकका कर्ता)—यह किसी देशका राजा था। वि. सं. की पहिली शताब्दीमें हुआ।

सूरदास (भाषाकवि)—बदायूनी इतिहासकार लिखता है कि सूरदास-के बाप बाबा रामदास लखनऊसे आकर गऊ घाटपर, जो आगरेसे ९ कोस मथु-राकी सड़कपर है, बसे थे। हिन्दी, संस्कृत, फारसी तथा सङ्गीतशास्त्र सूरदा-सने अपने बापसे पढ़े थे। सूरदासके छः और भाई थे जो आगरेकी लड़ाईमें मारे गये थे। भक्तमालके लेखानुसार यह सूरध्वज अथवा सारस्वत ब्राह्मण थे, परन्तु इनके रचे दृष्टकूट पदोंकी प्रस्तावनासे ज्ञात होता है कि यह कवि चन्द-बर्दाईके वंशमें होकर भाट थे। सूरदासजी जन्मांध थे भाषा कविता उत्तम करते थे और सङ्गीत शास्त्रके मर्मोंको खूब समझते थे। बादशाह अकबरने उनकी भरती अपने दर्बारके नवरत्नोंमें की थी। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेनसे इनकी मैत्री थी (देखो तानसेन) बहुत दिनोंतक शाही दर्बारमें रहनेके पीछे सूरदास ब्रजको चले आये और महाप्रभू वल्लभाचार्यके शिष्य हो विष्णुपद बना २ कर गाते हुये विच-रने लगे। पदोंका गूढ आशय समझ लोग इनके पीछे फिर २ कर लिखने लगे और इसतरह सवालक्ष पदोंका सूरसागर नामक ग्रन्थ बन गया। कविराज गंगने सूरसागरके विषयमें लिखा है कि—

चौ०—पदन प्रबन्ध सूरजननागर। बांध्योजनहुसेतु भवसागर।
बिनु प्रयास कलिकाल मंजारा। तेहि प्रसाद उतरत सब पारा॥

गो० विट्ठलनाथजीने सूरदासकी गणना ब्रजके अष्टछापमें की था (देखो विट्ठ-लनाथ) यद्यपि सूरजी चक्षुहीन थे लेकिन उनके ज्ञानचक्षु खुले हुये थे। एक दफे दर्बार अकबरीमें बैठे हुये सूरजी अपनी आदतके विरुद्ध हँस पड़े। बादशाहने हँसने-का कारण पूंछा। उत्तरमें सूरजीने कहा कि इसवक्त भातका मटका उतारते हुए

जगन्नाथजीके रसोइयेकी धोती खुलगई जिससे थोड़ी देरके लिये वह अकथनीय कठिनाईमें पड़गया यह देख मुझे हँसी आगई। यह सुन बादशाहने हुक्म दिया कि पुरी (उड़ीसा) के पर्चेनवीससे दर्याफ्त किया जाय कि जगन्नाथजीके मन्दिरमें इसवक्त क्या हुआ। पर्चेनवीसने ठीक सूरदासजीकी कही हुई रसोइयेकी दुर्घटना लिखी। सूरदास कभी हँसते न थे और जब कभी हँसते थे तो उसमें कुछ रहस्य होता था इसीलिये हुक्म था कि उनके हँसनेकी खबर बादशाह अकबरको तुरन्त की जाया करे। कहते हैं कि एक दिन बादशाह अकबरने अपनी किसी दासीके चाबुक मारा, दासी शिर झुकाय, हाथजोड़, चुप खड़ी होरही, सूरदासजी ठीक उसीवक्त अपने मकानपर बैठे हुये खिल खिलाकर हस पड़े। पर्चेनवीस द्वारा जब यह खबर बादशाह अकबरको हुई तो आग्रह पूर्वक हँसनेका कारण सूरदाससे पूंछा गया। सूरजीने कहा कि एकदफे श्रीकृष्णचन्द्रने रसव्रादमें अपनी किसीदासीके फूल मारा था, जिससे उसने ७ दिनतक मान किया था, आज उसी दासीके आपने चाबुक मारा परन्तु वह कुछ भी मान न करसकी, यह देख मुझको हँसी आई। अकबरने कहा यह बात कैसे सच्ची जान पड़े। सूरजीने उत्तर दिया कि अपनी सब दासियोंको क्रमशः मेरे सामने होकर निकालिये, जो दासी सामने आती थी सूरजी उसको सुनाकर कहते थे कि "सुनरी सखी हेरत शाहजहां" और तो सब सुनती हुई चली गईं लेकिन जब चाबुकसे मारी हुई दासी निकली तो उसने रोकर कहा कि "उद्धव तुम तो यहां गोपाल कहाँ" यह सुनते ही सूरदासको मूर्च्छा आगई और वह दासी पछाड़खाकर गिरी और मरगई। सूरदासके बनाये पद ज्ञान तथा भक्तिसे भरपूर हैं। स. ई. १४८३ में जन्मे और स. ई. १५६३ में गोकुल (मथुरा) में परमधामको सिधारे। रीवाँनरेश महाराजा रघुराजजू सिंहदेव इनकी कविताके विषयमें लिखते हैं—

क०-कविकुलकोक कञ्जपाइके किरिनकाव्य, विकसे विनोदित ह्वैनेरे और दूरके।
सूखिगो अज्ञान पंक मंद भो मयंक मोह, विषय विकार अन्धकार मिटेकूरके॥
हरिकी विमुखताई रजनी पराई गई, मूकभये कुकवि उलूक रसझूकके।
छायो तेज पुहुमिमें रघुराज रूरहरि, जन जीव मूरसूर उदय होत सूरके॥१॥

सूरदास मदन मोहन (मदन मोहन सूर)—यह सण्डीलेके रहनेवाले कायस्थ बहिरायचमें बादशाह अकबरकी तरफसे पदाधिकारी थे। इन्होंने एक

दफे मालगुजारीका ३१३००० रु० साधु सेवामें लगा दिया और आप भयके मारे भाग गये और बादशाह अकबरके पास यह पद लिखकर भेज दिया—

पद—तीनलाख तेरह हजार सब साधुन मिलगटके।
सूरदास मदन मोहन आधीरातमें सटके॥

अकबरने ढुंढवाकर इनको ब्रजवास करनेके लिये भेजदिया। यह अन्धे नहीं थे, भाषा कविता अच्छी करते थे, जिन पदोंमें सूरदास मदन मोहनकी छाप है वह इन्हींके बनाये हुये हैं।

सूर (विल्वमङ्गलसूर)—यह दक्षिण देशस्थ ब्राह्मण, महाप्रभु वल्लभाचार्यके दीक्षा गुरु थे। यह बड़े पंडित थे। "कृष्णकर्णामृतं" तथा "गोविन्द माधव" आदि संस्कृत ग्रन्थ इनके रचे हुये हैं। भक्तमालमें लिखा है कि चिन्तामणि वेश्यापर आसक्त थे। एक दिन अर्द्धरात्रिके समय गोस्वामी तुलसीदासकीसी दुर्घटनायें झेलकर नदीपार उससे मिलनेको गये। लेकिन उससे तिरस्कृत हो वैरागी बन वृन्दावन चले आये। रास्तेमें पुनः किसी सुन्दरीको देख मोहित हुये और सब उपाधियोंका कारण समझ सुइयें चुभोकर फोड़लिया। बहुत दिनों वृन्दावनमें रहनेके उपरांत इनका देहांत हुआ।

सूर्य्य (सूर्यवंशीनरेशोंके मूल पुरुष)—यह कश्यपजीके पुत्र तथ मरीचिके पौत्र थे। इनके पुत्र वैवस्वत मनुने राज्यस्थापन किया और इनके पौत्र इक्ष्वाकुने शहर अयोध्याको बसाकर अपनी राजधानी बनाया। महाराज रामचन्द्र इनकी ३८ वीं पीढीमें हुये। सम्भवतः सूर्य्य सिद्धांत नामक ज्योतिष ग्रंथ जिसके रचयिताका कुछ पता नहीं लगता इन्हींका बनाया हुआ हो। [illegible]कीय रामायणमें लेख है कि रामचन्द्रके विवाहके समय राजपुरोहित महर्षिव[illegible]ने निम्नस्थ क्रमसे दशरथजीका गोत्रोच्चारण किया था:—

ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, सूर्य्य, वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, बाण, अनरण्य, पृथु त्रिशंकु, धुन्धुमार, युवनाश्व, मान्धाता, सुसन्धि, ध्रुवसन्धि, भरत, असित, सगर, असमंजस, अंशुमान, दिलीप, भागीरथ, ककुत्स्थ, रघु, कल्माषपाद, शंखरा, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग,मरु, प्रशश्रुक, अम्बरीष, नहुष, ययाति,नाभाग, अज, दशरथ, और रामचंद्र।

भागवत तथा शि. पु. में दिया हुआ वंशक्रम उपरोक्त वंश क्रमसे अनेक अंशोंमें विरुद्ध है, लेकिन सूर्यवंशके विषयमें वाल्मीकीय रामायणके लेख अधिक विश्वसनीय हैं। शि. पु. के लेखानुसार महाराज रामचंद्रके बाद ५४ राजाओंने और भागवतके लेखानुसार ५८ राजाओंने राज्य किया। सुमन्त सूर्य्य वंशका अन्तिम राजा हुआ।

सेनापति (भाषाकवि) इन्होंने संन्यास धारण करके सब उम्र वृन्दावनमें बिताई। काव्यकल्पद्रुम तथा षट ऋतुवर्णन इनके रचे ग्रन्थ अत्युत्तम हैं। वि. सं. १६८० में विद्यमान थे।

सेनभक्त-यह जातिके नाई थे, गुरुरामानन्दके शिष्य थे, रीवाँनरेशके यहाँ नापितकर्म करते थे। जब राजाको इनका महत्व विदित हुआ तो वह इनका शिष्य होगया। इनका एक पन्थ प्रचलित है और इनकी कविता सिक्खोंके ग्रन्थ साहबमें संगृहीत है।

सेवाजी (मरहटा राज्यके संस्थापक)-इनके बाप शाहजी भोंसले महाराना चित्तौड़के वंशमें थे। और बीजापुरके नवाबके यहां किसी ऊंचे पदपर नौकर थे। स. ई. १६२७ में जीजीबाईके गर्भसे सिवाजीका जन्म हुआ था। इनके जन्मसे ३ वर्ष पीछे शाहजीने तुकाबाई नामक मराष्टिनसे विवाह किया और जीजीबाई तथा सिवाजीको पूनाकी जागीरपर भेज दिया और दादाजी करण देव नामक एक कार्य्यदक्ष तथा स्वामीभक्त वृद्ध ब्राह्मणको उनकी रखवाली तथा जागीरके प्रबन्धके लिये साथ कर दिया। दादाजीने पूनामें पहुंच एक महल बनवाया और सिवाजीको युद्ध विद्याकी शिक्षा दी। मावल पर्वतवासियोंपर जो बड़े उद्योगी, कामकाजी, साहसी, परिश्रमी तथा लडाक होतेथे, सिवाजीका अत्यन्त विश्वास और स्नेह था।

मावलियोंके लड़कोंके साथ शिकार करते हुये दूर २ घूमकर सिवाजी पहाड़ियों तथा झाड़ियोंकी राहघाटसे खूब परिचित होगये थे। धीरे २ सिवाजीके साथियोंका जमाव बढता गया। जिनकी एक छोटीसी पलटन बनाकर स. ई. १६४६ में मोंर प्रदेशस्थ तोरनका किला जो एक अगम्य विकट पहाड़पर था उन्होंने जीत लिया

और इसी किलेकी मरम्मत करवाते वक्त बहुतसा गड़ा हुआ धन भी पाया। स. ई. १६४७ में दादाजीने मरते समय निम्नस्थ उपदेश सिवाजीको किये:–

शैय्यापरसे उठकर जगदीश्वरका स्मरण किया करना, सुख दुःखमें एक साथ रहना, क्रोध और मोहमें आकर पक्षपात न करना, एक पक्षकी बात सुनकर न्याय न करना, सत्यको कभी न छोड़ना, अपने विभवपर अभिमान न करना, विचार करते समय हठ न करना, खुशामदियोंकी बातोंमें न आना, भोजन तथा वस्त्रमें आडम्बर न करना, यथार्थ वादी पंडितोंको खातिर करना, नशा न खाना, परस्त्री गमन न करना, आहार तथा निद्राको यथाशक्ति घटाना, अपना काम दूसरोंपर न छोड़ना मातहितोंको एक दम नौकरीसे न छुड़ाना जहांतक होसके क्षमा करना, नौकरोंके रुतवेके भेदसे वर्ताव करना, आपत्तिके समय भी धर्म विरुद्ध आचरण न करना और न शिष्टाचारसे बाहर होना, और विचार पूरा होजानेसे पहिले गुप्त रखना।

स. ई. १६४८ में सिवाजीने रामगढका किला बनवाया और बीजापुर सरकारकी कई गाद्दियें छीनकर तथा २० लाख रु. लूटकर अपना अधिकार बढ़ाया। यह देख घुरपुरे नामक जागीरदारकी सहायतासे बीजापुरसरकारने शाहजीको कैद कर लिया। इस हालतमें शाहजीने निजपुत्र सिवाजीको लिखा कि "घुरपुरेने मेरे साथ विश्वासघात किया है, तुम्हारी सच्चीवीरता इसीमें है कि इस दुष्टसे तुम अपने पिताका बदला लो" जबतक शहाजी कैदमें रहे तब तक सिवाजी शान्तिसे रहे परंतु बादको उन्होंने फिर अपनी कार्रवाई शुरू कर दी। लाचार होकर बीजापुर सर्कारने सेनापति अफ्ज़लखाँको दमन करणार्थ भेजा। सिवाजीने मिठी २ बातें बनाकर अफ्ज़जलखांसे एकान्तमें मुलाकातकी ठहिराई जब सिवाजी निकट पहुँचे तो अफ्ज़लखांने उनकी गर्दनपर तलवार चलाई, परंतु वे कपडोंके भीतर फौलादी कवच पहिने हुये थे इस लिये कुछ असर न हुआ और बड़ी फुर्तीके साथ उन्होंने बघनखेसे अफ्ज़लकी आंतें खींचडालीं। दौड़ो २ मच-गई पर सिबाजीके चुने हुये सिपाही झाडियोंमेंसे निकल अफजलकी फौजपर टूट-पड़े और पलक मारतेमें उसको भगा दिया। पश्चात् सिवाजीने कोकन प्रदेशका अधिकांश तथा बीजापुर सरकारके अभेद्यदुर्ग वनैलागढको जीतकर अपने अपूर्व कौशल तथा असीमसाहसका परिचय दिया। बीजापुरके नवाब अली आदिल-

शाहने यह देख स्वयम् सिवाजीके दमन करनेके लिये चढ़ाई की। लड़ाई दो वर्ष-तक रही और अन्तिम लाभका भाग सिवाजीकी तरफ रहा, इन्हीं दिनों अवसर पाकर सिवाजी अपने पिताके शत्रु घुरपुरेपर चढधाये और उसको सपरिवार मारकर नष्ट कर दिया। शाहजी यह समाचार पाय निजपुत्रको देखनेके लिये उत्कंठित हो चल पड़े। पिताका आगमन सुन सिवाजी १२ मीलतक अगवानी लेने नङ्गे पैरों गये, पिताके देखते ही पृथ्वीपर साष्टांग दंडवत् करणार्थ लेट गये दोनों ओर प्रेमाश्रु बहने लगे, कंठ गद्गद् होगये, पिताने सपूतको गलेसे लगा लिया, पुत्रने बड़े आगत स्वागतसे पिताको लाकर गद्दीपर बिठलाया और आप उनकी जूती उठाकर खड़े रहे। कुछ दिनबाद अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक शाहजी अपने स्थानको गये। उस समय सिवाजीके पास १३० मील लम्बा, १०० मील-चौड़ा राज्य था और सेनामें ५० हजार पैदल तथा ७ हजार सवार थे। कुछ दिनबाद नवाब बीजापुरने अपने रणकुशल हवशी सेनापतिको सिवाजीके दमन करनेके लिये भेजा लेकिन सिवाजीकी चतुराईके आगे उसकी वीरता कुछ काम नहीं करसकी। इन्हीं दिनों औरंगजेब अपने बूढ़े बापको कैद करके तख्तपर बैठा। सिवाजीने देशकालके विचारसे दर्बार बीजापुरसे सुलह करली और मुग़-लोंके राज्यपर हाथफेंकना आरंभ किया। औरंगजेबने दक्षिणके सूबेदार सायश्ता-खांको मुकाबलेके लिये भेजा। सायश्ताखांने प्रबल दलके साथ पहुंचतेही पूना-पर दखलकर लिया और जिस महलमें सिवाजीकी बाल्यावस्था व्यतीत हुई थी उसमें रहने लगा। और बड़ी सावधानीके साथ महिल तथा नगरकी रक्षामें सेना नियत करके यह घोषणा प्रचार की कि आज्ञा विना कोई हथियारबन्द मरहटा नगरमें न आवे, सिवाजी एक दिन अंधेरी रातमें आधीरातके समय २५ सिपाहियों सहित एक बरातके साथ नगरमें घुसगये और मकानमें घुसकर सायश्ताखांके सब साथियोंका काम तमाम कर सिंहगढ़को लौट आये, केवल सायश्ताखां खिडकीकी राह भाग बचा। प्रातः होतेही मुग़लोंकी सेनाने सिंहगढ़-पर चढाई की, सिवाजीने किलेपरसे तोपके गोले बरसाये जिससे अधिकांश मुगलसैनिक मारे गये और बाकी भागकर बचे स० ई० १६६६ में औरंगजेबने धोकेसे सिवाजीको अपने दर्बारमें बुलाकर नजर बन्दकर लिया। परंतु वह बड़ी चालाकीसे एक टोकरेमें बैठकर निकलगये और साधूके वेषमें अपनी राजधानीमें

जा पहुंचे । स० ई० १६६६ में सिवाजीने शहर सूरतको लूटा और अतुल विभव लेकर रायगढको लौट आये । इसी साल शाहजीके देहांत होनेसे बंगलौर, अर्नी, तंज्योर, पोर्टोनोवो जागीरमें पाये । फिर सिवाजीने राजाका खिताब धारण किया, अपने नामका सिक्का ढलवाया, शिवशक जारी किया, सोनेकी तुला चढाया और रायगढमें नारायणका एक बड़ा भारी मंदिर बनवाया । स० ई० १६७५ में गुजरात तथा करनाटक विजय किये और स. ई. १६७९ में औरंगजेबके मुकाबलेमें नवाब बीजापुरको मदद देकर कृष्णा तथा तुंगभद्राके बीचका मुल्क जिसको रायचूर दोआबा कहते हैं पाया और दक्षिणमें मैसोरतक सब देश जीत-लिया । औरंगज़ेबको अफगानिस्तानके साथ विग्रहमें लगा देख कोंकन प्रदेश तथा दोनों घाटोंपर भी सिवाजीने अपना पूरा अधिकार जमालिया था । बीजा-पुर, गोलकंडा, खानदेश इत्यादिके सुलतानोंने परास्त होकर उनको चौथ देना स्वीकार किया था । औरंगजेबने भी बड़ी भारी जागीर तथा राजाका खिताब उनको दिया था । अंत समय तक उन्होंने मुगलोंके २७ और किले जीते कहते हैं कि—

दो०—औरंगा पछिताय मन, करतो जतन अनेक ।
सिवा लेइगो दुर्ग सब, कोजाने निश एक ॥

स० ई० १६८० में सिवाजी ज्वरसे पीड़ित होकर परम धामको सिधारे । शत्रुओंको भी यह समाचार पाय दुःख हुआ । औरंगजेबने स्वयं कहा कि " यथार्थमें सिवाजी बड़ा वीर था, उसने मेरे मुकाविलेमें एक स्वतंत्र राज्यस्था-पन करके अपनी टेके रक्खी, मेरी फौज निरन्तर १९ वर्षतक लड़कर उसका कुछ न करसकी । " सिवाजीकी विलक्षण राजनीति तथा अलौकिक वीरताने मुसल्मानोंके खूवही मान मर्दित किये थे । " मिल्यो रहै अरु नाँ मिलै, तासों कहा विसाय" की उक्तिके अनुसार सिवाजी नित्य प्रति अपना अधिकार बढ़ाते थे और औरंगजेब कुछ करसकनेवाला न होकर उलटी उनकी खातिर करता था । माता पिताके देहांत होनेपर सिवाजी बालकोंकी तरह अधीर होगये थे, प्रियपत्नी सईबाईके वियोगका भी दुःख उनको उठाना पड़ा था । कपूत सम्भाजीने भी उनको दुःखही दिया था परंतु वह बड़े वीर पुरुष थे । अंत समय तक अपना काम दृढ़ता पूर्वक करते रहे । उनकी सेनाका

प्रबन्ध प्रशंसनीय था, प्रजागणको उनके राज्यमें सुख चैन था, शेर बकरी एक घाट पानी पीते थे, धर्तीकी उपजमेंसे ३ भाग किसानको और दो भाग सर्कारको जाते थे, बड़े २ पदोंका अधिकारी ब्राह्मणोंहीको बनाया था, नवरात्रि-पर महिषमर्दिनी दुर्गाका पूजन बड़े समारोहसे करते थे और विजयादशमीके दिन फौजकी हाजरी लेते तथा जहां कहीं चढ़ाई करनी होती उसी दिन करते। भूषण कविने महाराज सिवाजीके वृत्तान्तमें शिवराजभूषण ग्रन्थ रचकर बहुत कुछ पाया था (देखो भूषण) । निम्नस्थ कवित्त शिवराज भूषणसे उद्धृत करते हैं:—

क०—दक्षिणजीत लियो दलके बल पश्चिमजीतके चामर राख्यो ।
रूपगुमान हर्‌यो गुजरातको सूरतको रस चूसके चाख्यो ।
पञ्जन पेल म्लेक्षमले भूषण सोई बच्यो जोदीन ह्वै भाष्यो ।
सौरङ्ग है शिवराजबली निज नौरङ्गमें रंग एक न राख्यो ।

महाराजा सताराके यहां अबतक सिवाजीके भवानी नामक खड्गकी नित्य प्रति पूजा होती है ।

सेल्युकस यह सिकन्दर आजमका सेनापति था । सिकन्दरके मरने पर बाबुलकी सूबेदारी इसको मिली थी । अपना राज्य सब तरहसे पुष्टकर लेनेके पीछे स्वाधीन होकर इसने यूनानियोंके ३४ शहर बसाये । ८२ वर्षकी उम्रमें स. ई. से २८० वर्ष पूर्व वध कियागया ।

सैमुअलजानसन (Samuel Johnson) इनके बाप लिचफील्ड (इङ्ग-लैण्ड) के रहनेवाले थे, पुस्तकें बेंचा करते थे । यह स. ई. १७२८ में आक्स-फोर्ड यूनीवर्सिटीमें पढ़ने लिये भरती हुये लेकिन निर्धनी होनेके कारण स. ई. १७३१ में विना डिगरी प्राप्त किये ही स्कूल छोड़ना पड़ा । पिताके देहान्त हो-जानेके पीछे ग्रन्थरचनाकी ओर इन्होंने ध्यान दिया जिससे प्रतिष्ठा और धनके भागी हुये । स. ई. १७५३ में इनका अंग्रेज़ी कोष छपा और स. ई. १७५९ में माताके देहान्त हो जानेके पीछे इनकी प्रसिद्ध पुस्तक "रैसलाज़" छपी । स. ई. १७६१ में इंगलैण्डके बादशाह जार्ज ३ ने ३०० पौण्ड वार्षिककी पेन्शन इन-को दी । स. ई. १७७३ में स्काटलैण्डके पश्चिमी द्वीपोंकी यात्रा इन्होंने की और स. ई. १७७५ में आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटीने यल. यल. डी. की उपाधि इनको

प्रदान की। स. ई. १७७९ में इन्होंने अङ्गरेजी कवीश्वरोंके जीवन चरित्रकी पुस्तक लिखना शुरू की लेकिन उसी साल बहुत दिन बीमार रहकर ७० वर्षकी उम्रमें शहर लन्दनमें परलोकगामी हुये और वेस्टमिनिस्टर ऐवीमें दफनाये गये।

सैयदअली विलग्रामी, नवाब इमादुल मुल्क–आपके पूर्वज विलग्राम जिला हरदोईके रहनेवाले थे। स. ई. १८६६ में प्रेजीडेन्सी कालिज कलकत्तेसे आपने बी. ए. तथा बी. एल. की परीक्षायें पास कीं। अंग्रेज़ी, फारसी, अरबी, तुरकी, लैटिन, ग्रीक, फरासीसी, संस्कृत इत्यादि १७ भाषाओंके आप विद्वान थे। फैजी-के बाद कोई दूसरा मुसल्मान आपके समान संस्कृतका ज्ञाता नहीं हुआ। हैदराबाद दक्षिणके नवाब निजामके प्रायवेट सेक्रेटरी आप बहुत दिनोंतक रहे। पश्चात् उक्त राज्यहीमें शिक्षा विभागके डैरेक्टर तथा अन्यान्य उच्च पदोंपर रहे। आपके पुस्तकालयमें ४२००० रु. की पुस्तकें हैं। आप दाढ़ी नहीं रखते थे और कपड़े पगड़ी इत्यादि बंगालियोंके से पहिनते थे। मिलनसार, सहनशील तथा परिश्रमी पुरुष थे। फरासीसी भाषासे अरबीमें आपने एक बहुत बड़ी पुस्त-कका अनुवाद करके उसका नाम "तमद्दुने अरब" रक्खा है। जियालोजीकेल सुसाइटी, रायलस्कूल आफ़ सायन्स लण्डन, रायल एशियाटिक सुसाइटी आफ़ ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्ड इन्स्टीटयशन आफ़ इञ्जिनियर्स, एशियाटिक सुसाइटी बंगाल व बम्बई, यूनीवर्सिटी कलकत्ता व बम्बई, और वायसरायकी व्यवस्थापक सभाके आप मेम्बर थे। "तमद्दुने अरब" में अरब लोगोंकी अनेक विद्याओं तथा रहन सहन, ढंग चाल इत्यादिका वर्णन है।

सय्यद अहमदखाँ–(आनरेबिल डाक्टर सर सैय्यद अहमदखाँ, के० सी० यस० आई०, यल० यल० डी०) इनके बाप मुहम्मद नकीखाँ दिल्लीके मुगल सम्राट बहादुरशाहके यहां वज़ीर थे। सैय्यद अहमदको प्रथम शिक्षा निजमातासे मिली थी। २० वर्षकी उम्रमें सैय्यद अहमद सर्कार अंग्रेजीकी चाकरीमें मुह-क्मा फौजदारीके सरिश्तेदार हुये और तीन वर्षके भीतरही कमिश्नरीके नायब सरिश्तेदार होकर आगरेको बदल आये। पश्चात् बढते २ डिपुटीकलेक्टर तथा सब जज हुये और दिल्ली, रोहतक तथा बिजनौरमें रहे और पेन्शन लेनेके बाद अलीगढमें बस रहे। स. ई. १८४७ में आपने प्रसिद्ध फार्सी पुस्तक "आसारूस्सनादीद" छपवाई जिसका अनुवाद फ्रेंच भाषामें भी हुआ, रायल

एशियाटिक सोसाइटीने इसी पुस्तक रचनेके उपलक्षमें आपको अपना मेम्बर नियत किया । सन् ५७ के गदरमें आपने बृटिश गवर्नमेण्टको सहायता दी जिसके बदलेमें उक्त गवर्नमेण्टने आपको तथा आपके ज्येष्ठ पुत्रको जिन्दगी भरके लिये २०० रु. मासिक की पेन्शन दी । स. ई. १८५८ में आपने गदरके वृत्तान्तमें एक पुस्तक रची जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद सर आकलैण्ड कालिवनने किया । पश्चात् "भारतके राज्यभक्त मुसल्मान" नामक पुस्तक आपने बनाई । इन दोनों पुस्तकोंसे बृटिश गवर्नमेंटका शक जो मुसल्मानोंकी तरफ़से था दूर होगया । स. ई. १८६९ में सैय्यद साहब इंगलैंडकी यात्राको गये और उसी अवसरपर एडिन्बरोविश्व विद्यालयने आपको यल० यल० डी० की उपाधि दी । आप दो दफे लेजिस लेटिवकौंसिलके मेम्बर भी रहे थे । स० ई.१८८२ में आप एजूकेशनल कमीशनके मेम्बर नियत किये गये जिसके अंतमें प्रसन्न होकर बृटिश गवर्नमेंटने आपको के. सी. यस. आई. की उपाधि दी । मुहमडन ऐङ्गलो ओरियन्टेल कालिज अलीगढ आपहीका स्थापन किया हुआ है । इस सूबेके लफ़टिनेन्ट गवर्नरोंने कितनी ही दफे बड़े बढ़िया शब्दोंमें आपकी प्रशंसा की थी । आपने मुसल्मानोंकी धर्म पुस्तक कुरानकी भी तफसीर (टीका) की थी जिसके कारण धर्मको विश्वास मूलक माननेवाले मुसल्मान लोग कृतघ्नी होकर आपके वैरी बन गये थे । स. ई. १८१७ में दिल्लीमें जन्मे, स. ई. १९०० में अलीगढ़में मरे ।

सैय्याजीराव ३ (महाराजा सरसैय्याजीराव गैकवाड़ सेनाखासखेल, शमशेरबहादुर, जी. सी. यस. आई. बरोडानरेश)– जब स. ई. १८७५ में महाराजा मल्हार–राव गैकवाड़ बरोड़ाकी गद्दीसे उतारे गये तो इनके स्वर्गवासी ज्येष्ठ भ्राता खांडेरावकी विधवा रानी जमना बाईने बृटिश गवर्नमेंटकी आज्ञासे गायकवाड़के कुटुम्बी काशीरावके पुत्र गोपालरावको खानदेशके एक ग्रामसे बुलाकर गोद लिया और सैय्याजीराव नामसे गद्दीपर बिठलाया । आपकी बाल्यावस्थामें राज्यके दीवान राजा सर टी. माधवरावने बड़ी योग्यतासे राज्य प्रबन्ध किया और बालक महाराजाकी शिक्षाका राजेश्वरी इन्तजाम किया । स. ई. १८८० में महारानी तञ्जोरकी भतीजीसे आपकी शादी हुई और एक ही वर्ष पीछे राज्यका पूरा अधिकार आपको मिल गया । स. ई. १८८५ में महारानीजीका १ पुत्री छोड़कर देहांत होगया निदान दूसरी शादी करनी पड़ी ।

स. ई. १८८७ में महाराजा साहब अस्वस्थ होनेके कारण इङ्गलैंड गये और राज॰ राजेश्वरी माता विक्टोरियासे मिलकर जी. सी. यस. आई. की उपाधि पाई। इसके सिवाय कई दफे और भी आप इंगलैड हो आये हैं। श्रीमान अंग्रेजीके अच्छे विद्वान हैं और राज्यके सुधारमें लवलीन रहते हैं। राज्यकी प्रजा आपके समयमें सुख चैनसे है, न्याय होता है शिक्षा विभागका प्रबंध अत्युत्तम हुआ है, पानीके नल, शफाखाने, कालिज और न्यायालय जावजा बनाये गये हैं। महाराज गैक-वाड़की सलामी तोपके २१ फैरोंकी है; राज्यका विस्तार ८५७० वर्ग मील है; वार्षिक आय १ करोड़ ५३ लाख रु. की है. फौजमें ३५६२ सवार, ४९८८ पैदल और ३८ तोपें हैं। आपके वक्तमें बरोडा राज्यकी पैमायश हुई है, प्रजापरसे अनेक दुखदाई कर उठाये गये हैं, जाबता दीवानी व फौजदारी रियासतके लिये रचा गया है, पुलिस तथा सेनाकी हालतमें अत्यन्त सुधार हुआ है, सहस्रों पाठशालायें जारी हुई हैं, शिल्प विद्याका एक कालिज बरोडा राजधानीमें खोला गया है, नीच वर्णके लोगोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध हुआ है, सङ्गीत तथा कृषी विद्याकी शिक्षाके लिये भी स्कूल जारी हुये हैं, पुत्री तथा स्त्री पाठशालायें भी स्थापन की गई हैं जिनमें पढने लिखनेके सिवाय सीना, पिरोना तथा भोजन बनाना भी सिखाया जाता है। राजधानी बरोडामें श्रीमानने २७ लाख रु० के खर्चसे लक्ष्मीविलास नामक एक उत्तम भवन बनवाया है। वासराय लार्ड डफरनका कथन है कि "सैय्याजीसे अधिक प्रजापालक नरेश कोई दूसरा नहीं होसकता है." राजधानी बरोडामें "नजरबाग महिल" देखने योग्य है, वहांपर महाराजा गैकवाड़की ३० लाख पौंड कीमतकी जवाहिरात रक्खी हुई है जिसमेंसे १ हारमें एक हीरा कोह-नूरसे भी बड़ा लगा है। हैदराबादके सिवाय अन्य सब राज्योंसे बरोडा राज्यकी आमदनी अधिक है। बृटिश गवर्नमेन्टके लिये कर नहीं देना पड़ता है। गवर्नर बम्बईके आधीन न होकर यह रियासत वायसराय हिंदके आधीन है।

सोमदेवभट्ट (कथा सरित्सागरके रचयिता)—यह काश्मीरके रहनेवाले ब्राह्मण थे। जब स. ई. ११२५ में कश्मीरकी रानी सूर्य्यवतीका पुत्र मर गया तो सोमदेवने शोकग्रसित रानीका चित्त बहलानेके लिये "कथा सरित् सागर" नामक ग्रन्थ १८ पर्व अथवा १२४ अध्यायमें रचा। इस ग्रंथमें प्राचीन कथानकोंका समूह संक्षेपसे वर्णित है।

सोलन (Solon) यूनानके सप्त चतुर पुरुषोंमें इनकी गणना है। यह अफलातून हकीमके नाना थे। इनके पूर्वजोंने किसी समयमें यूनानकी बादशाही की थी। देश विदेश इन्होंने बहुत भ्रमण किया था। एक दफे जब यह देशाटनसे स्वदेशको लौटे तो इन्होंने यूनानियोंको आपसके झगड़ेमें तत्पर पाया। निदान खूब सोच विचारकर इन्होंने उनके लिये एक धर्मशास्त्र बना दिया जिसपर चलनेसे परस्परके झगड़े मिट गये। यूनानमें अन्यायी राजाका राज्य था। इन्होंने उसको भी बहुत कुछ समझाया और कहा कि अधिक अन्याय करना बुरा है। यूनानियोंने प्रसन्न होकर धर्मशास्त्रीकी उपाधि सोलनको दी थी। स. ई. से ५५९ वर्ष पूर्व ७९ वर्षकी उम्रमें मरे।

संग्रामसिंहराना—इनका नाम साङ्गाराना प्रसिद्ध है सो देखो।

संयुक्तासती—देखो संयोगता—

संयोगता (रायपिथौराकी सतीरानी)—यह कन्नौजके महाराजा जयचंदकी बेटी अत्यन्त रूपवती तथा गुणवती थी। पृथ्वीराज और जयचंदमें बहुत दिनोंसे द्वेष चला आता था, जब पृथ्वीराजने अश्वमेध यज्ञ किया तो जयचंदने राजसूय यज्ञकी तय्यारी की। इस यज्ञमें भारतके सब राजे महाराजे आये लेकिन दिल्ली नरेश पृथ्वीराज और उनके बहिनोई चितौड़के राना समर्सी नहीं आये। जयचन्दने और राजाओंकी नज़रमें तुच्छकरनेके लिये उन दोनोंकी सुवर्ण मूर्तियें बनवाकर एकको ड्योढीपर और दूसरीको बर्तन मांजनेकी जगहपर खड़ाकरवा दिया। यज्ञके अन्तमें जयचन्दने राजकुमारी संयोगताका स्वयंवर रचदिया, जब संयोगता जयमाला लेकर निकली तो उसने चारों तरफ देख भालकर पृथ्वीराजकी सुवर्णकी मूर्तिमें माला डाल दी। जयचन्द यह देख खड्ग लेकर कन्याकी गरदन काटनेको उपस्थित होगया। पृथ्वीराज पहिलेहीसे चुनी हुई फौजके साथ कन्नौजमें आ छिपा था, खबर पातेही सभामें घुस पड़ा जयचन्दके हाथमेंसे खड्ग छीन लिया, किसीको उसका सामना करनेका ह्याव नहीं पड़ा और सबोंके देखते हुए वह अपनी प्राणवल्लभाको घोड़ेपर लादकर दिल्लीकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें ५ दिन बराबर जयचन्द और पृथ्वीराजकी फौजोंमें घोर युद्ध हुआ जिसमें दोनों तरफके बड़े२सुभट शूरवीर काम आये लेकिन दम्पति कुशलसे दिल्ली पहुंच गये। जबसे पृथ्वीराज संयोगता

सहित दिल्ली आया उसे राजकाजकी खबर न रही और अहर्निश रङ्ग महिलमें बिताने लगा। जयचन्द इस अपमानको बिलकुल नहीं सहसका था निदान सहायता देनेके वायदेपर उसने शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीको काबुलसे पृथ्वीराजपर चढाई करनेके लिये बुलाया। संयोगताको लाये एक वर्षही बीतने पाया था कि राजदूतोंने शहाबुद्दीनके ससैन चाढि आनेकी खबर दी यह सुन महारानी संयोगता बोली "प्रिये उठिये, क्षत्री धर्म निवाहिये, यदि प्राण प्यारे आप रणशाई हुये तौ मैं आपके साथ सती हो स्वर्ग पहुचूंगी" तुरन्त पृथ्वीराजने अपनी सेना सुधारन शुरू किया लेकिन अफसोस कि बड़े २ सेनापति कन्नौजके युद्धमें एक वर्ष पहिले ही काम आचुके थे। रणपर चढते समय क्षत्री कुलकी मर्यादानुसार पृथ्वीराज माता, भगिनी तथा रानियोंसे विदा होने गया। जब रानी संयोगताके महलमें पहुँचा तो दोनोंको बोलनेकी सामर्थ्य न रही, सेनाके डंके बजरहे थे अतएव राजा अपनी प्यारी रानीके हाथसे स्वर्णके कटोरेमें पानी पकिर तुरन्त चल दिया। रानी सती थी उसे व्याप गया कि डंकोंका शब्द पुकार पुकार कुछ और ही कह रहा है। पश्चात् प्रचीन प्रथाके अनुसार जब रानी सेना लेकर अपने पतिके पीछे रणभूमिको चलने लगी तो उसने ठंडी सांस भरकर कहा "योगनीपुर आज मैं तुमसे विदा होती हूं, अपने प्रियतमसे स्वर्गमें मिलूंगी अब उनका दर्शन यहां दुर्लभ है"। अन्तमें मुसल्मानोंकी विजय हुई, पृथ्वीराज रणशाई हुये। सुनतेही महारानी संयोगता सतीहोनेको तय्यार होगई, शहाबुद्दीनने सतीका यौवन, रूप, अवस्था तथा साहस देख बहुत समझाया पर सतीने ऐसे जवाब दिये कि शाहबुद्दीनकी आंखें खुलगईं। अन्तमें पृथ्वीराजका शिर उसको दे दिया गया और वह जलकर राख होगई। पृथ्वीराजके रणभूमिको जानेके समयसे सती होनेके वक्त तक महारानी संयोगता उतना ही जल पीकर रही थी जो महाराज पृथ्वीराज जल्दीमें चलते वक्त पीनेसे स्वर्णके कटोरेमें छोड़ गये थे। कविचन्दने पृथ्वीराज रासौके संयोगत खण्डमें इस सतीका सविस्तार वृत्तांत लिखा है। पुरानी दिल्लीमें रंङ्ग महलके खण्डैर अबतक इस सती रानीका स्मरण पथिकोंको कराते हैं।

स्काट (सरवाल्टिरस्काट—Sir Walter Scott.) स. ई. १७७१ में जन्मे, इनके बाप स्काटलैण्डके शाही दफ्तरमें क्लार्क (लेखक) थे। इनके माता पिता स्काटलैंडके उन सीमावर्ती प्राचीन वंशोंमें थे जिनकी वीरताका साक्षी इतिहास

है। इन्हीं वंशोंकी वीरताका वर्णन स्वरचित ग्रन्थोंमें करके स्काटने अपने पूर्वजोंका नाम चिरंजीव किया है। शुरूमें स्काटका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था एवं जल वायु बदलनेके लिये वह अपने दादाके ग्राममें,जो केलसोके निकट था गये थे,इस स्थानके समीप अनेक लड़ाई झगड़े इनके पूर्वजोंसे पहिले समयमें होचुके थे अतएव वहां इन्होंने अनेक खण्डेर तथा स्थान ऐसे देखे जिनके सम्बन्धमें अनेक वीरताकी कहानियें प्रसिद्ध थीं। इन्हीं वीरताके किस्सोंका समावेश पश्चात स्काट साहबने स्वरचित गद्यपद्य ग्रंथोंमें बड़ी तारीफके साथ किया। इन्होंने स्काटलैंडके देश विद्यालयमें शिक्षा पाई थी,पश्चात स्काटलैंडकी अदालतोंमें कुछ दिनोंतक वकालत की थी। एक लड़कीसे इनको प्रेम था लेकिन उससे विवाह न हो सका था। स. ई.१७९७ में एक फरासीसी लड़की मिस कारपेंटरसे इनका विवाह हुआ और स. ई. १७९९ में सेल्कर्क शायरके शेरिफका पद इनको मिला। उसी सालसे इन्होंने कविता करना शुरू किया। स. ई. १७९९ तथा १८१४ के बीच इनके रचे अनेक काव्य छपे जो वीररससे परिपूर्ण हैं। स. ई. १८१४ में इन्होंने उपन्यासोंके लिखनेकी तरफ ध्यान दिया और कितनेही उपन्यास अत्युत्तम लिखकर देशभरमें प्रसिद्धि पाई। स. ई. १८२६ में वैलेन्टायनका छापाखाना जिसमें इनकी शरकत थी टूट गया जिसके कारण १ लाख २० हजार पौंड इनपर ऋण होगया। दिवालिया बनना इन्होंने स्वीकार न किया एवं रात दिन ग्रन्थ रचनामें मेहनत करके बहुतसा ऋण निपटाया परन्तु घोर परिश्रम करनेसे इनकी स्मरणशक्ति घटगई और यह ऐसे निर्बल होगये कि स्वास्थ्य सम्हालनेके लिये इटेली तथा भूमध्य सागरमें इस यात्रासे कुछ लाभ न हुआ निदान स्वदेशको लौटे और कुछ दिनतक बेहोश पड़े रहनेके बाद सिधार गये। यह बड़े उदारचित्त सन्मानी थे, कोई भी ईनका शत्रु न था; उम्र भरमें किसीसे नाराजी नहीं हुई थी। लोग इनसे मिलकर प्रसन्न हात थ क्योंकि इनकी बातचीत सादा, नम्र, दिललुभानेवाली और प्राचीन कथानकोंसे परिपूर्ण होती थी।

स्टीफेन्सन (जार्जस्टीफेन्सन)–George Stephenson यह एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी आविष्कार हुये हैं, इन्होंने चलनेवाली रेलगाड़ीकी सम्भावना सिद्ध करनक लिये लोको मोटिव एन्जिन (धुंयेकी कल) बनाई थी और स० ई० १८१४ में उसी कलसे रेलगाड़ियें चलाकर दिखलाया था। इन्हींके परिश्रमका

परिणाम है कि आजकल रेलगाड़ियें भक २ करती सैकडों कोस घंटोंमें चली जाती हैं। स्टीफेन्सनके बाप कोयलेकी खानमें नौकर थे। २० वर्षकी उम्रमें स्टीफ़ेन्सका विवाह हुआ था, और स० ई० १८१२ में १०० पौंड वार्षिक वेतनपर कोयलेकी खानमें इञ्जिनियरका पद इनको मिला था। इसी खानके लिये स० ई० १८१४ में इन्होंने एक धुयेंकी कल बनाई थी जो ८ गाड़ियोंको ४ मील प्रति घंटेके हिसाबसे लेजा सकती थी। इसी कलको स्टीफ़ेन्सन साहबने और सुधारा जिससे वह फी घंटे १५ मील जाने लगी। इनके जीतेजी कई एक रेलकी सड़कें भी इङ्गलैंडमें तैयार होगई थीं और यह उनके चीफ इञ्जिनियर नियत किये गये थे। स० ई० १७८१ में इङ्गलैंडमें जन्मे, स० ई० १८४८ में मरे।

स्वर्णमई (कासिमबाजारकी महारानी स्वर्णमई, सी० आई० ई०) जिलावर्द्वानके भटाकोल नामक ग्राममें स० ई० १८२७ की साल जन्मी और ११ वर्षकी उम्रमें कासिमबाज़ारके राजा कृष्णनाथ रायको व्याही गई। कृष्णनाथ रायके परदादे दीवान कृष्णकांत नन्दीने वारेन हैस्टिङ्गज साहबके प्राण एक कठिन स्थलपर बचाये थे। एवं जब वारेन हैस्टिङ्गज् गवर्नरजेनरल हुये तो उन्होंने बाबू कृष्णकान्तको अपना दीवान बनाया, जिससे कृष्णकांतके धन और सामर्थ्यकी कुछ सीमा न रही और बड़ी भारी ज़िमीदारी खरीद कर सके। यही अतुल विभव विरासतमें स० ई० १८३२ की साल राजा कृष्णनाथरायको मिली। स० ई० १८४५ में राजा कृष्णनाथराय आत्मघात करके निर्वंश मरगये और वसीयत लिख गये कि मेरी स्त्री कुछ न पावे और सब जायदाद ईष्ट इन्डिया कंपनी ले लेवे।। राजाके मरतेही इष्ट इंडिया कम्पनीने राज्यपर अपना अधिकार कर लिया निदान महारानी स्वर्णमईने कलकत्तेके सुप्रीम कोर्टमें कम्पनी पर नालिश की और यह बात प्रमाण करादी कि वसीयत नामा लिखते समय राजा बेहोश था। स० ई० १८४७ में महारानीकी डिगरी हुई और सब जायदाद मुर्शिदाबाद, राजशाही, पवना, दीनाजपुर, माल्दा, रंगपुर, बोगड़ा, फ़रीदपुर, जैसोर, नदिया, वर्द्वान, हवड़ा, चौबीस परगना, गाज़ीपुर तथा आज़मगढके ज़िलोंमें है उसको मिलगई। महारानीने जायदाद पाकर राय राजीवलोचनराय एक सुयोग्य पुरुष को अपना दीवान नियत किया और सब ऋण जो जायदादपर पहिले अप्रबंधोंके कारण होगया था अल्प कालहीमें चुका दिया। महारानी जबतक जीती

रही प्रतिवर्ष १ लाख रुपया पुण्यार्थ खर्च करती रही। बंगालमें कोई ऐसा घर न होगा जो महारानीकी दातव्यताकी प्रशंसा न करता हो, अकाल पीडितोंकी महारानीने सदैव लाखों रुपयेसे सहायता की, सैंकड़ों स्कूलों तथा शफाखानोंको लाखौं रुपये चन्दमें दिये। महारानीके दीवानने राज्य प्रबंध बड़ी नीति, बुद्धिमानी, सच्चाई और धर्मके साथ किया और पहिलेकी अपेक्षा आमदानी बहुत बढाई। यह सब आमदनी राज्यके सुधारने, आसामियोंका सुख चैन बढाने, दीन दुःखियोंका क्लेश दूर करने, पुल तथा सड़के बनवाने और उचित रीतिसे पुण्य करनेमें लगाई गई। महारानीके पुण्यके काम पर्देमें रहकर इतने लाभदायक और लोकहितकारी न होते यदि दीवान सत्य चित्तसे उसका सहायक न होता। बृटिश गवर्नमेंटने स० ई० १८७२ में स्वर्णमईको महारानीकी उपाधि देकर यथार्थमें धर्म नीति और दयाकी प्रतिष्ठा की थी। स० ई० १८७८ में राजराजेश्वरी विक्टोरियाने भी महारानीके परमोदारताके कामोंपर रीझकर उसको सी० आई० ई० अर्थात् भारत की मुकुटमणिकी उपाधि दी थी। वर्तमान कालमें महारानी स्वर्णमईके समान कोई दूसरी स्त्री नहीं हुई जिसने निज धनको नियमित रीतिसे सर्व साधारणके उपकारमें लगाया हो। दीनोंका दुख दूर करना विधवाओंके आंसू पोंछना, भूखोंको भोजन, नंगोंको वस्त्र, रोगियोंको औषधि, यात्रियों तथा पथिकोंको शरण और विद्यार्थियों तथा ग्रन्थकारोंको सहायता देना इस दयावंतीके नित्य कर्म थे। इसके कोई सन्तान न थी परन्तु यह मनुष्य जाति मात्रको — कुटुम्ब मानती थी। स० ई० १८९५ में वैकुण्ठवासी हुई और राज्य अपनी बहिनके बेटेको सौंपगई।

हकीकतराय (खालसापन्थके बलिदान)—इनके बाप बागमल खत्री स्यालकोटके हाकिमके पास कारकुन थे। विवाह इनका बचपनहीमें पंजाबके किसी प्रतिष्ठित सिंह वंशमें होगया था। किसी मुल्लाके मकतबमें जो शहिर स्यालकोटकी एक मसाजिदमें था यह फारसी पढनेको जायाकरते थे। एक दिन वादानुवादमें अपने सपाठी मुसलमान लड़कोंके मुँहसे हिंदुओंके देवताओंके लिये गाली सुनकर हकीकतके मुंहसे मुसल्मानी मतकी कुछ निन्दा निकल गई। मुसल्मान लड़कोंने बातका वितण्डा कर दिया। मुल्लाजीने भी सुनते ही काजीजी को इत्तला की, काजीजीने तुरन्त हुक्म दे दिया कि काफिरको सूली दे दो। लाचार

होकर हकीकतके बापने लाहौर जाकर हाकिम आलाके पास अपील की लेकिन उसने भी काज़ीजीकी हुक्म बहाल रखा। हक़ीकतकी उम्र उस वक्त १७। १८ वर्षकी थी, गलेसे १६ वर्ष की कामिनी बंधी हुई थी निदान माता पिताने अश्रु धार बहा २ कर बेटेको बहुत कुछ समझाया और कहा कि "बेटा मुसलमानोंका राज्य है कुछ वश नहीं चल सकता है, तुम ही हमारे बुढापेकी टेक हो, तुम्हारे विना हम अन्धे होकर बूंद २ भर पानीको तड़फ २ कर मरेंगे, इस बहूके देखते और भी कलेजा टूक होता है क्यों कि इसका तुम्हारे सिवाय कोई सहारा नहीं है बेटा बिचारकर देखो और लाचारीका मुकाम समझ मुसल्मान ही होकर प्राण बचालो"। पाषाणका हृदय भी माता पिताका विलाप कलाप सुनकर वेधित होता था लेकिन वीर हकीकत रायने धर्मकी अपेक्षा प्राणको तुच्छ समझ मुसल्मान होना स्वीकार न किया। निदान म्लेच्छ हाकिमके हुक्मसे लाहौरमें वसन्त पंचमीके दिन लड़कोंकी बातोंमें निरापराध हकीकत रायका लोहू बहाकर वागमलका वंश नष्ट कर दिया गया। लाहौरमें हकीकत रायकी समाधि बनी है जिस पर प्रति वर्ष वसन्तपञ्चमीके दिन बड़ा भारी मेला होता है किसी कवीश्वरने सत्य ही कहा है कि--

दो०--धन दे दारा राखिये, दारा दै तन राख।
धन दारा तन सबै दै, एक धर्मके काज ॥

स. ई. १७३४ में जन्मे, स. ई. १७५२ में धर्मके लिये जान देदी।

हमीरसिंहदेव (राना उदयपुर)--यह राना अजयसिंहके भतीजे थे, स. ई. १३०१ में उदयपुरकी गद्दीपर बैठे और स. ई. १३१३ में दिल्लीके बादशाहको परास्त करके चित्तौड़ गढ इत्यादि निज पूर्वजोंका सब राज्य, जा दिल्लीके खिलजी सम्राट अलाउद्दीनने राना लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के वक्तमें छीन लिया था, पुनः विजय कर लिया। इनके समयमें मेवाड़ राज्यकी कीर्ति पुनः स्थापित हुई, यह बड़े प्रजापालक थे।

हमीर देव चौहान (रणथम्भोरनरेश)--यह ब्यावर (अजमेर) नरेश महाराजा वीसल देवके वंशमें बड़े बीर तथा दृढप्रतिज्ञ नरेश हुए हैं। अन्तिम दिल्लीपति पृथ्वीराजा चौहान इनसे कई पीढी पीछे होकर दिल्ली अजमेरके

राज्यको प्राप्त हुए । कवि सारङ्गधरने हमीर देवके नामसे " हमीरगैरा " तथा " हमीरकाव्य " नामक ग्रन्थ रचकर बहुत कुछ इनाम पाया था । सारंगधर कविके दादा रघुनाथ इनके गुरु थे । कहते हैं कि मीर मुहम्मद मुगल नामक सरदारसे दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनकी एक बेगमकी आँख लड़गई थी जब यह खबर अलाउद्दीनको हुई तो वह अपनी जान लेकर भागा और कई राजाओंके दर्बारमें गया लेकिन किसीने उसको शरण न दी। अन्तमें वह हमीर देवके दर्बारमें रणथम्भोर पहुंचा । हमीरदेवने हाल सुनकर सहायताका वचन दिया । खबर पाते ही अलाउद्दीनने हमीरदेवसे अपना अपराधी मांगा लेकिन राजाको शरणागतका परित्याग करना स्वीकार नहीं हुआ । निदान अलाउद्दीनने रणथम्भोरपर चढाई की । नतीजेके विषयमें मुसल्मान इतिहासकारों तथा हिन्दू कवीश्वरोंके लेख एक दूसरेसे विरुद्ध हैं । इतिहासोंमें लिखा है कि स० ई० १३०० में कई महीने तक लड़नेके बाद हमीरदेव परास्त होकर मारे गये और मीर मुहम्मद जब पकड़कर लाया गया तो अलाउद्दीनने उससे पूछा कि "अब छोड़ दिये जानेपर तुम ठीक २ चलोगे " लेकिन उसने उत्तर दिया कि "यदि वश चला तो तुम्हारा सर काटकर महाराजा हमीरके पुत्रको तख्त दिल्ली पर बिठलाऊंगा " । यह सुनकर अलाउद्दीनने उसको हाथीके पैरसे कुचलवा डाला । लेकिन कवीश्वर लोग 'हमीरहठ' में लिखते हैं कि, अन्तिमदिनके युद्धको जाते वक्त हमीरदेव कोटकी रक्षाके लिये मीरमुहम्मदको छोड़ गये और रानियोंसे कह गये कि, जब किले परसे रणभूमिमें हमारा झण्डा गिरा देखो तो हमको रणशाई हुआ जानकर तुम लोग पेश्तरसे तैयार की हुई अग्निमें भस्म हो जाना । अन्तमें महाराजकी जीत हुई,अलाउद्दीन परास्त होकर भागा,भावीवश भगदड़के वक्तमें किसीको झंडेकी सुधि न रही। झंडेको गिरादेख राजभवनमें कुलाहल मच गया । रानियें तुरन्त अग्निमें प्रवेशकर गईं, राजदासियोंने क्षणमात्रमें महलपरसे कूद २ कर जान खो दी । राजमाता राजभगिनियों तथा राजकन्याओंने टक्करें मार मार कर प्राण हतडाले यह अनर्थ हुआ देख मीर मुहम्मदने भी जीना धिक्कार समझ कुयेमें गिरनेसे देर नहीं की। महाराजने लौटकर जब राजभवनमें चिड़ियातक न पाई और देखा कि, जिसके लिये इतनी आपत्ति उठाई वह भी नहीं है तो उनके चित्तमें वैराग्यका उदय हुआ और निज पुत्रको राजतिलक दे शिवजीके मन्दिरमें जाकर उन्होंने अपना शिर काट

कर चढ़ा दिया । महाराजा हमीरसिंहदेवके शिवको शिर काट कर चढ़ानेकी तस्वीर अबतक महाराजा पटियालाके भवनमें विद्यमान है । निम्नस्थ दोहा आपही के विषयमें प्रसिद्ध है—

दो०—सिंहगमन सापुरुष वचन, कदली फल एकबार ।
त्रियातेल हमीरहठ, चढ़े न दूजी बार ॥

हरगोविंदजी (सिक्खोंके छठे गुरु)—गुरु अर्जुनसाहबके घर स. ई. १५९५ में जन्मे । माताका नाम गंगा था । स. ई. १६०६ में गद्दीपर बैठे । ठाट अमीरी रखते थे । दो तलवारें बांधते थे, एक गुरियाईकी दूसरी अमीरीकी । चित्त आपका बचपनहीसे रणसम्बन्धी कामों तथा डंड, कुश्ती, पटेबाजी, फरी गद्का तथा तीरन्दाजी इत्यादिमें लगता था । बडे स्वरूपवान तथा हृष्ट पुष्ट थे । स. ई. १६११ में निजपिता गुरु अर्जुन साहबकी समाधि इन्होंने बनवाई थी । दिल्लीके मुग़ल सम्राट जहांगीरने दीवान चण्डूलालके कहनेसे इनको ग्वालियरके किलेमें नजरबन्द किया परंतु थोड़े ही दिनोंबाद इनके महत्त्वके चरित्र सुनकर इनको अपने पास बुलाकर रक्खा । एक दिन अवसर पाकर गुरुने बादशाहसे चण्डूलालकी सब करतूत जो उनके पिता गुरु अर्जुनके मरवाने तथा उनको नजरबन्द करानेमें उसने की थी कहदी । चण्डूलाल बादशाहके हुक्मसे गुरुको सौंपा गया, गुरुने उसको मरवा डाला । आपसे पहिले जो पांच गुरु हुये मुल्की मामलोंसे कुछ सरोकार नहीं रखते थे, लेकिन आपने दीनी तथा मुल्की दोनों ही प्रकारके मामलों में हिस्सा लिया । स. ई. १६६४ में परलोकगामी हुये ।

हरदत्तपंडित (पदमञ्जरीके कर्त्ता)—जयादित्य तथा वामनकृतकाशिका अष्टाध्यायीके ऊपर इन्होंने पदमञ्जरी नामक व्याख्या लिखी थी । इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि ये माघकविसे पीछे हुये (देखो माघ) आपस्तम्ब तथा गौतम धर्म सूत्रोंका भाष्य भी इन्होंने रचा था ।

हरबोंग—इस काशीनरेशने अपने राज्यमें सब चीजें एक भाव बेचनेकी आज्ञा दी थी । इसी कारण प्रसिद्ध है कि—"राजहरबोंगराजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा" । हरबोंगके समय इत्यादिका कुछ विशेष हाल नहीं मालूम ।

हरदीक्षित (बृहच्छब्देन्दुशेखरके कर्त्ता)—यह भट्टोजि दीक्षितके पौत्र थे। वि. सं. की १८ वीं शताब्दीमें इन्होंने भट्टोजि दीक्षितकृत सिद्धांत-कौमुदी पर बृहच्छब्देन्दुशेखर और मनोरमापर शब्दरत्ननामक व्याख्या की थी।

हर्ष—देखो श्रीहर्ष ।

हरिदास—यह योगिराज इस समयमें योगाभ्यासकी महिमाको प्रकट करने-वाले साधुओंमेंसे थे । पंजाबकेशरी रणजीतसिंहजीने प्रशंसा सुनकर इनको अमृतसरसे अपने दर्बारमें बुलाया था । यह वर्षोंकी समाधि लगा सकते थे ।

गवर्नर जनरल हिंदके सैनिक मन्त्री आसवर्न साहब अपने रोजनामचेमें लिख-ते हैं कि स. ई. १८३८ की साल ६ ता. जूनको रणजीतसिंहजीने हरिदास फकीर-को एक सन्दूकमें बन्द कराके धरतीके भीतर गड़वा दिया, दश महीने बाद जब जमीन खोदकर सन्दूक खोला गया तो साधू पद्म आसन बैठे हुये मिले । शरीरमें बिलकुल प्राण नहीं मालूम होते थे, लेकिन थोडी ही देर बाद कुछ २ श्वास चलती मालूम हुई और अधिक समय नहीं बीता था कि महायोगीश्वरने नेत्र खोल कहा कि " बहुत सोये " । प्रायः स. ई. १८०८ में इनका जन्म हुआ, ये पंजाबके रहनेवाले थे ।

हरदेवलाल (हुलकाके देवर)—बाबू कृष्णबलदेव वर्म्मा " बुंदेलखण्ड पर्यटन"में लिखते हैं कि स. ई. १६२८के लगभग जब ओड़छाके राजा जुझारसिंह दिल्ली दर्बारमें रहने लगे तो राजप्रबन्धका भार उनके भाई हरदेवसिंहके शिर पड़ा । हरदेवसिंहके वक्तमें घूस खानेवालोंका निर्वाह न था एवं ईर्षावश उन्होंने भाइयोंमें वैमनस्य करानेके लिये राजा जुझारसिंहको लिखा कि कुँवर हरदेवसिंह का राजमहिषीसे अश्लील सम्बन्ध है । पत्र देखते ही राजाने ओड़छे आकर रानीसे कहा कि यदि हरदेवसिंहसे तुम्हारा घृणित सम्बन्ध नहीं है तौ अपने हाथसे उसे विष ददो । रानीने बड़े दुःखसे धर्मरक्षार्थ राजाका प्रस्ताव स्वीकार करके भोजन प्रस्तुत किये । भोजन परोसते समय रानीके अश्रु संचालन हो उठा । हर-देवसिंहने क्लान्त हो कारण पूंछा जिसके उत्तरमें रानी चीखें मारकर रोने लगीं । बहुत प्रबोध करनेपर बोलीं कि बेटा ! अब मैं माता कहे जाने योग्य नहीं हूं, महा-राजको मेरे सतीत्वमें सन्देह है । स्त्रीका पहिला धर्म सतीत्वरक्षा है, जिसकी इस

समय परीक्षा है। इस कारण यह दुर्भागिनी आज पुत्र सरीखे देवरको विषपूरित भोजन परोस कर पुत्रहत्या करनेको प्रस्तुत हुई है। यह सुनते ही हरदेवलालने वह भोजन खा लिया और कहा कि माता! तेरी धर्मरक्षासे मेरी सुकीर्ति युगानुयुग होगी। रानीने भी इन सौजन्य पूरित वाक्योंको सुन अत्यंत कातर हो विष खा लिया। जुझारसिंहभी यह धर्म परीक्षा देख रोने लगे। हरदेवसिंह रसोईका शेष विष पूरित भोजन बाहर उठवा लाये और उन्होंने अपनी दशाका अन्तिम समाचार इष्ट मित्रों सेवकों तथा कर्मचारियोंसे कहा। उनमेंसे बहुतोंने जो हरदेव सिंहके सद्गुणोंसे अनुरक्त थे वह विष पूरित भोजन तुरन्त खा लिया और थोडीही देर पीछे सबके सब अटल निद्रामें सो गये। इस जघन्य पापसे चारों ओर हाहाकार मच गया। सजातीय तथा विजातीय सब लोगोंने महाराज जुझारसिंहको सर्वदा भयप्रद जानकर उनसे सम्बन्ध तोड़ दिया। उन्हीं दिनोंसे हरदेवलाल तथा हुलकादेवी विषूचिकाके दिनोंमें पुजने लगे। हुलकादेवीके मन्दिर और हरदेवलालके चौतरे तथा कूप समस्त भारतवर्षमें ठौर २ बने हैं।

हरिदासस्वामी (वैष्णवधर्मप्रवर्त्तक)—"भक्तसिन्धु" ग्रंथके आधारपर मिस्टर ग्रौसने लिखा है कि अलीगढ़के पास एक गांवमें जिसको अब हरिदासपुर कहते हैं ब्रह्मधीर नामक सनाढ्य ब्राह्मण रहते थे जिनके पुत्र ज्ञानधीरके इष्टदेव गोवर्धनपर विराजमान: श्रीगिरिधारीजी थे। ज्ञानधीरका विवाह मथुरामें हुआ था जिससे एकपुत्र आशधीर हुआ। आशधीरका विवाह वृन्दावनके निकटस्थ राजपुर ग्राममें गंगाधर ब्राह्मणकी कन्यासे हुआ था जिससे हरिदासजीका जन्म हुआ। बचपनहीसे हरिदासजी भगवद्भक्तिमें लीनथे और अन्य लड़कोंकी भांति खेलना कूदना उनको पसन्द नहीं था। २५ वर्षकी उम्रमें हरिदासजी गृहत्यागी हो वृन्दावनमें मानसरोवरपर जा बसे और थोड़ेही दिन पीछे वहांसे निधवनको उठ गये वहींपर श्रीबांके बिहारीजीकी मूर्ति इनको मिली थी जिनका बड़ाभारी मंन्दिर अबतक वृन्दावनमें है, इस मन्दिरके अधिकारी स्वामी हरिदासके भाई जगन्नाथके वंशधर हैं। हरिदासजी परम विरक्त तथा महात्यागी थे और सदैव ईश्वरके ध्यानमें मग्न रहते थे;। भक्तमाल वर्णित यमुनाजीमें पारस पत्थर फेंक देनेकी कथा इन्हींके विषयमें है। संगीतशास्त्र इनको पूर्णरीतिसे आता था, सुप्रसिद्ध गवैया तानसेन इनका शिष्य था। एकदफे मुगलसम्राट् अक-

बरने चाहा कि स्वामीजीका गाना सुने परन्तु यह कठिन था निदान तानसेन बादशाहके हाथ सेवकके रूपमें तानपूरा लिवाकर स्वामीजीके पास पहुंचा, यह चित्र वृन्दावनमें अबतक मौजूद है । स्वामीजी अपने प्राचीन शिष्यको देख प्रसन्न हुये, तानसेनने कुछ गाया परन्तु जान बूझकर चूक की तब स्वामीजीने स्वयं गाकर बतलाया, बादशाहने मोहित हो स्वामीजीके चरण छुये और मोरों तथा बन्दरोंके चुगानेके खर्चके लिये जागीर दी । स्वा० हरिदासके बनाये पदोंके दो छोटे २ ग्रन्थ हैं । सिद्धान्त नामक ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया हुआ है । गवैयोंके सिवाय साधारण लोग इनके बनाये पदोंको नहीं गासकते हैं । यह कवितामें अपना यह छाप रखते थे—"श्रीहरिदासके स्वामी श्यामा कुञ्जविहारी" । इनकी गद्दीके मुख्यस्थान वृन्दावनमें तीनहैं श्रीबांकेविहारीजीका मन्दिर, निधवन और मौनीदासजीकी टट्टी । इनकी शिष्य परम्परामें अनेक सुकवि हुये हैं जिनमेंसे मौनीदासजी ९ वें थे । मौनीदासजीकी टट्टीमें स्वामी हरिदासजीका जन्मोत्सव हरसाल बड़े समारोहसे होता है । स्वा० हरिदासकी भाषाकविता सूरदास तथा तुलसीदासकी कविताके समान है और उनके बनाये संस्कृतपद जयदेव स्वामीकृत पदोंसे कम नहीं । डाक्टर ग्रीअर्सन साहब अपने ग्रन्थमें लिखते हैं कि स. ई. १५६० में हरिदासस्वामी विद्यमान थे ।

हरिनाथ (भाषाकवि)—प्रसिद्ध कवीश्वर नरहरिजू इनके पिता थे । यह भाट महापात्र ग्राम असनी जिला फतेपुरके रहनेवाले थे । हरिनाथ बड़ भाग्यवान; उदारचित्त और दानी हुये, जिस दर्बारमें गये लाखों रुपये, हाथी, घोड़े, ग्राम इत्यादि प्राप्त करके लौटे पर पास कुछ नहीं रक्खा सब लुटा दिया । रीवाँनरेश नेजारामवघेलेने १ लाख रुपया और वीररानी दुर्गावतीने सवालक्ष रुपया इनको इनाम दिया था, पश्चात् हरिनाथजीने महाराज मानसिंह जयपुर नरेशके दर्बारमें पहुंच निम्नस्थ दोहे सुनाय दोलक्ष रुपये इनाम पाये:—

दो०—बलिबोई कीरतिलता, कर्णकरी द्वै पात ।
　　सींची मान महीपने, जब देखी कुम्हलात ॥

दो०—जातिजाति ते गुण अधिक, सुन्यो न कबहूं कान ।
　　सेतुबाँधि रघुवरतरे, हेला दै नृप मान ॥

जब हरिनाथजू रुपये तथा अनेक सामान सहित घरको लौटे आरहे थे तो रास्तेमें एक नागापुत्र उनको मिला और उसने हरिनाथजूकी प्रशंसामें यह दोहा पढा—

दो०—दान पाय दोई बढे, की हरि की हरिनाथ।
उन बढ लम्बे पग किये, इनबढ लम्बे हाथ॥

यह सुनतेही हरिनाथजूने सब धनधान्य उस नागापुत्रको देदिया और आप रीते हाथ घरको लौट आये। वि. सं. की १७ वीं शताब्दीमें इनका समय है।

हरिश्चंद्र भारतेन्दु (हिन्दी सम्राट) यह बाबूजी काशीके रहनेवाले बाबू गोपालचन्द्रजी अग्रवाल वैश्यके पुत्र थे। इनको माता केवल ५ वर्षका, पिता ८ वर्षका छोड़कर मर गये थे। बनारसके कीन्स कालिजमें कई वर्षतक इन्होंने अंग्रेजी पढ़ी थी, संस्कृत तथा फार्सीके भी पूर्ण ज्ञाता थे, तामिल और तैलङ्गके सिवाय इस देशकी अन्य सब भाषाओंको भी बड़े परिश्रमसे घरपर पढा था, कविता बच्चपन हीसे अनेक भाषाओंमें करते थे लेकिन हिन्दी कविता करनेमें निपुण थे। १६ वर्षकी उम्रमें इन्होंने "कविवचनसुधा" नामक पत्र निकालना शुरू किया था। पश्चात् अनेक और भी पत्र, पत्रिकायें निकाली थीं तथा सैकड़ों गद्य, पद्य पुस्तकें रचकर हिन्दी भाषाका भण्डार परिपूर्ण किया था, बा० हरिश्चन्द्रके पहले साधारण रीतिसे इस प्रान्तभरमें केवल संस्कृत, फार्सी तथा अंग्रेजीके पठन पाठनकी चर्चा थी, भाषाग्रन्थोंका रचना, छपवाना तथा पढना तुच्छ काम गिना जाता था। बा० हरिश्चन्द्रके उद्योगसे देशभरकी रुचि शनैः २ इस ओर बढी, सब लोगोंको हिन्दी लेख पढनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। फिर तो उत्तरोत्तर क्रमसे सैकड़ों अच्छे २ ग्रन्थकार हो गये और फायदा होते देख ग्रन्थोंको छापकर प्रकाशित करनेवाले सहजहीमें मिलने लगे। इसी कारण बा० हरिश्चन्द्रको "हिन्दी सम्राट्" कहना यथार्थ है। स० ई० १८७० से १८७४ तक बा० हरिश्चन्द्र बनारसमें आनरेरी मजिस्टेट तथा म्युनिसिपेल कमिश्नर रहे। बनारसमें चौखम्भा स्कूल, हिन्दी डिबेटिंग क्लब, अनाथरक्षिणी सभा तथा काव्य समाज आपने स्थापन की थी। आप अनेक बड़ी बड़ी सभाओं तथा समाजोंके प्रेसीडेन्ट तथा मेम्बर भी थे। धनाढ्य तो थे ही, विद्वानोंका भी

सत्कार खूब करते थे । काशीके पंडितोंने जो प्रशंसा पत्र हस्ताक्षर करके आपको दिया था उसमें लिखा था कि–

दो०–सब सज्जनके मानको, कारण इक हरिचंद ।
जिमि स्वभाव दिनरैनते, कारण नित हरिचंद ।

कहते हैं कि सहस्रों मनुष्योंको कल्याण बाबू हरिश्चंद्रके द्वारा होता था । विद्योन्नतिके लिये उन्होंने बहुत कुछ व्यय किया था । वह पक्के राजभक्त थे और देशहितके आगे अपने धन, मान तथा प्रतिष्ठाको तुच्छ समझते थे । उनका शील स्वभाव ऐसा था कि साधारण लोगोंके सिवाय भारतके बहुतसे राजाओं महाराजाओं तथा यूरूप और अमेरिकाके प्रधान लोगोंसे उनकी मैत्री थी । काशीके बड़े २ पंडित तथा सर्वसाधारण उनकी प्रतिष्ठा करते थे और काशीनरेशकी सभामें उनका बड़ा आदर होता था । स. ई. १८८९ में हिन्दी समाचार पत्रोंके सम्पादकोंने एकमत होकर उनको भारतेन्दुकी उपाधि दी थी । वह वैष्णव थे और मत वा धर्मको विश्वासमूलक मानकर प्रमाणमूलक नहीं मानते थे । अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदिको भी धर्मके लक्षणोंमें गिनते थे । अंतमें कितने ही दिन बीमार रहकर सिधारे । अन्तिम दिन जब अन्तःपुरसे प्रेरित टहिलुनीने आकर आपसे पूछा कि आज आपकी तबियत कैसी है ? तब आपने उत्तरमें कहा कि आज रातको अन्तिम पतनिका गिरकर तमाशा खतम होगा । स. ई. १८५० में जन्मे, स. ई. १८८५ में सिधारे ।

हरिश्चन्द्रदानी (सूर्य्यवंशीनरेश)–यह राजा त्रिशंकुके पुत्र थे, महाराज रामचन्द्र इनसे ३० पीढी पीछे हुये । एक दफे हरिश्चन्द्रके राज्यमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा, लोग भूखों मरनेलगे तब उन्होंने अपना सब धन धान्य प्रजाकी रक्षामे लगा दिया और आप निर्धन होगये । ऐसी आपत्तिके समयमें ऋषि विश्वामित्रने उनके धर्मकी परीक्षा करनी चाहा और आकर कहा कि "महाराज ! मुझे धन दीजिये और कन्यादानका फल लीजिये " । सुनते ही महाराजने अपना बच बचाया माल असबाब बेंचकर ऋषिको अर्पण किया । पुनः ऋषिने कहा कि धर्ममूर्ति ! इतने धनसे मेरा काम न चलेगा और मुझे आपके सिवाय कोई दूसर धनाढय धर्मात्मा संसारमें दृष्टिगोचर भी नहीं होता हाँ ! काशमिं एक श्वपच

मायापात्र है कहो तो उससे जाकर धनमाँगूं। महाराज हरिश्चन्द्र इतनी बात सुनते ही स्त्री पुत्र समेत विश्वामित्रको साथ ले उस श्वपचके घर गये और उससे कहा कि "भाई! तू हमें एक वर्षके लिये गिरवी रखले और इनका मनोरथ पूरा कर" श्मशानमें जाय चौकी देने और जो मृतक आवे उससे कर लेनेका काम श्वपचने महाराज हरिश्चन्द्रको सौंपा और विश्वामित्रको रुपये गिन दिये, हरिश्चन्द्रकी रानीने विवश हो एक ब्राह्मणके घर चौका बर्त्तन धोनेकी नौकरी करली। कितनेही दिन पीछे महाराजका पुत्र रोहिताश्व मरगया, महारानी उसे ले मरघटमें गई और ज्यों ही चिता बनाय अग्नि संस्कार करने लगी त्योंही महाराज हरिश्चन्द्रने आकर कर माँगा। महारानीने डिढ़कारी फोड़, रोकर कहा कि "महाराज! यह आपका इक-लौता पुत्र रोहिताश्व है और सिवाय इस चीरके जो पहिने खड़ी हूं मेरे पास देनेको कुछ और नहीं है"। महाराजने कलेजेपर पत्थर रखकर कहा कि "रानी! मेरा इसमें कुछ वश नहीं है, मैं दूसरेका चाकर हूं, यदि उचित रीतिसे कार्य न करूंगा तो अधर्मी ठहरूँगा"। इस बातके सुनतेही महारानीने चीर उतारनेके लिये ज्योंही आँचल पर हाथ डाला कि तीनों लोक काँपने लगे, हाहाकार मच गया। पृथ्वी पुकार उठी कि "बस! बस!! बस!!! परीक्षा होचुकी, हरिश्चन्द्र दानी और धैर्य्यवान् है"। महाराजके सब कष्ट स्वप्नवत् होगये, पुत्र रोहिताश्व जी उठा और महाराज तथा महारानीका कीर्त्तिस्तम्भ "आचन्द्रदिवाकर" अटल होगया। पश्चात् महाराज हरिश्चन्द्र बहुकालतक धर्म राज्य करके दुर्लभ पदको प्राप्त हुये।

हरीराय (सिक्खोंके सप्तम गुरु)—यह गुरु हरगोविन्दजीके पौत्र थे और इनके पिताका नाम दत्ताजी था। शाहरूमका राजदूत इनकी महिमा सुनकर दिल्लीसे लौटती समय इनके दर्शनोंको आया था। मुल्की मामलातमें भी इन्होंने खूब हिस्सा लिया। यह पञ्जाबके हिन्दुओंके पेशवा गिने जाते थे। इनकी समाधि कीरतपुर मुल्क पञ्जाब में है। हरकृष्णजी इनके कनिष्ठ पुत्र ५ वर्ष की उम्रमें गुरुकी गद्दीपर बैठे। स० ई० १६२९ में जन्मे स० ई० १६६१ में सिधारे।

हातिमताई—यह अरब देशवासी अब्दुल्लाका पुत्र बड़ा परोपकारी और दानी हुआ। मुसल्मानोंके पैगम्बर मुहम्मद साहबके जन्मसे थोड़े ही दिन पहिले मर चुका था। इसका बेटा बादको मुसल्मान होगया। इसके वृत्तान्तमें एक फ़ारसी

किताब मिलती है, जिसका अनुवाद उर्दू अङ्गरेजी इत्यादि कई भाषाओंमें होगया है। हातिमताई की क़बर अबतक अरबके एक गांवमें मौजूद है।

हाफ़िज़ (फारसी कवीश्वर)-प्रसिद्ध फ़ारसी ग्रन्थ दीवान हाफ़िज़ इसका बनाया हुआ है। पूरा नाम इसका मुहम्मद शमशुद्दीन था। मुल्क ईरानके शहर शीराजका रहनेवाला था, कुछ दिनोंतक सुल्तान बगदादके दर्बारसे इसका सम्बन्ध रहा। स० ई० १३८८ में मरा।

हाफ़िज़रहमतखाँ (रूहेला)-इसका बाप शाहआलमखाँ स० ई० की १७ वीं सदीके अंतमें अफ़ग़ानिस्तानसे आकर मुग़ल सम्राट् दिल्लीके दर्बार में किसी उच्चपद पर नौकर हुआ था। शाहआलमखांके हाफिज रहिमतखां तथा दाऊदखां दो पुत्र थे। दाऊदखांने अपनी वीरतासे मुग़ल सम्राटको खुश किया और नवाबका खिताब तथा रामपुर (रुहेलखण्ड) की जागीर इनाममें पाई। दाऊदखांके वंशज अबतक रामपुरमें राज्य करते हैं। हाफ़िज़ रहिमतखांने उस मुल्कके अधिकांशपर जो अब क़िस्मत रूहेलखण्डमें शामिल है बहुत दिनोंतक हुकूमत की और पीली भीतको गांवसे बसाकर शहर बनाया और हफ़ीजाबाद नाम रक्खा। बरेली और पीली भीतके बीच हाफिजगंज भी उन्होंने पथिकों तथा फौजके ठहरनेके लिये बसाया था। पीलीभीत, बरेली और आंवला जि० बदायूं अबतक हाफिज रहमतकी बनवाई मसजिदें तथा अन्यान्य इमारतमें भग्नावस्थामें पड़ी हैं। बरेली में उस स्थानपर जिसको अब भी किला कहते हैं उन्होंने एक कोट बनवाया था जिसको सन ५७ के गदरके बाद ब्रिटिश गवर्नमेंटने खुदवाकर फिकवा दिया। हाफिज रहिमत यथाशक्ति न्याय करना चाहता था। राउपहाड़सिंह खत्री जिसकी गढ़ी बरेलीमें अबतक टूटी फूटी पड़ी है उसका दीवान था। कहते हैं कि एक दफे शहर बरेलीसे ३ कोस पूर्व नरियावल ग्राममें देवीका मेला देखने राउ पहाड़की बेटी रथमें बैठकर गई थी। हाफिज रहिमतके भाञ्जेकी उस पर आंख पड़ी, देखतेही मोहित होगया और सवारोंको हुक्म दिया कि पकड़ लो। रथवानको जब यह मालूम हुआ तो उसने तुरंत चादरसे कसकर लड़कीको कमरसे बांध लिया और सवारोंको धोखेमें डालनेके लिये रथके पीछेका तांगा छुरीसे काट सड़क पर छोड़ दिया और हवाकी समान बैलोंको उड़ाता हुआ अपने मालिककी प्रतिष्ठाको लेकर गढ़ीके फाटकमें घुस पड़ा और

सवार उसको न पकड़ सके। स्वामिभक्त चाकरकी कारखाई देख राव पहाड़की आंखोंसे कृतज्ञताके आंसू बहने लगे, उसने रथवानके हाथोंमें सोनेके कड़े डलवा दिये और पूरी तनख्वाह पर आजन्म नौकरीसे माफ किया, बैलोंको प्रतिदिन ५ सेर जलेबी बांध दीं और हुक्म दिया कि उनसे कुछ काम न लिया जाय। जब यह बात हाफिज रहिमतके कानमें पहुँची तो उसने अपने भाञ्जेको उचित दण्ड दिया। हाफिज रहिमत प्रायः १२ बच्चोंका बाप था। आलमगीरीगंज, जुलफिकारगंज तथा शहामतगंज नामक शहर बरेलीके मुहल्ले उसीके बेटोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। हाफिजरहिमतखां अन्तमें नवाब वजीर अवधसे लड़कर कटरा जि० शाहजहांपुरके मैदानमें मारा गया। और उसके लड़कोंकी बात तक किसीने नहीं बूझी। हाफिजरहिमत अपने समयके सब रुहेला सर्दारोंका मुखिया समझा जाता था।

हारीत मुनि (आयुर्वेदीयहारीतसंहिताके कर्ता)–इन्होंने आयुर्वेद अपने पिता ऋषि जाबालिसे पढ़ा था। ऋषि जाबालि राजा दशरथके समयमें विद्यमान थे। हारीतमुनिने दो वैद्यक ग्रन्थ रचे थे जिनमेंसे एक वृहद्धारीत संहिता और दूसरा लघुहारीत संहिताके नामसे प्रसिद्ध है। उक्त दोनों ग्रन्थोंमें श्रीमान् आत्रेय महर्षि और हारीतमुनिके प्रश्नोत्तर हैं। व्यासकृत महाभारतमें वैशम्पायन ऋषिने हारीतके विषयमें यह कथन लिखाया है कि "मैंने जाबालिपुत्र हारीतको एक सरोवरमें नहानेको जाते हुये देखा, वह वीरत्वकी मूर्त्ति थे, तेज उनका सूर्य्यकासा था, मस्तकपर जटा, ललाटमें त्रिपुण्ड्र, कानोंमें स्फटिकमाला, बायें हाथमें कमण्डलु, दहिनेमें दण्ड, कंधेपर कृष्ण मृगछाला और गलेमें यज्ञोपवीत सुशोभित था, उनकी मूर्त्ति शांतिमय थी, स्वभाव दयालु था। और एक टहलुवा साथ था"।

हार्डिङ्ग (वाईकौन्ट हेनरी हार्डिङ्ग)–Viscount Henery Hardinge यह शहर डरहम (इंग्लैण्ड) के रहनेवाले एक पादरीके पुत्र थे। थोड़ेही उम्रसे यह फौजमें भरती होगये थे और स० ई० १८०४ में कप्तानके पद पर तरक्की पाकर बढ़ते २ अंगरेजी सेनामें उच्चपदको प्राप्त हुये थे। बहुतसी लडाईयोंमें ड्युक आफ़इवेलिङ्गटनके साथ २ बड़ी बहादुरीसे लड़े थे। स० ई० १८४४ में गवर्नरजनरल हिंद नियत होकर आये और मुदकी तथा फीरोजशाह

की लड़ाईयोंमें सिक्खोंकी सेनाको परास्त किया । स० ई० १८५५ में-फील्डमार्शलका पद इनको दिया गया । स० ई० १७८५ में जन्मे और स० ई० १८५६ में मरे ।

हारूँरशीद (खलीफावग्दाद)-ये अबू अब्दुल्ला मेंहदीके पुत्र बग्दादके अब्बासवंशोत्पन्न पंचम खलीफा थे । अपने बड़े भाई अलहद्दीके बाद २०।२२ वर्षकी उम्रमें स० ई० ७८६ की साल तख्तपर बैठे । शाम, पैलेस्टायन, अरब, ईरान, आरमेनियां, काबुलिस्तान, नैतोलिया, आजरवायजान, वैविलन, ऐसीरिया, सिंध, खुरासान, तावरिस्तान, जाबुलिस्तान, बड़ा बुखारा और मिश्र इत्यादि देशोंमें इन्हींका राज्य फैला हुआ था । इनके शासन कालमें अधिक मुल्क तो विजय नहीं हुआ लेकिन अनेक काम देशोन्नति, प्रजापालन और राज्य प्रबन्धके सफलता पूर्वक हुए । यह फार्सी तथा अर्बीके विद्वान् होकर गुणी जनोंका खूब सत्कार करते थे । किसी कविकी पद्यरचनापर प्रसन्न होकर इन्होंने ५ लाख अशर्फियें इनाम दी थीं । अनेक और कवीश्वरोंको भी १ । १, २ । २ लाख दिरम दिये थे । अनेक सड़कें सफाखाने, स्कूल, कारवां सरायें भी थीं । डाक्टरी, पुलिस तथा शिक्षा इत्यादि अनेक राज्य विभाग स्थापन करनेका भी अनुभव पहिले पहिले इन्हीको अरबके बादशाहोंमें हुआ था । इन्होंने यूनानियोंको कई दफे परास्त किया था, अन्तिम दफे स० ई० ८०४ में इनकी हार हुई और ४० हजार सेना मारी गई लेकिन दूसरीही साल फ्रिजिया पर चढ़ाई करके उन्होंने फिर शाह यूनानको परास्त किया और उसके अनेक सूबों पर अधिकार जमाकर राजस्व वसूल किया । फ्रांसके सम्राट् चार्लेस दीग्रेटके साथ हारूँकी मित्रता थी । और एक अतीव उत्तम घड़ी हारूँने उसकी नजर की थी । स. ई. ८०९ में २३ वर्ष राज्य करके खुरासानमें मरे और तूस (मशहद) में दफन किये गये । यह मुसल्मान थे; बेटा अलअमीन इनका उत्तराधिकारी हुआ ।

हावर्ड (जानहावर्ड–Gohn Howard) इस प्रसिद्ध अंगरेज जगत हितैषीका बाप शहर लन्डनमें सौदागरी करता था और इसको छोटासा छोड़कर मर गया था । बड़े होकर इसने अपने से २७ वर्ष बड़ी एक विधवाके साथ शादी की लेकिन वह तीन वर्ष बादही मर गई । स. ई. १७५६ में यह पुर्तगालकी राजधानी लिस्वको उन लोगोंकी सहायता करणार्थ गये जिनकी भूकम्पसे हानि हुई

थी। लिस्बसे लौटकर यह हैम्पशायर (इङ्गलैन्ड) में बस रहे और स. ई. १७५८ में इन्होंने अपना दूसरा विवाह किया लेकिन दूसरी स्त्री भी स. ई. १७६५ में एक बेटा छोड़कर मर गई। उस समय यह बेडफोर्डके समीप कार्डिङ्गटनमें रहते थे और वहां इन्होंने कुछ जायदाद भी खरीद ली थी। स. ई. १७७३ में शेरिफ़ का ओहदा इनको मिला, उक्त ओहदेपर रहकर स्पष्टरीतिसे इनको जांच होगई कि जेलखानोंमें कैदियोंके साथ पशुओंके समान बर्ताव किया जाता है निदान इन्होंने सरकारी आज्ञा लेकर इंगलैंडके जेलखानोंका दौरा किया और उद्योग करके पार्लियामेंटसे आइन पास कराया जिससे कैदियोंकी तकलीफ बहुत कुछ घट गई। पश्चात् इन्होंने युरूपके अन्य राज्योंमें भी भ्रमण करके जेलखानोंकी दीन दशाकी जांच की और भिन्न भिन्न राजाओंसे उद्योग करके उसमें सुधार करवाया। अंतमें यह क्रीमियाको गये, वहां उन दिनों बुखार फैल रहा था, एक बीमारका इलाज करते समय हावर्ड साहबको उसकी बीमारी उठलगी और मृत्युका कारण हुई। स० ई० १७२७ में जन्मे, स० ई० १७९० में मरे।

हितहरवंश गोस्वामी (राधावल्लभीय सम्प्रदायके आचार्य)– देउवन्द जि० सहारनपुरमें व्यास स्वामी उपनाम हरिराम शुक्लके घर तारावतीके उदरसे मिती वैशाख शुक्ल ११ वि० सं० १५५९ को जन्मे। प्रथम विवाह इनका देउवन्दमें रुक्मिणी नामक कन्यासे हुआ जिससे दो पुत्र और १ कन्या उत्पन्न हुई। इन तीनों बालकोंका विवाह करनेके बाद गोस्वामी श्रीहितहरवंशजी वृन्दावन वासकी इच्छासे घरबार छोड़ चलते हुये। मार्गमें होड़लके पास चरिथावल ग्राममें एक ब्राह्मण इनको मिला जिसने अपनी दो कन्यायें तथा श्रीराधावल्लभ ठाकुरकी मूर्त्ति इनके अर्पण की जिसको लेकर यह वृंदावनमें आये और वहां मिती का० शु० १३ वि० सं० १५८२ को श्रीराधावल्लभजीकी स्थापना की और राधावल्लभीय सम्प्रदायका प्रचार किया। राधावल्लभीय लोग अपने नामके पहिले हित लिखते हैं। हित हरवंशके शिष्योंमेंसे अनेक अच्छे कवीश्वर हुये हैं। इनकी पहली स्त्रीका वंश देउवन्दमें है और पिछली दोनों स्त्रियोंका वृंदावनमें। "श्रीराधासुधानिधि" तथा "कर्मानंद" काव्य इन्हींके बनाये संस्कृत ग्रंथ हैं। भाषामें इनके रचे ग्रंथ हैं "वृंदावनशतक" और "हित चौरासीधाम" हैं।

हिमाचलराम (भाषाकवि)-यह शाकद्वीपी ब्राह्मण रियासत भटौली जि. बहिरायचके रहनेवाले थे। नागलीला, दधिलीला इत्यादि इनके रचे ग्रंथ हैं। वि. सं. १९१५ में मृत्युवश हुये।

हिल (सर रोलैंड हिल-Sir Rowland Hill)-यह वर्मिन्धम (इंगलैंड) के रहनेवाले महाशय प्रथम लोगोंको गणित शास्त्रकी शिक्षा देकर अपना निर्वाह किया करते थे पश्चात् दक्षिणी आस्ट्रेलियन कमीशनके मंत्रीका पद इनको प्राप्त हुआ और स. ई. १८३७ में डाकखानेके नियमोंके सुधारकी तरफ इनका ध्यान फिरा निदान इन्होंने एक पुस्तक रची और उसमें इस बातपर जोर दिया कि चिट्ठियोंपर तौलके हिसाबसे महसूल लेना चाहिये, दूरीके हिसाबसे नहीं। कुछ दिनों बाद पार्लियामेंटने एक कमीटी इनके विचारोंकी जांचके लिये नियत की जिसने खूब जांच करनेके बाद इनकी तजबीजोंकी सिफारिश की एवं स. ई. १८४० में पेनीपोष्टेजका आईन जारी किया गया और हिल साहिबको इङ्गलैंडके पोष्टमाष्टर जेनरलका ओहदा मिला। थोड़े ही दिनों बाद मालूम हो गया कि पेनीपोष्टेजका आईन जारी करनेसे सरकारको बहुत फायदा हुआ है। स. ई. १८६४ में हिल साहिबको दो हजार पौंड वार्षिककी पेन्शन मिली और के. सी. बी. की उपाधि स. ई. १८४० हीमें मिल चुकी थी। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयने भी डी. सी. यल. की उपाधि आपको दी थी। स. ई. १७९५ में जन्मे स. ई. १८७९ में मरे।

हुमायूं (द्वितीय मुगलसम्राट् दिल्ली)-यह मुगल सम्राट् बाबरका बेटा था, इसके तीन छोटे भाई और थे । २२ वर्षकी उम्रमें यह बीमार पड़ा, जीनेकी कुछ आशा न रही, तब तो बाबरने जो अपने बेटोंको अत्यंत प्रेम करता था इसके पलंगके चारों तरफ घूमकर ईश्वरसे प्रार्थना की कि " हे परमात्मन्! इसको जी दान दे और बदलेमें मुझे ले "। उसी वक्तसे हुमायूंको आराम हो चला और बाबर बीमार हो मर गया। मरते वक्त बाबरने हुमायूंसे कहा कि अपने छोटे भाइयोंके साथ किसी तरहकी गई न करना । पितृभक्त हुमायूंने स. ई. १५३० में तख्तपर बैठकर गजनी, काबुल, कंधार तथा पंजाब अपने भाई कामराँको; सम्भल दूसरे भाई असकरीको; अलवर तीसरे भाई हिंदालको दिया और केवल आगरे तथा दिल्लीके आस पासका मुल्क अपने पास रक्खा। स. ई.

१५४० में शेरशाह बंगालके सूबेदारने हुमायूंको परास्त किया। ऐसी हीन दशामें हुमायूंने अपने भाइयोंसे मदद मांगी लेकिन उन्होंने मदद देनेके बजाय उसकी जान भी ले लेनी चाही। निदान लाचार होकर उसे ईरानकी तरफ भागना पड़ा। रास्तेमें अमरकोटके किलेमें स. ई. १५४२ की साल उसके अकबर पैदा हुआ। हुमायूंके पास उस वक्त एक मुश्कनाफेके सिवाय और कुछ न था निदान उसीको तोड़ अपने सर्दारोंमें थोड़ा २ बांट खुशी मनाई। हुमायूं बडा दयालु, उदार और विद्वान था, ज्योतिषमें पूरा अभ्यास रखता था, अकबरकी जन्मपत्रीमें अत्युत्तम ग्रह देख खुशीके मारे नाचने लगा था। स० ई० १५४४ में ईरान पहुंचने पर शाह ईरानने यथोचित हुमायूंकी खातिर की और कुछ दिनबाद १० हजार फौज देकर हिन्दोस्तानकी तरफ वापिस भेजा। रास्तेमें हुमायूंने अपने कृतघ्नी, निर्दयी भाई कामरांको परास्त करके काबुल, कंधार तथा पंजाब छीन लिया और दिल्ली की तरफ बढकर स० ई० १५५५ में सिकन्दरशाह सूरको परास्त करके दिल्लीका तख्त विजय किया। सर्दार बैरमखांको जिसने हरहालतमें हुमायूंका साथ दिया था सर्व्वोच्चपदवी खानखानाकी दी गई और आगरेसे बदलकर दिल्लीमें राजधानी नियत की गई। दिल्लीमें केवल ७ महीने राज्य करनेके बाद सन्ध्या समय एक दिन हुमायूं बालाखानेपरसे नमाज पढनेके लिये उतरते वक्त नीचे गिर पड़ा और ४९ वर्षकी उम्रमें मर गया। हुमायूं अपने पिताके समान दृढ चित्त न हो कर बड़ा दयालु था। उसके दुखदाई भाई कई दफे उसके हाथमें पड़े लेकिन उसने कभी जानसे नहीं मारा और इसी लिये उसको अनेक कष्ट उनके द्वारा भोगने पड़े। कहते हैं कि जब हुमायूं शेरसूरसे हारकर भागा जाता था तो भोजपुरके समीप उसका घोड़ा गंगामें गिर पड़ा जिससे वह डूबने लगा, इस मौकेपर निजाम नामक भिश्तीने उसकी जान बचाई और इनाममें यह मांगा कि जब हज़रत आगरेमें पहुँचे तो एक दिन दोपहरके वक्त ढाई घंटेकी बादशाही मुझको अता फर्मावें। जब हुमायूं आगरे पहूंचा तो निजाम भी हाजिर हुआ। हुमायूंके हुक्मसे उसने २½ घंटे तख्तपर बैठकर इजलास किया और तमाम अमीर वजीर उसका हुक्म बजालाये। निजामने इस थोड़ेसे वक्तमें अपनी मशकमेंसे कटवाकर चमड़ेका सिक्का चलाया और अपने भाई बन्दोंको निहाल कर दिया। हुमायूं स. ई. १५०८ में पैदा हुआ स. ई. १५५६ में मरा।

हुलासरामकवि–यह संहलद्वीपी ब्राह्मण प्रयागदत्तके पुत्र जि. बाराबंकी तहसील फतेहपुर, ग्राम रामनगरके रहनेवाले थे। बुद्धिप्रकाश और बैताल पञ्चविं॰ शतिकाका भाषापद्यमें अनुवाद तथा रामायण लंकाकाण्ड इनके रचे ग्रन्थ हैं। वि. सं. १८४५ में जन्मे, वि. स. १९१२ में मरे।

हेमचन्द्र (प्राकृतका अन्तिमवैयाकरण)–कुमारपाल चरित्रसे पता लगता है कि बम्बई प्रदेशान्तर्गत खम्भातके रहनेवाले चाचिग नामक वैश्यके घर वि. सं. ११४५ में चाङ्गदेव नामक पुत्रने जन्म लिया। चाङ्गदेव ९ वर्षकी उम्रमें जैन मत ग्रहण करके साधु हो गया और तबहीसे उसका नाम हेमचन्द्र प्रसिद्ध हुआ जिसकी गणना जैनियोंके महत्पुरुषोंमें है। बड़े होकर हेमचन्द्रने पट्टन (गुजरात) के राजा सिद्धराज तथा कुमारपालके दर्बारमें बड़ा सत्कार पाया, उसके उपदेशके प्रभावसे राजाने जैनधर्म ग्रहण किया और अपने राज्य भरमें उक्त धर्मका प्रचार कराया तथा १४०० विहार बनवाये। जब राजा सिद्धराज निर्वंश मरगया तो हेमचन्द्रने राजमन्त्रियोंकी सम्मातिसे राजाकी जातिके एक लड़के कुमारपालनामकको गद्दीपर बैठा दिया। इसी कारण कुमारपाल हेमचन्द्रको बहुत मानता रहा। निम्नस्थ ग्रन्थ हेमचन्द्रकृत हैं:–कुमारपाल चरित्र, जैनसूत्रभाष्य, वेदप्रचार, भारतसंकेतशास्त्र, धातुपारायण, सिद्धहेमशब्दानुशासन, प्राकृतशब्दानुशासन, अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थनाममाला, देशनाममाला, पुरुषचरित्र, अध्यात्मोपनिषद्, छन्दानुशासन, अलङ्कारचूड़ामणि और निघण्टु। वि. सं. १२२९ में हेमचन्द्र परलोकगामी हुए।

हेमचंद्र बनर्जी (बंगलाकवि)–ये हाईकोर्टके वकील बंगालके रहनेवाले थे। बंगालकाव्य इनका कहा उत्तम है। स॰ ई. १९०३ में सिधारे।

हेमाद्रि पंडित (चतुर्वर्गचिन्तामणिके कर्ता)–यह पंडितजी तैलङ्ग या द्राविड ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। चतुर्वर्गचिन्तामणि इनका रचा ग्रन्थ धर्मशास्त्रमें उत्तम है। यह दक्षिणदेशान्तर्गत देवगिरिके राजा महादेव भूपतिके दर्बारमें सर्व्वोपरि कार्यकर्ता थे। अनेक विद्याओंमें प्रवीण थे, वाग्भट्टकृत अष्टांगहृदयसंहिता पर इन्होंने व्याख्या भी रची थी। पं. बोपदेवके समकालीन होकर प्राय: वि. सं. की १२ वीं शताब्दीमें हुए।

हेरोडोटस–Herodotus (**फिरङ्गियोंका प्रथम इतिहासकार**)– यह यूनानका रहनेवाला था, और वहांके अन्यायी राजा लिडेमसके वक्तमें इसने एशिया, अफेरिका तथा युरूपके अनेक देशोंमें भ्रमण करके भूमण्डलका इतिहास संग्रह किया था और जिन २ देशोंमें गया वहांके लोगोंकी चाल ढाल तथा रहन सहनसे भी जानकारी प्राप्त की थी, इस यात्रासे लौटकर हेरोडोटस यूनानमें आया और स्वदेशवासियोंकी अन्यायी राजा लिडेमसके निकालनेमें मदद की लेकिन उनको कृतघ्नी पाकर यूनान छोड दूसरी जगह जारहा और ९ जिल्दोंमें संसारका इतिहास लिखा। प्राचीन इतिहासकारोंमें हेरोडोटस सबसे अधिक विश्वासयोग्य समझा जाता है लेकिन इसके लेखोंका अधिकांश अद्भुत रसमें है इसकारण उनमेंसे सत्यासत्यका निर्णय करना कठिन है। स० ई० से ४८४ वर्ष पूर्व जन्मे और ७८ वर्षकी उम्रमें मृत्यु हुई।

हैदरअली (**मैसोरका नवाब**)–मैसोर प्रदेशान्तर्गत जिला कोलारके बुड़ीकोट नामक गांवमें हैदरका जन्म स. ई. १७२२ में हुआ। इसका बाप सारीके नवाब फतेमुहम्मदखांके आधीन होकर कोलारका फौजदार था और बुड़ीकोटमें रहता था। बड़े होकर हैदरअली मैसोरके राजा चिकाकृष्णराजके यहां मामूली सिपाहियोंमें भरती हुआ, बढ़ते २ सेनामें ऊंचापद पागया। स. ई. १७६२ में इसने मैसोरनरेश और उसके मन्त्रीको मारकर निकाल दिया और आप मैसोरका नवाब बन बैठा

पश्चात् इसने विदनौरका किला विजय किया और वहांकी लूटसे मालामाल होगया। स० ई० १७३५ में माधवराव चतुर्थ पेशवाने हैदरको परास्त करके ३२ लाख रुपये वसूल किये और बहुतसा मुल्क भी छीन लिया। स० ई० १७६६ में हैदरने मालावार तथा कैलीकट विजयकर किया और स० ई० १७७३–७४ में वट सब मुल्क जो स० ई० १७३५ में पेशवाने छीन लिया था पुनः जीता। ये बड़ा बली, निर्दयी तथा रणकार्य्योंमें दक्ष था। इसने अपना राज्य बहुत बढ़ाया स० ई० १७७२ में कुर्ग भी फतेकर लिया। कुर्ग जीतनेके मौकेपर ७०० निरपराध मनुष्योंके शिर कटवाये जिनमेंसे दो अत्यंत स्वरूवान चेहरे जब हैदरके पैरोंपर काटकर रक्खे गये तो उनको देख उम्र भरमें केवल इसी दफे उसको दया आई। एवं हुक्म दिया कि " अधिक " लोहूमत बहाओ "। स० ई० १७८०–८२ में

अंग्रेजोंसे हैदरका मुकाबिला हुआ, लेकिन वह नहीं हारा । ८० वर्षका होकर स. ई. १८८२ में मरगया । पुरनिया नामक महाराष्ट्र ब्राह्मण हैदरका वजीर सुयोग्य पुरुष था । हैदरका बेटा टीपू सुलतान उत्तराधिकारी हुआ ।

हैने मैन (सैमुयल हैनेमैन–Samuel Hahnemann)--यह जर्मनीके रहनेवाले प्रसिद्ध हकीम थे । इन्होंने होमियो पैथिक चिकित्सा अन्वेषण की थी। इनका बाप तसबीर खींचनेका पेशा करता था और इन्होंने लीपजिगमें रहकर डाक्टरी पढ़ी थी । स० ई० १८३५ में इन्होंने एक फरासीसी औरतसे विवाह किया और फ्रांसको राजधानी पैरिसमें जा रहे जहां अंतसमयतक इनकी बड़ी प्रतिष्ठा रही । स० ई० १७५५ में जन्मे, स० ई० १८०४ में मरे ।

हैमूं वक्काल–इनका असली नाम चंपतराय था. भाटलोग अग्रवालोंकी वंशावली बयान करने इनको अग्रवाल वैश्य बतलाते हैं लेकिन इतिहासोंके अनुसार ये ढूंसर बनियें थे । पहिले यह दुकान करते थे । पश्चात् सलीम सूरने पेठों तथा बाजारोंका दारोगा इनको नियत किया था । मुहम्मद आदिलशाह सूरने गद्दीपर बैठकर इनको अपना वजीर बना लिया और राज्यकाजका सब बोझ इन्हींको सौंप दिया । जब बादशाह अकबर दिल्लीके तख्तपर बैठा तो हैमूंने क्रमशः दिल्ली तथा आगरेका घेरा किया और कई दफे विजय प्राप्त करनेके बाद हारे। बैरमखां खानखाना इनको पकड़कर अकबरके सामने लेगया और कहा कि आप अपनी तलवारसे इसका फिरका शिर धड़से जुदा कर दीजिये । अकबर दयालु तो था ही, एवं उसने अपनी तलवार हैमूंके शिरमें छुआकर छोड़ दिया, लेकिन बैरमखांने तुरंत हैमूंके टुकड़े बखेर दिये । हैमूं बड़े वीर और चतुर थे ।

हैवलाक (सरहेनरी हैवलाक–Sir Henery Havelock)–इनके बापडरहम (इङ्गलैन्ड) के रहनेवाले एक सौदागर थे । लन्डनमें इन्होंने शिक्षा पाई थी और स० ई० १८१५ में अंग्रेजी सेनामें भरती हुये थे । स० ई० १८२३ में हिंदोस्तानको आये और आफगानिस्तान तथा सिक्खोंकी लड़ाइयोंमें बड़ी वीरतासे लड़े । सन् ५७ के गदरमें लखनऊ तथा कानपुरमें इन्होंने बागियोंको परास्त किया । लखनऊ रेजीडेन्सीमें घिरे हुये अंग्रेजोंके प्राण इन्होंने बड़ी वीरतासे लड़कर बचाये, उक्त अवसर पर इन्होंने ४०० सेनासे ५० हजार

बागियोंको परास्त किया था लेकिन अंतमें आप भी घायल हुये और कुछही दिन बाद मरगये। जब इनकी वीरताकी रिपोर्ट इङ्गलैन्ड पहुंची तो पार्लिया-मेंटने प्रसन्न होकर अंग्रेजी सेनामें मेजर जनरलका ओहदा तथा १ हजार पौंड वार्षिककी पेन्शन इनको दी, लेकिन जब यह खबर हिंदोस्तानमें आई तो हैवलाक साहब मरचुके थे। स० ई० १७९५ में जन्में स० ई० १८५८ में लखनऊमें मरे।

हेस्टिङ्गज (वारेन हेस्टिङ्गज–Warren Hasting)– इन्होंने वोर सेस्टर शायर (इङ्गलैन्डके) एक प्राचीन प्रतिष्ठित वंशमें जन्म लेकर वेस्ट मिनिस्टर इस्कूलमें शिक्षा पाई थी। स० ई० १७५० में क्लार्कके पदपर नियत होकर ईस्ट इन्डिया कम्पनीकी चाकरीमें हिंदोस्तानको आये। फार्सी तथा हिंदोस्तानी भाषा भी खूब जानते थे और बढ़ते २ गवर्नर जेनरलके पदको प्राप्त हुये थे। इन्होंने हिंदोस्तानमें अंग्रेजी अमल्दारी बहुत कुछ बढ़ाई। स० ई० १७८५ में नौकरी छोड़ इङ्गलैंड चले गये। और वहांपर उन अत्याचारोंके कारण, जो हिंदो-स्तानमें रहकर इन्होंने काशीनरेश चेतसिंहपर तथा अवधकी बेगमोंपर किये थे, पार्लियामेन्टने इनपर मुकद्दमा कायम किया। ८ वर्ष पर्य्यंत मुकद्दमा चला, अंतमें स० ई० १७९५ की साल निरपराध समझ साफ छोड़ दिये गये। उक्त मुकद्दमें इनका बहुत खर्च हुआ था जिससे गरीब होगये थे लेकिन थोड़े ही दिन बाद पार्लियामेन्टने ४ हजार पौंड वार्षिककी पेन्शन इनको दी। स. ई. १७६६ में जन्मे,. ई. १८१८ में मरे।

होमर–(Homer) इस यूनानी कविके देश, काष्ठ तथा चरित्रोंकी निस्बत ठीक हाल ज्ञात नहीं होता। अनेक विद्वानोंकी सम्मति है कि यह सिमनी की रहनेवाली एक अनाथ लड़कीके पुत्र थे। प्रसिद्ध गन्थ "इलियड" तथा "ओडेसी" इन्हींके रचे हुये हैं। उक्त ग्रंथोंका अनुवाद अंग्रेजीमें कविपोपने किया है। होमर अन्धे थे और इनसे पहिले यूरूपमें कोई दूसरा कवि नहीं हुआ। समय इनका स. ई. से प्रायः ८०० वर्ष पूर्व है।

(होलराय कविहोल)–मुगल सम्राट् अकबरके दीवान राजा हरवंशराय इनका सत्कार करते थे। हरवंशरायने जि० बारांबंकी में इनको कुछ जमीन दी

थी जिसपर इन्होंने अपने नामका होलपुर गांव बसाया था । एक दिन गो० तुलसीदासजी होलपुरमें होकर निकले, होलरायजीने उनकी बड़ी आव भगतकी और उनके लौटेकी प्रशंसामें कहा कि—

" लोटा तुलसीदासको लाख टकाको मोल "

गुसांईजीने यह सुनकर कहा कि—

"मोल तोल कछु है नहीं,लेउ रायकवि होल"। होलरायजीने उस लोटेकी मूर्तिके समान स्थापना की और जबतक जीते रहे उसकी पूजा करते रहे उक्त लोटा होलपुरमें अबतक मौजूद है । होलराय वि.सं. १६४० में विद्यमान थे । ग्रामहोलपुर अबतक उनके वंशजोंके अधिकारमें है ।

हंसराज (हंसराज निदानके कर्ता)—इनकी कविता श्लोक-वद्ध अति अनूठी है । श्लोक ऐसे ललित हैं कि जिनके पढने तथा श्रवण मात्र हीसे चित्तको आनन्द होता है । यह बड़े वैद्य थे । विशेष हाल इनका नहीं मालूम ।

ह्यूम (डैविडह्यूम—David Hume)—इस प्रसिद्ध इतिहासकारने वर-विकशायर (इङ्गलैन्ड) के एक सभ्य मनुष्यके घर जन्म लेकर एडिनबरो (स्काटलेन्ड) के विश्व विद्यालयमें शिक्षा पाई थी । स० ई० १७३४ में बृस्टल नगरके किसी प्रधान कार्य्यालयमें क्लार्क (लेखक) हो गये थे। लेकिन काव्य रचनाकी ओर अधिक रुचि होनेके कारण थोडेही दिनोंबाद नौकरी छोड कर फ्रांसको चले गये । इन्होंने बहुतसी पुस्तकें रची थीं जिनमेंसे इङ्गलिस्तानका इतिहास मुख्य है । यह अनेक प्रतिष्ठित सरकारी ओहदों पर भी रहे थे । अन्तमें थोढीसी पेन्शन पाकर अपनी जन्म भूमिमें आ रहे । इनके बाप वर विकशायरसे स्काटलैन्डकी राजधानी एडिनबरोमें जा बसे थे और वहीं पर स० ई० १७११ में डैविड ह्यूमका जन्म हुआ था । स०ई० १७७६ में डैविड-ह्यूम सिधारे ।

ह्योई थसङ्ग—(Hiuen Thsang)—यह चीनी पथिक बौद्ध साधू था । स० ई० ६२९ में चीनसे चलकर फरगाना, समरकंद, बुखारा तथा

बल्ख होता हुआ हिन्दोस्तानको आया था। और इस देशकी चारों दिशाओंमें भ्रमण करके स० ई० ६४५ में चीनको लौट गया था। इसने अपनी यात्राके ग्रन्थमें लिखा है कि "उन दिनों काबुलसे लेकर बंगाल तक और हिमालयसे लेकर सिंहल द्वीप तक सर्वत्र देश छोटे छोटे राज्योंमें विभाजित था। काश्मीर, मगध, और उड़ीसाके सिवाय बौद्धमतकी दशा अन्य सब जगह गिरती हुई थी। भारतवासी मनुष्य सच्चे, विद्वान, शूरवीर परिश्रमी तथा उद्योगी थे"।

ह्वोईथसङ्गने अपने यात्राके ग्रन्थमें उस समयके अनेक छोटे छोटे राज्योंका भी, जिनके अब नामतक नष्ट हो गये हैं, व्योरेवार सविस्तर वृत्तांत लिखा है। प्रत्येक राज्यके सम्बन्धमें उसकी सीमा सहित लम्बाई चौड़ाई तथा फसलों और फल फूलोंका हाल भी लिखा है। मनुष्योंकी सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था और रहन सहन् ढङ्ग चाल इत्यादिका भी वर्णन किया है। संक्षिप्त उक्त पुस्तकके देखनेसे भारत वर्षकी दशा जो स० ई० के सातवें शतकमें थी, स्पष्ट मालूम हो जाती है।

क्षेमकरण मिश्र (कवीश्वर)—यह सरवरिया ब्राह्मण ग्राम धनौली तहसील रामसनेही घाट जि० बाराबंकीके रहनेवाले थे। पिताका नाम आधार मिश्र, पितामहका लछीराम और प्रपितामहका नाम लालमणि मिश्र था। वि० सं० १८३५ में इनका जन्म हुआ, ७ वर्षकी अवस्थासे संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया, कई बड़े २ पंडित विद्वानोंसे विद्या पढ़ी, पश्चात् बहुत दिनोंतक मथुरामें रहकर पिंगल शास्त्राध्ययन किया। यह संस्कृत तथा भाषा दोनों हीमें कविता करते थे। संस्कृतमें श्रीराम रत्नाकर वृत्त, रामास्पद, गुरुकथा तथा अह्निक इनके रचे ग्रन्थ हैं। भाषामें रामगीतमाला, कृष्णचरितामृत, पदविलास, वृत्तभास्कर, रघुनाथ घनाक्षरी, गोकुल चन्द्रमा तथा कथानक नामके ग्रन्थ इन्होंने रचे थे। इन्होंने अम्बाला, बरोड़ा तथा बम्बई आदिस्थानमें जाकर बहुतसा द्रव्योपार्जन किया था और गयाश्राद्ध, ब्रह्मभोज तथा ८ कन्याओंके विवाह धूमधामसे करनेमें खूब खर्च किया था। अन्तावस्थामें १४ वर्ष पर्य्यंत अयोध्याबास करके क्षेमकरणजी वि. स. १९१५ की साल परमधामको सिधारे।

क्षेमराज श्रीकृष्णदासजी (मालिक श्रीवेंकटेश्वर स्टीम्-प्रेस)

श्रीवेङ्कटेश्वर–समाचारके जन्मदाता स्वर्गवासी पुण्यात्मा सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास उन महापुरुषोंमेंसे एक थे जो क्रियात्मकरूपसे संसारके सम्मुख पवित्र जीवनका उदाहरण रख गये हैं और जिनका पावन–चरित्र आलोकस्तम्भ की भांति भूले भटकोंको सुमार्ग बता रहा है । जीवन–संग्राममें पराजयपर पराजय पाकर हतोत्साह हो जानेवाले नवयुवक शताब्दियोंतक उनके सत्साहस, धैर्य, अध्यवसाय, दृढता, धर्मानुराग और औदार्यसे नवीन-स्फूर्ति, संघर्षमें पुनः प्रविष्ट होनेकी उमङ्ग और क्रियाशील जीवनमें प्रवृत्ति करानेवाली शक्ति पाते रहेंगे । श्रीमान् सेठजीका जन्म अत्यन्त सामान्य स्थितिमें हुआ था, और होश सँभालते ही उन्हें पता लग गया था कि समस्त सांसारिक–साधन–विहीन रहकर ही जीवन–संग्राममें प्रवृत्त होना है और विजय प्राप्त करनी है । वे उसी स्थितिमें जीवन-संग्राममें प्रवृत्त हुए और असाधारण कठिनाइयोंके दलोंका उसी दशामें मुकाबिला करते हुए बम्बई तक आ पहुँचे; और अन्ततः संसार-समरमें विजयी वीरकी भांति हँसते हँसते, स्वजन-परिजनोंसे परिवेष्टित अवस्थामें संसारसे विदा हुए । विदा होते समय उन्होंने २५१००० रुपये सर्वसाधारण-जनके हितार्थ दान किये और लाखोंकी सम्पत्ति अपने सुयोग्य पुत्रोंके लिये छोड़ गये । इस प्रकार उन्होंने दिखला दिया कि सांसारिक-साधन विहीन होने पर भी मनुष्य किस प्रकार विजयी और सफल हो सकता है ।

स्वर्गवासी सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीका जीवन पवित्र, आदर्शस्वरूप और स्फूर्तिप्रदायक है । श्रीवेङ्कटेश्वर–समाचारकी नींव उसी पुण्यात्माके कर–कमलोंसे रखी गयी थी । और आज उसे फलते फूलते देखकर उनकी आत्माको परम सन्तोष हो रहा होगा ।

बीकानेर राज्यके अन्तर्गत चूरू नामक ग्राममें, स्वर्गवासी सेठ खेमराजका जन्म अग्रवाल वैश्यकुलमें हुआ था । घरकी संकुचित–आर्थिक–स्थिति और ग्राम–जीवनकी कठिनाइयोंमें जैसा कुछ विद्याभ्यास किया जा सकता है, वैसा ही उन्हें भी प्राप्त हो सका । किन्तु जो निधि उन्होंने प्रभुसे पायी थी वह उस कृत्रिम शिक्षासे कहीं अधिक समुज्ज्वल, कहीं अधिक देदीप्यमान और कहीं अधिक शक्तिप्रदायिनी थी ।

घरकी आर्थिक-स्थितिने उन्हें छोटी अवस्थामें ही बाध्य कर दिया कि अपने ज्येष्ठ भ्राता (स्व० सेठ) गङ्गाविष्णुजीके साथ घरसे निकलकर रोजगार तलाश करें। दोनों भाई घरसे चल पड़े और रतलाम,उज्जैन इत्यादि नगरोंमें दलाली करते हुए सफलता प्राप्तिका प्रयत्न करते रहे। किन्तु यह कार्य उनकी प्रतिभा-प्रकृतिके विरुद्ध था, इसलिये उस दलालीमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली, जो एक प्रकारसे ऐसी स्थितिमें वैश्यकुलका, विशेषकर मारवाड़ी वैश्योंका अवलम्ब बनी हुई है।इस असफलतासे बड़े भाईको बहुत निराशा हुई, यहां तक कि उन्होंने मैदान छोड़ देनेका विचार करलिया, उन्होंने निश्चय किया कि इस जीवनसे तो वैराग्य लेकर हरिस्मरणमें जीवन व्यतीत कर देना ही अच्छा है। उन दिनों दोनों भाई रतलामके नरसिंहजीके मन्दिरमें रहते थे। गंगाविष्णुजीके यह विचार जब एक साधुने सुने, जो वहां आया हुआ था,तो उसने उन्हें प्रोत्साहन दिया और पुस्तकों-का रोजगार करनेको कहा। साधुने यह भी कहा कि सुलभ मूल्यमें सच्छास्त्रग्रन्थोंका प्रचार करो और साधुसन्तोंको कम कीमतपर पुस्तकें दिया करो। इस प्रकार उनके जीवन-संग्रामका क्षेत्र बदल गया। जिस मोर्चेपर पुनः पुनः पराजयका सामना करना पड़ा था, अब उसको छोड़कर नया मोर्चा लगाया गया। दोनों भाइयोंने पुस्तक प्रचारका कार्य आरम्भ कर दिया। उनकी रुचि भी इस ओर ही थी। पहले श्रीगङ्गाविष्णुजी और फिर श्रीखेमराजजी बम्बई चले आये और पुस्तकोंका रोजगार करने लगे। बहुत ही थोड़ी पूंजीसे इस कार्यका श्रीगणेश किया गया था। कुछ दिन पश्चात् लिथोका एक छोटासा प्रेस लेकर काम किया गया, जो बढ़ते २ वर्तमान रूपको प्राप्त हो गया है। इस कार्यमें सफलता प्राप्त होनेपर बड़े भाईने कल्याणमें अपना जुदा प्रेस स्थापित कर लिया और बम्बईका प्रेस श्री० खेमराजजीके पास रहा। श्रीगङ्गाविष्णुजीका स्वर्गवास होजानेपर कल्याणका भी प्रेस श्रीखेमराजजीको मिल गया।

स्वर्गवासी सेठ श्रीखेमराजजीका जीवन एक सात्विक जीवन था वे धर्मानुरा-गी, आस्तिक, गोब्राह्मणसेवी और परोपकारी थे। वे बहुत ही सादगीसे रहते थे और उन्होंने कभी अपना देशी चलन नहीं छोड़ा। उन्होंने घरसे खाली हाथ कभी किसीको नहीं लौटाया। इसपर भी उन्हें अभिमान या क्रोध नामको भी न था। किसीने उन्हें क्रुद्ध होता नहीं देखा। उन्होंने जिसे एकबार आश्रय दे

दिया उसे फिर अपने हाथसे अलग नहीं किया । वे अतिशय विनम्र और शीलवान् थे । ईश्वर और धर्मका अनुराग उनके प्रत्येक रक्तकणमें परिव्याप्त था । इसीलिये जब मारवाड़ी अग्रवाल सभाको जन्म देकर प्रथमाधिवेशनका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थना की गयी तो सबसे पहले उन्होंने यह आश्वासन मांगा कि यह सभा आज या आगे चलकर कोई धर्मविरुद्ध कार्य न करेगी । उन्हें तीर्थ यात्रासे बड़ा प्रेम था । एकबार कोई ढाई· तीनसौ साधुओंको लेकर आप श्रीबदरीनारायणजीकी यात्राको गये थे । उस समय टिहरी नरेशने विशेषाज्ञा प्रचारित करके सेठजीकी सुविधाके लिये स्थान स्थानपर सरकारी अफसर नियुक्त कर दिये थे । भगवानके दर्शनोपरान्त जब सेठजीको यह विदित हुआ कि भोगमें विदेशी खांड़ काममें लायी जाती है तो उन्हें बड़ा क्लेश हुआ और उन्होंने प्रयत्न करके २॥—३ सौ बोरे गङ्गाजीमें डलवा दिये और उनके स्थानपर इतने ही बोरे स्वदेशी खांडके मन्दिरमें रखवा दिये । मद्रासप्रान्तके भूतपूरी, श्रीरङ्गजी और बालाजी स्थानोंमें तथा नासिक, उज्जैन और हृषीकेशमें आपने धर्मशालाएँ बनवा दीं जहां अन्नक्षेत्र खुले हैं ।

इस प्रकार आपने जी भरकर धन पैदा किया और जी भरकर ही सत्कार्योंमें लगाया एवं सत्पात्रोंको दान किया । किन्तु इन सबसे बढ़कर उन्होंने जो उपकार किया वह है वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थोंका सुलभ प्रचार और श्रीवेङ्कटेश्वर—समाचारका प्रकाशन । अभी कुछ दिन पूर्व हिन्दूयूनिवर्सिटीके प्रोवायस चांसर श्रीयुत ध्रुव 'श्रीवेङ्कटेश्वर' प्रेसमें पधारे थे,प्रेससे रवाना होते समय आपने सन्तोष और प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि आज श्रीवेंकटेश्वर प्रेस और पुस्तकालय देखकर मुझे विश्वास हो गया है । कि अभी तक देशमें अपनी आर्यसंस्कृति और देववाणीसे अनुराग रखनेवाले पर्याप्त सङ्ख्यामें विद्यमान हैं । सेठजीने देशके कोने कोनेमें संस्कृत—ग्रन्थ पहुँचा दिये और आज शायद बहुत ही थोड़े ग्राम और बहुत ही थोड़े हिन्दू ऐसे निकलेंगे जो उनके इस उपकारसे उपकृत नहीं हुए हैं । हिन्दी पठित जनतामें जागृति पैदा करनेके लिये उन्होंने श्रीवेङ्कटेश्वर—समाचारको जन्म दिया था, जो सैंतीस वर्षसे निरन्तर सेवा कर रहा है । युद्ध कालमें ५ वर्ष तक इसका दैनिक संस्करण भी आपने ही प्रकाशित किया था ।

श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस और कार्यालयके अतिरिक्त सेठ खेमराजजी और भी बड़ी सम्पत्तियोंके स्वामी थे, पर आजतक किसीने उन्हें इसका गर्व करते न पाया। उनके लाखोंके खर्च थे, पर सेठजीको किसीने कभी भड़कीले आडम्बरसे युक्त न देखा। जहां बड़े बड़े नरेशों और नामी विद्वानोंका आना जाना सेठजीके पास लगा रहता था, वहां दीन दरिद्री भी नित्य उनके पास आया ही करते थे, पर किसीने आजतक सेठजीकी सभ्यतामें फरक न देखा। जैसे प्रेम और मिलनसारी से वे नरेशों और विद्वानोंसे भेंट करते वैसे ही दीन हीन मनुष्योंकी प्रार्थना भी सुनते और यथाशक्ति उनका मनोरथ सिद्ध करते। हँसमुख ऐसे कि शायद ही किसीने कभी उन्हें क्रोधमें देखा हो दम्भ तो उन्हें छू नहीं गया। सरल इतने कि उनका सारा जीवन ही सरलता-मय कहना चाहिये। खान-पान, रहन-सहन, वार्त्तालाप, सबमें सरल। परन्तु इस सरलताकी तहमें बहुत ऊँचे दर्जेका अनुभव और ज्ञान छिपी रहती थी। ऐसे ही अनुभवके कारण सेठजी मनुष्यको पहचाननेवाले और वैसी ही उसकी कद्र करनेवाले थे। उदार ऐसे, कि छिद्रा-न्वेषण न कर, गुण ढूंढा करते और सच्ची गुणग्राहकता दिखाते थे। धार्मिकता, सत्यप्रियता, सदाचार, दया, और न्यायशीलताका तो कहना ही क्या। धर्मपालन में आदर्श श्रीवैष्णव और सच्चे आस्तिक हिन्दू थे। सरल-हृदय पुरुषका सत्यवक्ता होना स्वाभाविक ही है; इसीसे किसीने कभी कोई लगी लिपटी बात आपके मुख से न सुनी। सदाचारके आप जीते जागते आदर्श थे। निज बाहुबलसे वैभव प्राप्त करनेके पहले और पीछे, दोनों ही हालतोंमें आपका आचार विचार अविचल बना रहा। दया आपमें कूट कूटकर भरी थी। जीव मात्रका कष्ट असह्य था। उसके निवारणार्थ अपनेसे जो बन सकता, उसके करनेमें सदा तत्पर रहते थे।

आपने हजारों संस्कृत तथा हिन्दीके दुष्प्राप्य प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथोंको प्रकाशित कर तथा उनके तिलक रचवाकर और आवश्यकीय विषयोंपर नये ग्रंथ बनवाकर सर्वसाधारणके लिये आपने ऐसी बड़ी सुलभता कर दी है कि भारत भूमिमें पहलेकी अपेक्षा अब बहुत कुछ विद्याकी वृद्धि देखनेमें आती है। बड़े २ राजा

महाराजा बम्बई आ जानेपर श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमें पधारते थे तो सेठजी उनका सन्मान करना अपना सौभाग्य समझते थे और वह भी धर्मरत्न श्रीमान् सेठजीकी यथोचित प्रतिष्ठा करके सर्व साधारणको देश हितकी उत्तेजना देते थे । श्रीमान् सेठजी स्वधर्मप्रिय पुरुष और नीतिनिपुण थे । मुरादाबाद निवासी यजुर्वेद भाष्यकार विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र,तन्त्रोंके आदि अनुवादक पं०बलदेवप्रसादजी मिश्र, और हिन्दीके सुप्रतिष्ठित. सुलेखक पं० कन्हैयालालजी मिश्र आदिसे धर्मरत्न श्रीमान् सेठ खेमराजजी महोदयका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध और विशेष स्नेह रहता था, आप मिश्रजीका बड़ा सन्मान और सत्कार करते थे । श्रीबद्रीनारायणकी यात्रा करते समय श्रीमान् सेठजी मुरादाबाद मिश्रजीके यहां पधारे थे आपने यहांके पंडितोंका यथोचित सत्कार भी किया था ।

धर्म रत्न श्रीमान् सेठ खेमराजजी अपनी दो सुपुत्रियां और पुत्र रावसाहब श्रीमान् सेठ रंगनाथजी और कनिष्ठ श्रीमान् सेठ श्रीनिवासजीको छोड़ प्रथम श्रावण शु० पूर्णिमा भृगुवार संवत १९७७ को गोलोकवासी हुए । श्रीमान् धर्मरत्न सेठजीके दोनों ही सुयोग्य पुत्र विनयावतार–धार्मिकप्रवर–दानवीर–पुरुषरत्न अपने पूज्य पिताजीके सुयशका अवलम्बन कर रहे हैं और बड़ी योग्यता बुद्धिमत्ता और चतुरताके साथ श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेसका और लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस कल्याण आदि संचालन कार्यकर रहे हैं । आप दोनों ही भ्राता बड़े उदार और सर्वगुण सम्पन्न हैं।

संसारके महान पुरुष।

परिशिष्ट भाग।

पं० कन्हैयालालजी मिश्र--हिन्दी साहित्य प्रेमियोंमें ऐसा कौन पुरुष है कि जिसने अनेक ग्रंथोंके टीकाकार व रचयिता तथा हिन्दी साहित्यके अपूर्व सुप्रसिद्ध सुलेखक मुरादाबाद निवासी कान्यकुब्ज कुल भूषण कात्यायन गोत्रीय पं० कन्हैयालालजी मिश्रका नाम न सुनाहो। आप पं० सुखानन्दजी मिश्रके सुपुत्र तथा श्रीभारतधर्म महामण्डलके महामहोपदेशक विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र एवं अनेक ग्रंथोंके अनुवादक, संशोधक और संपादक तथा हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखक पं० बलदेवप्रसादजीमिश्रके लघुसहोदर भ्राता थे। मिश्रजी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्यके अच्छे विद्वान् थे। आपने संस्कृतके बहुतसे ग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दी भाषामें किया है। आपके रचित अनुवादित और संशोधित अनेकों ग्रन्थ हिन्दी भाषाकी शोभा बढ़ा रहे हैं। कुछ पुस्तकोंको छोड़कर शेष छोटीसे छोटी और बड़ीसे बड़ी जितनी पुस्तकें मिश्रजीकी लेखनीसे निकली हैं वे सब "श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई" में प्रकाशित हुई हैं। मिश्रजीका अधिक समय लिखने पढ़ने तथा साहित्य चर्चामें ही व्यतीत होता था। आप जिस समय ग्रंथोंकी रचना और अनुवाद करने बैठते थे उस समय आपको भूख प्यास और निद्रा देवीकी कुछ पर्वा नहीं रहती थी, आप बड़े तेज लिखनेवाले थे। समय पड़ने पर कविता भी कर लिया करते थे। किसी किसी दिनतो आपको ग्रन्थ लिखते लिखते रात्रिके दो दो तीन तीन बज जाया करते थे। आपके पास कई दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्र भी आते थे, जबतक आप उनको आद्योपान्त न पढ़ लेते तबतक आपको दूसरा कार्य अच्छा न लगता था। आपने श्रीहरि भक्तिविलास

(वैष्णव संप्रदाय) नामक ग्रंथका अनुवाद बड़ा ही सुन्दर रोचक और सरल भाषामें किया है। आपने तुलसीकृत रामायण पर भी अमृत धारानामक टीका की है। ताजिक संग्रह-मनुस्मृति-शुकसागर दशकर्म पद्धति-सौभाग्यलक्ष्मी-स्तोत्ररत्नमाला दीपिका व शुद्ध दीपिका-अष्टसिद्धि मार्कण्डेय पुराण-हरिश्चन्द्रोपाख्यान आदि अनेक ग्रन्थ अनुवादित और भारतसार-नारी देहतत्व-हरिश्चचन्द्र नाटक-सनातन-धर्म भजनमाला-भक्तमाला आदि ग्रन्थ स्वरचित हैं। आप समय नष्ट न होने देनेके विचारसे एक ही समय भोजन किया करते थे, आपने अपना जीवन साहित्य चर्चा और श्रीवेंकटेश्वर प्रेसकी सेवामें ही लगाया था। संगीत शास्त्रमें भी आपकी विशेष रुचि रहती थी। आपसे छोटे बड़े सब प्रसन्न रहते थे, वास्तवमें पं० कन्हैयालालजीमिश्र बहुत ही उदार और सरल प्रकृति वाले थे, आपको अभिमान किंचित् मात्र भी न था, जब कभी किसीको दुःख होता। आप तुरन्त ही अपना सब काम छोडकर उसकी सेवामें लग जाते थे। आपके पूर्वज पाटली पुत्र (पटने) से मुरादाबाद आ बसे थे। आप सनातनधर्मके कट्टर पक्षपाती थे और उसकी उन्नतिका भी आपको पूरा ध्यान रहता था।

आप मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराजके अनन्य भक्त थे। उठते बैठते सदा उनके ही चरण कमलोंका ध्यान करते एवं उनके ही नाम गाते थे।

पं० कन्हैयालालजी मिश्र मुरादाबादसे सन् १९२६ में बम्बई आये,आपने यहां "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस" में आकर बड़े सुचारु रूपसे अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद-संशोधन और सम्पादन आदि कार्य किया। आप लगभग एक वर्षतक इसी प्रकार साहित्य सेवामें लगे रहे।

परमगुण ग्राहक-विद्या प्रचारक-वैश्य कुल कमल दिवाकर "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेसा-ध्यक्ष, रावसाहब श्रीमान् सेठ रंगनाथजी तथा श्रीश्रीनिवासजी महोदय अपने इष्ट मित्र तथा बन्धु बान्धवों सहित सन् १९२७ में कुंभ पर्वपर हरिद्वार पधारे। वहां आप साधु महात्माओंका सत्संग करते-धर्मलाभ लेते-ब्राह्मणोंका सत्कार करते तथा काशी श्रीविश्वनाथजीके दर्शनोंका फल लेते हुये प्रयागराज (त्रिवेणी)

पधारे । हरिद्वारसे पं० कन्हैयालालजी मिश्रके भ्रातृज पं० जगदीशप्रसाद मिश्र भी सपरिवार इस तीर्थ यात्रामें श्रीमान् सेठजीके साथ हो लिये थे।

कुछ आवश्यकीय विचार करने तथा चि० जगदीशप्रसादमिश्र आदिसे मिलनेके लिये पं० कन्हैयालालजी मिश्र २२ मईको वम्बईसे चलकर काशी-विश्वनाथका दर्शन करते हुये २५ मईकी रातको ९ बजे प्रयागराज पहुंचे । मिश्रजी अपने परम हितैषी सेठजी तथा अपने परिवार जनोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुये, कुशल मंगलके पश्चात् आपने कहा-"मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है मार्गमें मुझे लू लग गई है निर्बलता अधिक है" । उसी समय परम कृपालु श्रीमान् सेठजीने अच्छे अच्छे योग्य वैद्यों तथा डाक्टरोंको बुलाकर यथोचित चिकित्सा कराई जिनके प्रभावसे मिश्रजीकी अवस्था धीरे २ सुधरने लगी । अन्तमें सहसा मिश्रजीका स्वास्थ्य बिगड़ा और ज्येष्ठ कृ० नौमी बुधवार तदनुसार ता० २५ मई सन् १९२७ को रात्रिके दो बजे ५५ वर्षकी अवस्थामें पं० कन्हैयालालजी मिश्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते हुये इस नश्वर शरीरको त्यागकर अपने कुटुम्बियोंको विलखता हुआ छोड़ सदाके लिये ब्रह्ममें लीन होगये ।

मिश्रजीके कोई पुत्र नहीं था, एक मात्र पुत्री 'प्रभा' थी, उन्हींका सुयोग्य पुत्र चि० नन्दलाल त्रिपाठी पं० कन्हैयालालजीके दौहित्र हैं, मिश्रजीने पुत्रके समान इनका लालन पालन किया था।

धर्मरत्न श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी श्रीमान् सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी, श्रीछतरपुर नरेश, दरभंगा नरेश, आदि नरेन्द्र शिरोमणि आपका बड़ा सन्मान करते थे।

पं० कन्हैयालालजी मिश्रके बृहद् पुस्तकालय मुरादाबादमें हिन्दी-संस्कृत-गुजराती-मराठी और बंगला आदिकी शतशः उत्तमोत्तम पुस्तकें अभीतक विद्यमान हैं

पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र-मिश्रजीका जन्म आषाढ़ कृष्ण द्वितीया संवत् १९१९ को रात्रिके १२ बजे मुरादाबादमें हुआ था । आप कात्यायन गोत्रीय

कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, आपके पूर्व पुरुष पहले लुठियाँयसे पटनेमें आकर रहे और आपके दादा वैद्यराज पं० शिवदयालुजी मिश्र पटनेसे मुरादाबाद आकर बसे। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रके लघु सहोदर भ्राता, अनेक ग्रन्थोंके अनुवादक-संशोधक और सम्पादक तथा हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखक पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र और अनेक ग्रन्थोंके टीकाकार व रचयिता तथा हिन्दी साहित्यके अपूर्व सुप्रसिद्ध सुलेखक पं० कन्हैयालालजी मिश्र थे। आपके पिताका नाम श्री पं० सुखानन्दजी मिश्र था।

पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र जब पांच वर्षके हुये तब इनकी वर्ष गांठ बड़े समारोहके साथ मनाई गयी अकस्मात् उस दिन सायंकालके समय मोहल्लेमें खेलते हुये इनको एक चोर उठाकर जंगलमें ले गया वहां इनके कुल स्वर्ण आभूषण उतार और इनको इकला छोड़ चलता बना। मिश्रजी रोते विलखते उस महा अंधियारी रात्रिमें एक वृक्षके नीचे आकर खड़े होगये। दैवयोगसे एक वृद्ध पुरुष उधर आ निकला और इनको रोता विलखता तथा घबराया हुआ देख नगरके थानेमें पहुंचा दिया। उधर इनके पिता बहुत व्याकुल हो अपने इष्ट मित्रोंके साथ ढूंढते फिर रहे थे। उस समय पं० छोटेलालजी ज्योतिषीने पं० सुखानन्दजी मिश्रसे कहा—"कि आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें आपका पुत्र जीवित है दाक्षिण दिशाकी ओर ढूँढ़नेपर मिलेगा। सुतरां ऐसाही हुआ नगरके बाहर उसी थानेमें इनको पाया। जिस समय इनकी अवस्थाका आठवां वर्ष आरम्भ हुआ तब मिश्रजीका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ उसी दिनसे उनकी शिक्षा दीक्षाका भी प्रयत्न किया गया इसके दो वर्ष पीछे इन्होंने अंग्रेजी पढना आरम्भ किया और उसे यह पांच वर्ष तक पढते रहे। परन्तु एक आर्य समाजी मास्टरसे धार्मिक वाद विवाद हो उठनेके कारण इन्होंने स्कूल छोड़ दिया और घर पर पं० भवानीदत्तजी शास्त्रीसे संस्कृत पढना आरम्भ किया। व्याकरण-काव्य-कोष आदिका अध्ययनकर-लेनेपर मिश्रजीने स्वयं अच्छे अच्छे ग्रन्थोंके पढनेका अभ्यास डाला जिससे संस्कृत विद्या और हिन्दूधर्म शास्त्र इन दोनोंमें इनकी खासी योग्यता हो गई। २५। २६

वर्षकी अवस्थामें आपने हिन्दी-अंग्रेजी और संस्कृतके अतिरिक्त गुजराती, मराठी, उर्दू और बंगला साहित्यका भी विज्ञान अच्छी तरह प्राप्त कर लिया। आपके सामने कैसा ही कठिनसे कठिन संस्कृतका ग्रन्थ क्यों न हो उसको आप भली भांति लगा दिया करते थे।

मिश्रजीने एक कामेश्वरनाथ संस्कृत पाठशाला भी सन १८८८ में मोहल्ले किसरौलमें खोली थी, जिसका कार्य सन् १९२० तक सुचारु रूपसे चला। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रको सनातनधर्मपर स्वाभाविक श्रद्धा थी इसीसे सबसे प्रथम आपने दयानन्दमत खंडन विषयपर "दयानन्द तिमिरभास्कर" नामक पुस्तक रची। इस पुस्तकका सनातन धर्मावलम्बी जनताने बड़ा आदर और सन्मान किया। इससे मिश्रजीका उत्साह और बढ़ गया और फिर यह पुस्तक रचनामें संलग्न हुये और फिर तो आपने एकके बाद एक ग्रंथ लिखना आरम्भ किया। इस प्रकार आपने सैकडों ग्रन्थोंका अनुवाद, सम्पादन और संशोधन किया, साथ ही अनेकों ग्रन्थोंको आपने स्वयं भी निर्माण किया। सबसे प्रथम मिश्रजीने संवत् १९४५ में रामायणका संजीवनी नामक तिलक किया। इसके पश्चात् वाल्मीकि रामायण, शिवपुराण, विष्णुपुराण, शुक्ल यजुर्वेद, श्रीमद्भागवत, निर्णयसिन्धु, देवीभागवत, लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, रुद्राष्टाध्यायी, द्रव्यगुण, पंचतन्त्र, श्रुतबोध, संस्कृतारोहण, मनुस्मृति, गीता, विहारी सतसई, वृहद्यवन जातक, वैद्यरत्न, रघुवंश, कल्पपंच प्रयोग, जाति निर्णय, आदिकी भाषाटीका की। भक्तमाल—विश्रामसागर अष्टादशपुराण दर्पण, शकुन्तला नाटक, सीतावनवास नाटक, दयानन्द तिमिर भास्कर, जातिभास्कर आदि ग्रन्थ स्वयं रचे हैं।

मिश्रजीके कुछ ग्रन्थ छोड़ शेष सब ही ग्रन्थ "श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस बम्बई" में मिलते हैं। आप हिन्दू धर्मके सच्चे पक्षपाती और हितेच्छु थे। इस लिये आप व्याख्यान देनेकी भी अच्छी शक्ति रखते थे। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रने सबसे प्रथम सन १८९६ वैशाख सुदि पूर्णिमाको जलालाबादकी सनातनधर्म सभामें तीन दिन बड़े महत्त्वका व्याख्यान दिया, उसके पश्चात् एक उत्सव धामपुरमें सन

१८९६ में हुआ वहां भी आपने हिन्दू धर्मपर बड़े प्रभावशाली व्याख्यान दिये। और भली प्रकार दयानन्दीयोंकी पोल खोली इस पर आपके व्याख्यानोंकी चारों ओर धूम मचने लगी। पश्चात् आप सन १८९६ में रुड़की जिला सहारनपुर सनातन धर्म सभामें गये, जिस समय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र स्टेशन पर पधारे उस समय स्टेशनपर आपका स्वागत बड़ी धूम धामके साथ किया गया। यहां तक कि वहांकी जनताने बड़ी श्रद्धा भक्तिके साथ अपने हाथोंसे आपकी गाडी नगरमें खेंच आपकी सवारी निकाली। पश्चात् काशीपुर—हल्द्वानी—तक्ष-शिलामें भक्ति विषयपर आपके व्याख्यान बडे ही प्रभावोत्पादक हुए।

मिश्रजी ५ मई सन १८९७ को विजयगढ गये। वहां लगातार तीन दिन सना-तनधर्म मण्डन पर आपके भाषण बड़े ओजस्वी और हृदयग्राही हुए। यहां आर्य-समाजका बहुत जोर था पर विद्यावारिधिजीके पधारते ही बडे बडे नामधारी शास्त्रियोंके छक्के छूट गये। मिश्रजीसे जो मनुष्य जिस विषयका प्रश्न करता उसको संतोष जनक उत्तर उसी समय मिल जाता था, मिश्रजीने शास्त्रार्थके लिये यहांके आर्य समाजको लिखा, वे लोग तैयार होकर आगये और सनातन-धर्म तथा आर्य समाजके सिद्धान्तों पर पं० रामलालशर्मासे बडा भारी शास्त्रार्थ हुआ उसमें मिश्रजीकी पूर्णतया विजय हुई।

इसके बाद आप हिसार—मेरठ—दिल्ली—रुड़की—लुधियाना—अमृतसर आदि स्थानोंमें होते हुये श्रावण मासमें मथुरा पधारे, वहांसे आपको सेठ आनरेबल राजा लक्ष्मणदासजीने बुलाया यहां पर भी मिश्रजीके भक्ति विषयक कई व्याख्यान हुए। सन १९०१ में मिश्रजीको टीहरी नरेशने बुला और यथोचित सन्मानित कर ५००) रुपया और एक बहुमूल्य शाल दिया, उसी अवसर पर पण्डित दुर्गादत्तजी पंतके साथ मिश्रजी हिमालयके जंगलमें स्वामी रामतीर्थ M. A. से मिलने गये। स्वामीजी मिश्रजीसे मिलकर बडे प्रसन्न हुये।

मिश्रजीने सनातनधर्म सभाओंमें आना जाना संवत् १९५२ से आरंभ किया, मिश्रजी पूर्वमें-कलकत्ता और जगन्नाथपुरी तक, पश्चिममें-पेशावर विलोचिस्तान,

जामपुर तक, दक्षिणमें हैदराबाद, सूरत, तथा बम्बई तक और उत्तरमें नंदप्रयाग और अलमोड़ तक जाया करते थे। मिश्रजीने अनेकों स्थानोंमें धर्मसभायें—पाठशालायें और गोशालायें स्थापित कीं। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रका मेरठमें पं० तुलसीरामजी, गुह्यावरमें स्वामी कृपारामजी, हरदुआगंजमें पं० अखिलानन्दजी कविरत्न, पठानकोटमें पं० मनीरामजीके साथ, शास्त्रार्थ हुआ जिसमें पूज्य मिश्रजीने पूर्णतया विजय प्राप्त की। इनके अतिरिक्त अनेकों स्थानोंमें मिश्रजीके आर्यसमाजसे वड़े बड़े विकट शास्त्रार्थ हुये, जिनमें मिश्रजीको यथेष्ट सफलता मिली। मिश्रजीके युक्ति और प्रमाण बड़े प्रबल होते थे,जिनको सुनकर विपक्षियोंके छक्के छूट जाते थे, जो एकबार मिश्रजीके सामने आया फिर दूसरी वार आनेका नाम भी न लेता था। गड़बड़ी मनुष्य जहां कोलाहल मचाते वहांके मनुष्य इनको धमकी दिया करते थे कि हम मुरादाबादसे विद्यावारिधिजीको बुलाते हैं। मिश्रजी का नाम सुनते ही विपक्षीगण मौन धारण कर लेते थे। इस प्रकार मिश्रजी राजा-महाराजा-सेठ-साहूकार तथा सर्व साधारणके हृदय पर चढ गये और देश देशान्तरोंमें इनकी महिमा जागृत होगई। भारत ही नहीं अब ब्रह्मा रंगून आदि देशों से भी आपको निमंत्रण आने लगे,परन्तु मिश्रजी यहांसे अवकाश न होनेके कारण ही इतर देशोंमें न जा सके थे।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रके व्याख्यान बड़े प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण होते थे। अधिक परिश्रमके कारण मिश्रजीका स्वास्थ्य सन् १९१४ से बिगड़ने लगा। आपका अंतिम भाषण अगवानपुर (मुरादाबाद) की सभामें हुआ था। जगत् सुखदानी गंगा महारानीमें आपका बड़ा प्रेम था, आप सदैवके नियमानुसार स्वास्थ्य खराब होनेपर भी कार्तिकी मेले गढ़मुक्तेश्वरमें कार्तिक शु० एकादशीको अपने परिवार सहित गंगास्नान करने पधारे। आप वहां ३। ४ दिन गंगा जल सेवन कर स्वस्थ रहे। कार्तिक पूर्णिमा गुरुवार संवत् १९७३ तदनुसार सन् १९१६ में यजुर्वेद भाष्यकार प्रातःस्मरणीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ५९ वर्षकी आयुमें देव दुर्लभ योग मध्याह्न कालमें श्री गंगातटपर ओं शब्द

का उच्चारणकर अपने लघुभ्राता पं० कन्हैयालालजी मिश्र, वृद्धा माता, स्त्री और अपने दो सुपुत्रों पं० जगदीशप्रसादजी मिश्र लघु पं० महावीरप्रसादजी मिश्र आदि परिवारको बिलखता हुआ छोड़ सदैवके लिये ब्रह्ममें लीन हो गये ।

श्री भारतधर्ममहामण्डलके महामहोपदेशक यजुर्वेद भाष्यकार विद्यावारिधि पं०ज्वालाप्रसादजी मिश्रकी प्रथम जयन्ती कार्तिक शु० पूर्णिमा रविवार सन १९३२ को बम्बई, कलकत्ता, सूरत, अमृतसर, हरिद्वार, काशी, इलाहाबाद, राजकोट (काठियावाड) मैनपुरी आदि समूचे देशमें बडे समारोहके साथ मनाई गई ।

विद्यावारिधिजीके ज्येष्ठ सुपुत्र पं०जगदीशप्रसादजी मिश्र प्रथम तो मुरादाबादमें

१ विद्यावारिधिजीकी माता श्रीमती गङ्गादेवी बड़ी साध्वी—धर्मशीला—बुद्धिमती और सरल स्वभावकी थीं, आपको अभिमान छू तक भी न गया था । आपके पिता शाण्डिल्य—गोत्रिय पं. गौरीशंकरजी त्रिपाठी थे । पूज्य देवीजीके गर्भसे सब मिलाकर तेरह यशस्वी—होरहार सन्तानोंने जन्म ग्रहण किया, आपके भारत विख्यात—चार सुपुत्र, सबसे बड़े जिनको गायत्री सिद्ध थी पं. जुगलकिशोरजी मिश्र थे, आपकी माता अधिक प्रेमके कारण आपको "बुलबुल" भी कहती थीं । पश्चात् क्रमशः पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र, पं. बलदेवप्रसादजी मिश्र, और पं. कन्हैयालालजी मिश्र अपने अपने धर्म, जाति, समाज और साहित्य सेवा आदि कार्यों तथा गुणोंसे प्रसिद्ध हुये । आपकी दो सुलेखक सुपुत्रियां श्रीमती सुभद्रादेवी और श्रीमती रामदेवी भी स्त्री उपयोगी ग्रन्थ लिखने और हिन्दी साहित्य सेवा तथा स्त्री समाजके उपकार करनेके कारण प्रसिद्ध हुई । आपकी शेष सात सन्तानें अल्पायुमें ही अपना अपना क्षणिक विस्मयकारक चमत्कार दिखा सदैवके लिये ब्रह्ममें लीन होगईं, देवीजी बड़ी शान्त और गम्भीर थीं; आप लगभग ८० वर्षकी आयुमें सन् १९२५ फाल्गुण-कृष्णा अमावस्याको ब्रह्म मुहूर्तमें चार बजे इस संसारको त्याग भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजका नाम लेती हुई सदैवके लिये इस संसारसे विदा होगईं ।

ही अपने पूज्य पिताजीके कार्य संभालते पठन पाठन और साहित्य चर्चा करते तथा घरकी देख भाल करते हुये अपने परिवारका संचालन करते रहे। पश्चात् आप सन् १९२८ के जौलाय मासमें मुरादाबादसे बम्बई श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमें आये। यहां आकर आप बड़े सुचारु रूपसे पुस्तकोंका सम्पादन-संशोधन और प्रबन्ध आदि कार्य योग्यता पूर्वक चला रहे हैं, सन् १९२८ से १९३२ तक आपके सम्पादकत्वमें निम्नलिखित ग्रंथ "श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई" में प्रकाशित हुये हैं।

रामायण मूल, रामायण सटीक, योगशतक, यंत्र चिन्तामणि, चतुर्विंशति गायत्री, लघुकौमुदी, सौभाग्यलक्ष्मी, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, अमेरिकामें भारतवासी, अन्नपूर्णा स्तोत्र और संसारके महान पुरुष आदि।

पं० महावीरप्रसाद मिश्र आजकल हरिद्वारमें "विद्यावारिधि पुस्तकालय" का सञ्चालन कार्य कर रहे हैं यह पुस्तकालय आपने सन् १९३० में हरिद्वारमें खोला था यहां भी "श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस बम्बई" की समस्त पुस्तकें भी मिलती हैं। आप दोनों ही भ्राता बड़े साहित्य प्रेमी हैं और अपना अपना कार्य बड़ी सुन्दरता और योग्यताके साथ कर रहे हैं।

विद्यावारिधिजीका हथुआ नरेश, धौलपुर नरेश, टीहरी नरेश, दरभंगा नरेश, छतरपुर नरेश, गिद्धौर नरेश, बीकानेर नरेश आदि नरेन्द्र शिरोमणि तथा धर्मरत्न श्रीमान सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी, श्रीमान् गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी आदि आपका बड़ा सन्मान और सत्कार करते थे। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रको सैकड़ों प्रशंसा और मानपत्र मिले थे, कलकत्तेके "कान्यकुब्ज मण्डल" ने आपको "विद्यावारिधि" की उपाधि प्रदान की थी, उसके पश्चात् काशीके श्रीभारतधर्म महामण्डलने आपको महोपदेशक और महामहोपदेशक तथा संस्कृत साहित्य रत्नाकरकी उपाधिसे विभूषित किया था। इसके अतिरिक्त आपको अनेकों स्वर्ण पदक बड़े २ राजे महाराजाओंके यहांसे मिले थे।

आपके बृहद् पुस्तकालय मुरादाबादमें सहस्रों पुस्तकें हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी-गुजराती-मराठी, बंगला, उर्दू और कार्नाटिक तथा गुरुमुखी भाषा आदिकी अभी तक मौजूद हैं

दीनदयालुशर्म्मा-ये पंडितजी झझ्झरके रहनेवाले एक विद्वान् ब्राह्मण हैं, इनके सारगर्भित उपदेश किसने नहीं सुने होंगे हर जगहकी धर्मसभाकी यही इच्छा लगी रहती है कि, पंडित दीनदयालुजी पधारकर उपदेश दें परन्तु पं. दीन-दयालुजी एक हैं और धर्म सभायें बहुत, पंडितजीके उद्योगसे भारतधर्म महामंडल स्थापन हुआ है और उसकी रजिस्ट्री भी करा दी गईहै और अनेक राजे महाराजे उसमें सम्मिलत हुये हैं.

वक्तृता पंडितजीकी ऐसी हृदयग्राहिणी और युक्तिपूर्वक होती है कि, जिसको सुनकर बड़े २ अंग्रेजी विद्वान आश्चर्यमें आजाते हैं और तारीफ किये विना नहीं रह सकते लाखों ही मनुष्य पंडितजीके उपदेशोंको सुन धर्मपगपरसे डिगजानेसे रुक गये हैं । पं० जीका बड़े २ राजा महाराजा मान करते हैं ।

बाबूरामजी शर्मा-शर्माजी मुरादाबादके रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण कुल भूषण थे, आप संस्कृत तथा हिन्दीके बड़े विद्वान् और सुलेखक थे आपका स्वभाव बड़ा ही मिलनसार था । आपके पिता नगरमें भक्तजी नामसे प्रसिद्ध थे । आप विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकी शिष्य मण्डलीमेंसे थे । आपने ब्रह्मोत्तर खंडका बड़ा ही सुन्दर और सरल भाषानुवाद किया है धातुरूपावली आदि और भी कई ग्रंथ आपने लिखे हैं आपके सब ग्रंथ "श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई" में मिलते हैं । विद्यावारिधिजी द्वारा संस्थापित "कामेश्वरनाथ संस्कृत पाठशाला" में विद्यावारिधिजीके बाहर व्याख्यान देने पर आप ही विद्यार्थियोंको पढाकर पाठ-शालाका सुचारु रूपसे कार्य चलाते थे । दुख है कि ऐसे सुयोग्य पं० बाबूरामजी शर्माका स्वर्गवास क्षयरोगसे लगभग ३५ वर्षकी अवस्था सन १९०९ में होगया आपने अपने पीछे अपने दो सुपुत्रों पं० रघुनन्दनप्रसाद शर्मा और पं० हरस्वरूप-जी शर्माको छोड़ा है । आप दोनों ही पुत्र सुयोग्य और पठित हैं ।

बैजनाथजी शास्त्री-शास्त्रीजी मुरादाबादके रहनेवाले सारस्वत ब्राह्मण थे । आप संस्कृत व्याकरण तथा न्यायशास्त्रके अपूर्वज्ञाता और विद्वान् थे । आप स्थानीय जवाहरलाल संस्कृत पाठशालाके द्वितीयाध्यापक और भवानीदत्त शास्त्रीके

शिष्य थे। आप बड़े ही मिलनसार और मृदुभाषी थे। आपने न्याय सिद्धान्त मुक्तावली–तर्कसंग्रह–कारिकावली आदि कई पुस्तकें विद्यार्थीयोंके लाभार्थ लिखीं थीं। नगरके गण्यमान्य सुप्रतिष्ठित पं. भवानीदत्तजी शास्त्रीके बाद आपने ही उनके स्थानकी पूर्तीकी। आपने भी अनेकों विद्यार्थीयोंको पढ़ा पढ़ाकर योग्य पंडित बना दिया। आप लगभग एक वर्षसे कुछ अस्वस्थ रहने लगे थे। पं. बैजनाथजी शास्त्री १९३० में इस संसारसे सदैवके लिये विदा होगये। आपने अपने पीछे स्त्री और एकमात्र पुत्री चम्पादेवीको जो इस समय काशीकी मध्यमा परीक्षा पास है छोड़ा है।

पं० बैजनाथजी शास्त्रीके ही समकालीन स्थानीय स० ध० सभाके उपसभापति गौड़ ब्राह्मणकुल भूषण पं. गंगाप्रसादजी शास्त्री थे। आपभी संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता थे और बहुत ही सज्जन तथा सरल स्वभावके धैर्यवान् व्यक्ति थे। आपने पुराण शास्त्रोंका भली प्रकार मनन किया था, श्रीमद् भागवत आपको प्रायः कंठस्थ थी आपको जगत् जननी गंगाजीसे बड़ा प्रेम था, आप प्रति वर्ष कार्तिकी मेले गढमुक्तेश्वर (मेला तिगरी घाटमें) सप्ताह बांचा करते थे, आपकी कथा बड़ी ही रोचक और चित्ताकर्षक होती थी। कर्मकाण्डमें भी आप दक्ष थे नगरमें आपकी यथेष्ट प्रतिष्ठा थी। वयोवृद्ध पं० गंगाप्रसादजी शास्त्री लगभग ६५ वर्षकी अवस्थामें हरिद्वार गङ्गातट पर इस शरीरको त्याग सदैवके लिये ब्रह्ममें लीन होगये।

शास्त्रीजीने अपने एकमात्र सुपुत्र पं० रामकृष्णजी द्विवेदीको छोड़ा है आप काशी व्याकरण मध्यमा पास एक होनहार व्यक्ति हैं आप भी बड़े ही योग्य–प्रेमी तथा सरल स्वभाव और मृदुभाषी हैं आप ज्योतिष तथा कर्म काण्डमें भी दक्ष हैं। आप भगवतीदेवीके उपासक हैं।

ब्रजरत्नजी भट्टाचार्य–भट्टाचार्यजी मुरादाबादके रहनेवाले गुजराती ब्राह्मण थे, आपके पिताका नाम पं. ज्वालानाथजी भट्टाचार्य था। पं. ब्रजरत्नजी भट्टाचार्य बड़े ही सरल मृदुभाषी और मिलनसार व्यक्ति थे, आपको अभिमान

बिलकुल भी न था आप संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता थे, गुजराती मराठी और बंगभाषा का भी आपको पूर्ण ज्ञान था । आपने श्रीभगवद्गीता–अन्नपूर्णास्तोत्र–श्रीतुलसीदास कृत विजय दोहावली-सिद्धान्त पटल-रामपटल-लघुराम पद्धति आदि अनेक ग्रंथोंके भाषाटीका की थी । भजनरत्नावली आदि कई पुस्तकोंका संकलन भी किया था । आपके रचित अनुवादित और संशोधित सब ग्रंथ "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई" में मिलते हैं । विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रके आप शिष्य मण्डलीमें से थे । आप हिन्दीके सुलेखक और हिन्दी साहित्यके बड़े प्रेमी थे । आपका धर्मरत्न श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी तथा श्रीमान् सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीसे बड़ा स्नेह था । ऐसे होनहार पं० व्रजरत्नजी भट्टाचार्यका रीवां राज्यमें लगभग ४० वर्षकी आयुमें स्वर्गवास हुआ । आप अपने पीछे अपने लघु सहोदर भ्राता पं० बालमुकुन्दजी भट्टाचार्य और चि० रामेश्वर-राजेश्वर आदि ४ पुत्रको छोड़ गये हैं ।

भवानीदत्तजी शास्त्री–शास्त्रीजी जिले अलमोड़ाके रहनेवाले पर्वतीय ब्राह्मण थे, आप ३५ । ३६ वर्षसे मुरादाबादमें ही रहते थे । आप व्याकरण–काव्य और न्यायशास्त्रके धुरन्धर विद्वान् और ज्ञाता थे । मुरादाबादमें जवाहरलाल संस्कृत पाठशालाके प्रधानाध्यापक और नगरके सर्व शिरोमणि पंडित थे । आप बड़े ही मिलनसार, परोपकारी और सरल स्वभावके व्यक्ति थे, अभिमानसे आपका सर्वथा द्वेष था । नगरमें आपका बड़ा मान और प्रतिष्ठा थी,आपके पढाये शतशः विद्यार्थी इस समय उत्तमोत्तम पदोंपर सन्मानित हैं। आपके पढानेका ढंग तथा नियम बड़ा ही सुन्दर और सरल था,व्याकरण जैसे नरिस विषयको भी काव्यकी तरह रोचक कर पढा दिया करते थे. आपके पास दूर दूरसे विद्यार्थी व्याकरण आदि विषय पढनेके लिये आते थे । आपके पढाये विद्यार्थियोंका परीक्षाफल ८० प्रति शतक रहता था । आप कर्मकांण्ड विषयमें भी सिद्ध हस्त थे । आप स्वयंपाकी भी थे।मुरादाबादमें जितने पंडित हैं वे प्रायः अधिकांश शास्त्रीजीके ही शिष्य हैं । आपके शिष्य वर्गोंमें श्रीभारतधर्म महामण्डलके महामहोपदेशक यजुर्वेद भाष्यकार विद्यावारिधि पं.

ज्वालाप्रसादजी मिश्र, तंत्रोंके आदि अनुवादक पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र, सुप्रसिद्ध सुलेखक पं० कन्हैयालालजी मिश्र, पं० गंगाप्रसादजी शास्त्री, वैद्यराज पं० हरिहर-नाथजी सांख्याचार्य, हिन्दीके सिद्धहस्त लेखक पं० ज्वालादत्तजी शर्मा-भूतपूर्व सम्पादक प्रतिभा, पं० कन्हैयालालजी तंत्रवैद्य महोपदेशक, पं० लालमणिजी शास्त्री हेड पं० गवर्नमेन्ट कालिज, त्रिभाषिक कवि पं०वनमालीशंकरजी मिश्र-मन्त्री स० ध० सभा, पं० लालमणिजी धूठिया महोपदेशक, पं० रामकृष्णजी द्विवेदी और विद्यारत्न पं० जगदीशप्रसादजी मिश्र आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री पं० भवानीदत्तजी शास्त्री लगभग ८० वर्षकी अवस्थामें सन् १९२७ विजया दशमी गुरुवारके ब्रह्म मुहूर्त में ४ बजे इस असार संसारको छोड़ सदैव के लिये ब्रह्ममें लीन होगये। आपने विद्यार्थियोंके लाभार्थ परिक्षा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं।

मदनमोहन मालवीय-(देशहितैषी)-ये पंडितजी प्रयागके रहनेवाले गौड ब्राह्मण हैं। आपके पूज्यपाद पिताजी प्रतिष्ठित पंडित विद्वान् थे। आपने अंग्रेजीमें बी० ए० तथा एल. एल. बी. की उच्च परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं लेकिन आपकी लियाक़त कहीं बढ़कर है। संस्कृत विद्याके भी आप अच्छे विद्वान् हैं और मातृभाषा हिंदीके आप अनन्य भक्त हैं पाहिले कई वर्षतक हिंदी के दैनिक पत्र "हिन्दोस्थान" का जिसको कालाकङ्करसे राजा रामपालसिंह प्रकाशित करते हैं आपने बड़ी योग्यतासे सम्पादन किया था। पश्चात् आपने आईन पढकर एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की और तबसे प्रयाग हाईकोर्टमें वकालत करते हैं। औसत आमदनी आपकी दो हजार रुपये मासिक होगी। देशियों का नफा पहुँचानेके लिये जितने आन्दोलन इस प्रान्तमें होते हैं उनमें सबसे पाहिले आप कदम बढाते हैं। गवर्नमेन्टने आपही के उद्योगसे इस प्रान्तके स्कूलों-में शिक्षासम्बन्धी अनेक बातोंका सुधार करके छात्रोंके लिये बड़ा सुभीता कर दिया है। हाईकोर्टके जज्जोंसे मिलकर मातृभाषा हिंदीकी पुकार लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर ऐन्टोनी मैकडानेलके कानतक पहुँचानेके मुख्यकारण आपही हैं उस अव-

सरपर ६ महीनेसे अधिक वकालत छोडकर आपने देश देशान्तरोंमें भ्रमण करके अपने विचारोंकी पुष्टिके लिये करोड़ों मनुष्योंको संचित किया था। आपका परिश्रम सफल हुआ, गवर्नमेन्टको भी न्याय करनेका साहस हुआ और न्याया-लयोंके कागजोंमें नागरी अक्षरोंके व्यवहार करनेका हुक्म दृढता सहित पास कर दिया गया। आपकी वक्तृता हृदयग्राहिणी होती है, नेशनल कांग्रेसके आप मुखियाओंमें से हैं और आपकी चाल ढाल, रहन सहन, खान पान सब ब्राह्मणों-कासा है। आज कलके विद्वानों तथा देशहितैषियोंका सरमौर आपको कहना सर्वथा उचित है। आपसे देश हितैषियोंका जीवन सार्थक है और पवित्र है वह कुक्षी जिसमें आप सरीखे नरसिंह पुत्रने गर्भ धारण किया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी—(भाषाकवि)—दौलतपुर ग्राम जि० रायबरेली में सुरसरीतट कान्यकुब्ज पंडित हनुमन्त द्विवेदी रहते थे, जिनके सुत पं० रामस-हायके घर वै० शु० ४ वि० सं० १९२१ को पं० महावीर प्रसादका जन्म हुआ। आप अंग्रेजी, हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फार्सी, बंगला इत्यादि भाषाओंके ज्ञाता हैं, कुछ दिनोंतक पहिले राजपुताना—मालवा—रेलवेके डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्टके दफ्तरमें क्लार्क भी रह चुके हैं। पश्चात् स्वतंत्र जीवन व्यतीत करनेकी इच्छासे नौकरी छोड़ झांसीमें बस रहे और सरस्वती नामक मासिक पत्रिका हिंदीमें सम्पादन करने लगे जो आजकल जारी है और प्रतिष्ठित देशी समाचार पत्रोंमें गिनी जाती है। आपके गद्य लेख जैसे उत्तम होते हैं वैसेही पद्य भी। आप आज कलके उन प्रसिद्ध कवियोंमें हैं जो खडी बोलीकी कविताका प्रचार कर रहे हैं आपकी कविता केवल रसहीन नहीं है वरन् शक्ति भी है। संस्कृत श्लोक भी आपके बनाये अच्छे हैं। प्रसिद्ध तथा माकूल पुरुषोंमें आपकी गणना की जाती है। भामिनी विलास, कुमार सम्भव, गंगालहरी, यमुनालहरी, महिम्न-स्तोत्रका अनुवाद आपने भाषा पद्यमें किया है। अनेक और ग्रन्थ भी गद्यपद्यमें आपके रचे हुये हैं। २८ आगस्ट सन् १९०२ तककी रची हुई आपकी फुटकर कविताका संग्रह भी " काव्य मंजूषा " नामसे छप गया है।

राजा रामपालसिंह—राजा साहिब का जन्म एक प्रसिद्ध और प्रतापी राजकुलमें हुआ था। आप अवध प्रान्तके अन्तर्गत प्रतापगढ़के तअल्लुकेदार मृत राजा हनुमन्तसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीलालप्रतापसिंहजीके इकलौते पुत्र थे। आपका जन्म संवत् १९०५ की भादों सुदी ४ को हुआ।

राजा साहिब बाल्यावस्था ही से अत्यन्त तीव्र बुद्धि और चञ्चल स्वभावके थे, पर साथ ही विद्याध्ययनमें अनुराग भी स्वाभाविक था। आपने सात वर्षकी अवस्थामें हिन्दीमें पूर्णरूपसे योग्यता प्राप्त कर ली थी। नागरी पढ़ लेने पर आपने फ़ारसी का अध्ययन आरम्भ किया और पांच वर्षमें फ़ारसीमें पूर्ण योग्यता प्राप्त करके अंगरेज़ी और संस्कृतका अध्ययन आरम्भ किया।

इसमें भी राजा साहिबने अभ्यास और बुद्धिबलसे पांच छः वर्षमें ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली कि आप संस्कृतके क्लिष्ट और गूढ़ छन्दोंका मर्म समझने और अंगरेज़ीमें वार्तालाप करने लगे थे।

भिन्न भिन्न भाषाओंके और भिन्न भिन्न मतमतान्तरोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थोंको पढ़कर राजा साहिबके हृदयमें नवीन सभ्यताने स्थान प्राप्त कर लिया। इसलिये वे एक मात्र परमात्माको अपना आराध्य देव मानकर पुरानी लकीरके फ़क़ीर रहनेके विरुद्ध होगये। इससे इनके सब सम्बन्धी और इनके पितामह राजा हनुमन्तसिंहजी स्वयं इनसे अप्रसन्न हो गये। परन्तु इन्होंने किसीकी ओर ध्यान न दिया और अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहे। १८ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने आनरेरी मजिस्ट्रेटी स्वीकार की और इसके अनन्तर मध्यम और उच्च श्रेणीकी परीक्षाओं को पास किया। राजा साहिब एक न्यायशील और देशहितैषी पुरुष थे। इसलिये अदूरदर्शी लोगोंकी दृष्टिमें कुछ खटकने लगे।

अस्तु, राजा साहिबने इँगलैंड जानेकी इच्छा प्रकट की, इसपर भी पुराने विचारके लोगोंने असंमति प्रकट की परन्तु आपको तो उस उन्नति-शाली देशकी सामाजिक, राजनैतिक और व्यापारिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेकी धुन सवार थी। इसलिये आपने इँगलैंडकी यात्रा की। आपकी पतिव्रता धर्मपत्नी भी आपके साथ गई। परन्तु दो साल इंगलैंडमें रहनेपर आपकी धर्मपत्नीका शरीरपात हो गया। तब आपने एक अंगरेज़ी रमणीसे विवाह किया और घरको लौट आए। परन्तु

थोड़े ही दिन कालाकांकरमें रह कर आप पुनः इंगलैंडको चले गए और वहां जर्मन, फ्रेंच, लेटिन आदि भाषाओं और गणितका अभ्यास करने लगे। आपने अपने देशकी सेवा करनेकी इच्छासे सन् १८८३ में वहां अंगरेजी-हिन्दीमें "हिन्दोस्थान" नामका पत्र भी निकाला। और उसके द्वारा इंगलैंड—वासी लोगोंको इस देशकी दशाका वास्तविक परिचय देने लगे। इसके सिवाय आप वहांकी प्रत्येक सभा सोसायटीमें जाते और मनोहर व्याख्यान द्वारा इस देश-वासियोंके दुःख सुखकी कथा सुनाते थे।

उस समय इस देशके जो विद्यार्थी इंगलैंडमें विद्याध्ययन करने जाते थे राजा साहिब उन सबका बड़ा सत्कार करते थे। उन्हें अपने यहां बुलाते, समय समय पर भोज देते और उनके पठन पाठनमें यथासाध्य आर्थिक सहायता भी करते थे। सन् १८८५ ई. में आपने इंगलैंडसे आकर कालाकांकरसे हिन्दीमें "हिन्दोस्थान" नामका दैनिक पत्र निकालना आरम्भ किया। जो उनके जीवनमें बराबर चलता रहा। आपने अंगरेज़ीमें भी 'इंडियन यूनियन' नामका एक पत्र निकालना आरम्भ किया था परन्तु कुछ दिनोंके बाद वह बंद कर दिया गया। तबसे "हिन्दोस्थान" की एक दूसरी प्रति अंगरेज़ीमें प्रकाशित होती रही।

आपने केवल हिन्दी जाननेवालोंको सहजमें अंगरेज़ी सीख लेनेके लिए "दी सेल्फ़ टीचिंग बुक्" नामकी एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी है और "रिसेंट ट्रिप टू यूरप" नामकी अंगरेज़ी भाषाकी पुस्तकमें आपने अपनी इंगलैंड-यात्राका वर्णन लिखा है। आप जिस तरह अपने देशकी कला कौशल और व्यापारकी उन्नति चाहते थे वैसे ही मातृभाषा हिंदीके भी परम शुभचिंतक थे। आपके राजनैतिक और सामाजिक सिद्धांत सराहनीय हैं। आप अवधके तअल्लुकेदारोंमें एक माननीय रईस थे। आप कई बेर संयुक्त प्रदेशकी कौंसिलमें प्रजाके प्रतिनिधि हुए थे। सन् १९०९ ई० में आपका शरीरांत हुआ।

शाहूछत्रपति, महाराजा, जी. सी. यस. आई,–(कोल्हापुरनरेश) आप कागल नरेशके पुत्र हैं और कोल्हापुरकी गद्दीपर दत्तक होकर आये थे स० ई० १८७४ में जन्मे। १८८३ में महाराजा शिवाजी चतुर्थके बाद कोल्हापुरकी

गद्दीपर बैठे। १८८५ से ९० तक राजकुमार कालिजमें शिक्षा पाई और हिंदोस्थान तथा सीलोनमें भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किया। १८९१ की साल बड़ोदामें आपका विवाह हुआ। १८९४ में बृटिश गवर्नमेंटने राज्यका पूर्ण अधिकार आपको सौंपा। आप घोड़ेपर खूब चढते थे, एक दफे ६ घंटेमें ११० मील घोड़ेकी पीठ पर गये थे। १८९८ में बृटिश गवर्नमेंटने जी. सी. यस. आई. का खिताब आपको दिया। १८६२ में कोल्हापुर राज्यसे प्राण दण्ड देनेका अधिकार ले लिया गया था लेकिन १८९६ में आपको फिर मिल गया। कोल्हापुर राजधानीमें आपने एक बृहत् विद्यालय तथा एक शफाखाना बनवाया है और कई बाग़ लगवाये हैं। राजप्रबन्ध आपका प्रशंसनीय है। बृटिश गवर्नमेंट आपसे प्रसन्न है। व्यापारियों को उत्तेजना आपसे मिलती है। राजराजेश्वर एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकके अवसर पर निमन्त्रण पाकर आप इङ्गलैंड पधारे थे। कोल्हापुर राज्यके अंतर्गत विट्ठलगढ, कागल आदि ११ छोटे राज्य हैं और इस राज्यसे मरहटा राज्यके संस्थापक महाराज शिवाजीके वंशका नाम चिरस्थायी है।

सरदारसिंह, महाराजा, जी. सी. यस. आई–(जोधपुर नरेश) आप स्वर्गीय महाराजा यशवन्तसिंह, जी० सी० यस आई० के पुत्र हैं। स० ई० १८७७ में जन्मे। बूंदीकी राजकुमारीसे तथा महाराव राजाराम सिंहकी राजकुमारीसे शादी हुई जिससे कई सन्तान हैं। अंग्रेजी भाषा और पोलो तथा सैनिक कामोंमें अच्छी योग्यता रखते हैं १८९७में बृटिश गवर्नमेण्टने आपको राज्यका पूर्ण अधिकार दिया। १९०१ में सीलोन, आस्ट्रेलिया, फ्रांस और लण्डनकी यात्रा करके राजकीय प्रबन्ध इत्यादिका अनुभव प्राप्त किया। जोधपुर नरेश राठौरजातिके मुखिया होकर छ राठौरराज्योंके अग्रणी हैं। जोधपुरराज्यमें ३७००० वर्गमील भूमि है। ३१६२ सवार। ३६५३ पैदल और २१ तोपें रखनेका अधिकार है। नरेशकी सलामी १७ फैरोंकी है। वार्षिक आय ४९, ३७००० रुपयेकी है।

सालिसबरी (राबर्ट आर्थर टालबट गैस्कायन सोसिल, के० जी०, पी० सी०, यफ० आर० यस०, डीं० सी० यल० यल० यल० डी०, डा० यल०, जे० पी० तृतीयमार्कुइस आफ सालिसबरी Robert Arthur Talbot Gascoyne Cecil, K. G., P. C., F. R. S., D. C. L., L. L. D., D. L., J. P.,

3rd, Marquess of Salisbury)—३ फरवरी, स० ई० १८३० को हैटफी-ल्डमें जन्मे। पिता आपके द्वितीय मार्कुइस आफ—सालिसवरी थे जिनके देहांत होनेपर १८६८ में मार्कुइसका खिताव पाकर आप लार्डसभामें दाखिल हुये। १८५७ में एक अमीरकी बेटीसे शादी की। एटन और क्रायस्ट चर्च कालिज, आक्सफोर्डमें शिक्षा पाकर ग्रेजुएट हुये। विज्ञान और रसायनादि शास्त्रोंमें अपूर्व योग्यता रखते थे। इसके सिवाय प्रसिद्धवक्ता तथा ग्रन्थकार भी थे। १८५३ में आलसोलसकालिज आक्सफोर्डके सभासद बनाये गये थे। १८६९ से अन्त समय तक आक्सफोर्ड यूनीवार्सिटीके चैन्सेलर रहे। १८५३ से ६३ तक स्टेम-फोर्डकी तरफसे पार्लियामेंटके मेम्बर रहे। १८६६ से ६७ तक भारतके मन्त्री आफ—स्टेट रहे। १८७४ से ७८ तक इण्डिया कौंसिलके मेम्बर रहे। १८७६ की साल कान्स्टैन्टीनोपिलकी कान्फरेंसमें राजदूत होकर गये थे और १८७८ की साल वर्लिनकी कांग्रेसमें बृटिश गवर्नमेंटकी तरफसे असीम शक्ति पाकर संयुक्त हुये थे। अधिकांश विलायत वासियोंकी दृष्टिमें आप विद्याबुद्धिके लिहाजसे सर्वो-परहोकर कानजरवेटिव दलके सर्वस्वीकृत प्रधान पुरुष थे। इसी कारण १८८१ से ८५ तक, १८८६ से ९२ तक और १८९५ से १९०२ तक, कुल प्रायः २० वर्ष इङ्गलैंडके प्रधान मन्त्री रहे। बीच बीचमें गैर मुल्कोंके मन्त्री आफ—स्टेट तथा मन्त्री कोष विभागके पदपर भी काम किया। आपके मंत्रित्वके समयमें बृटिश राज्यकी बहुत उन्नति हुई और अन्य राज्योंकी दृष्टिमें उसका बल प्रभाव बहुत कुछ बढगया। आयर्लैण्डवालोंको आपहीने वशीभूत किया मिसर तथा सौडानमें अंग्रेजोंकी प्रधानता आपहीके समयमें प्रतिष्ठित हुई और आपहीके समयमें सम्पूर्ण दक्षिण अफरीका अंग्रेजी राज्य बनगया। आप ग्रेट ईस्टर्न रेल्वेके प्रधान थे। १९०० से लार्ड प्रिवीसील और वेस्ट मिनिस्टरके हाई स्टेवर्डका कर्तव्य तथा अनेक और बड़े २ काम आपकी सुपुर्दगीमें थे। २०३०० एकड़ भूमि आपकी जमीदारीमें थी। वाईकौन्ट क्रेनवोर्न आपके पुत्र हैं। आपका वंश प्राचीन और प्रतिष्ठित है। आपके अनेक पूर्वज भी बड़े बड़े पदोंपर रहे थे। १९०२ में बुढापेके कारण इस्तीफा दिया और आपके भान्जे लार्ड वैलफोर मुख्य मन्त्री हुये। १९०४ में परलोकगामी थे।

सुल्तानसिंह राना (प्रसिद्ध लक्ष्यवेधी)—दक्षिणके निवासी इन्हें राणा सरतानसिंह कहते हैं । वि० स १९२० की साल लींबडीके क्षत्रिय राज्यवंशमें आपका जन्म हुआ । लींबडीके समीप रंगपूरमें आपकी कुछ जागीर है । आपके किन्ही पूर्व पुरुषने मुग़लयुद्धके समय महाराना उदयपुरकी रक्षा करके रानाका खिताब पाया था । आपके पिताका नाम भूपतिसिंह और काकाका नाम केशरीसिंह था । काका केशरीसिंह बचपनहीसे आपको गोदमें बिठलाकर बन्दूक चलाना तथा निशाना लगाना सिखाया करते थे और रामायण, महाभारतादिकी कथायें सुनाते थे । इस प्रकार बड़े होते हुये आप हिंसक जीवोंका शिकार करने लगे और महाभारतके अनुसार निशानेबाजीका अभ्यास बढाने लगे । धीरे धीरे लक्ष्यवेधमें पारंगत होगये । भेद इतनाही रहा कि प्राचीन वीर तो बाणसे लक्ष्यवेध करते थे लेकिन आप बन्दूक या पिस्टोलसे करते थे । वि० स० १९६२ में आपकी उम्र ४२ वर्षकी है । इस समय आप ३० । ३५ प्रकारके प्रयोग कर सकते हैं । पुत्र शूरसिंहको भी आपने इस विद्यामें पारंगत कर दिया है । (१) बन्दूकको दहिने अथवा बायें कन्धेपर या टांगोंके बीचमें रखकर खड़े, बैठे लेटे हुये हाथसे अथवा पैरसे बन्दूक चलाकर ठीक निशाना मार सकते हैं । इसीका नाम लक्ष्यवेध है (२) चौखूटी लकड़ी पर बंधी हुई चार कुमरियोंमेंसे जिसे कहा जाय उसे चक्कर कराते रहनेके स्थितिमें तोड़ देते हैं इसीको चललक्ष्यवेध कहते हैं । (३) श्लोक पढते २ निशाना मारते हैं । (४) जलती हुई मोमबत्तीको गोलीसे बुझा देते हैं परन्तु बत्तीमें कुछ अन्तर नहीं आता है । (५) किसीके शिर अथवा हाथमें नारियल देकर उसकी नरेटीको तोड़ देते हैं परन्तु न तो उस मनुष्यके कुछ चोट आती है और न गोला टूटने पाता है इसीका नाम भयानक वेध है । (६) कुयेंके पानीमें पड़े हुए सूखे नीबूमें ऐसी गोली मारते हैं कि वह कुयेंके बाहर आ पड़ता है । (७) एक घड़ेके भीतर ४ रंगकी कुमरियोंको रखकर घड़ेके घूमते रहनेपर जिस रंगकी कुमरीको कहो उसीको विना देखे तोड़ देते हैं इसीका नाम अदृश्यवेध है । (८) महाराजा दशरथ और पृथ्वी-

राजके शब्दवेधी बाण मारनेकी बात प्रसिद्ध ही है, आप भी आंखोंमें पट्टी बांधकर चार रंगके रखे हुये घड़ोंका शब्द सुनते और उसे मनन करके फिर घड़ोंका स्थान बदल देनेपर भी जिस रंगके घड़ेको कहो उसीको तोड़ देते हैं। (९) द्रुपदराजाकी सभामें जिस मत्स्यवेधने सब राजाओंको बुद्धि चकरा दी थी वह मत्स्यवेध भी आप करते हैं अर्थात् ऊपर खम्भेपर एक मछली टांगी जाती है उसके नीचे एक बड़े बर्तनमें भरकर पानी रखाजाता है जिसमें मछलीकी छाया पड़ती है, उस छायाको देखते हुये आप लटकते हुए तराजूमें चढते हैं और शरीरका गुरुत्व केंद्र ठीक रखते हुए ऊपर टंगी हुई मछलीका वेध करते हैं।

इन दिनों आप प्राचीन धनुर्विद्या और मंत्रोंकी खोज कर रहे हैं और इस उद्योगमें हैं कि कोई राजा महाराजा व्यायामशाला खोलकर ऐसा प्रबन्ध कर दें कि जिससे प्राचीन धनुर्विद्याके सहारे इस प्रकारकी निशानेबाजीकी शिक्षाका प्रचार हो। आपकी विद्याका चमत्कार उदयपुर, निजाम, बड़ोदा, पोरबन्दर, दांता, शाहपुरा, सिरोही, लींमड़ी, खंबात, बढवान, सांगली, इचलकरंगी, भावनगर, ध्रांगध्रा, भरतपुर, किशनगढ, जूनागढ, मैसूर आदिके नरेशोंने देखा और प्रसन्न होकर सार्टिफिकेट दिया है।

हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) इस महादार्शनिकका जन्म स० ई० १८२० की साल इङ्गलैंडके डरबी नामक शहरमें हुआ। इसके बाप लड़कोंको पढाया करते थे और चचा पादरी थे। बाप और चचासे इन्होंने घरहीपर शिक्षा पाई थी और किसी मदरसेमें नहीं पढा था। वैज्ञानिक विषयोंकी ओर इसकी प्रवृत्ति शुरूहीसे थी। यह जबतक किसी बातको तजरिबेसे संवृत नहीं करलेते थे तबतक उसपर विश्वास नहीं करते थे। इसी आदतके अनुसार पूर्व तत्व ज्ञानियोंके सिद्धांतोंको चुपचाप न मानकर इन्होंने उनकी परीक्षा की और उनके खण्डनीय अंशका कठोरता पूर्वक खण्डन किया। १७ वर्षकी उम्रमें काम सीखकर यह रेलवेके मुहकमेमें इञ्जिनियर हुये लेकिन ८ वर्ष बाद इस्तेफा दे दिया। अनेक सामयिक पुस्तकोंमें लेख लिखते २ इनकी लेखन शक्ति प्रबल हुई और सम्पादन करना तथा ग्रंथ रचनाही इनका एक मात्र व्यवसाय हुआ। ३० वर्षकी

उम्रमें इन्होंने स्पेशल स्टेटिक्स नामक किताब लिखी जिसमें सामाजिक और राजनैतिक विषयोंका विचार था। इनकी बुद्धिका झुकाव विशेष करके सृष्टि रचना और अध्यात्म विद्याकी तरफ था। यह प्रवृत्ति धीरे धीरे प्रतिदिन बढती गई और यह उत्क्रान्त वादी होगये। उत्क्रान्तके १६ सिद्धांत इन्होंने निकाले। संसारके सब दृष्टादृष्ट व्यापार इन्हीं नियमोंके अनुसार होते है इस बातके सिद्ध करनेके लिये इन्होंने अपरिमित श्रम किया। यह सृष्टि क्या ईश्वरने पैदा की है, या पदार्थोंहीमें कोई ऐसी शक्ति है जिसके कारण वह आपही आप उत्पन्न होगये हैं? जन्म क्या है, पुनर्जन्म क्या है, मरण क्या है, धर्म क्या है, पाप पुण्य क्या है, सुख दुःख क्या है, संसारमें जितनी घटनायें होती हैं वह किन नियमोंके अनुसार होती हैं? दिनरात स्पेन्सर साहब इन्हीं बातोंके विचारमें संलग्न रहते थे। यह अभ्यास इन्होंने इतना बढाया कि संसारमें ऐसा कोई भी शास्त्रीय विषय शेष न रहा जो इनके मानसिक विचारोंकी कसौटीपर न कसा गया हो। नये २ सिद्धांतोंके निकालनेमें इनकी बुद्धि विलक्षण थी। ५० वर्षतक इन्होंने यह काम किया और अपने नये २ सिद्धान्तोंसे संसारको चकित और स्तम्भित कर दिया १८८२ में स्पेन्सर साहब अमेरिकाको गये, वहां उनका बड़ा आदर हुआ। योरुप और अमेरिकाके विश्वविद्यालयोंने उन्हें दर्शनशास्त्रकी शिक्षाके देनेके लिये कितनेही ऊंचे ऊंचे पद देना चाहा, परंतु उन्होंने कृतज्ञता-पूर्वक अस्वीकार किया। यूनिवर्सिटीकी उपाधियें पानेकी इच्छा आपको कभी नहीं हुई और यदि विना पूछे कोई उपाधि आपको दीगई तो उसकी परवाह आपने नहीं की। स्वाधीन रहकर अपनी सारी उम्र विद्याव्यासङ्गमें खर्च करदी और अपने अभूत पूर्व तत्वज्ञानपूर्ण ग्रन्थोंसे संसारके अनन्त ज्ञान पहुंचाया। कितावोंके छपवाने और प्रकाशित करनेमें नफा नुकसानका कभी विचार नहीं किया। आपकी तर्कशक्ति अद्वितीय थी। प्रतिपादनशक्ति विलक्षण थी,; विपक्षियोंको भी आपके साम्हनें सर झुकाना पडता था। आप अत्यन्त कर्तव्य निष्ठ, दृढ निश्चय और निर्लोभी थे। आपका विद्याभ्यास दीर्घ, ज्ञानभण्डार अगाध और परिश्रम अप्र-

तिहत था। योरुपमें आपसा तत्वज्ञानी विरलाही हुआ। आपने सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी अपने समाज-घटना-शास्त्रमें कडी समालोचना की है लेकिन सृष्टि सम्बन्धिनी एक "अगम्य मर्यादा और सर्व व्यापक शक्ति" की महिमा गाई है। अन्तके ५।७ वर्षोंमें वह बहुधा बीमार रहे। अन्तमें ८ डिसम्बर १९०३ ई० को इस लोकसे उठगये। कह मरे थे कि हमको गाढनेकी जगह जलाना वैसाही किया गया।

निम्नस्थ ग्रंथ स्पेन्सरके रचे हुये हैं:-

1 Principles of Psychology (मानस शास्त्रके मूलतत्व)

2 Synthetic Philosophy in 5 parts-1. First principles, 2. Principles of Biology, 3. Principles of Psychology, 4 Principles of Sociology, 5. Principles of Ethics. (संयोगात्मक तत्वज्ञान पद्धति ५ भाग-१प्राथमिक सिद्धान्त, २ जीवनशास्त्रके मूलतत्व, ३ मानस शास्त्रके मूल-तत्व, ४ समाज शास्त्रके मूलतत्व, ५ नीतिशास्त्रके मूलतत्व)

3 Facts and Comments (यथार्थ और टीका)

4 Essays (निबन्ध ३ जिल्द)

5 Various fragments (बहुतसी फुटकर बातें)

6 The study of Sociology (समाजशास्त्रका अध्ययन)

7 Education (शिक्षा)

हरुक-(जापानकी पटरानी)-२८ मई. स. ई. १८५०को आपका जन्म उस उच्च वंशमें हुआ जिसमें से जापानके सम्राट्, मिकाडो अपने लिये रानियें चुना करते हैं। आपको प्रथमही से रानीके योग्य शिक्षा दी गई थी। १९ वर्षकी उम्र में वर्तमान मिकाडोंसे आपकी शादी हुई। जब आप विवाहके आई तो उस समय जापानमें देशसुधारकी इच्छासे प्राचीन रीति नीति और स्थितिमें परिवर्तन होरहा था। देशस्थितिके परिवर्तनमें सबसे अधिक और प्रथम भाग आपहीने लिया

और इन्दौरकी गद्दियोंके वारिस करारपाये। संक्षिप्तः–इस सन्धिद्वारा अंग्रेजोंको प्रायः वह सब मुल्क मिला जिससे वर्तमान बम्बई प्रेजीडेन्सी बनी है। इसी समय राजपुतानाके राजाओंने भी अंग्रेजी रक्षामें आना स्वीकार किया। लार्ड हैस्टिङ्गजने केवल बृटिशराज्यकी सीमाही नहीं बढ़ाई किन्तु लुटेरे पिंढारियोंको नष्ट करके और मरहटों तथा गोरखोंको परास्त करके देशमें अमन चैन फैलाया। जहां लुटजानेके भयसे रास्ता चलना कठिन था वहां लार्ड हैस्टिंगजके शासनके प्रतापसे एक बुढ़ियाभी सोनेका डेला हाथमें लिये हुये सफर करनेमें समर्थ होगई। १८२३ में लार्ड हैस्टिंगज इङ्गलैंड वापिस गये और कुछही समय पीछे परमधामको सिधारे।

॥ इति संसारके महान पुरुष परिशिष्ट भाग समाप्त ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष–" श्रीवेङ्कटेश्वर "
स्टीम्-प्रेस,–बम्बई.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण–बम्बई.

पड़ा जो अमेरिकाकी रियासतोंने संयुक्त होकर स्वाधीनता पानेके लिये अंग्रेजोंसे ठानाथा। ८ वर्ष पर्य्यंत वहां बड़ी वीरतासे लड़कर ऊंचा पद पाया। १७९३में पिताके मरनेपर अर्ल आफ़ म्वायरा (लार्ड म्वायरा) का खिताब पाया। १८१४–२३में हिंदोस्थानके गवर्नर जेनरल रहे। आपके हिंदोस्थान आनेके बहुत दिन पहिलेसे नैपाली गोरखे बृटिश सीमामें आकर प्रजाको सतायाकरतेथे। लार्ड मिन्टो और सर जार्ज बारलोने अनेक दफे उनको समझायाथा लेकिन उन्होंने कान नहीं कियाथा १८१८ में लार्ड हैस्टिंगजने जेनरल आक्टर्लोनीको पंजाबकी तरफसे नैपालपर चढ़ादिया। पहिली दफे हारकर दूसरी दफे जेनरल आक्टरलोनीने हिमालय पर्वतपरस्थित गोरखोंके अनेक किलोंको जो अब पंजाब प्रेजीडेन्सीमें शामिल हैं फतेह करलिया। दूसरी साल १८१५ में जेनरल अक्टरलोनीको पटनाकी तरफसे काठमाँडू पर चढ़ाई करनेका हुक्म मिला। हारकर गोरखोंने सेगौलीकी सन्धि स्वीकारकी जिसके अनुसार नैनीताल, मसौरी और शिमला अंग्रेजी अधिकारमें आये। उधर मध्यहिंदके पिंढारियोंकी लूटमारसे प्रजा तंगथी। १८१७ में लार्ड–हैस्टिंगजने उनपर चढ़ाई की। पिंढारी सर्दार चीतू परास्त होकर जंगलको भागा और चीतेकी शिकार हुआ। दूसरा पिंढारी सर्दार करीम हारकर अंग्रेजोंकी शरणागत हुआ। तीसरा पिंढारी सरदार अमीरखाँ टोंकका नव्वाब बना दिया जाने पर वश कियागया।

पिंढारियोंको पामाल होते देख १८१७ में पूनाके पेश्वा, नागपुरके भोंसला और इन्दौरके होलकरने सर उठाया लेकिन परास्त हुये। यह युद्ध जो इतिहासमें तृतीय मरहटा युद्धके नामसे प्रसिद्ध है १८१८ में सन्धि द्वारा खतम हुआ। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार पेश्वाका मुल्क खालसा किया गया। पेश्वाको ८० हजार पाउंड वार्षिक पेन्शन देकर बिठूर (कानपुर) में कैद किया गया। पेश्वा की जगह प्राचीन मरहटाराज्यका नाम चिरस्थायी रखनेके लिये महाराज शिवाजीके एक वंशजको थोड़ासा मुल्क देकर सताराका राजा बनाया गया। भोंसला और होलकरके वंशके दो बालक बृटिश गवर्नमेंटकी रक्षामें नागपुर

हितीमें अनेक युद्धोंमें लड़कर के. सी. वी. का खिताब पाया। पेनिनसुलर संग्राममें आपका एक हाथ भी जाता रहाथा। १८४४ से ४८ तक गवर्नर जेनरल हिंद रहे। इंगलैण्डमें १८५६ की साल मरे। जब आप हिंदोस्थान आये थे तो उस समय पंजाबी सिक्ख राज्यके सिवाय अन्य सब हिंदोस्थानी राजे अंग्रेजोंसे परास्त हो चुकेथे। सर चार्लस मेटकाफके साथ जो महाराज रणजीत सिंहने सन्धि की थी उसका पालन उन्होंने अपने जीते जी १८४५ तक पूर्णरीतिसे किया था लेकिन महाराजके उत्तराधिकारियोंमें आपसमें फूट फैली और खालसा फौजने बिगड़कर अपनेही अमीर वजीरोंको मारना शुरू किया। एसी दशामें रानी चन्दाने ६० हजार खालसा फौजको १५० तोपों सहित अंग्रेजी मुल्कपर चढ़ाई करनेके लिये भेजकर घरकी बला बाहर टालना चाही। यह खबर पातेही कमान्डर इन-चीफ सर ह्यगफ और गवर्नर जेनरल लार्ड हार्डिंग मोरचे पर जा डटे। ३ सप्ताहके बीच मुदकी, फिरोजशहर, अलीवाल और सोवराउनमें ४ युद्ध हुये। यद्यपि अंग्रेजी सेनाकी बड़ी हानि हुई लेकिन अन्तिम युद्धमें सिक्ख, सेना सतलज पार हटादीगई और लाहौरपर अंग्रेजी अधिकार होगया। अन्तमें सन्धि हुई जिसके अनुसार महाराज रणजीत सिंहके बालक पुत्रको लाहौरकी गद्दी मिली, रावी और सतलजके बीचका मुल्क (जालंधर दो आब) अंग्रेजोंको मिला, खालसा फौजकी तादाद घटाईगई और लाहोर दर्बारमें बृटिश रेजीडेन्ट नियत कियागया। इस राजसेवाके उपलक्षमें सर हेनरी हार्डिगको वाईकौन्टका खिताब मिला।

हैस्टिङ्गज (लार्ड फ्रेन्सिस राडन, मार्कुइस आफ हेस्टिङ्गज- Lord Francis Rawdon, Marquess of Hastings) आयरलैंडमें ९ दिसंबर स० ई० १७५४ की साल जन्मे। जान लार्ड राडन आपके बाप थे। हारोमें शिक्षा पाकर उस समयकी रीतिके अनुसार सर्वत्र यूरुपमें भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किया था देशाटनसे लौटकर बृटिशसेनामें भरती हुये और १७७३में लफटिनेन्टका पदपाया कुछही समय पीछे आपको अमेरिकामें उस युद्ध पर जाना

पुरानी पोशाकके बदले यूरोपियन पोशाकका प्रचार किया जिसको प्रजागणने खुशीसे अङ्गीकार किया। यद्यपि पोशाक यूरोपियन ढंगकी पहनती हैं लेकिन स्वदेशके आचार विचारोंको मानती हैं। निजकी पूंजीमेंसे दीन दुःखियोंको सहायता देती हैं। अस्पतालोंमें जाकर रोगी सैनिकोंकी देखभाल किया करती हैं। चीन–जापान युद्धके अवसरपर आपने राजघरानेकी स्त्रियोंसे घायल सैनिकोंके लिये पट्टियें तैयार कराई थीं जो अस्पतालोंमें काम आई। घायलोंकी शुश्रूषाके लिये आपने स्त्रियोंकी Red Cross Society स्थापन की थी। आप दयालु और बुद्धिमती हैं। सर्दारों, जागीरदारों और दरबारियोंको सालमें एक दफे भोजन दिया करती हैं। प्रजाकी हितकामनाके लिये सदैव चिन्तित रहती हैं। कविता भी करती हैं जो राजा प्रजाका सम्बंध दृढ करनेवाली और आपसमें प्रीति बढानेवाली होती है।

आपके गुणोंका प्रभाव तमाम राज्य पर इस तरह पड़ा है कि जिससे सम्पूर्ण प्रजा, राज्यके हानिलाभको अपना हानिलाभ समझती है। रूस–जापान युद्धके समय जो १९०५ में जारी था राजदम्पति जापानने अपने आरामके लिये १ पैसा भी खर्च न करनेका प्रण कियाथा, ऐश आराम छोड़ दिया था, जापानी सैनिकोंके मारे जानेका हाल सुन २ कर आंसू बहाये थे और रणशायी सैनिकोंकी माताओं और विधवाओंको तसल्ली और सहायता दी थी। जापानी सैनिक भी अपने साम्राज्यकी प्रतिष्ठा बचानेके लिये जी तोड़कर लड़े थे और रूसियोंको परास्त कर देनेमें समर्थ हुये थे

हार्डिङ्ग (वाई कौन्ट हेनरी हार्डिङ्ग–Viscount Henery Hardinge) –सर हेनरी हार्डिङ्ग जो बादको वाई कौन्टका खिताब पाकर लार्ड हार्डिङ्ग हुये, स. ई. १७८५ की साल केन्ट (इङ्गलैंड) में जन्मे थे। रेवरेन्ड हेनरी हार्डिङ्ग आपके बाप थे। आप १७९८ में अंग्रेजी सेनामें भरती हुए। १८०२ में लफ़टिनेन्ट और १८०४में कैप्टिन होकर शनैः २ उच्चपदपर पहुंचे। ड्यूक आफ़–वेलिङ्गटनकी मात-